



परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री
सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि-परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19-03-1971

* मुनिदीक्षा-11-05-1989

* आचार्यपद- 20-06-2004

पट्टाधीशपद- 24-12-2010 (20-06-2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सम्मत्तिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:-

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी-जुलाई 2004) (अक्षयज्योति-अक्तूबर 2004)

जैनाचार्य रविषेणकृत पद्मपुराण और तुलसीकृत रामचरितमानस

लेखक
डॉक्टर रमाकान्त शुक्ल



प्रकाशक : वाणी परिषद, दिल्ली

(परम्परानायक)



परम पूज्य चरित्र-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)



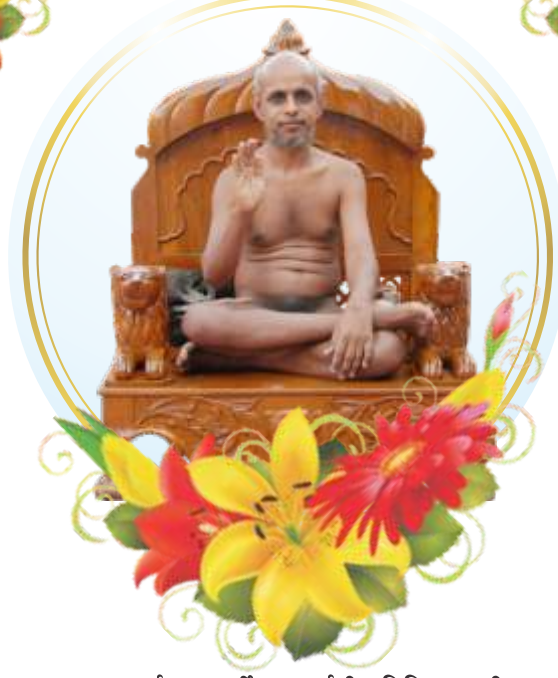
परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)



परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)



परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि-परिवार

जैनचार्यरदिनेनकृत 'पद्मपुराण' और तुलसीकृत 'रामचरितमानस'

समर्पणम्

ज्ञानेयाचनमुत्स्य काव, रत्नाकरोपम चित्तम् ।
कविप्रतिभासिव वाणी, यो विभ्रत्सज्जनाश्रयी ॥
य दृष्ट्वा बह्मण्य बाग्देवी तरलहृदयाऽभूत् ।
आनन्दाम्बुधिभूत विद्यानद्यो यमनुजग्मु ॥
आत्मवपञ्चकञ्चारी पञ्चाननतां च यो ज्ञात ।
वीर्या समर्प्यमाण नित्य मुमुदे 'प्रियम्बदया' ॥
बह्व प्रसादतदन हृदय सख्य, सुधामुखो वाच ।
करण परोपकरण यस्य सदैवाभयैल्लोके ॥
बाग्देवताचतारो बाग्देवीनर्चयन्निवम् ।
बाग्देवीपञ्चम्यां बाग्मीनो योऽभ्यवज्जनक ॥
कीर्तिमय य स्मृत्वा सरस्वती सर्वमुक्ताञ्जले ।
आह्वय हरति च यो मे श्रीब्रह्मानन्दमुक्ताब्ज ॥
तस्य स्मृतिस्त्वक्पा विजयन पश्यतोहर्षी ।
तस्य कृपेनोसारा विलसन्तु लोके कृति तेजम् ॥

—'रघा'

आचार्य श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल-ग्रन्थमाला, प्रथम पुष्प

जैनाचार्य रविषेण-कृत 'पद्मपुराण'

और

तुलसी-कृत 'रामचरितमानस'

लेखक :

डॉ० रामाकान्त शुक्ल

एम० ए० हिन्दी (संग्रहणपत्रक), एम० ए० सरहुत, माहिषाचार्य, पो-एन० डी०

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, राजधानी कालेज (दिल्ली विश्वविद्यालय)

कीर्तिनगर, नयी दिल्ली-११००१५

प्रकाशक :

वाणी परिषद्, दिल्ली

© डॉ० रामाकान्त शुक्ल

प्रकाशक वाणी परिषद्
आर ७, वाणी-बिहार, नयी दिल्ली-११००१८

मुद्रक हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
ए-४५, नागवणा इण्डस्ट्रियल एरिया,
फेस II नयी दिल्ली ११००२८
दूरभाष ५८३५४४

संस्करण प्रथम १९७४

मूल्य • मात्र रुपये मात्र

JAINĀCHĀRYA RAVISENA-KRITA PADMA-
PURĀNA AUR TULASĪ-KRITA
RAMĀCHARITAMANASA
(Thesis)

By
SHUKLA, RAMAKANT.

Rs. 60.00

अनुक्रम

प्रकाशकीय वक्तव्य :	डॉ० रमाशंकर श्रीवास्तव	चार
दो शब्द :	डॉ० नगेन्द्र	पाँच-छः
सम्मति :	डॉ० विजयेन्द्र स्नातक	मात-आठ
विषय-प्रवेश		नौ-सोलह
प्रथम अध्याय :	पौराणिक काव्य : स्वरूप और परम्परा	१-६
द्वितीय अध्याय :	आचार्य रविवेण और उनका पद्यपुराण :	
	सामान्य विवेचन	१०-८७
तृतीय अध्याय :	आचार्य रविवेण के समय की परिस्थितियाँ	८८-१००
चतुर्थ अध्याय :	पद्यपुराण की विषयवस्तु	१०१-१३२
पञ्चम अध्याय :	पद्यपुराण के पात्र तथा चरित्र-चित्रण	१३३-१६६
षष्ठ अध्याय :	पद्यपुराण का भावपक्ष-निरूपण	१७०-१८०
सप्तम अध्याय :	पद्यपुराण का कलापक्ष-निरूपण	१६१-२५०
अष्टम अध्याय :	पद्यपुराण में जैन धर्म-दर्शन	२५१-२७१
नवम अध्याय :	पद्यपुराण में सस्कृति	२७२-३०२
दशम अध्याय :	पद्यपुराण का जैन रामकाव्य-परम्परा	
	में स्थान	३०३-३०५
एकादश अध्याय :	पद्यपुराण और रामचरितमानस	३०६-४१४
परिशिष्ट :	(१) पद्यपुराण के सुभाषित	४१७-४७१
	(२) पद्यपुराण की प्रमुख वंशावलियाँ	४७२-४७६
	(३) संकेतित-ग्रन्थ-सूची	४७७-४८०

प्रकाशकीय वक्तव्य

बाणी-परिषद् की स्थापना सन् २०३० की वसंत-पंचमी के अवसर पर हुई थी। परिषद् की संकल्पना के अनुरूप एक प्रकाशन-योजना भी कार्यान्वित की जा रही है जिसमें श्रेष्ठ साहित्य-ग्रंथों का प्रकाशन किया जाएगा। इसी योजना के अन्तर्गत डॉ० रमाकान्त शुक्ल द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए लिखित शोध-प्रबन्ध 'जैनाचार्य रविषेण कृत पद्मपुराण और तुलसीकृत रामचरितमानस' 'स्व० आचार्य श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल-ग्रन्थमाला' के प्रथम पुष्प के रूप में, परिषद् के उत्त्वावधान में, प्रकाशित किया जा रहा है।

मानस-चतुदशती एव भगवान् महावीर की २५००वीं परिनिर्वाण-जयन्ती के पर्व-वर्ष में पद्मपुराण और रामचरितमानस के भाव, भाषा और कला-पक्षों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने वाले ऐसे ग्रंथ का प्रकाशन एक पुण्य-प्रयास है। इस ग्रंथ में डॉ० शुक्ल ने दो भिन्नयुगीन कृतियों की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत कर अपने गहन अध्ययन, श्रम और विद्वत्ता का परिचय दिया है। जैनाचार्य रविषेण की साहित्यिक प्रतिभा का अब तक अपेक्षित रूप में अध्ययन सामने नहीं आया था। इस दिशा में सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि कुछ छुटपुट निबन्धों के अतिरिक्त उनके विषय में कोई स्वतन्त्र ग्रंथ नहीं लिखा गया था। इस अभाव की पूर्ति डॉ० रमाकान्त शुक्ल ने की है। साहित्य-संवर्द्धन उनका शाश्वत धर्म हो, यही हमारी कामना है।

मुद्रण और बाजार की विवशताओं के कारण इस ग्रंथ का प्रकाशन पूर्व निर्धारित समय पर नहीं हो पाया जिसके लिए हमें खेद है।

हम आशा करते हैं कि बाणी-परिषद् भविष्य में भी महत्त्वपूर्ण कृतियों का प्रकाशन कर अपनी मर्जनात्मक भूमिका का परिचय देगी।

२५ मई, १९७६

—रमाशंकर श्रीवास्तव

सचिव, बाणी-परिषद्

७, बाणी-बिहार, नई दिल्ली-११००१८

दो शब्द

परिवर्तित युग-बोध और परिवेग के सन्दर्भ में प्राचीन पौराणिक काव्य का पुनर्मूल्यांकन और पुनराख्यान सर्जनात्मक धरातल पर तो अपनी प्रासंगिकता सिद्ध कर ही चुका है, आलोचनात्मक स्तर पर उसकी अनिवार्यता और भी अधिक गहराई से अनुभव की जाने लगी है। जैनकाव्य के पुनर्मूल्यांकन में अब साम्प्रदायिक दृष्टि अवरोध उपस्थित नहीं करती। उसके प्रति विद्वानों का दृष्टिकोण, मात्र साम्प्रदायिक न रहकर, गहन अनुसन्धान और जिज्ञासा का बनता जा रहा है। डॉ० रमाकान्त शुक्ल की प्रस्तुत शोध-कृति 'जैनकाव्यं रविवेग-कृत पद्मपुराण और तुलसी-कृत रामचरितमानस' इस दिशा में एक महत्वपूर्ण शोध-उपलब्धि है। लेखक ने निष्ठा एवं अन्तर्दृष्टि से रविवेग-कृत पद्मपुराण (पद्मचरित) की मूल संवेदना और शिल्प के विविध आयामों का उद्घाटन किया है।

रविवेग में जैन साम्प्रदायिकता का स्वर अत्यन्त प्रखर था और तुलसी में वैष्णव सिद्धांतों के प्रति आग्रह कम नहीं था, किन्तु शुद्ध साहित्यिकता के स्तर पर उनकी उपलब्धियाँ विवेच्य एव तुलनीय हैं। जैन-परम्परा के अनुसार रामायण के पात्रों का जो स्वरूप सम्मुख आता है, वह आस्था एव परम्परा में पोषित विचारकों को किञ्चित् भिन्न एवं अप्राप्त भी प्रतीत हो सकता है किन्तु संशय की भाव-भूमि में पल्लवित आधुनिक मनीषा को वह कुछ अधिक आकृष्ट करता है। प्रति-पात्रों में नायकीय महद्गुणों की परिकल्पना तथा उपेक्षित पात्रों के प्रति सहानुभूति, जो आधुनिकता का गुण कहा जा सकता है, जैन रामकाव्य-परम्परा में इन दोनों तत्त्वों का स्पष्ट आभास मिलता है।

लगभग ३० वर्ष पूर्व साकेत का अध्ययन एवं विवेचन करते समय मैंने साकेतवासियों की रणसज्जा के प्रसङ्ग को गुप्तजी की मौलिक उद्भावना के रूप में रेखांकित किया था। परवर्ती लेखकों ने इसी मत की पुष्टि की। किन्तु 'पद्मपुराण' का अध्ययन प्रस्तुत हो जाने के उपरान्त मुझे इस विषय पर नये सिरे से सोचने का अवसर मिला। कुछ समय पूर्व एक गोष्ठी में रमाकान्तजी ने साकेत के उक्त स्थल

छै:

पर पञ्चपुराण के प्रभाव की सप्रमाण चर्चा की थी। यह समानता आकस्मिक प्रतीत नहीं होती; गुप्तजी ने उपजीव्य सामग्री के रूप में उसका प्रयोग किया है—ऐसा प्रतीत होता है।

वस्तुतः जीवन-दर्शन की भिन्नता एवं नूतनता तथा रामकाव्य के परवर्ती विकास पर पढ़ने वाले प्रभाव के आकलन की दृष्टि से पञ्चपुराण का अध्ययन एक महत्वपूर्ण अनिवार्यता है। रामचरितमानस के तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में इस अध्ययन का महत्व और भी बढ़ जाता है। विविध भाषाओं में लिखित विभिन्न सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व करने वाले रामकाव्यों के मूल में कोई अन्तःसूत्र अवश्य विद्यमान है—भारतीय चिन्तन की मूलभूत एकता की इस धारणा को भी प्रस्तुत अध्ययन से बल मिलता है।

इस प्रकार यह कृति न केवल विषय का युक्तिसंगत आख्यान तथा मूल्याङ्कन प्रस्तुत करती है, अपितु भविष्य के शोधार्थियों एवं जिज्ञासुओं के लिए नये तथ्य एवं सामग्री भी प्रकाश में लाती है।

मानस-चतुश्शती पर्व, सं० २०३१ वि०

—जगेन्द्र

सम्मति

भारतीय वाङ्मय में रामकथा से अधिक व्यापक दूसरी कोई कथा नहीं है। रामायण को उपजीव्य बनाकर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनेक काव्य, नाटक आदि लिखे गये हैं। जिन धर्मों में राम को अवतार नहीं माना गया और ईश्वर का स्थान नहीं दिया उनमें भी रामकथा के आधार पर काव्यादि का प्रणयन हुआ है। विशेषतः जैन कवियों ने रामकथा के आधार पर प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृत में सुन्दर काव्य लिखे हैं। अनेक भाषाओं के विचक्षण विद्वान् आचार्य रविषेण रचित 'पद्मचरित (पद्मपुराण)' संस्कृत का एक उच्च कोटि का महाकाव्य है। पद्म (राम) का चरित्र इस महाकाव्य में जैन-धर्म की मान्यताओं के आधार पर वर्णित हुआ है। आचार्य रविषेण ने यद्यपि जैन-धर्म की विचारसरणी को प्रधानता दी है किन्तु उनके व्यापक अध्ययन की छाप इस काव्य में सर्वत्र व्याप्त है। बालमीकि, कालिदास, भवभूति आदि की रचनाओं के सुन्दर स्थल रविषेण ने सहज ही ग्रहण कर लिये हैं। गीता तथा अन्य पुराणों से भी उपदेशात्मक प्रमाणों का अकन पद्मपुराण में मिलता है। ऐसे सुन्दर एवं उत्कृष्ट कोटि के महाकाव्य का तुलनात्मक शैली से अभी तक अध्ययन नहीं हुआ था। डा० रमाकान्त शुक्ल ने पद्मपुराण तथा रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर इस अभाव की पूर्ति की है। डा० शुक्ल हिन्दी-संस्कृत के विद्वान् हैं। अतः इस कार्य के वे अधिकारी भी हैं। पद्मपुराण के अनुशीलन से एक ऐसे महाकाव्य का स्वरूप हिन्दीभाषियों के लिए उद्घाटित हुआ है जो धर्म की भूमि पर पृथक् होने पर भी संस्कृति, भाषा एवं विचार के स्तर पर भी भारतीय मनीषा का ही अंग है। डा० शुक्ल ने पद्मपुराण का अध्ययन करने समय अपनी दृष्टि को व्यापक परिप्रेक्ष्य से सशुक्त रखा है। अर्थात् केवल सामान्य तुलना ही नहीं बल्कि पद्मचरित की गरिमामयी शैली और भाव-वस्तु को काव्यशास्त्रीय दृष्टि से परखा है। रामचरितमानस के विविध प्रसंगों की सूक्ष्म स्तर पर तुलना को पढ़ कर आचार्य रविषेण और गोस्वामी तुलसीदास की कारयित्री प्रतिभा का पाठक को परिचय प्राप्त होता है। डा० शुक्ल ने अपने अध्ययन से एक ऐसे अल्पज्ञात

आठ

संदर्भ को पठनीय बनाया है जिसकी ओर अभी तक विद्वानों का ध्यान नहीं गया था। इनका यह प्रयास घोष की वैज्ञानिक प्रक्रिया के सर्वथा अनुरूप है। मेरा यह विश्वास है कि रामकथा का यह तुलनात्मक अनुशीलन हिन्दी-जगत् में समादृत होगा और मानस-चतुश्शती-वर्ष के समय इसका प्रकाशन महाकवियों के प्रति श्रद्धांजलि होगा।

२६-४-७२

विजयेन्द्र स्नातक
आचार्य एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

विषय-प्रवेश

भारतीय-वाङ्मय की महत्त्व-कथा के समय जैन-साहित्य की चर्चा अपोहित नहीं की जा सकती। परन्तु यह दुःख की बात है कि साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के कारण जैन-साहित्य अपेक्षित रूप में प्रकाश में नहीं आ सका। एक ओर 'हस्तिना साङ्ग्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्' जैसी घोषणाओं ने और दूसरी ओर अपने ग्रन्थों को 'असूर्यम्पश्य' रखने की प्रवृत्ति ने ज्ञान की अपार राशि को, सुचिन्तित अध्ययन को और मनीषियों की अनुपम साधना को जिज्ञासुओं से बहुत दिनों तक दूर रखा है। अपने ही देश के चिन्तन से हम बचित रहें—इससे अधिक विडम्बना और क्या हो सकती थी ?

जैन-साहित्य के महार्घ रत्नों से भारती का भण्डार भरा हुआ है परन्तु अनायास प्राप्त उनके आलोक का लाभ भी हम नहीं उठा पाते, उन्हें एकान्त रूप से प्राप्त करने के प्रयत्न की बात तो दूर रही। आश्चर्य तो तब और भी होता है जब साहित्य के परिचायक इतिहास-ग्रन्थों में भी इन ग्रन्थ-रत्नों का स्पष्ट उल्लेख नहीं होता जबकि साहित्यिक दृष्टि से ये ग्रन्थ किसी भी भाषा के कण्ठहार बन सकते हैं।

इन ग्रन्थों का साहित्यिक महत्त्व तो है ही, सांस्कृतिक महत्त्व भी कम नहीं है। 'कथाकोप प्रकरण' की भूमिका में जैन-कथा-ग्रन्थों की महत्ता बताते हुए मुनि जिन-विजयजी लिखते हैं :—“भारतवर्ष के पिछले ढाई हजार वर्ष के सांस्कृतिक इतिहास का सुरेख चित्रपट अंकित करने में जितनी विस्तृत और विश्वस्त उपादान सामग्री इन कथा-ग्रन्थों में मिल सकती है उतनी अन्य किसी प्रकार के साहित्य में नहीं मिल सकती। इन ग्रन्थों में भारत के भिन्न-भिन्न ग्रन्थ, सम्प्रदाय, राष्ट्र, समाज, वर्ण आदि के विविध कोटि के मनुष्यों के नाना प्रकार के आचार, विचार, व्यवहार, सिद्धान्त, आदर्श, शिक्षण, संस्कार, नीति-रीति, जीवन-पद्धति, राजतंत्र वाणिज्य-व्यवसाय, अर्थोपार्जन, समाज-संगठन, धर्मानुष्ठान एवं आत्म-साधन आदि के निबर्शक बहुविध वर्णन निबद्ध हुए हैं जिनके आधार से हम प्राचीन

भारत के सांस्कृतिक इतिहास का सर्वांगीण और सर्वतोमुखी मानचित्र तैयार कर सकते हैं।”^१

जैनाचार्य श्री रविषेण द्वारा रचित ‘पद्मचरित’ या ‘पद्मपुराण’ ऐसे ही महत्त्व का ग्रंथ है। इसमें ‘पद्म’ (राम) का चरित्र वर्णित है। इसकी रचना में कवि का उद्देश्य है—आर्य रामायणों की अतिमानवीय घटनाओं का बौद्धिक विश्लेषण करके राम को जिनदीक्षा दिलाकर मोक्ष-प्राप्ति का साधन जिनदीक्षा को ही सिद्ध करना। वाल्मीकीय-रामायण की धारा से परिचित व्यक्ति को ‘पद्म-पुराण’ की राम-कथा अटपटी प्रतीत हो सकती है परन्तु जैन-रामकथा की परम्परा से परिचित व्यक्ति को इसमें कोई आश्चर्य नहीं होगा। इन जैन कवियों ने नामावलीनिबद्ध ‘पद्म’ (राम)-चरित को इस प्रकार पल्लवित किया जिससे जैन-दर्शन के प्रति लोगों को आर्वाजित किया जा सके। स्पष्टतः इस प्रयत्न में यत्र क्वचित् अनावश्यक खीच-तान भी हुई है परन्तु इन कवियों के कवित्व और वैदग्ध्य में संदेह नहीं किया जा सकता।

संस्कृत-ग्रंथों की परम्परा में ‘पद्मपुराण’ या ‘पद्मचरित’ अभी तक उपेक्षित था। यद्यपि संस्कृत-साहित्य के समस्त उदात्त गुण इसमें विद्यमान हैं तथापि संस्कृत के इतिहास ग्रंथों में इसकी चर्चा का लेखकों को अवकाश तक नहीं मिला है। यह उन्होंने जानबूझ कर किया अथवा उन्हें इसका परिचय ही नहीं था—यह वे जाने। वाचस्पति गैरोला ने अवश्य अपने संस्कृत-साहित्य के इतिहास में इस पर अत्यन्त संक्षिप्त रूप से कुछ लिखा है और जैन-साहित्य के संस्कृत ग्रंथों को संस्कृत-साहित्य के इतिहास में समाविष्ट करने की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया है। अस्तु, जैन-रामकथा के इस प्रसिद्ध ग्रंथ का गोस्वामी तुलसी दास जी के रामचरितमानस से अध्ययन प्रस्तुत करना इस प्रबन्ध का उद्देश्य है।

पद्मपुराण और रामचरितमानस—दोनों ही रामकाव्यमाला के वरेण्य रत्न हैं। यदि पहले की जिनसेन, कुवलयमालाकार, स्वयम्भू तथा भट्टारक सोमसेन आदि ने सराहना की है तो दूसरे की भी अनेक देशी-विदेशी विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। न केवल हिन्दी के अनेक विद्वानों ने अपितु फोर्ट विलियम के मुशी अदालत खाँ, मैक्फी, ग्रियर्सन, महाराम गान्धी, गामां दे तासी, एफ. एस. ग्राउज, एफ. ई. केई, एडविन ग्रीब्ज, जे. ई. कार्पेण्टर, डब्ल्यू डगलस पी. हिल तथा डॉ. मुहम्मद हाफिज सैयद सदृश अनेक अहिन्दीभाषी विद्वानों ने भी रामचरितमानस की गुण-गाथा गायी है। आचार्य रविषेण ने, रामकथा के बहाने, जैनधर्म के सिद्धान्तों को

१ कथाकोषप्रकरण—प्रास्ताविक वक्तव्य, पृ० १५।

ग्यारह

प्रस्तुत किया और तुलसी ने 'नानापुराण-निगमागमसम्मत' तत्त्व को। रविवेण का प्रधान लक्ष्य है, अपने धर्म का प्रचार और तुलसी का स्वान्तःसुखाय रामचरित का श्रवण करना। रविवेण का धर्म-प्रचार और तुलसी का भाषा-निबन्ध—दोनों ही संसार के कल्याणार्थ जिन-दीक्षा और राम-राज्य की संकल्पना करते हैं। दोनों का मार्ग भिन्न है, किन्तु लक्ष्य प्रायः समान। दोनों अपने काल और समाज की विडम्बनाओं से आलोडित हुए हैं और युग को एक दिशा देना चाहते हैं।

तुलसी 'पद्मपुराण' से प्रभावित थे या नहीं—यह इदमित्य रूप से नहीं कहा जा सकता, परन्तु अनेक स्थलों से यह अनुमान किया जा सकता है कि उन्होंने इस ग्रन्थ को संभवतः देखा हो परन्तु अपने द्रष्टृदेव की प्रतिमा के प्रतिकूल उन्होंने जो कुछ भी अनुचित समझा उसमें काट-छांट करने में वे कभी नहीं हिचके। अपना आदर्श वाल्मीकि को मानकर भी यदि उन्होंने सीता-परित्याग-जैसी वारुण घटना का परित्याग कर दिया हो तब अपनी भावना के प्रतिकूल लगने वाले किसी सम्पूर्ण ग्रन्थ को ही यदि उन्होंने उपेक्षित कर दिया हो तो कोई आश्चर्य नहीं है।

जो हो, इन दोनों ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन करने के उद्देश्य से इस शोध-प्रबन्ध का प्रणयन किया गया है। मूल-रूप में प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध ग्यारह अध्यायों में विभक्त था।

प्रथम अध्याय में, विषय-प्रवेश और प्रस्तावना थी। इसमें शोध-कार्य की आवश्यकता एवं शोध-प्रबन्ध का संक्षिप्त परिचय दिया गया था।

द्वितीय अध्याय में, पौराणिक-काव्य का सामान्य विवेचन किया गया था। चरित-काव्यों और पौराणिक-काव्यों के अन्तर पर विचार किया गया था। इस प्रसंग में 'हिन्दी-साहित्य-कोष' के 'पौराणिक-काव्यों के विवेचन' पर अपना वैमर्त्य प्रकट किया गया था। संस्कृत पौराणिक-काव्यों की परंपरा एवं उनकी सामान्य विशेषताएँ बताई गयी थी तथा हिन्दी पौराणिक काव्यों पर उनके प्रभाव की विवेचना की गयी थी।

तृतीय अध्याय में, आचार्य रविवेण के जीवन, काल, कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया था। इस प्रसंग में रविवेण के 'लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षण' पर विचार किया गया था जिसमें उनके स्फीत अध्ययन का विशद परिचय दिया गया था। रविवेण अपने आस-पास हुए गद्य-सम्राट् बाण और कालिदास से पर्याप्त प्रभावित थे जिसका परिचय उनके ग्रन्थों को देखने से मिल जाता है। इस प्रभाव को पुष्ट करने के लिए एक विशद सूची दी गयी थी जिसमें बाण, कालिदास तथा अन्य कवियों के ग्रन्थों से तुलनात्मक उद्धरण दिये गये थे। 'पद्मपुराण' का एक विवेचनात्मक परिचय प्रस्तुत किया गया था। उसकी प्राप्त प्रतिभों, कथासार

ऐवं काव्य-स्वरूप आदि पर विचार किया गया था। प्राकृतकवि विमलसूरि के 'पद्मचरित', अपभ्रंश-कवि स्वयम्भू के 'पद्मचरित' और संस्कृत-कवि आचार्य रविषेण के 'पद्मचरित' (पद्मपुराण) की तुलनात्मक दृष्टि से सक्षिप्त चर्चा एवं 'पद्मचरित' तथा 'पद्मचरित' के पौर्वापर्य पर उद्घोष की गयी थी। जैन रामकथा के श्रोतों पर विचार करते समय विमलसूरि और गुणभद्र की परम्पराओं का निर्देश किया गया था। जैन एवं जैनतर शास्त्रों, विशेष रूप से वाल्मीकि रामायण का, 'पद्मपुराण' पर प्रभाव कहाँ तक पड़ा है—यह विस्तार से दिखलाया गया था।

चतुर्थ अध्याय में, रामकाव्य-परम्परा एवं तुलसी से पूर्व हिन्दी-राम-काव्य का विस्तृत परिचय दिया गया था। तुलसी के जीवन और कृतित्व का परिचय देते हुए 'रामचरितमानस' में उनके काव्य-कौशल की एक भौकी प्रस्तुत की गयी थी।

पंचम अध्याय में, आचार्य रविषेण तथा तुलसी के समय की परिस्थितियों का तुलनात्मक विवेचन किया गया था। दोनों कवियों ने जिन परिस्थितियों में अपनी रचनाओं का प्रणयन किया वे उनके अनुकूल थी या प्रतिकूल—इस प्रश्न की भीमांसा की गयी थी।

षष्ठ अध्याय में, 'पद्मपुराण' और 'मानस' की कथावस्तु के साम्य और वैषम्य की समीक्षा की गयी थी। तुलसी और रविषेण में से कथा के मर्मस्पर्शी स्थलों को किसने अधिक पहचाना और किस रूप में चित्रित किया—यह दिखाने हुए 'पद्मपुराण' और 'रामचरितमानस' के उपाख्यानों पर विचार के साथ यह अध्याय समाप्त किया था।

सप्तम अध्याय में, 'पद्मपुराण' और 'मानस' के पात्रों और चरित्र-चित्रण पर तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया था। दोनों ग्रन्थों में आये हुए पात्रों के चरित्र का तुलनात्मक विश्लेषण तो किया ही गया था, ऐसे पात्रों की भी एक विशद सूची दी गयी थी जो दोनों रचनाओं में समान न होकर एक (पद्मपुराण) में ही विशेष रूप से आये हैं। इस विशद सूची को अकारादिक क्रम में पत्रों की सख्या के निर्देश के साथ प्रस्तुत किया गया था।

अष्टम अध्याय में, 'पद्मपुराण' और 'मानस' के भावपक्ष पर विचार किया गया था। विभाव-अनुभाव-संचारी की योजना में दोनों कवियों को कहाँ तक सफलता मिली है, कल्पना का दोनों ने किस प्रकार उपयोग किया है, एवं विचार-तत्त्व दोनों के ग्रन्थों में कैसा है, इसका सांगोपांग सप्रमाण विवेचन किया गया था।

नवम अध्याय में, दोनों कृतियों के कलापक्ष पर विचार किया गया था। दोनों

तेरह

की शैलियों पर प्रकाश डाला गया था। दोनों की भाषा, छन्द, अलंकार, गुण, रीति, वृत्ति, दोष, संवाद, प्रकृति-चित्रण एवं वर्णन-कौशल पर बिचार किया गया था। दोनों कवियों की अभिव्यंजना-शैली के युक्तायुक्तत्व का निर्णय किया गया था। इस अध्याय में सबसे विशिष्ट पद्मपुराण के वर्णनों की विशद सूची थी जिसमें लगभग दार्द सौ वर्णनों का वर्गीकरण किया गया था।

दशम अध्याय में, दोनों कृतियों की सांस्कृतिक तथा धार्मिक दृष्टि से तुलना प्रस्तुत की गयी थी। 'पद्मपुराण' तत्कालीन संस्कृति का अत्यन्त व्यापक परिचय देता है। गुणकान्त एवं गुणकान्तोत्तर भारतीय संस्कृति का ऐसा विजद परिचय बाण के बाद सम्भवतः रविपेण ही देते हैं। इस ग्रंथ पर, सांस्कृतिक परिचय के दृष्टिकोण से स्वतन्त्र कार्य किया जा सकता है जो कि आवश्यक भी है। तुलसी के 'मानस' में यद्यपि आदर्श संस्कृति ही चित्रित है तथापि लोक-संस्कृति के भी पर्याप्त सकेत वहाँ मिल जाते हैं। दोनों ग्रन्थों का इस दृष्टि से मसंदर्भ परिचय दिया गया था।

एकादश अध्याय में, 'मानस' पर 'पद्मपुराण' के प्रभाव की चर्चा की गयी थी, एवं 'पद्मपुराण' और 'मानस' का रामकाव्य परम्परा में स्थान-निर्धारण किया गया था। 'पद्मपुराण' के 'मानस' पर प्रभाव की चर्चा करते समय यह दिखाया गया था कि 'पद्मपुराण' का 'मानस' पर यथा व्यवस्थित एवं साग्रह प्रभाव बिल्कुल नहीं पड़ा है। हाँ, यदि कही तुलनात्मक उक्तियाँ दोनों ग्रन्थों में आ गयी हैं तो उनका या तो मूल स्रोत कोई तीसरा ग्रंथ है अथवा तुलसी की मधुकरी वृत्ति का परिणाम जिसके कारण उन्होंने सुभाषित-चयन किया होगा। ऐसी तुलनात्मक उक्तियों की एक विशद सूची दी गयी थी। हो सकता है कि ये धुणाक्षर-न्याय से ही सिद्ध हों।

इस प्रकार इन दोनों रचनाओं के साहित्यिक मूल्यांकन का यथामति प्रयास किया गया था। इस प्रयास में इस बात का ध्यान रखा गया था कि इन दोनों कृतियों का साहित्यिक सौन्दर्य पूर्ण रूप से उजागर हो जाय। संस्कृत-उद्धरण देते समय उनके हिन्दी अर्थ को कलेवर-स्फीति के भय से नहीं दिया गया था, इस आशा से कि मुझे सहृदय मूल उद्धरणों में ही आनन्द ग्रहण कर लेंगे।

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध १९६६ में आगरा विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया गया था जिस पर १९६७ में पी-एच. डी. की उपाधि दी गयी थी।

अब, जब कि शोधप्रबन्ध के प्रस्तुतीकरण के लगभग आठ वर्ष बाद इसके मुद्रण की बात बनी तब यह उचित प्रतीत हुआ कि इसमें से उस अंश को छँटनी कर दी जाय जो किसी भी रूप में अनावश्यक या अमीलक, कहा जा सकता था;

उवाहरणार्थ मूल शोध-प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत आने वाली तुलसी-सम्बद्ध सामग्री तथा अगले अध्यायों में समागत तुलसी के रामचरितमानस से सम्बद्ध सामग्री। इस सामग्री को शोध-प्रक्रिया के 'पुनराख्यान' अंग के अन्तर्गत रखना आवश्यक था किन्तु अब केवल तुलनापरक अंश को पुनर्व्यवस्थित करके "पद्मपुराण और रामचरितमानस" नामक एक ही अध्याय में समाविष्ट कर दिया गया है। तुलसी के विषय में तो कितने ही विद्वान् लेखनी चला चुके हैं, किन्तु रविवेण पर इस शोधप्रबन्ध से पहले नहीं के बराबर ही लिखा गया था; अतः रविवेण सम्बन्धी सामग्री को पाठकों के सम्मुख लाने की लालसा अधिक बलवती रही अपेक्षाकृत अपनी सञ्चयवृत्ति को प्रदर्शित करने के। अतः अब प्रथम अध्याय में पौराणिक काव्य का सामान्य विवेचन तथा संस्कृत पौराणिक काव्यों की परम्परा एवं सामान्य विशेषताएँ, द्वितीय अध्याय में आचार्य रविवेण का जीवन-परिचय एवं कृतित्व, तृतीय अध्याय में रविवेण के समय की परिस्थितियों का परिचय, चतुर्थ अध्याय में 'पद्मपुराण' की विषयवस्तु का परिचय, पञ्चम अध्याय में 'पद्मपुराण' के पात्रों के चरित्र-चित्रण का विवेचन, षष्ठ अध्याय में 'पद्मपुराण' के भावपक्ष पर विचार, सप्तम अध्याय में 'पद्मपुराण' के कला-पक्ष पर विचार, अष्टम अध्याय में 'पद्मपुराण' में जैन धर्म-दर्शन पर विचार, नवम अध्याय में पद्मपुराण में संस्कृति पर विचार, दशम अध्याय में जैन-रामकाव्य-परम्परा में 'पद्मपुराण' का स्थान-निर्धारण एवं एकादश अध्याय में 'पद्मपुराण और रामचरितमानस' का विविध दृष्टियों से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। एकादश अध्याय में प्रमत्तानुप्रसवस्था तुलसी से पूर्व रामकाव्य-परम्परा का सर्वेक्षणात्मक परिचय, तुलसी के रामचरितमानस का प्रकृतोपयोगी परिचय, पद्मपुराण और मानस की परिस्थिति, विषयवस्तु, पात्रों के चरित्र-चित्रण, भावपक्ष, कलापक्ष, धर्म एवं संस्कृति की दृष्टि से तुलना एवं 'रामचरितमानस' पर 'पद्मपुराण' के प्रभाव की चर्चा की गयी है।

परिशिष्ट (१) में पद्मपुराण की सूक्तियों की सूची दी गयी है जो रविवेण के सुभाषितों पर कार्य करने की इच्छा वाले व्यक्तियों के विशेष प्रयोजन की है। परिशिष्ट (२) में पद्मपुराण की प्रमुख वंशावलियाँ दी गयी हैं जो जैन-रामकाव्य-परम्परा के अन्य ग्रन्थों में समागत वंशावलियों के साथ रविवेण के ग्रन्थ की वंशावलियों की तुलना में सहायक हो सकती हैं। परिशिष्ट (३) में सकेतिक ग्रन्थ-सूची दी गयी है। विचार तो परिशिष्ट (४) में शोध-प्रबन्धान्तर्गत समागत व्यक्ति-वाचक संज्ञाशब्दानुक्रमणी देने का भी था किन्तु ग्रन्थ की कलेवरवृद्धि के भय से ऐसा नहीं किया जा सका।

प्रस्तुत ग्रन्थ के पाठक, निरसन्देह, एम. ए. या पी-एच. डी. स्तर के आस-पास के होंगे। ऐसे सुधी पाठकों के लिए संस्कृत उद्धरणों का हिन्दी अनुवाद देना मैंने अनावश्यक समझा है। इसी प्रकार काव्याङ्गों के उदाहरण देते समय काव्याङ्गों का विवेचनात्मक परिचय नहीं दिया इसी विवेकास के कारण कि कम-से-कम ये विद्वान् पाठक सम्बद्ध काव्याङ्ग की परिभाषा से तो परिचित होंगे ही। जिस उत्साह सामग्री का मैंने प्रस्तुतीकरण किया है, उसमें शायद भावी शोध को भी कुछ दिशाएँ मिल सकें। उदाहरण के लिए—'रविषेण की उपमा' 'रविषेण के रूपक', 'रविषेण की उपप्रेक्षाएँ' तथा 'रविषेण के वर्णन' आदि स्वतन्त्र शोध के विषय प्रस्तुत ग्रन्थ से अवश्य कुछ-न-कुछ सहायता पा सकते हैं। रामचरितमानस के 'दसानन', 'मूर्पनखा' आदि शब्दों को विवेचन के समय 'दशानन', 'शूर्पनखा' आदि लिख दिया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध अग्रजकल्प डॉ० ओमप्रकाश जी दीक्षित एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत पी-एच. डी., शास्त्री (रीडर तथा अध्यक्ष हिन्दी-विभाग, जे. बी. जैन कालेज, सहारनपुर) के निर्देशन में सम्पन्न हुआ था। डॉ० दीक्षित ने जैन-साहित्य-सम्बन्धी शोध को एक नवीन दिशा दी है। जैन-रामकाव्य और कृष्णकाव्य का जैनेतर (ब्राह्मण या वैष्णव) रामकाव्य और कृष्णकाव्य के साथ तुलनात्मक अध्ययन करना और कराना डॉ० दीक्षित के शोध-जीवन का बहुमूल्य प्रसंग है। स्वयंभू के 'पउमचरित' और तुलसी के 'मानस' पर उन्होंने स्वतः कार्य किया था और रविषेण के 'पद्मचरित' पर मुझे कार्य करने की प्रेरणा दी। उनके कार्य के बाद तो अनेक विश्वविद्यालयों में 'पउमचरित', 'पद्मचरित' और 'पउमचरित' के पात्रों, कथानक तथा अन्य पहलुओं पर शोध-विषय स्वीकृत हुए। जैन-रामकाव्य के महनीय ग्रन्थों के साथ 'रामचरितमानस' के तुलनात्मक अध्ययनो के निर्देशन के अतिरिक्त डॉ० दीक्षित जैन कृष्णकाव्य-परम्परा के महार्थ रत्न 'हरिवंश-पुराण' और हिन्दी कृष्णकाव्य परम्परा के महान् ग्रन्थ 'भूरसागर' के तुलनात्मक अध्ययन का, मेरठ विश्वविद्यालय में, निर्देशन कर रहे हैं। यह अध्ययन मेरे अनुज चि० श्री विष्णुकान्त शुक्ल एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत), साहित्याचार्य, प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग, जे. बी. जैन कालेज, सहारनपुर द्वारा किया जा रहा है जो शीघ्र ही विद्वानों के सम्मुख प्रस्तुत होने वाला है। शोध-ग्रन्थ के प्रकाशन के अवसर पर मैं डॉ० दीक्षित के सौहार्द एवं पाण्डित्य के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के लिखने में अपने निर्देशक के अतिरिक्त डॉ० ए. एन. उपाध्ये, एम. ए. डी. लिट. (कोल्हापुर), डॉ० अगरचन्द नाहुटा (बीकानेर), महामहोपाध्याय विनयसागर जी (जोधपुर), डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन (लखनऊ),

सोलह

एवं स्व० प्रोफेसर एमरिटस, डॉ० एस. एस. कुलथ्रेष्ठ, एम. ए., पी-एच. डी., एल-एल. बी. (मोदीनगर) आदि विभूतियों का वैचारिक सौहार्द प्राप्त हुआ है। इनके अतिरिक्त, इसके लेखन और प्रकाशन में हमारे अग्रजद्वय प्रो० कृष्णकान्त शुक्ल (संस्कृत-विभाग, बरेली कालेज, बरेली) तथा प्रो० उमाकान्त शुक्ल (संस्कृत-विभाग, एस. डी. कालेज, मुजफ्फरनगर), मुद्गुडर श्री सुलेखचन्द्र शर्मा (हिन्दी-विभाग, देगबन्धु कालेज (सान्ख्य), दिल्ली), सुल-दु. ल के समान साथी, प्रियवर 'राज', जिनके विषय में कुछ भी लिखना थोड़ा है, ऐसी हमारी अन्वर्थनाम्नी अर्द्धाङ्गिनी श्रीमती रमा शुक्ला एवं आत्मजद्वय चि० चन्द्रमौलि शुक्ल और चि० अनुपम शुक्ल जिन्हें बचपन में प्यार से क्रमशः 'कुट्टी' और 'बम्बू' कहा, जाता रहा है—किसी न किसी रूप में महायक रहे हैं। इन सबके प्रति अपनी यथोचित मनोभावनाएँ प्रकाशित करने के लिए अपनी भोली में शब्द नहीं पा रहा।

अध्ययन और साधना के प्रतीक एवं गुणज्ञता के आगार डा० नगेन्द्र ने 'बो शब्द' लिखकर इस ग्रन्थ को गौरवान्वित करने की जो कृपा की है, वह 'वाचामगोचर' है। ग्रन्थ के विषय में, डा० विजयेन्द्र स्नातक (प्रोफेसर तथा अध्यक्ष-हिन्दी-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय) की सम्मति ने भी 'अदम्यपि याति देवत्वं महद्भिः संप्रतिष्ठितः' वाली कहावत को चरितार्थ किया है।

वाणी-परिषद्, दिल्ली ने इस ग्रन्थ को 'शाचार्य श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल-ग्रन्थमाला' के प्रथम पुष्प के रूप में प्रकाशित करना स्वीकार किया है, एतदर्थ उसके प्रति कृतज्ञ हैं।

ग्रन्थ में छापे की इक्का-दुक्का भूल रह गयी हैं। पृष्ठ ५८ पर पुष्पदन्तकृत 'तिसट्ठीमहापुरिसगुणालकार' प्रमाद से 'अपभ्रंश' के स्थान पर 'प्राकृत' की रचना छप गया है। आशा है, कृपालु पाठक इन भूलों को सुधार लेंगे—“गुणबोध-समाहारे गुणान् गृह्णन्ति साधवः।”

२७-५-१९७४

आर ६, वाणी-विहार
नयी दिल्ली-१००१८

विद्वज्जनकृपाकांक्षी :
—रमाकान्त शुक्ल

प्रथम अध्याय

पौराणिक काव्य : स्वरूप और परम्परा

काव्य के अनेकानेक भेद हुए हैं और होते जा रहे हैं। 'पौराणिक-काव्य' भी उनमें अन्यतम है। पद्यात्मक श्रव्य-काव्य के दो भेद हैं—प्रबन्ध और मुक्तक। प्रबन्ध के महाकाव्य और खण्ड-काव्य भेद होते हैं।

'हिन्दी-साहित्य-कोश' के अनुसार पौराणिक-काव्य का परिचय इस प्रकार है —

“महाकाव्य मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं—(१) साहित्यिक परम्परा में विकसित और (२) लोक-कण्ठ में रहकर विकसित लोक-महाकाव्य।

अलंकृत महाकाव्य की मुख्यतः निम्नलिखित शैलियाँ हैं . (१) शास्त्रीय, (२) रोमांसिक, (३) ऐतिहासिक, (४) पौराणिक, (५) रूपक-कथात्मक, (६) नाटकीय, (७) प्रगीतात्मक, (८) मनोवैज्ञानिक या मनोविश्लेषणात्मक। पौराणिक शैली के महाकाव्य का उदाहरण 'रामचरितमानस' आदि हैं।^१

जिस प्रकार महाकाव्य 'पौराणिक शैली' के भी होते हैं, उसी प्रकार चरित-काव्य भी 'पौराणिक-शैली' के पाये जाते हैं।^२ शैली की दृष्टि से चरितकाव्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है—(१) पौराणिक-शैली के चरित-काव्य—'पद्मचरित', 'पार्श्वनाथचरित', 'पद्मचरिय', 'पद्मचरिउ', 'महापुराण', 'पास-पुराण', 'त्रिषष्टि-शलाकापुरुषचरित' आदि। (२) ऐतिहासिक-शैली के चरित-काव्य—'पृथ्वीराजविजय', 'बिष्णुदेवचरित', 'राजतरंगिणी', 'कुमारपाल-चरित', 'हम्मीरमहाकाव्य', 'गडबहो' आदि। (३) रोमांसिक शैली के चरित-

१ हिन्दी-साहित्य-कोश, भाग—१, पृ० ६२८

२. वही, पृ० ३१५-१६

काव्य—‘नवसाहसकचरित’, ‘चन्द्रप्रभचरित’, ‘शान्तिनाथचरित’, ‘मलयसुन्दरी-कहा’, ‘अजनासुन्दरीचरित’, ‘भविसयलकहा’, ‘करकण्डुचरित’, ‘जसहरचरित’ आदि ।

उद्देश्य और विषयवस्तु की दृष्टि से चरित-काव्य छः प्रकार के होते हैं—(१) धार्मिक-पौराणिक, (२) प्रतीकात्मक, (३) वीरगाथात्मक, (४) प्रेम-क्याणक, (५) प्रशस्तिमूलक, (६) लोकगाथात्मक । इनमें—धार्मिक, पौराणिक, चरित-काव्य के उदाहरण हैं—‘रामचरितमानस’ ‘कृष्णचन्द्रिका’, ‘दशावतार’ आदि ।^३

‘हिन्दी-साहित्य-कोश’ में प्राप्त पौराणिक-काव्य का विवेचन पर्याप्त उलझा हुआ है । उससे कोई भी स्पष्ट निर्णय हमारे समक्ष नहीं आता । पृ० ४६६ पर ‘पुराण-काव्य’ के आगे लिखा हुआ है—‘दे० ‘चरितकाव्य’, ‘कथाकाव्य’ ‘महाकाव्य’ ।’ पृष्ठ ६२८ पर ‘महाकाव्य’ के विवेचन में अलंकृत महाकाव्य की छः शैलियों में एक पौराणिक भी बताई गई है जिसका उदाहरण ‘रामचरितमानस’ बताया गया है । पृष्ठ ३१६ पर उद्देश्य या विषयवस्तु की दृष्टि से ‘चरितकाव्य’ के छः प्रकारों में धार्मिक प्रकार को अन्यतम बताया गया है जिसका उदाहरण ‘धार्मिक-पौराणिक’ कहकर ‘रामचरितमानस’ को बताया गया है । ऐसी अवस्था में ‘रामचरितमानस’ को ‘चरितकाव्य’ माना जाय अथवा ‘महाकाव्य’ ?—यह प्रश्न लटकता ही रह जाता है । यदि ‘रामचरितमानस’ दोनों ही प्रकारों का प्रतिनिधित्व करना है तो ‘महाकाव्य’ और ‘चरितकाव्य’ का स्पष्ट भेद करना चाहिए जोकि नहीं किया गया है । केवल इतना कह देने से कोई तात्त्विक परितोष नहीं होता—‘चरितकाव्य प्रबन्धकाव्य का ही एक विशेष रूप या प्रकार है ।’^४ और भी—‘प्रबन्धकाव्य के भेदों में ‘चरितकाव्य’ भेद स्वीकार ही नहीं किया गया है । साथ ही एक ओर तो यह कहा गया है कि काव्य-पौराणिक नहीं होता बल्कि उसकी शैली पौराणिक होती है,^५ और दूसरी ओर उद्देश्य या विषयवस्तु की दृष्टि से छः भागों में विभक्त कर ‘धार्मिक-पौराणिक’ चरित-काव्य का उदाहरण ‘रामचरितमानस’ प्रस्तुत किया गया है ।

एक समस्या और है । पृ० ३१५ पर ‘पौराणिक शैली’ के चरितकाव्य के उदाहरण ये दिये गये हैं—‘पद्मचरित’, ‘पार्श्वनाथ-चरित’, ‘पद्मचरित’, ‘पद्मचरित’, ‘महापुराण’, ‘त्रिपण्डितशलाकापुरुषचरित’ आदि । पृ० ३१६ पर प्रबन्धकाव्य के मुख्यतः दो रूपों—शास्त्रीय प्रबन्धकाव्य और चरितकाव्य का उल्लेख करके ‘चरित-

३. वही, पृ० ३५६

४. वही, पृ० ३१५

५. वही, पृ० ३१५

काव्य' के ये लक्षण बताये गये हैं—

(१) 'चरितकाव्य' की शैली जीवनचरित की शैली होती है। उसमें प्रारम्भ में या तो ऐतिहासिक ढंग से नायक के पूर्वज, माता-पिता और वंश का वर्णन रहता है या पौराणिक ढंग से उसके पूर्व भावों (भवों ?) का वृत्तान्त तथा उसके जन्म के कारणों का वर्णन होता है अथवा कथाकाव्य की तरह उसके माता-पिता, देश और नगर का वर्णन रहता है। उसमें चरितनायक के जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त तक की अथवा कई जन्मों (भवान्तरों) की कथा होती है। उसमें शास्त्रीय प्रबन्धकाव्यों की तरह महत्त्वपूर्ण और कलात्मकता उत्पन्न करने वाली मुख्य घटनाओं का चुनाव और वर्णनात्मक अंशों की अधिकता नहीं होती। अतः वह कथात्मक अधिक और वर्णनात्मक कम होता है। चरितकाव्य का कवि कथा को छोड़कर वस्तुवर्णन या प्रकृति-चित्रण में अधिक देर तक नहीं उसझुता। इसी कारण वह कथाकाव्य के अधिक निकट तथा शास्त्रीय प्रबन्ध काव्यों की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक, सरल और लोकोन्मुख होता है।

(२) चरितकाव्य में प्रायः प्रेम, वीरता और धर्म या वैराग्यभावना का समन्वय दिखलाई पड़ता है। सब में कोई न कोई प्रेमकथा अवश्य होती है और उनका स्थान, गीण नहीं, महत्त्वपूर्ण होता है। उसमें पौराणिक कथानक में भी प्रेमाख्यात्मक रंग भरने का प्रयत्न दिखाई पड़ता है। प्रायः सभी चरितकाव्यों में प्रेम का प्रारम्भ समान रूप में स्वप्न-दर्शन, गूणश्रवण, चित्रदर्शन या प्रथम साक्षात्कार द्वारा होता है। विवाह के पहले या बाद में नायक-नायिका के मार्ग में अनेक विघ्न-बाधाएँ आती हैं, युद्ध करने पड़ते हैं और अन्त में उनका मिलन होता है। जैन चरितकाव्यों में प्रायः अन्त में नायक किसी प्रेरणा या उपदेश से संसार से विरक्त होकर जैन मुनि बन जाता है।

(३) प्रायः सभी चरित-काव्यों में कथारम्भ के लिए वक्ता-श्रोता योजना अवश्य होती है। यह प्रश्नोत्तर-योजना इतने रूपों में मिलती है—(क) धर्मगुरु और शिष्य, पौराणिक कथाविद् और भक्त-जन, अथवा धावक और श्रोता के बीच, (ख) शुक-शुकी, शुक-सायिका, भृगु-भृंगी अथवा किसी वक्ता पक्षी और मानव श्रोता के बीच, (ग) कवि और कविपत्नी या कवि और उसके शिष्य के बीच।

(४) उनमें अलौकिक, अतिप्राकृत और अतिमानवीय शक्तियाँ, कार्यों और वस्तुओं का समावेश अवश्य रहता है, जो पौराणिक और रोमांसिक शैली के कथा-काव्यों, पौराणिक-कथाओं और लोक-कथाओं की देन है। इस कारण उसमें साहस-पूर्ण, आश्चर्योत्पादक और रोमांसिक कार्यों तथा तत्त्वों की अधिकता होती है और उन सभी कथानक-रूढ़ियों की भरमार होती है जो लोककथा और कथा-आख्या-

यिका में बहुत अधिक मिलती है।

(५) उनका कथानक शास्त्रीय प्रबन्धकाव्यों जैसा पंचसन्धियों से युक्त और कार्यान्वित वाला नहीं होता, वह कथाकाव्य की तरह स्फीत, बिम्बुखल, गुम्फित या जटिल होता है।

(६) उसकी शैली कथाकाव्यों से अधिक उदात्त होती है, पर शास्त्रीय प्रबन्धकाव्यों जैसी अतिशय अलंकृत, चमत्कारपूर्ण या पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति से युक्त नहीं होती, जिससे उसमें अधिक सरलता, सादगी और सामान्य जनता के लिए पर्याप्त आकर्षण होता है।

(७) चरितकाव्य प्रायः उद्देश्यप्रधान होता है, कथाकाव्यों की तरह केवल मनोरंजन करना उसका लक्ष्य नहीं होता। यह उद्देश्य कभी धार्मिक, कभी प्रशस्तिमूलक और कभी लोककल्याणामिनिवेशी होता है। परन्तु उसका उद्देश्य अधिक उभरा हुआ और स्पष्ट होता है, शास्त्रीय प्रबन्धकाव्यों जैसा कलात्मक सौन्दर्य के भीतर निहित नहीं होता। इसी कारण चरितकाव्य उपदेशात्मक, प्रचारात्मक या प्रशस्तिमूलक प्रतीत होते हैं।”

इन लक्षणों में कुछ की ‘पद्मचरित’ या ‘पद्मपुराण’ में अव्यापित है। संख्या (१) लक्षण का अंतिम भाग ‘पद्मपुराण’ के विषय में उपयुक्त नहीं है। उसमें वर्णनों की भरमार है। लगभग २५० वर्णन उसमें हैं जिनका उल्लेख हम ‘कलापक्ष’ के अन्तर्गत करेंगे। इसी प्रकार संख्या (५) लक्षण भी खण्डित हो जाता है क्योंकि ‘पद्मपुराण’ की कथा को भी पंचसन्धि समन्वित किया जा सकता है। संख्या (६) का तो उसमें नितान्त विरोध है, उसकी शैली शास्त्रीय प्रबन्धकाव्यों जैसी अतिशय अलंकृत चमत्कारपूर्ण एवं पाण्डित्य प्रदर्शन वाली है जिसका पता ग्रन्थ को देखने से ही चल सकता है।

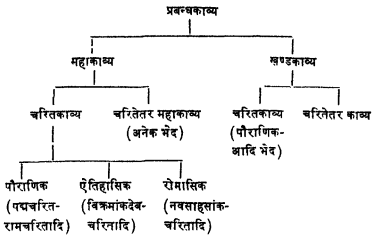
इस प्रकार या तो ‘पद्मचरित’ को पौराणिक शैली का चरितकाव्य नहीं कहना चाहिए अथवा चरितकाव्य की सामान्य विशेषताओं में संशोधन करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त यदि शास्त्रीय प्रबन्धकाव्य के भेद ‘महाकाव्य’ के लक्षणों पर ‘पद्मपुराण’ का कसा जाय तो वह उन सभी पर खरा उतरता है।

चरितकाव्य (जिसका एक भेद पौराणिक भी है) की सामान्य प्रवृत्तियाँ अनेक पुराणों में भी देखी जा सकती हैं। अतः पुराण और पौराणिक-काव्य की सामान्य प्रवृत्तियों में कोई स्पष्ट भेद दिखायी नहीं देता।

इस प्रकार ‘हिन्दी-साहित्य-कोश’ हमें पौराणिक काव्य का कोई निर्भ्रान्त परिचय नहीं देता। हमें उसका स्पष्ट विवेचन करना है।

हमारे विचार से ऊपर उदाहरणस्वरूप उपस्थापित पौराणिक शैली के चरितकाव्य 'महाकाव्य' ही हैं। इसके अतिरिक्त खण्डकाव्य में भी चरितकाव्य के ये भेद हो सकते हैं, अतः इनका वर्गीकरण इस प्रकार होना चाहिए—



इस प्रकार 'पौराणिक काव्य' प्रबन्धकाव्य के दोनों ही भेद हो सकते हैं— 'महाकाव्य' भी और 'खण्डकाव्य' भी। पौराणिक महाकाव्यों में महाकाव्य के समस्त तत्त्व पौराणिक आवरण में रहते हैं और पौराणिक खण्डकाव्यों में खण्डकाव्य के समस्त तत्त्व पौराणिक आवरण में रहते हैं। महाकाव्योचित गरिमा और वर्णन-प्रचुरता आदि पौराणिक चरितकाव्यों में यथेच्छ हो सकते हैं। अन्य सभी चरितकाव्यों की विशेषताएँ इन पौराणिक चरितकाव्यों में ऊपर के अनुसार ही जानी जा सकती हैं। हमारे आलोच्य ग्रन्थ—'पद्मपुराण' और 'रामचरितमानस' 'महाकाव्य के पौराणिक चरितकाव्य' भेद के उदाहरण हैं।

संस्कृत के पौराणिक काव्यों की परम्परा 'वाल्मीकीय रामायण' से ही मानी जा सकती है। 'श्रीमद्भागवत' भी पौराणिक काव्य ही है। किन्तु जैन साहित्य में पौराणिक काव्यों की अधिक रचना हुई। क्या प्राकृत, क्या अपभ्रंश और क्या संस्कृत—सभी में पौराणिक चरितकाव्यों की बाढ़ सी आ गई। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक जैनतर कवियों ने भी पौराणिक काव्यों की रचना की है। इनका परिचय प्रस्तुत है—

'पद्मपुराण' या 'पद्मचरित'—आचार्य रविवेणकृत 'पद्मचरित' या 'पद्मपुराण' पौराणिक काव्य का सुन्दर उदाहरण है। इसकी रचना ६७७-७८ ई० में हुई है।

इसमें पद्य (राम) का चरित निबद्ध है। रामायण की असम्भव प्रतीत होने वाली घटनाओं की बौद्धिक व्याख्या यहाँ प्रस्तुत की गयी है।

इसी ग्रन्थ का अध्ययन हमारा विषय है जिसका पूर्ण परिचय आगामी अनेक अध्यायों में दिया जायेगा।

‘रामचरित’—यह अभिनन्दकृत माना जाता है। अभिनन्द नवी शताब्दी विक्रमी के मध्यकाल में ठहरते हैं। इनके पूर्वज मूलतः गौड़ (बंगाल) देश के निवासी थे। बाद में वे काश्मीर आकर बस गये थे। इनके पिता का नाम जयन्त ऋद्ध था।

रामचरित में ३३ सर्ग हैं जिनमें रामायण के किष्किन्धाकाण्ड से युद्धकाण्ड तक का कथानक आ जाता है। यह ग्रन्थ अधूरा ही है। पूर्ति के लिए अन्त में चार-चार सर्गों के दो परिशिष्ट हैं। एक अभिनन्दकृत है और दूसरा किसी भीम नामक कवि के द्वारा रचित है। इस काव्य की शैली शुद्ध वैदर्भी है। श्रुत तथा प्रकृति के वर्णन अत्यन्त सुन्दर हैं। अभिनन्द का अनुष्टुप्-रचना पर पूर्णाधिकार है।

‘दशावतारचरित’—इस पौराणिक चरित काव्य के रचयिता काश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र हैं। ये १०६६ ई० के आसपास विद्यमान थे। ये प्रकाशेन्द्र के पुत्र और साहित्यशास्त्र में अभिनवगुप्त के शिष्य थे। संस्कृत महाकवियों में इनकी प्रतिभा अलौकिक थी। तत्कालीन काश्मीरनरेश अनन्त और उनके पुत्र कलश के युग में निराशा और पड़्यन्त्रो का बोलवाला था। क्षेमेन्द्र के पूर्वपुरुष अमात्य होते थे, परन्तु इस कवि ने परिस्थिति को सुधारने के लिए राज्याश्रय को न अपनाकर काव्य का ही सहारा लिया। इन्होंने काव्य के नाना अंगों की रचना की है। इन्होंने ‘व्यासजी’ को अपना आदर्श बनाया था। इनकी रचनाओं में ‘कला-विलास’, ‘चतुर्वर्गमग्रह’, ‘बाह्वर्षी’, ‘नीतिकल्पन’, ‘ममय-मातृका’, ‘सेव्यसेवको-पदेश’, ‘रामायणमञ्जरी’ और ‘भारतमञ्जरी’ आदि उल्लेखनीय हैं।

दशावतार उनकी अन्तिम रचना है। इसमें विष्णु के दशावतारों का बड़ा ही रोचक तथा विस्तृत वर्णन किया गया है। इसकी भाषा अत्यन्त मधुर, सरल और सुबोध है। अरण्यवास का यह वर्णन कितना सुन्दर है।

“दधितजनविभोगोद्वेगरोगातुराणा।

विभवविग्रहदैन्यम्लानमानाननानाम्।

धमयति शितशल्यं हन्त नैराश्यनश्य-

द्वभवपरिभवतान्तिः शान्तिरन्ते वनान्ते ॥”

‘आविपुराण’ और ‘उत्तरपुराण’—‘जिनसेन स्वामी ने समस्त (तिरसठ)

शलाकापुरुषों का चरित्र लिखने की इच्छा से महापुराण का प्रारंभ किया था परन्तु बीच में ही शरीरान्त हो जाने से उनकी वह इच्छा पूरी न हो सकी और महापुराण अधूरा ही रह गया, जिसे पीछे उनके शिष्य गुणभद्राचार्य ने पूरा किया। महापुराण के दो भाग हैं—‘आदिपुराण’ और ‘उत्तरपुराण’। आदिपुराण में प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ या ऋषभदेव का चरित्र है और ‘उत्तरपुराण’ में शेष तेईस तीर्थंकरों और अन्य शलाकापुरुषों का। आदिपुराण में बारह हजार श्लोक और सैतालीस पर्व या अध्याय हैं। इनमें से बयालीस पर्व पूरे और तैंतालीसवें पर्व के तीन श्लोक जिनमेन के और शेष चार पर्वों के सोलह सौ बीस श्लोक उनके शिष्य के हैं। इस तरह आदिपुराण के १०३८० श्लोकों के कर्ता जिनसेन स्वामी हैं। इनकी प्रशंसा में कहा गया है .

‘मकलच्छन्दोऽर्जकृतिलक्ष्य मूक्षमार्थगूढपदरचनम् ।
व्यावर्णनोरुसार साक्षात्कृतसर्वशास्त्रसद्भावम् ॥
अपहस्तितान्यकाव्य श्रव्यं व्युत्पन्नमतिभिरादेयम् ।
जिनसेनभगवतोक्त मिथ्याकविदपंदलनमतिललितम् ॥

यथा महार्घ्यरत्नाना प्रसूतिर्मकरालयान् ।
तथैव मूक्तिरत्नाना प्रभवोऽस्मात्पुराणतः ॥
सुदुर्लभ यदन्यत्र चिरादपि सुभाषितम् ।
गुणभ स्वैरमग्राह्य तदिहास्ति पदे-पदे ॥”

जिनसेन और दशरथ गुरु के शिष्य गुणभद्रस्वामी भी बहुत बड़े ग्रन्थकर्ता हुए। जैसा कि पहले कहा जा चुका है इन्होंने आदिपुराण के अन्त के १६२० श्लोक रचकर उसे पूरा किया और फिर उसके उत्तरपुराण की रचना की जिसका परिमाण आठ हजार श्लोक है। जिस ढंग से महापुराण प्रारम्भ किया गया था और जितना विस्तार उसके प्रथम अंश आदिपुराण का है, यदि वही ढंग आगे भी अपनाया जाता तो यह ग्रन्थ महाभारत जैसा विशाल होता और भगवज्जिनसेन की इच्छा भी शायद यही थी, परन्तु गुणभद्र ने अतिशय विस्तार के भय से और हीनकाल के अनुग्रह से इसे थोड़े में ही समाप्त करना उचित समझा और इस तरह केवल आठ हजार श्लोकों में ही शेष तेईस तीर्थंकरों और अन्य महापुरुषों का चरित्र लिख डाला और गुरु के प्रति अपने कर्तव्य का पालन किया—

“अतिविस्तरभीस्त्वादवशिष्टं संग्रहीतममलघिया ।

गुणभद्रसूरिणेदं प्रहीणकालानुरोधेन ॥”^६

‘उत्तरपुराण’ यद्यपि संक्षिप्त है, उसमें कथा भाग की अधिकता है, फिर भी उसमें कवित्व की कमी नहीं है और वह सब तरह से जिनसेन के शिष्य के अनुरूप है।

उक्त प्रमुख पौराणिक काव्यों के अतिरिक्त संस्कृत में द्वितीय जिनसेन का ‘हरिवंशपुराण,’ ‘पार्वताथ चरित,’ ‘वर्द्धमानपुराण,’ ‘त्रिपष्टिशलाकापुरुषचरित,’ आदि अनेक पौराणिक काव्य मिलते हैं जिनका पूर्ण परिचय न देकर हमने संकेत ही कर दिया है क्योंकि ‘प्रकृतानुसरण’ का यही अनुरोध है।

संस्कृत के पौराणिक काव्यों का अनुशीलन करने पर उनकी ये सामान्य विशेषताएँ सामने आती हैं:—

(१) संस्कृत पौराणिक काव्यों में धार्मिकता और काव्यात्मकता का सामंजस्य होता है। एक ओर तो उसमें धर्म के प्रचार की भावना गूढ़ रहती है और दूसरी ओर ऊँची से ऊँची काव्यप्रतिभा का प्रदर्शन। यही कारण है कि पौराणिक काव्यों में वर्णन-प्राचुर्य, निपुणता-प्रकाशन एवं शास्त्रीय विचारधारा का काव्यात्मक अभिव्यंजन रहता है।

(२) संस्कृत पौराणिक काव्यों का प्रारम्भ प्रायः वक्ता और श्रोता के वार्तालाप से होता है। श्रोता अपनी शकाओं को वक्ता के समक्ष रखता है और वक्ता उसका उत्तर देता हुआ काव्य-कथन करता है।

(३) इन काव्यों का प्रधान रस शान्त होता है और अंग रूप में वीर-शृंगार सर्वाधिक प्रयुक्त होते हैं। यही कारण है कि युद्ध एवं विलास आदि के वाद पात्रों के वैराग्य का वर्णन होना है। वीर-शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों की भी अंग रूप से पर्याप्त व्यञ्जना होती है।

(४) इन पौराणिक काव्यों में आधिकारिक कथा के अतिरिक्त प्रासंगिक कथाएँ पर्याप्त रूप में निबद्ध होती हैं। आधिकारिक कथा में किमी अवतार या तीर्थंकर का चरित्र निबद्ध होता है। प्रासंगिक कथाओं को उपाख्यान कहा जाता है। इनसे तत्कालीन सामाजिक स्थिति का पर्याप्त ज्ञान होता है।

(५) इन काव्यों में अलौकिक, अतिप्राकृत तथा अतिमानवीय शक्तियों, कार्यों तथा वस्तुओं का समावेश अवश्य रहता है। यह श्रोताओं की श्रद्धा अर्जन करने का साधन होता है।

(६) इन काव्यों में अपने धर्म की अभिधा और व्यञ्जना से प्रशंसा एवं पर-धर्म की गृहणा होती है। इसीलिए उपदेशात्मक प्रवृत्तियों और सूक्तियों का बाहुल्य रहता है।

(७) प्रायः अनुष्टुप् छन्द का प्रधान रूप में प्रयोग किया जाता है।

(८) कथा-संचालन के लिए 'अथ' और 'ततः' पदों की भरमार रहती है।

(९) कथा-कथन के पूर्व 'अनुक्रमिका' दी जाती है।

(१०) काव्य के माहात्म्य-कथन तथा अपने धर्मग्रहण के प्रति श्रोता को बद्धपरिहर करने की प्रवृत्ति का इनमें स्पष्ट परिलक्षण होता है।

(११) सृष्टि के विकास, विनाश, वंशोत्पत्ति और वंशावलियों का वर्णन रहता है।

(१२) अनेक स्तुतियों की योजना होती है।

संस्कृत के पौराणिक काव्यों के हिन्दी के पौराणिक काव्यों पर प्रभाव की चर्चा करते समय हमारे सामने 'रामचरितमानस' आता है। इसमें संस्कृत पौराणिक काव्य की समस्त प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। इसमें काव्यात्मकता और धार्मिकता का सामंजस्य है। जहाँ एक ओर इसमें वैष्णव भक्ति का प्रचार है वहाँ दूसरी ओर काव्यप्रतिभा का प्रदर्शन भी। 'वर्णानामर्थसङ्गणानां रमानां छन्दसामपि। मंगलानां च कर्तारौ बन्दे वाणीविनायकौ' का कथन करने वाले तुलसी की काव्य प्रतिभा अप्रतिम है। इसमें वक्ता और श्रोता की कल्पना है। शिव-पार्वती, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज, काक भुशुण्डि तथा गरुड इसके वक्ता श्रोता हैं। इसका प्रधान रस शान्त या भक्ति है, शेष रस अंग रूप में है। इसकी आधिकारिक कथा में अवतार श्रीराम का चरित निबद्ध है, माथ ही समय-समय पर अनेक उपाख्यान भी सक्षिप्ततया निबद्ध हैं। अलौकिक अतिप्राकृत और अतिमानवीय शक्तियों, घटनाओं तथा कार्यों (समुद्रलघनादि) का समावेश है। अपने धर्म की प्रशंसा एवं उत्तरकाण्ड के कलियुग वर्णन में परमतो की व्यजना से निन्दा है। मूर्तियों का प्राचुर्य है। काव्य का माहात्म्य कथन किया गया है। वंशोत्पत्ति, स्तुति आदि की भी योजना है। अन्तर छन्द का है, जो गौण है। हिन्दी में यह छन्द चलता नहीं, अतः यहाँ चौपाई छन्द है। इससे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता।

इन सभी विशेषताओं से युक्त हिन्दी में 'मानस' के अतिरिक्त सम्भवतः कोई अन्य काव्य नहीं है। अतः यही कहा जा सकता है कि हिन्दी में पौराणिक काव्य 'मानस' ही है जो समय की माँग थी। समय को देखते हुए आज ऐसे काव्यों की अधिक माँग नहीं रहती—अतः वर्तमान काल में पौराणिक काव्य लिखना ही बन्द हो गया है।

द्वितीय अध्याय आचार्य रविषेण और उनका पद्मपुराण : सामान्य विवेचन

आचार्य रविषेण : परिचय और कृतित्व

तिथि-निर्णय—संस्कृत-कवियों में अगुनिगण्य ही ऐसे हैं जिन्होंने अपने विषय में कोई ऐतिहासिक विवरण दिया हो। उनमें आंशिक रूप में रविषेण भी अन्यतम है। अपने जन्म-स्थान का यद्यपि उन्होंने कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है, 'पद्म पुराण' ग्रंथ की समाप्ति का उन्होंने अवश्य संकेत कर दिया है जिससे तिथि-विषयक कोई समस्या नहीं उठती।

पद्मपुराण (पद्मचरित) का उपसंहार करते हुए रविषेण ने लिखा है :

"द्विशतान्याधिके समासहस्रे समतीतेऽर्धचतुर्थवर्षयुक्ते ।

जिनभास्करवर्द्धमानसिद्धे चरित पद्ममुनेरिद निबद्धम् ॥"

(अर्थात् जिन मय भगवान् महावीर के निर्वाण होने के १२०३ वर्ष ६ महीने बाद यह पद्ममुनि का चरित निबद्ध किया गया।) यदि वीर निर्वाण में ६७० वर्ष बाद विक्रम संवत् प्रारम्भ माना जाय तो उक्त ग्रंथ की रचना विक्रम संवत् प्रारम्भ ७३३-७३४ अर्थात् ६७७-६७८ ई० में पूर्ण हुई है। यह रचना कवि के जीवन में प्रौढ़ता आने पर ही हुई होगी, अतः कवि का जीवन-काल ६८०-६८० ई० के मध्य का भाग माना जा सकता है।

आचार्य रविषेण का उल्लेख परवर्ती कवियों ने भी किया है। पुष्पाटसंघी

आचार्य जिनसेन के 'हरिवंशपुराण' (वि० सं० ८४०) में भी रविषेण के 'पद्यचरित' या 'पद्यपुराण' का संकेत है—

“कृतपद्योदयोद्योता प्रत्यहं परिवर्तिता ।

मूर्ति काव्यमयी लोके रवेरिव रवे प्रिया ॥”^८

इसी प्रकार 'कुवलयमाला' (वि० सं० ८३५) में रविषेण के 'पद्यचरित' की चर्चा है:—

“जेहि कए रमणिज्जे वरंग-पउमानचरितवित्थारे ।

कहव ण सलाहणिज्जे ते कइणो जइय रविसेणो ॥”^९

स्वयंभू ने भी अपने 'पद्यचरित' में रविषेण का नामरमण किया है।^{१०}

इस प्रकार रविषेण के तिथि-निर्णय की समस्या पूर्ण समाहित है। उसमें किसी ननु-नच का अवकाश नहीं है।

जन्मस्थान—आचार्य रविषेण ने अपने जन्मस्थान का कोई उल्लेख नहीं किया है। इस विषय में कई विद्वानों से मेरा विचार-विमर्श हुआ है। किन्तु समस्या ज्यों की त्यों पड़ी रह जाती है। डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये अपने ६-२-१९६६ के पत्र में लिखते हैं:—“We do not know definitely anything about the birth place of Ravisena. All that we know about him is only from his own PRASASTI. Some later authors also refer to him praising his qualities.” इसी प्रकार ३-१२-१९६५ के पत्र में श्री अगरचन्द्र नाहटा लिखते हैं:—“रविषेण के जन्म स्थान का कोई पता नहीं ...” प० नाथूराम प्रेमी ने इस विषय को यों ही छोड़ दिया है: “... रविषेण ने न तो अपने किसी सघ या गण-गच्छ का कोई उल्लेख किया है और न स्थानादि की ही कोई चर्चा की है। ...”^{११}

यह तो निश्चित है कि शब्द प्रमाण रविषेण के जन्म-स्थान के विषय में (आज तक की त्जो के अनुसार) हमें माफ जवाब दे जाता है। अब अनुमान प्रमाण के अतिरिक्त और कोई गति ही नहीं रह जाती। इस विषय में डा० ज्योति प्रसाद जैन (ज्योति-निकुंज, चारबाग, लखनऊ-४) का ८-२-१९६६ का एक पत्र मुझे मिला है जिसमें उन्होंने लिखा है: “रविषेण ने अपने ग्रन्थ में किसी स्थल पर भी अपने जन्म स्थान या निवास स्थान का संकेत नहीं किया है। वैसे मेरा

८. हरिवंशपुराण १/३४

९. कुवलयमाला—४१

१०. पद्यचरित, १।२।९ “पुन रविसेणायरियपसाए ।”

११. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० २७३

अनुमान है कि वह दक्षिण भारतीय नहीं थे, उत्तर में ही, और बहुत करके मध्य भारत में किसी स्थान पर उन्होंने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है। यों तो वह दिगम्बराचार्य थे, किसी एक स्थान पर रहते नहीं थे, भ्रमण ही करते रहते थे, तथापि सम्भावना उनके उत्तर भारतीय होने की ही अधिक है। अपने जिन गुरु आदिक का उन्होंने उल्लेख किया है वे भी उत्तर की ओर के ही प्रतीत होते हैं।”

गुरुपरम्परा—रविषेण ने अपनी गुरुपरम्परा का संकेत इस प्रकार दिया है :—

“आसीदिन्द्रगुरोर्दिवाकरयतिः शिष्योऽस्य चार्हन्मुनि-

स्तस्माल्लक्ष्मणसेनसन्मुनिरदः शिष्यो रविस्तु स्मृतः ॥”^{१२}

(अर्थात् “इन्द्रगुरु के दिवाकरयति, दिवाकरयति के अर्हन्मुनि, अर्हन्मुनि के लक्ष्मणसेन एवं लक्ष्मणसेन का मैं रविषेण शिष्य हूँ।”)

यद्यपि रविषेण ने अपने किसी सध या गण-गच्छ का उल्लेख नहीं किया है तथापि “सेनान्त नाम से अनुमान होता है कि शायद वे सेनसंघ के हों; किन्तु नामों से सध का निर्णय सदैव ठीक नहीं होता। इनकी गुरुपरम्परा के पूरे नाम इन्द्रसेन, दिवाकरसेन, अर्हत्सेन और लक्ष्मणसेन होंगे, ऐसा जान पड़ता है।”^{१३}

पारिवारिक जीवन. रविषेण के ‘पद्मपुराण’ को देखने के अनन्तर उनके पारिवारिक जीवन के विषय में कुछ अनुमान निकलते हैं। उनके माता-पिता का यद्यपि कोई उल्लेख नहीं मिलता तथापि यह अवश्य प्रतीत होता है कि रविषेण दीक्षा लेने से पहले अच्छा विलासी जीवन व्यतीत करते होंगे, शृंगार का खेल उन्होंने खूब खेला होगा। पवनजय-सम्भोग तथा शृंगार के अन्ध यथार्थ वर्णन ऐसा कुछ आभास देते हैं। प्रतीत होता है कि यौवन में ही इन्हें स्त्री-विग्रह सहन करना पड़ गया था जिसके कारण इन्होंने विरक्त होकर दीक्षा धारण की है। निम्न-लिखित उक्तियाँ कवि की उक्त अनुभूति की परिचायक सी लगती हैं —

“गृहेनतनया शून्य वन मे प्रतिभासते।

आकाशमेव क्षिप्त वा तस्या वार्ताधिगम्यताम् ॥”^{१४}

“रति न लभते क्वापि रहितः प्रियया तथा।

शुष्यत्यहनि रात्रौ च पतितोऽन्नाविवोरगः ॥”^{१५}

१२ पद्म० १२३।१६८

१३ प० नाचूराम प्रेमी “जैन साहित्य और इतिहास” पृ० २७३

१४ पद्म० १८।१३

१५. ‘पद्मपुराण’ २६।३१

“अरण्यमपि रम्यत्वं याति कान्तासमागमे ।

कान्तावियोगदग्धस्य सर्वं विन्यवनायते ॥”^{१६}

धार्मिक विचार : यों ‘पद्मपुराण’ में कई स्थानों पर ‘शिव’ सम्बन्धी उपमा अथवा अन्य रूप में ‘शिव’ का उल्लेख है यथा : ‘कृतमीश्वर-मार्गणैः’, ‘त्रिपुरस्य जिगीषुताम्’, ‘गौर्यश्च विभवाश्रयाः’ और ‘पिनाकिवत्’ आदि, किन्तु इस आधार पर दीक्षा लेने से पूर्व उन्हें ‘शैव’ सिद्ध करना उचित नहीं है। ये उपमाएँ तो कवित्व के कारण हैं अथवा जैनधर्म ग्रन्थों की आकर्षकता सिद्ध करने के लिए ही इनका प्रयोग किया गया होगा। वैसे रविषेण कट्टर जैन थे। स्थान-स्थान पर उन्होंने वैदिक ऋषियों, वैदिक ग्रन्थों, ब्राह्मणों तथा वैदिक धर्म का खुलकर खण्डन किया है।^{१७} उन्होंने सैकड़ों स्थलों पर जैनधर्म का अभिधावृत्ति से प्रचार किया है यथा :—

“सिद्धाः सिद्ध्यन्ति सेत्स्यन्ति कालेऽन्तपरिवर्जिते ।

जिनदृष्टेन धर्मेण नैवान्येन कथंचन ॥”^{१८}

एकादश-पर्व में तो वैदिक-धर्म का शास्त्रार्थ की रीति से ख़ूला खण्डन किया किया गया है तथा ‘यज्ञदीक्षारूपपातक’ की धज्जियाँ उड़ायी गयी हैं। चतुर्दश पर्व में इस कट्टरपन्थी की पराकाष्ठा ही हो गई है, जहाँ कि ऐसे-ऐसे श्लोक घड़ले से साध लिखे गये हैं :—

“पशुभूम्यादिक दत्तं जिनानुद्दिश्य भावतः ।

ददाति परमान् भोगानत्यन्तचिरकालगान् ॥”

इसी प्रकार आगे वे देवताओं की निन्दा करते हुए तथा धर्म को व्यापार की उपमा देते हुए अधिक लाभकारी जैनधर्म का ही स्वीकरण कराने के प्रति अपना अभिनिवेश प्रस्तुत करते हैं :—

“वीतरागान् समस्तज्ञानतो ध्यात्वा जिनेश्वरान् ।

दान यद्दीयते तस्य कः शक्तो भाषितुं फलम् ?

आयुष्यग्रहणादन्वे देवा द्वेषसमन्विताः ।

रागिणः कामिनीसगाद् भूषणाना च धारणात् ॥

रागद्वेषानुमेयश्च तेषां मोहोऽपि विद्यते ।

तयोर्हि कारणं मोहो दोषाः शेषास्तु तन्मयाः ॥

१६. वही, ४६/१९

१७. इस विषय पर हम ‘भावपक्ष’ के अन्तर्गत ‘विचारतत्त्व’ शीर्षक में विस्तृत विचार करेंगे ।

१८. “पद्म०” ३१/१२

मनुष्या एव ये केचिद्देवा भोजनभाजनम् ।
 कषायतनवः काले देशकामादिसेविनः ॥
 एवंविधाः कथं देवा दानगोचरता गताः ।
 अधमा यदि वा तुल्याः फलं कुर्युर्मनोहरम् ॥
 दृष्टोऽपि तावदेतेषां विपाकः शुभकर्मणः ।
 कुत एव शिवस्थानसम्प्राप्तिर्दुःखितात्मनाम् ॥
 तदेतत्सकतामुष्टिपीडनातैलवाञ्छितम् ।
 विनाशनं च तृष्णायां सेवनादाशुशुक्षणः ॥
 पगुना नीयते पगुर्यदि देशान्तरं ततः ।
 एतेभ्यः किञ्चिदतो जन्तोर्देवेभ्यो जायते फलम् ॥
 एषा तावदियं वार्ता देवानां पापकर्मणाम् ।
 तद्भक्तानां तु दूरेण सत्पात्रत्वं न युज्यते ॥
 लोभेन चोदितः पापो जनो यज्ञे प्रवर्तते ।
 कुर्वतो हि तथा लोको धनं नहि प्रयच्छति ॥
 तस्मादुद्दिश्य यद्दानं दीयते जिनपुंगवम् ।
 सर्वदोषविनिर्मुक्तं तद्दाति फलं महत् ॥
 वाणिज्यमदृशो धर्मस्तन्त्रान्वेयात्पभूरिता ।
 बहुना हि पराभूतिः क्रियतेऽरूपस्य वस्तुनः ॥
 यथा विषकणः प्राप्तः सरसी नैव दुष्यति ।
 जिनधर्मोद्यतस्यैव हिंसातणो व्यथोद्भवः ॥
 प्रासादादि तत्र कार्यं जिनानां भक्तिरतत्परः ।
 मान्यधूपप्रदीपादि सर्वं च कुशलैर्जनैः ॥
 स्वर्गं मनुष्यलोके च भांगानव्यस्तमुत्तमान् ।
 जन्तवः प्रतिपद्यन्ते जिनानुद्दिश्य दानतः ॥
 तन्मार्गप्रगृह्यतानां च दत्तं दानं यथोचितम् ।
 करोति विपुलान् भांगान् गुणानामिति भाजनम् ॥
 यथाशक्तिं ततो भक्त्या गम्यगृह्णितुं यच्छतः ।
 दानं तदेकमात्रास्ति शेषं चौरैर्विप्लुष्टम् ॥ १९

ऐसे कितने ही स्थान हैं जहाँ यथावस्थित रूप में जैन धर्म की ग्राह्यता का निर्द्वन्द्व उद्घोषण किया गया है, वहाँ कि 'स्वात्कर्ष' एवं 'परगर्हण' का यथेच्छ

उपयोग किया गया है जिनसे रविषेण की 'कट्टरजैनिता' स्पष्ट सिद्ध हो जाती है।

रविषेण का लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षण बड़ा विशाल था। वे बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। उनके काव्य को देखकर ऐसे कथन अक्षरशः अन्वय प्रतीत होते हैं—

“न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

जायते यस्मिन् काव्यांगमहो भारो महान् कवेः॥”

न जाने कितना समय रविषेण ने लोक, शास्त्र एवं काव्य के सूक्ष्म निरीक्षण के लिए दिया होगा।

समाज के व्यापारों, पाखण्डों, उपद्रवों, व्यवसायों तथा लोक-व्यवहारों का सांगोपांग ज्ञान रविषेण को प्राप्त था, जिनका आभास 'पद्मपुराण' को देखने से हो जाता है। मन्दिरों की बनावट के वर्णन, गर्भिणी की अवस्था का यथार्थ वर्णन, कलह-भगडों के वर्णन, नगरों के वर्णन तथा वृद्धावस्था आदि के यथार्थ वर्णनों से तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कवि ने उन सभी चीजों को पास से देखा हो। वृद्धावस्थाजन्य स्वेतिमा, मुँह की खकार, दन्तस्थानीय लतुनस वर्णों का लोप आदि का वर्णन उदाहरणार्थ प्रस्तुत है :—

“सखत्कार मुहुः कुर्वन् स्फुरयन्नधरो मुहुः।

हृदय सम्पृशन् कृच्छ्रादुपनीतेन पाणिना ॥

पश्चान्मस्तकभागस्थश्चन्द्राणुस्थितमूर्द्धजः ।

मन्दवाताह्नश्चेत — चामरोगमकूर्चकः ॥

मक्षिकाच्छदनच्छातत्वक्विरोहितकैकसः ।

धवलभ्रूवलच्छन्नशोणप्रभ — निरीक्षणः ॥

० ० ०

दन्तस्थानभवा वर्णाश्चिर इवापि गता मम।

ऊमवर्णोष्मणा तापमशक्ता इव सेवितुम् ॥”^{२०}

नारियों के भावालाप वर्णन करने में, तरुण को देखकर विह्वल होकर उनके भागने, झपटने एवं उत्सवों या विजय-यात्राओं पर राजाओं के स्वागत आदि का वर्णन करने में तो कवि ने कमान ही कर दिया है। प्रतीत होता है कि कवि ने अन्तःपुरो में घुस-घुसकर विह्वल नारियों की उक्तियाँ सुनी थीं। इस प्रकार रविषेण ने लोक को पर्याप्त मनोयोग से देखा था।

रविषेण का शास्त्रज्ञान भी गहन है। जैन तथा जैनतर धर्मशास्त्र, कामशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, शकुनशास्त्र, युद्ध-शास्त्र, कलाशास्त्र, संगीतशास्त्र, ज्योतिष

शास्त्र, व्याकरणशास्त्र, अलंकारशास्त्र तथा अन्य खड्गपुराणादिशास्त्रों का पुष्कल ज्ञान रविषेण ने अधिगत किया था। चाणक्य के 'अर्थशास्त्र' का भी उन्होंने मनो-योग से अध्ययन किया था। दूतप्रेषण, मन्त्रयुद्ध, व्यूहरचना, राजनीति आदि सम्बन्धी पद्मपुराण के वर्णन इसके प्रमाण हैं। वेद गीता और मनुस्मृति का रविषेण ने अच्छी तरह अध्ययन किया था, ऐसा अन्तःसाक्ष के आधार पर सिद्ध होता है। श्रौत सूत्रों एवं वैदिक कर्मकाण्ड का भी उन्हें ज्ञान प्राप्त था। कुछ तुलनात्मक पद्यों से इस तथ्य की पुष्टि होती है :—

१—“सर्वं पुरुष एवेदं यद्भूतं यद्भविव्यति।

ईशानो योऽमृतत्वस्य यदन्नेनातिरोहति ॥” (पद्म० ११।१५०)

तुल०—“पुरुष एवेद सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्”। (पुरुषसूक्त)

२—“प्राणिनो ग्रन्थसंघेन रागद्वेषसमुद्भवः।

रागात्सजायते कामो द्वेषाज्जन्तुविनाशनम् ॥

क्रामक्रोधाभिभूतस्य मोहेनाक्रम्यते मनः।

कृत्याकृत्येषु मूढस्य मतिर्न स्याद्विवेकिनी ॥” (पद्म० ११।१३६-३७)

तुल०—“ध्यायतो विषयान्पुंसः सगस्तेषूपजायते।

सगात्सजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्समृतिविभ्रमः।

स्मृतिभ्रं शद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥” (गीता)

३—“मुक्तादिसम्भवश्चापि ब्रह्मणो योऽभिधीयते।

निर्हेतुः स्वगेहेऽसौ शोभने भाषमाणकः ॥” (पद्म० ११।१६६)

तुल०—“ब्राह्मणोऽयं मुखमासीत्” (पुरुषसूक्त)

४—“विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।

शुनि चैव स्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥” (पद्म० ११।२०४)

तुल०—“विद्या-विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।

शुनि चैव स्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥ (गीता)

५—“चतुर्वर्ण्यं यथान्यच्च चाण्डालादिविशेषणम्।

सर्वमाचारभेदेन प्रसिद्धिं भुवने गतम् ॥” (पद्म० ११।२०५)

तुल०—“चतुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ॥” (गीता ४।१३)

६—“राजानं हन्त्यसौ सोम वीर वा नाकवासिनाम्।

सोमेन यो यजेत्तस्य दक्षिणा द्वादश स्मृतम् ॥” (पद्म० ११।२११)

तुल०—“सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा” (श्रुति)

गवां शतं द्वादश वातिक्रामति” (कात्यायन श्रौतसूत्र १०।२।१०)

- ७—“मानापमानयोस्तुल्यस्तथा यः सुखदुःखयोः ।
तुणाकांचनयोश्चैव साधु पात्रं प्रशस्यते ॥” (पद्म० १४।५७)
- तुल०—“समः शत्रो च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवाजितः ॥” (गीता १२।१८)
- ८—“यद्यप्यूर्ध्वं तपःशक्त्या ब्रजेयुः परलिगिनः ।
तथापि किकरा भूत्वा ते देवान् समुपास्यते ॥
देवदुर्गतिदुःखानि प्राप्य कर्मवशात्ततः ।
स्वर्गं च्युताः पुनस्तिर्भ्योनिमायान्ति दुःखिनः ॥” (पद्म० ४।४३-४४)
- तुल०—“ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ॥” (गीता ६।२१)
- ९—“जातस्य नियतो मृत्युस्ततो गर्भस्थितिः पुनः ॥” (पद्म० ३०।११५)
- तुल०—“जातस्य हि घ्नूवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।” (गीता २।२७)
- १०—“आचाराणां विधातेन कुदृष्टीनां च सम्पदा ।
धर्मं ग्लानिपरिप्राप्तमुच्छ्रयन्ते जिनोत्तमाः ॥” (पद्म० ५।२०६)
- तुल०—“यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥” (गीता ४।७)
- ११—“मया जन्मानि भूरीणि परिप्राप्तानि यानि तु ।
वेद्म्येकमपि नो तेषा तत्सर्वं विदितं त्वया ॥
तान्यहं ज्ञातुमिच्छामि भगवन्नुच्यतामिति ।
भवत्प्रसादतो मोहं निराकृतुं महं भजे ॥” (पद्म० ३।१५-१६)
- तुल०—“बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।” (गीता ४।५)
- “वक्तुमर्हम्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।” (गीता १०।१६)
- “नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।” (गीता १८।७३)
- १२—“नरास्ते दयिते शलाघ्या ये गता रणमस्तकम् ।
त्यजन्त्यभिमुखा जीव शत्रूणां लब्धकीर्तयः ॥” (पद्म० ५।७।२१)
- तुल०—“यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारपमावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥” (गीता २।२३)
- १३—“एकाग्रध्यानसम्पन्नो नासाग्रस्थितलोचनः ।” (पद्म० ६।१०)
- तुल०—“तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥” (गीता ६।१२-१३)
- उपयुक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि रविषेणको जैन एवं जैनैतर शास्त्रों तथा ग्रन्थों का भी पर्याप्त ज्ञान था। इसी प्रकार ‘पवनजय-अंजना’ के सम्भोग तथा

अन्य अनेक वर्णनों से उनकी कामशास्त्रज्ञता का स्पष्ट प्रतिमान होता है। राजाओं की दिनचर्या तथा पात्रों के विविध राजनीतिक व्यापारों से उनकी राजनीति-शास्त्र-निपुणता, विविध अवसरों पर शकुनों के संकेत से शकुनशास्त्र-पारंगतता, युद्धप्रक्रियाओं से युद्धलाघवपरिचिति, केकया की कलाओं के वर्णन से विशाल कला-ज्ञान-धारिता, गन्धर्व के ज्योतिष-विषयक वार्तालाप से ज्योतिषशास्त्र-पाराबारीगता, अतिवीर्य की सभा में नर्तकीवेशधारी राम के वर्णन से नृत्यकलाविशारदता, आलंकारिक वर्णनों से अलंकारशास्त्रवशीकारकता तथा अन्यान्य वर्णनों से उनके अन्य अनेक प्रकार के ज्ञानों का परिचय होता है। न जाने कितनी विद्याओं शास्त्रों तथा कलादिक का ज्ञान उन्हें प्राप्त था। संगीत की बारीकियों के ज्ञान का दिङ्मात्र उदाहरण प्रस्तुत है—

‘तयोर्धनं कृतं वाद्यं मुषिरं च कृतं तनम् ।
परिवर्गेण गम्भीरकरतालक्रमोचितम् ॥
पाणिधैर्यकनानेन मन्द्रध्वनिमन्वितम् ।
तथा वैणविकैर्बाढं प्रवीणैर्भ्रूयिलासिभिः ॥
प्रवीणाभिः प्रबालाभिः वीणा चारूपमानिकाम् ।
कोणेनाताडयद्यक्षो गन्धर्वः काकलीबुधः ॥
मध्यमर्षभगान्धारपटुजपचमर्धवतान् ।
निषादमत्तमादचक्रे स स्वराङ्गममत्यजन् ॥
भेजे वृत्तीयथास्थानं द्रुतमध्यविलम्बितम् ।
एकविंशतिसल्याश्च मृच्छंता नर्तितेक्षणा ॥
हाहाहूहूमान स गानं चक्रेऽथवाधिकम् ।
प्रायो गन्धर्वदेवानां प्रसिद्धिमिदमागतम् ॥’^{२१}

उनकी शास्त्रज्ञता का असली पता तो हमें तब लगता है जब हम २४ वें पर्व के २८ श्लोको में केकया की कलाओं का विस्तृत वर्णन पढ़ते हैं।

रविशेण ने अपने पूर्ववर्ती कवियों के ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया था—
ऐसा उनके ‘पद्मपुराण’ को देखकर प्रतीत होता है। आदि कवि वाल्मीकि की ‘रामायण’ का तो ‘पद्मपुराण’ पर पर्याप्त प्रभाव है ही, साथ ही ‘महाभारत,’ ‘पञ्चतन्त्र’ तथा अनेक कवियों की रचनाओं का भी उस पर प्रचुर प्रभाव पड़ा है। कविकुलपुरुष कालिदास और कथाकाव्य-पञ्चानन बाण की लेखन-सरणि का तो उन्होंने अनेक स्थलों पर अनुसरण किया है। कालिदास की सी उपमाएँ

रविषेण की वंशवद सी है। बाण के से नगर-वन-नदी-प्रासाद-नारी-भावानापादि के वर्णन उनसे मोह सा किये हुए हैं, भारवि आदि अन्य अनेक कवियों की चमत्कार-वादिता कट्टर जैनी रविषेण को अनेक स्थलों पर अभिभूत कर चुकी है। अधिक विस्तृत उदाहरण न देकर कुछ तुलनात्मक सकेत ही प्रस्तुत किये जाते हैं—

कालिदास

१—“भास्वता भासितानर्थान् सुखेनालोकते जनः ।

सूचीमुखनिभिन्नं मणिं विवशति सूत्रकम् ॥”

(पद्म० १।२०)

तुल०—“अथवा कृतवाग्दारे वशेऽस्मिन् पूर्वसूत्रिभिः ।

मणीं बज्रसमुत्कीर्णं सूत्रस्थेवास्ति मे गतिः ॥”

(रघुवंश १।४)

२—“विपुलं शिलरे चकं धरण्या दशमगुणम् ।

राजते नियंकाकाश मातु दण्ड इवोच्छ्रितः ॥

(पद्म० ३।३६)

तुल०—“अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः ।

पूर्वापरा तोयनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥”

(कुमार सम्भव १।१)

३—“क्षतत्राणे नियुक्ता ये तेन नाथेन मानवाः ।

क्षत्रिया इति ते लोके प्रमिद्धिं गुणतो गताः ॥”

(पद्म० ३।२५६)

तुल०—“क्षतात्किल त्रायत ह्युदग्र क्षत्रस्य शब्दे भुवनेषु रुद्धः ॥”

(रघु० २।५३)

४—“नराञ्चन्द्रमुना शूरा मिहोरस्का महाभुजाः ।”

(पद्म० ३।३३६)

तुल०—“व्यूहोरस्को वृषस्कन्ध शालप्राशूर्महाभुजः ।”

(रघु० १।१३)

५—“प्राणा धर्मस्य हेतवः ।”

(पद्म पुराण, ४।६७)

“भगवानपि ते देहे कुशल कुशलाशय ।

मूलमेष हि सर्वेषां साधनानां सुवेष्टितः ॥”

(पद्म० १७।२६)

तुल०—“शरीरमाद्यं खलु धर्ममाधनम् ।”

(कुमार० ५।३३)

६—“अथ स्वयंवराशानां प्रवृत्ता व्योमचारिणाम् ।

मदनाश्लिष्टचित्तानामिति सुन्दरविभ्रमाः ॥

निष्कम्पमपि मूर्धस्थं मुकुटं कश्चिदुन्नतम् ।

अकरोत् किल निष्कम्पं रत्नाशुच्छन्नपाणिना ॥

कश्चित् कूर्परभादाय कटिपादौ सज्जम्भणः ।

चक्रे देहस्य बलनं स्फुटस्सन्निधुतस्त्वनम् ॥

प्रदेशोऽपि स्थिता कश्चिदुज्ज्वलामसिपुत्रिकाम् ।
 असारयत् कराम्रेण कटाक्षकृतवीक्षणाम् ॥
 पार्श्वगे पुरुषे कश्चिच्चलयत्येव चामरम् ।
 सलीलमंशुकान्तेन चक्रे बीजनमानने ॥

पादांगुष्ठेन कश्चिच्च नेत्रान्तेक्षितकन्यकः ।
 कृत्वा पाणितले गण्डं लिलेख चरणासनम् ॥
 गाढमप्यपरो बद्धमुन्मुच्य कटिसूत्रकम् ।
 बबन्ध शनकैर्भूयः शेषाणमिव चक्रकम् ॥

पार्श्वस्थस्यापरो हस्त सव्युरास्फाल्य सस्मितम् ।
 कथां चक्रे विना हेतोः कन्याक्षिप्तचलेक्षणः ॥
 अपरोऽभ्रमयत् पद्मं बद्धभ्रमरमण्डलम् ।
 सव्येतरेण हस्तेन विसर्पन् कर्णिकारजः ॥^{१२२}

(पद्म० ६।३६४-३७८)

तुल०—“ता प्रत्यभिष्यक्तमनोरथाना महीपतीना प्रणयाप्रदूत्य ।
 प्रवालशोभा इव पादपानां शृंगारचेष्टा विविधा बभूवुः ॥
 कश्चित्कराभ्यामुपगूढनालमालोलपत्राभिहतद्विरेफम् ।
 रजोभिरन्तः परिवेषबन्धि लीलारविन्द भ्रमयांचकार ॥
 विस्त्रस्तममादपरो विलासी रत्नानुविद्धागदकोटिलम्नम् ।
 प्रालम्बमुत्कृष्य यथावकाश निनाय साचीकृतचारुवक्त्रम् ॥
 आकुचिताग्रागुलिना ततोऽन्यः क्वचित्समावर्जितनेत्रशोभः ।
 तिर्यग्विससपिनक्षप्रभेण पादेन हैम बिलिलेख पीठम् ॥
 निवेश्य वाम भुजमासनार्धे तत्संनिवेशादधिकोन्नताम् ।
 कश्चिद्विवृत्तत्रिकभिन्नहारः सुहृत्समाभाषणतत्परोऽभूत् ॥
 विलासिनीविभ्रमदन्तपत्रमापाण्डुरं केतकबर्हमन्यः ।
 प्रियानिताम्बोचितसंनिवेशौविपाटयामास युवा नम्राग्रैः ॥
 कुशेणयाताग्रतलेन कश्चित्चक्रेण रेखाध्वजलाछनेन ।
 रत्नाङ्गुनीयप्रभयानुविडानुवीरयामास सलीलमक्षाम् ॥

२२. स्वयम्बर मे स्थित राजाओं की चेष्टाओं, मन्त्री द्वारा उनके परिचय, स्वयम्बरोत्तर वर-वधू की सहृदयो के द्वारा प्रसन्नता तथा सफल राजा के साथ अन्य राजाओं के युद्ध की तुलना के लिये देखिये—(पद्म०, ६।३५९-४२३) तथा रघु० (६।१२-८६)

कश्चिद्यथाभागमवस्थितेऽपि स्वसंनिवेशाद्ब्यतिलंभिनीव ।

वज्रांशुगर्भाङ्गुलिरन्ध्रमेकं व्यापारयामास करं किरीटे ॥

(रघु०, ६।१२-१६)

७—“सत्यमन्येऽपि विद्यन्ते नाममात्रेण खेचराः ।

तेषां खद्योततुल्यानामयं भास्करतां गतः ॥

(पद्म० ६।३६८)

तुल०—“कामं नृपाः सन्तु सहस्रसोन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम् ।”

(रघु०, ६।२२)

८—“ततोऽसौ चन्द्रलेखेव व्यतीता यान्नभश्चरान् ।

पर्वता इव ते प्राप्ता श्यामतां लोकवाहिनः ॥” (पद्म० ६।४२३)

तुल०—“सचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिवरा सा ।

नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ॥”

(रघु० ६।६७)

९—“व्रजन्ती व्रज्यया युक्ते तिष्ठन्ती स्थितिमागते ।

छायेव साऽभवत् पत्यावनुवर्तनकारिणी ॥” (पद्म० ७।१७०)

तुल०—“स्थितः स्थिनामुच्चलितः प्रयातां निषेडुषीमासनबन्धधीरः ।

जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव ता भूपतिरन्वगच्छत् ॥”

(रघु० २।६)

१०—अनंगविषया सृष्टिमपूर्वामिव कर्मणा ।

आहृत्य जगतोऽश्लेष लावण्यमिव निर्मिताम् ॥” (पद्म० ८।६८)

तुल०—“चित्रे निवेष्ट्य परिकल्पितसत्त्वयोगा रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु ।

स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे धातुविभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ॥

(अभिज्ञान० २।६)

११—“कन्या नाम प्रभो देया परस्मादेव निश्चयात् ।”

(पद्म० ९।३२)

तुल०—“अर्थो हि कन्या परकीय एव ।”

(अभिज्ञान० ४।२२)

१२—“अथमेव महाबन्धुः सर्वेषां प्राणिनामभूत् ।”

(पद्म० ११।३५४)

तुल०—“त्वयि तु परिसमाप्त बन्धुकृत्य जनानाम् ॥”

(अभिज्ञान० ५।८)

१३—“कीर्तयन्त्यां गुणानेव तस्य सख्या सुमानसा ।

लिलेख लज्जयाङ्गुल्या कन्याघ्निलखमानता ॥” (पद्म०, १५।१५२)

तुल०—“एवं वादिनि देवर्षी पाश्वे पितुरधोमुखी ।

लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ॥” (कुमार०, ६।८६)

१४—“नेत्रे निमील्य सोढव्यं कर्म पाकमुपागतम् ।”

तुल०—“शेषान्मासान् न गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ।” (उत्तरमेघ, ५३)

१५—“अवस्थितं जगद्वाप्य नृदेवर्कं कथं तमः ।

सव्येष्टा चेद्भवेदस्य न मूर्तिररुणात्मिका ॥” (पद्म० २४।१२८)

तुल०—“किं वाऽ भविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता

त चेत्सहस्रकिरणो घुरि नात्करिष्यत् ॥” (अभिज्ञान०, ७।४)

१६—“अग्रतः य. पुरा शक्ति रिपुदारणकारिणीम् ।

करेण यष्टिमात्रम्य तेन भ्राम्यामि साम्प्रतम् ॥” (पद्म०, २६।५६)

तुल०—आचार इत्यधिकृतेन मया गृहीता या वेत्रयष्टिरवरोधपुरेषु राज्ञः ।

काले गते बहुनियं मम मैव जाता प्रस्थानविकलवगतेरलम्बनार्था ॥”

(अभिज्ञान०, ५।३)

१७—“भद्र किं किमयं स्वप्न. म्याज्जाग्रप्रत्योऽथवा ।”

(पद्म० ३०।१५०)

तुल०—“स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु ?”

(अभिज्ञान० ६।१०)

१८—“धन्या पुष्पवती मुसूत्री यया नेत्राणि शैशवे ।

क्रीडना धूसराण्यके निहितानि सुचुम्बितम् ॥” (पद्म० ३०।१६१)

तुल०—“आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासै-

रव्यक्तवर्णं रमणीयवचः प्रवृत्तीन् ।

अकाश्रयप्रणयिनस्तनयान् बहन्मो

धन्यास्तदगरजसा मलिनोभवन्ति ॥”

(अभिज्ञान० ७।१७)

१९—“केशभार मयूरीषु तस्याः पश्यामि सुन्दरम् ।

अपर्याप्तशशाके च लक्ष्मीमलिकसम्भवाम् ॥

त्रिवर्णाम्भोजलण्डेषु श्रियं लोचनगोचराम् ।

शोणपल्लवमध्यस्थसितपुष्पे स्मितस्त्रिषम् ॥

स्तवकेषु सुजातेषु कान्तिमत्सु स्तनश्रियम् ।

जिनस्तनपनवेदीनां शोभा मध्येषु मध्यमाम् ॥

तासामेवोर्ध्वभागेषु नितम्बभरताकृतिम् ।

ऊरुशोभा सुजातासु कदलीस्तम्भिकासु ताम् ॥

पद्मेषु चरणान्मूल्या स्थलसम्प्राप्तजन्मसु ।

शोभा तु समुदायस्य तस्याः पश्यामि न क्वचित् ॥” (पद्म० ४८।१४-१८)

तुल०—“स्यामास्वगं चाकिनहरीणीप्रेक्षणे दृष्टिपात

वक्त्रच्छायां शशिनि शिशिना बहंभारेषु केशान् ।

उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्

हृत्नैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥” (उत्तर मेघ, ४६)

२०—“घटस्तनविमुक्तेन पुत्रस्नेहान्तिरन्तरम् ।

पयसा पोषिता स्त्रीभिर्बृक्षका ध्वसमाहृताः ॥” (पद्म० ५३।२२६)

तुल०—“यां हेमकुम्भस्तननिःसृतानां स्कन्दस्य मातुः पयसां रसज्ञः ॥”

(रघु० २।३६)

“अतन्निद्रता सा स्वयमेव वृक्षकान् घटस्तनप्रस्रवणव्यवधंयत् ।

गुहोऽपि येषां प्रथमाप्लज्जमनां न पुत्रवात्सल्यमपाकरिष्यति ॥”

(कुमार० ५।१४)

२१—“शयनीयगतं पुष्पैर्या स्वकेशच्युतैरपि ।

अग्रहीत् खेदमेवासी स्यण्डिलेऽश्वेत केवले ॥” (पद्म० ६४।८०)

तुल०—“महार्हशय्यापरिवर्त्तनच्युतैः स्वकेशपुष्पैरपि या स्म दूयते ।

अशेत सा बाहुनतोपचायिनी निषेदुपी स्याण्डिल एव केवले ॥”

(कुमार० ५।१२)

२२—“भास्करेण विना का द्यौः क्वा निशा वशिना विना ?” (पद्म० ६६।६५)

तुल०—“वशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तडित्प्रलीयते ।” (कुमार० ४।३३)

२३—“गम्भीर भुवनाभ्यान्तमुदार लवण गता ।

मन्दाकिनी यदेत हि नापूर्णं कृतमेनया ॥

०

०

०

इति तत्र विनिष्चेह मञ्जनाना गिरः परा ॥” (पद्म० ११०।२२-२५)

तुल०—“शशिनमुपगतेय कौमुदी मेघमुक्त

जलनिधिमनुरूप जह्नु कन्यावनीर्णा ।

इति ममगुणयोगप्रीतयस्तत्र पौराः

श्रवणकटु नृपाणामेकवाक्य विवदुः ॥”

(रघु०, ६।६८)

२४—“दुस्त्यजानि दुरापानि काममौल्यान्ववारितम् ।” (पद्म० १११।५)

तुल०—“न च खलु परिभोक्तुं नैव शक्नोमि हातुम् ।” (अभिज्ञान० ५।१२)

इसके अतिरिक्त विमान से अयोध्या लौटने के समय राम का सीता को विविध प्रदेशों का अवलोकन कराना तथा हतूमान् का मेरुपर्वत की ओर जाते हुए अपनी स्त्रियों को विविध दृश्य दिखाना आदि भी रघुवश के त्रयोदश सर्ग से पर्याप्त प्रभावित है जिसका वास्तविक अनुभव मूलग्रन्थ पढ़कर ही हो सकता है ।

बाण : जहाँ एक ओर संस्कृत-कविता-कामिनी के विलास कविकुलगुरु कानिदाम का रविवेण पर प्रभूत प्रभाव है वहीं संस्कृत-गद्य के सम्राट् बाण की

भी रविवेण पर गहरी मुद्रा है। बिन्ध्याटवी तथा नारियो के भावानाओं पर तो 'हृषं चरित' तथा 'कादम्बरी' की ही गहरी छाप दिखाई देती है। नगरादि के वर्णन में भी रविवेण बाण से पर्याप्त प्रभावित हैं। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१—“अथ जम्बूमति द्वीपे क्षेत्रे भरतनामनि ।

मगधामिष्यया ख्यातो विषयोऽस्ति समुज्ज्वलः ॥

निवास पूर्णपुष्पाणां वासबावाससन्निभः ।

व्यवहारैरसकीर्णः कृतलोकव्यवस्थितिः ॥

क्षेत्राणि दधते यस्मिन्नुत्क्रातान् लांगलाननैः ।

स्थलाब्जमूलसघातान् महीसारगुणानिव ॥

क्षीरसेकादिबोद्भूतैर्मन्दानिलचलद्दलैः ।

पुण्ड्रक्षुबाटसन्तानैर्व्यगितानन्तरभूतलः ॥

अपूर्वपर्वताकारैर्विभक्तः खलधाममिः ।

सस्यकूटैः मुविन्धस्तैः सीमान्ता यस्य संकटाः ॥

उद्घाटकघटीमिकतैर्यत्र जारकजूटकैः ।

नितान्तहरितैरुर्वी जटालेव विराजते ॥

उर्वराया वरीयोभिः यः शालेयैरलकृतः ।

मुद्गकोशीपुटैर्यस्मिन्नुद्देशाः कपिलरिवपः ॥

तापस्फुटिनकोशीकैः राजमाषैर्निरन्तराः ।

उद्देशा यत्र किमोरा निक्षेत्रियतृणोद्गमाः ॥

अधिष्ठितः स्थलीपृष्ठैः श्रेष्ठगोधूमधामभिः ।

प्रशस्यैरन्यशस्यैश्च युक्तः प्रत्पूहवर्जितैः ॥

महामहिषपृष्ठस्थगायद्गोपालपालितैः ।

कीटातिलम्पटोद्ग्रीववलाकानुगतव्वभिः ॥

विवर्णसूत्रसम्बन्धवण्टारटितहाग्निभिः ।

क्षरद्भिर्जरत्रासात् पीतक्षीरोदवत्पयः ॥

मुस्वादुरससम्पन्नैर्बाष्पच्छेद्यैरनन्तरैः ।

तृणैस्तृप्तिपरिप्राप्तैर्गोधनैः सितकक्षपूः ॥

सारोक्तसमुद्देशः कृष्णसारैर्विसारिभिः ।

सहस्रसंख्यैर्गोर्वाणस्वामिनो नोर्वनरिब ॥

केतकीधूलिघवलाः यस्य देशाः सपुन्नताः ।

गगापुलिनसकाशा विभान्ति जनसेविताः ॥

शाककन्दलवाटेन श्यामलः धीधरः क्वचित् ।
 वनरालकृतास्वादैर्नालिकेरैर्विराजितः ॥
 कोटिभिः शुकचवूनां तथा शास्त्रामृगाननैः ।
 सदिग्धकुसुमैर्युक्तः पृथुभिर्दाडिमिवनैः ॥
 वत्सपालीकराचूष्मतातुलिगीफलाम्भसा ।
 लिप्ताः कुंकुमपुष्पाणां प्रकरैरुपशोभिताः ॥
 फलस्वादपयःपानमुखससुप्तमार्गगाः ।
 वनदेवीप्रपाकाराः द्राक्षाणां यत्र मडपा ॥
 विनुप्यमानैः पथिकैः पिण्डक्षजूंरपादपैः ।
 कपिभिश्च कृताच्छोटैर्मोचानां निश्चितः फलैः ॥
 तुगार्जुनवनाकीर्णतटदेशमहोदरैः ।
 गोकुलाकलितोदारस्वरवत्कूलधारिभिः ॥
 विस्फुरच्छफरीनालैर्विकसल्लोचनैरिव ।
 हसद्भिरिव शुकलानां पंकजानां कदम्बकैः ॥
 तुगैस्तरगसंघातैर्नतनप्रसृतैरिव ।
 गायद्भिरिव ससक्तहसानां मधुरम्बनैः ॥
 सामोदजनमघातसमासितसरित्तटैः ।
 सरोमिमारसाकीर्णैर्वनरन्ध्रेषु भूषितैः ॥
 सक्तीडनैर्वपुष्मद्भिराविकोष्टकतारणकैः ।
 कृतसबाधसर्वाशो हितपालकगालितैः ॥
 दिवाकररथाश्वानां लोभनार्थमिवोचितैः ।
 पृष्टैः कुकुमपकेन चलत्प्रोषपुटैर्मुखैः ॥
 उदरस्थकिसोराणां जवायैव प्रभजनम् ।
 रवच्छन्दमापिबन्तीना वडवानां गणैश्चितः ॥
 चरद्भिर्हससंघातैर्धनैर्जतगुणैरिव ।
 रवंषाकृष्टचेतोभिरत्यन्तधवलः क्वचित् ॥
 स गीतस्वनसयुक्तैर्मयूररवमिश्रितैः ।
 यस्मिन्मुरजनिर्धोपैर्मुखरं गगनं सदा ॥
 शरग्निशाकरश्चेतवृत्तैर्मुक्ताफलोपमैः ।
 आनन्ददानचतुरैर्गुणवद्भिः प्रसाधित ॥
 तपिताध्वगसंघातैः फलैर्वरतरुमैः ।
 महाकुटुम्बिभित्तिं प्राप्तोऽभिमनीयताम् ॥

सारगमृगसद्वन्धमृगरोमभिरावृत् ।

हिमवत्पाददेशीयैः कृतस्वैर्यो महत्तरैः ॥

हता कुदृष्टयो यस्मिन् जिनप्रवचनाजनैः ।

पापकक्षं च निर्बन्ध महामुनितपोऽग्निभिः ॥” २३

यह मगधवर्णन बाण के ‘हृष्यचरित’ के ‘श्रीकण्ठ’ जनपद-वर्णन से हूबहू मिलता है। अन्तर केवल इतना है कि बाण ने मगध में वर्णन किया है जब कि रविषेण ने पद्म में कह दिया है। दूसरे, जहाँ बाण की उत्प्रेक्षाएँ ब्राह्मणसंस्कृतिपोषिणी हैं वहाँ रविषेण ने उन्हें या तो जैनी बाना देकर प्रस्तुत किया है या फिर छोड़ दिया है, यथा—“यत्र त्रेताग्निधूमाश्रुजलप्रक्षालिता इव अक्षीयन्त कुदृष्टय । पच्यमानच प्रनेष्ट-कादहनदग्धानीव नादृश्यन्त दुरिणानि । भिद्यमानयूपदारुपरशुपाटिन इव व्यशीयंत इवाधमं ” आदि । गेप समस्त वर्णन बाण के वर्णन का ही पुनराख्यान है; यथा—

“अस्मि पुण्यकृतामधिबामो वासवावाम इव वमुधामवतीर्णः, सततम् असंकी-
र्णवर्णव्यवहारस्थितिः कृतयुगव्यवस्थ, स्थलकमलवनबहुलतया पोत्रोन्मूल्यमान-
मृणालवलयैः उन्मीलन्मेदिनीसारगुणैरिव कृतमधुकरकुलकोलाहलैः हलैरुल्लस्य-
मानक्षेत्र, क्षीरोदपय-पायिपयोदमिकनाभिरिव पुण्ड्रे क्षुवाटसन्ततिभिनिरस्तरः, प्रति-
दिशम् अपूर्वपर्वतकैरिव ललघानधामभिः विभज्यमानैः सस्यकूटैः संकटसीमान्त,
ममन्तादुर्ध्वाटितघटीयन्त्रसिच्यमानैः जीरकजूटकैः जटिलितभूमि, उर्वरावरीयांभि
शालैर्यैरलकृतः, पाकविजराकराजमापनिकरकर्बुरैः स्फुटितमुद्गकांशोऽपि शितं
परिणतगोधूमधामभिः स्वलीपूठैर्गधिष्ठित, महिषपूठप्रतिष्ठितगायद्गोपालपा-
लितं कीटलम्पटवलाकानुमृतं अवटघटितघटाघटीरणितरमणीयं अटद्भिरटवी
हरवृषभपीनम् आमयाशकया बहुधा विभक्तम् क्षीरोदमिव क्षीर क्षराद्भ. वाष्पच्छे-
द्यतृणतृप्तं गोधनैः धवलितविपिन, विविधमन्त्रहोमधूमान्धगतमन्युयुक्तं लोचनै-
रिव सहस्रसंख्यैः कृष्णसारैः शारीकृतोद्देश, धवलधूलिमुचा च केनकीवताना
रजोभिः पाण्डुरीकृतैः प्रमथांडलनभस्मधूसरैः शिवपुरम्येव प्रदेशैरुपशोभित, इया-
माककन्दलश्यामलिनधामोपकण्ठकाश्यपीपूष्ठः, पदे-पदे करभपालकैः पीलुपल्लव-
प्रस्फोटितं कण्ठपीडितकामलमातुलुगीदलरसोपलिप्तं, रवेच्छाश्विरचितकुसुम-
केसरकृतपुष्पप्रकरैः प्रत्यग्रफलरमपानमुखप्रमुञ्जपथिकं वनदेवतादीयमानामृतरस-
प्रपागूर्त्तय श्रावणानामण्डपैः स्फुटितफलानां च बीजलग्नां च चुरागाणमिव समा-
रुढकापकुलकपां वमन्दिह्यमानकुमुमाना दाडिमीना वर्णः विलोभनीयापनिर्गम, उप-
वनपानपीयमाननालिकेररसामवैदश्च पथिकलोकलुप्यमानपिण्डखर्जूरैः गोलागूललि-

ह्यमानमधुरमोचापिण्डीरसैः चकोरचंचुजर्जरितैलावनैः उपवनैरभिरामः, तुगार्जुन-
पाटलीपालीपरिवृतैश्च गोकुलावतारकलुपितकूलकीलार्लैः अध्वनशतशरण्यै अरण्य-
जलधारबन्धैरवन्ध्यवनरन्ध्रैः, कलहायमानकरभीपकुमारककाल्यमानैः औष्ट्रकैः
औरभकैश्च कृतसम्बाधः दिशि-दिशि रविरथतुरगविलोभनायेव विलुठनमृदितकुकु-
मस्थलीरससमालम्बानाम् उत्प्रोथपुटैः मुखैरुदरशायिकिशोरकजवजननाय प्रभंजन-
मापिबन्तीनां वातहरिणीनामिव स्वच्छन्दचारिणीना बडवाना वृन्दैः विहरद्भिः
आवितः अनवरतकतुधूमान्धकारत्रस्तैः हसयूर्ध्वं गुणैरिव घवलितभूनलः, सगीता-
हृतमुरजरवमत्तैः मयूरैरिव विभवमुखरितजीवलोकः, शशिकराबदातवृत्तैः मुक्ता-
फलैरिव गुणिभिः प्रसाधित, पथिकशतविलुप्यमानम्फीतफलैः महातरुभिरिव सर्व-
थानिधिभिर्गमनीयः, मृगमदपरिमलवाहिभिः मृगरोमावच्छादितै हिमवत्पाईर्वैरिव
महत्तरैः स्थिरीकृतः, प्रोष्ठशतपत्रोपविष्टद्विजोत्तमै नारायणाभिमण्डलैरिव
तोयाशयैर्मण्डितः, मथिनपयःप्रवाहप्रक्षालितक्षितिभि मन्थनारम्भैरिव महाघोषै
पूरिताशः श्रीकण्ठो नाम जनपदः । १२६

२—इमी प्रकार 'राजगृह' नगर का वर्णन भी हर्षचरित' के 'स्थाण्वीश्वर' के
वर्णन का ही पद्यात्मक रूपान्तर है, यथा—

“तत्रास्ति सर्वतः कान्त नाम्ना राजगृह पुरम् ।
कुसुमामोदमुभय भुवनस्येव यौवनम् ॥
महिषीणा महलैर्यत्कुसुमाचर्तव्यग्रहे ।
धर्मान्न-पुरनिर्भास घत्ते मानसकर्षणम् ॥
मरुदुद्धूतचमरैर्बालव्यजनशोभितै ।
प्रान्तरमरराजस्य च्छायां यदवलम्बने ॥
मन्तापमपरिप्राप्तं कृतमीश्वरमार्गेणै ।
मनुजैर्यत्करोतीव त्रिपुरस्य जिगीयुताम् ॥
मुधारमममामगपाण्डुगगारपवित्रभिः ।
टककल्पितशीताशुषीलाभिरिव कल्पितम् ॥
मदिरामस्तवनिताभूषणस्वनसभृतम् ।
कुबेरनगरस्येव द्वितीय सन्निवेशनम् ॥
तपोवन मुनिश्रेष्ठैर्वेद्याभिः काममन्दिरम् ।
सासर्कनृत्तभवन शत्रुभियंमपत्तनम् ॥

शस्त्रिभिर्वीरनिलयोऽभिलापमणिरधिभिः ।
 विद्यार्थिभिर्गुरोः सद्म बन्दिभिर्धूतपत्तनम् ॥
 गन्धर्वनगरं गीतशास्त्रकौशलकोविदः ।
 विज्ञानग्रहणोद्युक्तैर्मन्दिर विश्वकर्मणः ॥
 साधूनां सगमः सद्भिर्भूमिर्लाभस्य वाणिजैः ।
 पञ्जर शरणप्राप्तैर्वज्रदारुविनिर्मितम् ॥
 वातिकैरमुरच्छिद्रं विदग्धैर्विटमण्डली ।
 परिणामो मनोज्ञस्य कर्मणो मार्गवर्तिभिः ॥
 चार्णैरुत्सवावासः कामुकैरप्सरःपुरम् ।
 मिद्वलोकश्च विदित यत्सदा सुखिभिर्जनैः ॥
 यत्र मातंगगामिन्यः शीलवत्यश्च योषितः ।
 द्यामाश्च पद्मरागिण्यो गौर्यश्च विभवाश्रयाः ॥
 चन्द्रकान्तशरीराश्च शिरीषसुकुमारिकाः ।
 भुजगानामगम्याश्च कच्चुकावृत्विग्रहाः ॥
 महालावण्ययुक्ताश्च मधुराभापतपरा ।
 प्रसन्नोऽज्ज्वलवक्त्राश्च प्रमादरहितेहिता ॥
 कलत्रस्य पृथोर्लक्ष्मी दधतेऽथ च बुविधा ।
 मनोज्ञा नितरा मध्ये मुवृत्ताश्चायति गताः ॥
 लोकान्नपर्वताकार यत्र प्रकारमण्डलम् ।
 समुद्रोदगनिर्भासपरिखाकृतवेष्टनम् ॥ ११ ॥

“हर्षचरित” का “स्थाण्वीश्वर-वर्णन” इस प्रकार है :—

“तत्र चैवविधे नानारामाभिरामकुसुमगन्धपरिमलसुभगो यौवनारम्भ इव
 भूवनस्य, कुकुमकुड्मलमिलनपिञ्जरितबहुमहिषीसहस्रशोभितोऽन्तःपुरनिवेश इव
 धर्मस्य, मन्दुदूयमानचमरीबालव्यजनशतशबलितप्रान्तः एक देश इव मुरराज्यस्य,
 ज्वलन्मल्लिखिलमहमदीप्यमानदण्डिगन्तः शिविरसन्निवेश इव कृतयुगस्य,
 पद्मासनावस्थित ब्रह्मपिध्यानाधीयमानसकलाकुशलप्रशमोऽवतार इव ब्रह्मलोकस्य
 कलकलमुखरमहावाहिनीगनसङ्कुलो विश्वेप इव उत्तरकुरुणाम्, ईश्वरमार्गण-
 सन्नापानभिजमकलजनी विजगीपूरिव त्रिपुरस्य, मुधारससिक्तघवल्लगृहपक्ति-
 पाण्डरः प्रतिनिधिपरिव चन्द्रलोकस्य, मधुमदमत्तकागिनीभूषणरवभरितभुवनो
 नामापहार इव कुबेरनगरस्य स्थाण्वीश्वराकृतो जनसन्निवेशः ।

यच्च यौवनमिति युवतिभिः, तपोवनमिति मुनिभिः, कामायतनमिति वेद्याभिः संगीतशालमिति लासकैः, यमनगरमिति शत्रुभिः, चिन्तामणिभूमिरि-
त्यभिभिः, वीरश्रेष्ठमिति शस्त्रोपजीविभिः, गुरुकुलमिति विद्याथिभिः, गन्धर्वनगर-
मिति गायनैः, विश्वकर्ममन्दिरमिति विज्ञानिभिः, लाभभूमिरिति वैदेहकैः, धूर्त-
स्थानमिति बन्दिभिः, साधुसमागम इति सद्भिः, वज्रपञ्जरमिति शरणागतैः,
विटगोष्ठीति विदग्धैः, सुकृतपरिणाम इति पथिकैः असुरविद्वरभिनि वादिकैः,
शाक्याश्रम इति शमिभिः, अप्सरःपुरमिति कामिभिः, महोत्सवसमाज इति चारणैः,
वसुधारेति च विप्रैरगृह्यत ।

यत्र च मातंगगामिभ्यः शीलवत्यश्च, गौर्यो विभवरताश्च, श्यामाः पद्म-
रागिण्यश्च, धवलशुचिचदना मदिरामोदश्वसनाश्च, चन्द्रकान्तवपुषः शिरीष-
कोमलाग्यश्च, अभुजंगगम्या कंचुकिन्यश्च, पृथुकलत्रश्रियो दरिद्रमध्यकनिताश्च,
लावण्यवत्यो मधुरभाषिण्यश्च, अप्रमत्ताः प्रसन्नोऽञ्ज्वलरागाश्च, अकौतुकाः
प्रौढाश्च प्रमदाः ।” २६

३—इस प्रकार ‘हर्षचरित’ के ‘राजा पुष्पभूति एव हर्ष के वर्णन’ को ‘पद्म-
पुराण’ के ‘राजा श्रेणिक के वर्णन’ से मिलाया जा सकता है—

श्रेणिकवर्णन : “आमीत्तत्र पुरे राजा श्रेणिको नाम विभूतः ।

देवेन्द्र इव विभ्राणः सर्ववर्णधर धनुः ॥

कल्याणप्रकृतित्वेन यस्य पर्वतराजवत् ।

समुद्र इव मर्यादालघनत्रस्तचेतमा ॥

कलाना ग्रहणे चन्द्रो लोकघृत्त्या धरामय ।

दिवाकरः प्रतापेन कुबेरो धनसम्पदा ॥

० ० ०

वृषाघातीनि नो यस्य चरितानि हरेरिव ।

नैश्वर्यचेष्टित दक्षवर्गतापि पिनाकिवत् ॥

गोत्रनाशकरी चेष्टा नामराधिपतेरिव ।

नातिदण्डप्रहृष्टीतिर्दक्षिणाशाविभोरिव ॥

वरुणस्येव न द्रव्य निस्त्रिंशद्ग्राहुरक्षितम् ।

निःफल्पा मन्निधिप्राप्तिर्नोत्तराशापतेरिव ॥

बुद्धस्येव न निमुक्तमर्थवादेन दर्शनम् ।

न श्वीर्बहुलदोषोपघातिनी शीतगोरिव ॥

त्यागस्य नाथिनो यस्य पर्याप्तिं समुपागताः ।

प्रज्ञायाश्च न शास्त्राणि कवित्वस्य न भारती ॥

साहस्रानि महिम्नो न नांताहस्य च चेष्टितम् ।

दिगाननानि नो कीर्तनं सख्या गुणसम्पदः ॥

चित्तानि नानुरागस्य जनस्थान्त्रिलभूतले ।

कला न कुशलत्वस्य न प्रतापस्य शत्रवः ॥''१७

पुष्पभूतिवर्णन . "तत्र च साक्षात्सहस्राक्ष इव सर्ववर्णधरं धनुर्दधानः, मेरुमय इव कल्पाणप्रकृतित्वे, मन्दरमय इव लक्ष्मीसमाकर्षणे, जलनिधिमय इव मर्यादायाम्, आकाशमय इव शब्दप्रादुर्भावे, शशिमय इव कलासंग्रहे, वेदमय इवाकृत्रि-
मालापे, धरणिमय इव लोकघृतिकरणे, पवनमय इव सकलपार्थिवरजोविकारापहरणे, गुह्यवचसि, पृथुरसि, विशालो मनसि, जनकस्तपसि, सुमित्रस्तेजसि, सुमन्त्रो रहसि, बुध मदसि, अर्जुनो यशसि, भीष्मो धनुषि, निषधो वपुषि, शत्रुघ्नः समरे, शूरः शूरमेनाक्रमणे, दक्षः प्रजाकर्म्मणि, सर्वद्विराजतेजःपुंजनिमित्त इव राजा पुष्प-
भूतिरिति नाम्ना बभूव ।''१८

हर्षवर्णन 'नाम्य (हर्षदेवस्य) हरेरिव वृषविरोधीनि बालचरितानि, पशु-
पतेरिव दक्षजनोद्वेगकारीणि ऐश्वर्यविलसितानि, न शनत्रनोरिव गोत्रविनाश-
पिशुना प्रवादा, न यमस्येवानिवल्लभानि दण्डग्रहणानि, च वरुणस्येव निम्नित-
ग्रामसहस्ररक्षिता रत्नालया न घनदस्येवातिनिष्फला सन्निधिलाभा, न
जिनस्येवार्थशून्यानि विज्ञानदर्शनानि, न चन्द्रमस इव बहुदोषापहताः श्रियः ।''१९

"अपि च, अम्प (हर्षदेवस्य) त्यागस्याथिनः, प्रज्ञायाः शास्त्राणि, कवित्वस्य
वाच, सत्वस्य माहंसस्थानानि, उत्साहस्य व्यापाराः, कीर्तयेद्मुखानि, अनुरागस्य
लोकहृदयानि, गुणगणस्य मर्यादा, गुणगणस्य कला न पर्याप्तो विषयः ।''२०

४—'अजना-पवनजय-सभोग' की ये पक्तियाँ भी 'बाण के हर्षचरित' की
ही कृपा है —

"यथा ब्रवीति वैदग्ध्यं यथाज्ञापयति स्मरः ।

अनुरागो यथा विक्षा प्रयच्छति महोदयः ॥

तथा तयो रति प्राप्ता दम्पत्योर्बुद्धिमुत्तमाम् ।''२१

१७ पद्मपुराण, २।१०-६७

२० हर्षचरित, तृतीय उच्छ्वासा, पृ० १६६-१६७

२१. वही, द्वितीय उच्छ्वासा, पृ० ११२-११३

२०. हर्षचरित, द्वितीय उच्छ्वासा, पृ० ११२

३१. पद्मपुराण, १६।११२-११३

“आगत्य च...हंसगद्गदया गिरा कृतसम्भाषणो यथा मन्मथ आज्ञापयति,
यथा यौवनमुपदिशति यथा विदग्धताध्यापयति, यथा चानुराग शिक्षयति, तथा-
भिरामां रामामरमयत् ।”^{३२}

५—इसी प्रकार दुःखी किष्किन्ध के प्रति मुकेश आदि का प्रबोधन हर्ष-
चरित के ‘राज्यश्री की आचार्योपदेश’ का ही प्रतिबिम्ब है :—

“शोको हि पण्डितैर्दृष्ट पिशाचो भिन्ननामकः ॥

० ० ०

शोकः प्रत्युत देहस्य शोषीकरणमुत्तमम् ।

पापानामयमुद्रेको महामोहप्रवेशनः ॥”^{३३}

“आयुष्मति । शोको हि नाम पर्यायः पिशाचस्य, रूपान्तरमाक्षेपस्य, तारुण्य
तमस, विशेषो विषस्य, अनन्तक प्रेतनगरनायकः । “सर्वमक्षिणी निमील्य
सोढव्यं मर्त्यधर्मणा । पुण्यवति, पुरातन्य, प्रवृत्तयः गता केन शक्यन्तेऽ
न्यथाकर्तुम् ?”^{३४}

ऐसे स्थानों को देखकर स्पष्ट अवभासित हो जाता है कि रविषेण का काव्या-
खेक्षण भी पर्याप्त विस्तृत था । वे जैन-साहित्य में ब्राह्मणों द्वारा प्रणीत साहित्य
की टक्कर की चीज देना चाहते थे । इसलिए उन्हें जहाँ से भी अच्छी चीज मिली
उन्होंने ग्रहण की । ऐसे अवसरों पर जहाँ तक कि वे बच सके हैं ब्राह्मणों के पौरा-
णिक प्रमगो तथा उपमा-उत्प्रेक्षाओं से बचे हैं, किन्तु कविता के रस के आवेग में
जब वे आये हैं तो सारा जैनित्व विस्मृत कर बैठे हैं और ‘त्रिपुर’ आदि की चर्चा
करने लगे हैं । ऐसा लगता है कि वे एक भी चमत्कारी अक्षर को छोड़ना नहीं
चाहते । उन्हें इस बात का ध्यान नहीं रह जाता कि आगे उन्हें कोई ‘सर्वप्रबन्ध-
हर्ता साहसकर्ता’ समभकर नमस्कार भी कर सकता है ।^{३५}

रचना : ही मकना है कि रविषेण का ‘पद्मपुराण’ अथवा ‘पद्मचरित’ के अति-
रिक्त और कोई ग्रंथ भी रहा हो किन्तु अभी तक उसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं
है । केवल ‘पद्मपुराण’ ही उनकी एकमात्र रचना है जो जैन रामकाव्य परम्परा

३२. हर्षचरित, प्रथम उच्छ्वास, पृ० ५५

३३. पद्मपुराण, ६।४८०-४८६

३४. हर्षचरित, सप्तम उच्छ्वास, पृष्ठ ४०२-४०३

३५. बाण के प्रभाव के लिए और भी देखिए—‘पद्मपुराण’ ६।२००, ६।३३९-३४२,
८।५२३-५२७, ९।११२-११३, १७।८२, ३०।१५२, ३३।२२-३४, ३३।२६४-२६५, ७२।११-१७,
९५।१६ आदि ।

का सर्वप्रथम संस्कृत-महाकाव्य है।^{१९} इसका पूर्ण परिचय आगे दिया जा रहा है।

पद्मपुराण : एक विवेचन

जैनाचार्य रविषेण कृत 'पद्मपुराण' राम-कथा-साहित्य में पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है। यह संस्कृत-साहित्य-सागर का उज्ज्वल रत्न है, जैन-धर्म-ग्रन्थमाला का सुमेरु है, हिन्दी खड़ी बोली के विकास में सहायक है। यह काव्य के समस्त लक्षणों से परिपूर्ण है और जैन धर्म-शास्त्रों का निष्पन्न है। यही कारण है कि सं० १८१८ में प० दीनतराम जो द्वारा उसका भाषानुवाद किया गया जो प्रत्येक दिगम्बर जैन का कण्ठहार बन गया और जिसकी एक न एक प्रति दिगम्बर-जैन-मन्दिरों में अवश्य पाई जाती है। जो स्थान बैठणवों में तुलसीदास के 'रामचरित मानस' को प्राप्त है वही जैन-समाज में इस 'पद्मपुराण' को प्राप्त है। यह जैन-साहित्य में संस्कृत का सर्वप्रथम रामकथा-सम्बन्धी महाकाव्य है।

'पद्मपुराण' के दो नाम प्रसिद्ध हैं—'पद्मपुराण' और 'पद्मचरित'। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर इसका नाम 'पद्मचरित' ही सिद्ध होता है; क्योंकि कवि ने कहा है—'पद्मस्य चरितं वक्ष्ये पद्मालिङ्गितवक्षसः।'^{२०} तथा—'चरित पद्ममनेरिखं निबद्धम्।'^{२१}

३६ मार्णिकचन्द्र-दिगम्बर-जैन-ग्रन्थमाला, बम्बई में १९८५ वि० स० में प्रकाशित पद्म-पुराण (पद्मचरितम्) के प्राक्कथन में श्री नाथूराम प्रेमी ने रविषेण की एक और रचना के रूप में 'वरागचरित' को यह लिखते हुए स्वीकार किया है—'आचार्य रविषेण का यद्यपि इस समय कथन यही (पद्मपुराण) ग्रन्थ उपलब्ध है, परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि इसके सिवाय उनके कुछ और भी ग्रन्थ होंगे जिनमें से 'वरागचरित' का उल्लेख 'हरिवंशपुराण' के प्रारम्भ में इस प्रकार किया गया है—

वरागचरितं सर्वार्थवरागचरितार्थवाक्।

कस्य भोगार्थवद्गाढमनुशास्य स्वगाचरितम् ॥६५॥

श्वेताम्बर-नाम्प्रदाय के आचार्य उद्योतन सूरि ने अपने 'कुवलयमाला' नामक प्राकृत ग्रन्थ में भी, जो शकसंवत् ७०० (वि० स० ८२५) की रचना है, रविषेण के 'पद्मचरित' और 'वरागचरित' का उल्लेख किया है—

'जोह कण रमणिज्जं वरग-यउमाण-चरितविचारै।

कहवण मत्ताहणिज्जं ने कइणो जइय रविसेणो ॥'

अर्थात्—'जिम्मे मणीय वरागचरित और पद्मचरित का विस्तार किया उस कवि रविषेण की कौन सगाहना नहीं करेगा?'^{२२} किन्तु उनका यह कथन उनके ही वचन-विरोध से अपास्त हो जाता है जब कि वे 'जैन-साहित्य और इतिहास' नामक अपने ग्रन्थ के पृ० २७३ पर 'वरागचरित' को 'जटियमुनि' की रचना स्वीकार करते हैं।

३७. पद्मपुराण, १।१९६

३८. पद्मपुराण, १२३।१८२, और भी १।१०२, १०३ (सर्वार्थ चरितम्, निःशेष चरितम्)

इसका नाम 'पद्मपुराण' ही अधिक प्रसिद्ध है।^{३९} ग्रन्थ के ऊपर यही नाम प्रायः पड़ा मिलता है। इसका कारण क्या है?—इस प्रश्न के उत्तर में यह अनुमान होता है कि जैन-साहित्य की वह प्रवृत्ति ही इसकी जननी है जिसके अनुसार ब्राह्मण-साहित्य में उपलब्ध ग्रन्थों के नाम जैन-साहित्य के ग्रन्थों पर अंकित किये जाते थे जिससे प्रचार में अधिक सुगमता हो तथा जैनतर जनता में जैन-भावना को पहुँचाया जा सके। प्रायः देखा गया है कि जैन-वाङ्मय के अनेक ग्रन्थों के नाम ब्राह्मण-साहित्य के ग्रन्थों के सदृश हैं। इसका लाभ यह था कि यदि कभी कोई शीर्षक देखकर ही ग्रन्थ पढ़ लेता तो वह जैन-भावना से परिचित हो सकता था। यही कारण प्रतीत होता है कि ब्राह्मण धर्म के सुप्रसिद्ध पुराण 'पद्मपुराण' के आधार पर इसका नाम 'पद्मपुराण' पड़ गया हो या डाल दिया गया हो। अनपढ़ जनता इसे ही प्राचीन 'पद्मपुराण' समझकर सुन सकती थी और उसे जैनी बनाया जा सकता था। हमने भी इस प्रसिद्धि को ध्यान में रखते हुए 'पद्मपुराण' का ही व्यपदेश दिया है।

'पद्मपुराण' में पद्म (राम) का चरित्र जैन विचारधारानुसार वर्णित है। जैन-धर्म में पद्म (राम), लक्ष्मण तथा रावण त्रिषष्टिशलाकापुरुषों में परिगणित हुए हैं। जैन मान्यता के अनुसार प्रत्येक कल्प के त्रिषष्टि (६३) महापुरुष ये होते हैं—२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ६ बलदेव, ६ वामुदेव तथा ६ प्रतिवामुदेव। बलदेव, वामुदेव तथा प्रतिवामुदेव समकालीन होते हैं। राम, लक्ष्मण और रावण क्रमशः अष्टम, बलदेव, वामुदेव तथा प्रतिवामुदेव हैं। बलदेव (बलभद्र) वामुदेव (नारायण) किसी राजा की भिन्न-भिन्न रानियों के पुत्र होते हैं। वामुदेव अपने बड़े भाई बलदेव के साथ प्रतिवामुदेव (प्रतिनारायण) से युद्ध करते हैं और अन्त में प्रतिवामुदेव का वध करते हैं। इसके बाद वे दिग्विजय करके भारत के तीन खंडों पर अधिकार प्राप्त करते हैं और इस प्रकार अर्ध-चक्रवर्ती बन जाते हैं। मरने पर वामुदेव को प्रतिवामुदेव के वध के कारण नरक जाना पड़ता है। नौ वामुदेवों में लक्ष्मण और कृष्ण विशेषतः उल्लेखनीय हैं। बलदेव अपने भाई की मृत्यु के कारण शोकाकुल होकर जैन-दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करते हैं (जैसे राम और

३९. यद्यपि 'युक्ता सत्त पुराणेऽस्मिन्नाधिकारा इमे स्मृता (१/४४)' तथा 'पुराणममल (१२३/१६९)' में पुराण नाम भी आया है किन्तु यह स्पष्ट नहीं है। पुष्पिका में पहले और दूसरे खंड में प्रायः 'इति श्री रविशेषाचार्य-प्रोक्तं श्रीपद्मचरिते' लिखा है यद्यपि उत्तम की भाव में 'पद्मपुराणे' प्रयुक्त हुआ है। इससे यही सिद्ध होता है कि पहले तो रविशेष ने इसे 'पद्मचरित' ही कहा है (दे० पुष्पिका पर्व १-४४ तथा ४१-६५ कहीं-कहीं) किन्तु बाद में इसे 'पद्मपुराण' कहा है।

बलराम) । प्रतिवासुदेव सदैव वासुदेव का विरोध करते हैं । (जैसे रावण और जरासंध) इसी मान्यता के अनुसार 'पद्मपुराण' में अष्टम बलदेव, वासुदेव तथा प्रति वासुदेव का चरित्र निबद्ध किया गया है ।

'पद्मपुराण' के आचार की चर्चा करते हुए रविशेष ने बताया है कि यह राम-कथा पहले बद्ध मान जिनेन्द्र के द्वारा कही गयी थी, जो कि 'इन्द्रभूति' नामक गणधर 'सुधर्माचार्य' तथा 'कीर्तिधर' को प्राप्त होती हुई उन्हें मिली है:—

“बद्धमानजिनेन्द्रोक्तः सोऽयमर्थो गणेश्वरम् ।

इन्द्रभूतिं परिप्राप्तः सुधर्मं धारणीभवम् ॥

प्रभवं क्रमतः कीर्तिं ततोऽनुत्तरवाग्मिनम् ।

लिखितं तस्य सम्प्राप्य रवेर्यत्नोऽयमुद्गतः ॥”^{४०}

'पद्मपुराण' का प्रारम्भ विविध-वन्दनाओं सहित कवि की विनीतता के प्रदर्शन के साथ हुआ है जिसमें सत्कथा-सम्बन्धी इन्द्रियो की मार्थकता सिद्ध की गयी है । 'पद्मपुराण' के अन्त में इसका माहात्म्य-कथन हुआ है तथा इसके काव्य-सौष्टव का संकेत किया गया है:—

“वलदेवस्य सुचरितं दिव्यं यो भावितेन मनसा नित्यम् ।

विस्मयहर्षाविष्टस्वान्तं प्रतिदिनमपेतशक्तिनकरणं ॥

वाचयति शृणोति जनस्तस्यायुर्बुद्धिमीयते पुण्यं च ।

आकृष्टस्त्रिदशहरतो रिपुर्गपि न करोति वैरमुपशममेति ॥

किवान्यद्वैमर्षी लभते धर्मं यशः परं यशसोऽर्थी ।

राज्यभ्रष्टो राज्यं प्राप्नोति न सशयोऽत्र कश्चिन्कृत्य ॥

इष्टममायोगार्थी लभते न क्षिप्रतो धनं धनार्थी ।

जायार्थी वरपत्नी पुत्रार्थी गोत्रनन्दनं प्रवरपुत्रम् ॥

अकिल्बकर्मविघ्ना लाभार्थी लाभमुत्तमं सुखजननम् ।

कुशलं विदेशगमने स्वदेशगमनेऽथवापि सिद्धसमीहः ॥

व्याधिरुपैति प्रशमं ग्रामनगरवासिनः सुरास्तुष्यन्ति ।

नक्षत्रे सन्न कुटिला अपि भान्वाद्या ग्रहा भवन्ति प्रीताः ॥

दुश्चिन्तितानि दुर्भूतानि दुष्कृतशतानि यान्ति प्रलयम् ।

यत्किंचिदपरमशिवं तत्सर्वं क्षयमुपैति पद्मकथाभिः ॥

०

०

०

व्यजनान्तं स्वरान्तं वा किञ्चिन्नामेह कीर्तितम् ।

अर्थस्य वाचकं शब्दः शब्दो वाक्यमिति स्थितम् ॥

लक्षणानकृती वाच्यं प्रमाण छन्द आगमः ।

सर्वं चामलत्तिन ज्ञेयमत्र मुखागतम् ॥

इदमष्टादश प्रोक्तं सहस्राणि प्रमाणतः ।

शास्त्रमानुषट्पश्लोकैस्त्रयोविंशतिसंगतम् ॥” ४१

‘पद्मपुराण’ की रचना का उद्देश्य है—आर्य रामायणों की अतिमानवीय घटनाओं का बौद्धिक विघ्नेषण करके राम को जिनदीक्षा दिलाकर मोक्ष प्राप्ति का साधन जिनदीक्षा को ही सिद्ध करना। इसीलिए राजा श्रेणिक ने प्रचलित रामायण की घटनाओं के विषय में अपने सन्देह को गौतम गणधर के सम्मुख पूर्वपक्ष के रूप में रखा जिसका उत्तरपक्ष गौतम के द्वारा सम्पन्न हुआ तथा राक्षसों, वानरों आदि की समस्याओं का बुद्धिसंगत समाधान सामने आया। भाव यह है कि ‘पद्मपुराण’ में राम कथा को तर्कसम्मत बनाने का प्रयत्न किया गया है।

‘पद्मपुराण’ की रचना सन् ६७७-७८ ई० में हुई थी जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है। इसका पहला प्रेस-मस्करण वि० स० १९८५ में मार्गकचन्द्र-ग्रथमाला, बम्बई में प्रकाशित हुआ है। हिन्दी-अनुवाद सहित इसका प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ काशी ने जुलाई, १९५८ में किया है। इससे पूर्व यह ग्रन्थ हस्त लिखित था।

‘पद्मपुराण’ की प्राचीन प्रतियाँ भारतीय ज्ञानपीठ में जुलाई १९५८ में प्रकाशित पद्मपुराण की भूमिका में उसकी इन पाँच प्रतियों का उल्लेख किया गया है—

(१) विगम्बर-जैन-सरस्वती-भंडार धर्मपुरा, बेहली वाली प्रिन्टि-१.—इसमें १२, ६ इंच के साइज के २४६ पत्र हैं। प्रारम्भ में प्रतिपत्र में १५-१६ पंक्तियों और प्रतिपंक्ति में ८० तक अक्षर हैं पर बाद में प्रति पत्र में २४ पंक्तियाँ और प्रतिपंक्ति में ५७-५८ तक अक्षर हैं। अधिकांश श्लोकों के अंक गाल स्याही में दिये गये हैं किन्तु पीछे के हिस्से में केवल काली स्याही का प्रयोग किया गया है। इस पुस्तक की तिथि पौष वदी ७, बुधवार मन्वत् १७७५ को शुभावर निवामी श्री मानसिंह के पुत्र सुखानन्द ने पूर्ण की है। पुस्तक के निपिकर्ता सस्कृत के ज्ञाता नहीं प्रतीत होने हैं इसलिए भाषागत अनेक अशुद्धियाँ निम्न में रह गयी हैं। पुस्तक के अन्त में यह लेख पाया जाता है—

“इति श्रीपद्मपुराणसंपूर्ण भवतः । निरूपय सुखानन्द मानसिंहसुत वामी सुयान

मुसावर के मोत्र वनाड़ा लिपि लिखी सुधाने अधि संवत् सत्रैसै पचहत्तर मिति पौष-वदी सप्तमी बुधवार शुभं कल्याण ददातु । जाइसी पुस्तकं दृष्ट्वा ताइसी लिखतं मया । जादि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते ॥१॥ सज्जनस्य गुणं ग्राह्यं दोष-लिक्तं गुणार्णवम् । अयं शुद्धं कृतं तस्य मोक्षसौख्यप्रदायकम् ॥२॥ जो कोई पढ़े सुने त्याहने म्हातौ श्रीजिनाय नमः । सज्जन ऐही वीनती साधमी सों प्यार । देव धर्म गुरु परख कें सेवो मन बच सार ॥ देव धरम गुरु जो लखें ते नर उत्तम जान ॥ सरघा रुचि परतीति सों सो जिय सम्यक् बान ॥ देव धरम सू परखिये सो है सम्य-कबान । दर्शन गुण ग्रह आदि ही ज्ञान अंग रुचि मान ॥ चारिन अधिकारी कहो मोक्ष रूप त्रय मान । सज्जन सो सज्जन कहै एहू सार तब जान ॥ निदखै अरु व्यव-हार नय रत्नत्रय मन खान । अप्पा दसन नानमय चारितगुन अप्पान । अप्पा-अप्पा जोइये ज्यो पावै नियनि शुभमस्तु ।”

(२) दिगम्बर-जैन-सरस्वती-भवन पंचायती मन्दिर, मसजिद खजूर, बेहली वाली प्रति:—इसमें ११ × ५ इंच के साइज के ५१० पत्र हैं। प्रतिपत्र में १४ पक्तियाँ और प्रतिपक्ति में ४०-४१ तक अक्षर हैं। पुस्तक के अन्त में प्रतिलिपि-संवत् तथा लिपिकर्ता का कोई उल्लेख नहीं है। इस प्रति के बीच-बीच में कितने ही पत्र जीर्ण हो जाने के कारण अन्य लेखक के द्वारा फिर से लिखाकर मिलाये गये हैं। प्राचीन लिपि प्रायः शुद्ध है किन्तु नये मिलाये गये पत्रों में अनेक अशुद्धियाँ रह गयी हैं। इस प्रति के प्रारम्भ में १-२ श्लोकों की संस्कृत टीका भी दी गयी है।

उपर्युक्त दोनों प्रतियों का प्रस्तुतीकरण प० परमानन्द जी शास्त्री ने किया है।

(३) अतिशय क्षेत्र महावीर जी वाली प्रति — इसमें १२ × ५ इंच साइज के ५५४ पत्र हैं। प्रति के कागज से यह पता चलता है कि यह बहुत प्राचीन है किन्तु अन्त में लिपि का संवत् और लिपिकार का कोई संकेत नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रति के अन्त का एक पत्र गम हो गया है अन्यथा उसके लिपि संवत् आदि का कुछ उल्लेख अवश्य मिल जाता। पुस्तक की जीर्णता के कारण प्रारम्भ में ४४ पत्र नये लिखकर लगाये गये हैं। इन ४४ पत्रों में प्रति पत्र १३ पक्तियाँ तथा प्रतिपक्ति ४०-४५ तक अक्षर हैं। प्राचीन पत्रों में १२ पक्तियाँ और प्रतिपक्ति ३५-३८ तक अक्षर हैं। अधिकांश लिपि शुद्ध की गयी है। इस प्रति में भी संख्या २ के समान प्रारम्भ के १-२ श्लोकों की टीका है।

(४) धन्नालाल श्रवणचन्द्र रामचन्द्र बम्बई वाली प्रति—इस पुस्तक में १३ × ६ इंच साइज के २६५ पत्र हैं। प्रति पत्र में १६ पक्तियाँ और प्रतिपक्ति में ५५ से ६० तक अक्षर हैं। लिपि के संवत् और लिपिकार का कोई उल्लेख नहीं है। परन्तु प्रतीत होना है कि लिपिकर्ता संस्कृत का ज्ञाता था अतएव लिपिगत

अशुद्धियाँ नगण्य हैं। प्रायः सब पाठ शुद्ध अंकित किये गये हैं। बीच-बीच में कठिन स्थलों पर टिप्पणियाँ भी दे दी गयी हैं।

(५) बिरम्बर-जैन-सरस्वती-अण्डार धर्मपुरा, बेहली वाली प्रति-२.—

इसकी भी उपलब्धि पं० परमानन्द सास्त्री के सौजन्य से ही हुई है। इसमें १० × ५ इंच साइज के ५८ पत्र हैं। बहुत ही संक्षेप में पद्मपुराण के कठिन स्थलों पर टिप्पणियाँ दी गई हैं। इसकी लिपि पीप बदी ५ रविवार संवत् १८६४ को पूर्ण हुई। यह लश्कर में लिखी गयी है। इसके लिपिकर्ता का पता नहीं चलता। टिप्पणी के रचयिता का निम्नलिखित उल्लेख प्रति के अन्त में मिलता है:—

“लाट बागड़ श्री प्रवचन सेन पण्डितान् पद्मचरितं समाकर्ण्य बलात्कारण श्री नन्दाचार्य सत्शिष्येण श्रीचन्द्रमुनिना श्रीमद्विक्रमादित्य-सम्बत्सरे सप्ताशी-त्यधिक सहस्र (परिमितं) श्रीमद्वारायां श्रीमती राज्ये भोजदेवस्य पद्मचरिते।” इसकी लिपि में पर्याप्त अशुद्धियाँ हैं।

६. माणिकचन्द्र-ग्रन्थमाला बम्बई की छपी हुई प्रति : साहित्यरत्न प० दरबारी लाल जी न्यायतीर्थ के द्वारा सम्पादित होकर श्रीनाथूराम प्रेमी के ‘प्राक्कचन’ के साथ वि० सं० १९५८ में प्रकाशित हुई है।

इन सभी प्रतियों का मिलान करके ‘भारतीय ज्ञानपीठ’, काशी से जुलाई, १९५८ में पं० पन्ना लाल जैन ने मानुवाद ‘पद्मपुराण’ तीन भागों में सम्पादित किया है जिसमें कहीं-कहीं प्रूफ और कहीं अनुवाद की भी अशुद्धियाँ रह गई हैं। हमने अध्ययन के लिये इसे ही आधार बनाया है।

कथासार^{४२} : कथा का प्रारम्भ राजा श्रेणिक की प्रार्थना पर गौतम गणधर द्वारा किया गया है। पहले ऋषभदेव की उत्पत्ति और नीलाजना के नृत्य के समय उसकी मृत्यु की घटना से ऋषभ के वैराग्य की कथा दी गयी है। तदनन्तर भरत-बाहुबलि की कथा, राजा सगर का वृत्तान्त एवम् महारक्ष और उसके वंशजों का वर्णन है। इसी वंशपरम्परा के अन्तिम राजा कीर्तिधवल तथा उसके साले श्रीकण्ठ के द्वारा वानर वंश की उत्पत्ति हुई। श्रीकण्ठ ६ वी पीढ़ी के राजा अमर-प्रभ ने वानर-चिह्न स्वीकार किया और इस प्रकार राक्षस-वंश और वानर-वंश प्रख्यात हुए जिनका पर्याप्त विस्तार हुआ तथा जिनके विषय में अनेक कथाएँ हैं। विजयाद्व की दक्षिण श्रेणी में रथनूपुर नाम के नगर में इन्द्र नामक प्रतापी विद्याधर रहता था। उसने लंका को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। पाताल-लंका के रत्नश्रवा का विवाह कौतुकमंगलनगरी के ज्योमबिन्दु की छोटी पुत्री केकसी

^{४२}. रविशेष ने ‘सूत्रविधान’ नामक प्रथम पर्व में अनुक्रमिका के रूप में यह सार दिया है। रामकथा का सार १०२ पर्व में भी दिया गया है।

से हुआ था। रावण इन्ही का पुत्र था। इसने बाल्यावस्था में बहुरूषिणी आदि अनेक विद्याएँ सिद्ध की थीं। भानुकर्ण, विभीषण तथा चन्द्रनखा इसके सहोदर थे। रावण और भानुकर्ण ने लंकाधिपति इन्द्र और वैश्रवण से अपने पूर्वजों द्वारा अध्यूष्ट लंकानगरी को छीन लिया तथा अपना राज्य स्थापित किया। खरदूषण ने रावण की बहिन चन्द्रनखा का हरण कर लिया। बाद में रावण ने उन दोनों का विवाह कर दिया तथा पाताललंका का राज्य खरदूषण को दे दिया।

वानरवश के प्रभावशाली शासक बालि ने संसार से विरक्त होकर अपने छोटे भाई सुग्रीव को राज्य दे दिया और स्वयं विगम्बर दीक्षा धारण कर ली। यह कैलास पर्वत पर तपस्या करने लगा। रावण को अपने बल का बड़ा अभिमान था। फलस्वरूप वह बालि पर क्रुद्ध होकर कैलास को उठाने लगा। पर्वत पर बने हुए जिनानियों की रक्षा के लिए बालि ने कैलास पर्वत को अपने पैर के अंगूठे से बलपूर्वक दबा लिया, इससे रावण को अत्यन्त कष्ट उठाना पड़ा। बाद में बालि ने रावण को छोड़ दिया और तपस्या कर निर्वाण प्राप्त किया।

अयोध्या में भगवान् ऋषभदेव के वंश से समयानुसार अनेक राजा हुए। प्रायः सभी ने दिगम्बर दीक्षा ली और तपस्या द्वारा मोक्ष प्राप्त किया। इसी वंश में राजा रघु का अनरण्य नामक पुत्र हुआ। इसकी रानी पृथ्वीमती से अनन्तरथ तथा दशरथ दो पुत्र हुए जिनमें अनन्तरथ अपने अपने पिता के साथ संसार से विरक्त होकर तपस्या करने चले गये तथा अयोध्या का शासन दशरथ ने संभाला। एक दिन दशरथ की सभा में नारद ने आकर बताया कि 'रावण ने किसी निमित्त-ज्ञानी से यह जान लिया है कि दशरथपुत्र और जनकपुत्री उसकी मृत्यु का कारण होंगे—

“नैमित्तेन समादिष्ट तेन सागरबुद्धिना।

भविता दशवक्त्रस्य मृत्युर्दाशरथिः किल ॥

दुहिता जनकस्यापि हेतुत्वमुपयास्यति।” ४२

अतः उसमें विभीषण को आप दोनों को मार देने के लिये नियुक्त कर दिया है। आप सावधान रहें और हो सके तो कहीं छिप जायें। राजा दशरथ अपनी रक्षा के लिये देश देवान्तर में गये तथा मार्ग में कौतुकमंगलनगर के राजा की पुत्री कंकया से विवाह किया। कुछ समय पश्चात् विभीषण का खटका समाप्त होने पर दशरथ के अयोध्या आने पर उनकी चार रानियों से पद्म (राम), लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न ये चार पुत्र उत्पन्न हुए। समयानुसार दशरथ ने

राम का राज्यभिषेक करना चाहा किन्तु कैकय ने अपने पूर्वाजित वर को ध्यान दिलाकर दशरथ से भरत के लिए राज्य माँग लिया। राम ने इसे स्वीकार किया तथा वनगमन का निश्चय कर लिया। दशरथ ने भी बात मान ली और दीक्षा ले ली। राम के साथ लक्ष्मण-सीता भी वन गये। वन में रावण के द्वारा सीता का हरण किये जाने पर राम ने वानरवशी विद्याधर पवनजय और अजना के पुत्र हनुमान् एवं सुग्रीव से मित्रता की तथा सुग्रीव के शत्रु साहसगति विद्याधर का वध कर सुग्रीव को अपना वर्गवद बना लिया जिसकी सहायता से रावण-वध कर सीता को प्राप्त किया। रावण जैन-धर्मानुयायी था। प्रतिदिन जिन-पूजा करता था किन्तु 'भवितव्यता बलीयसी' के अनुसार वह मोहग्रस्त होकर अनीति के मार्ग पर चला जिसके कारण उसके कुल का सहार हुआ।

अयोध्या लौट आने पर लोकापवाद के भय से राम ने सीता को निर्वासित कर दिया। जिस स्थान पर जंगल में सीता को छोड़ा गया था वहाँ सौभाग्य से वज्रजंघ नामक राजा आ गया। उसने सीता की रक्षा की तथा उसके नगर में जाने पर सीता ने दो पुत्र लवणाकुश उत्पन्न किये जिन्होंने अपने पराक्रम से अनेक राज्यों को जीतकर वज्रजंघ के राज्य की वृद्धि की। दिग्विजय के समय इनका राम-लक्ष्मण से युद्ध हुआ जिसमें पिता-पुत्र परिचित हुए। सीता को राम ने बुलाया। सीता ने आकर अग्नि-परीक्षा दी तथा उत्तीर्णता प्राप्त की। वह विरक्त होकर तपस्या करने चली गयी। अन्त में उसने स्त्री-लिंग छेदकर स्वर्ग प्राप्त किया। लक्ष्मण की मृत्यु हो जाने पर राम अत्यन्त शोकाभिभूत हो गये। कुछ समय बोध प्राप्त कर लेने पर वे दिगम्बर मुनि हो गये। उन्होंने कठोर तप किया और वे केवली होकर निर्वाण के अधिकारी हुए।

सप्त अधिकार : 'पद्मपुराण' का प्रमाण १८०२३ श्लोक है। रविवेण के द्वारा कही हुई कथा सात अधिकारों में विभक्त है—(१) लोकम्यति, (२) वशो की उत्पत्ति, (३) वन के लिए प्रस्थान, (४) युद्ध, (५) लवणाकुश की उत्पत्ति, (६) भवान्तरभवं भूरिप्रकारैश्चारुपर्वभिः। ये सानां अधिकार अनेक प्रकार के सुन्दर पर्वों से सुशोभित हैं—

“स्थितिर्वश-समुत्पत्तिः प्रस्थानं सयुगं ततः।

लवणाकुशसम्भूतिर्भवोक्तिः परनिर्वृतिः ॥

भवान्तरभवं भूरिप्रकारैश्चारुपर्वभिः।

युक्ताः सप्त पुराणैस्मिन्नधिकारा इमे स्मृताः ॥”

पर्वों की संख्या १२३ है।^{४४} प्रत्येक पर्व के अन्तिम श्लोक में 'रवि' शब्द आया है। इसलिए इसे 'रव्यंक' भी कहा जाता है।^{४५} (संस्कृत में ऐसी परम्परा बहुत रही है। भारवि और माघ ने भी 'श्री' या 'लक्ष्मी'—शब्द अपने ग्रन्थों के अन्तिम श्लोको में रखा है।)

उपर्युक्त सात अधिकारों में से 'न्यस्त्यधिकार' का तो चतुर्थ पर्व के अन्त स्पष्ट उल्लेख है—

स्थित्यधिकारोऽयं ते श्रेणिक गदितः समासतस्त्वेनम् ।

बंशाधिकारमधुना पुरुषरवे ! विद्धि सादरं वच्मि ॥ (पद्म ० ४।१३२)

किन्तु अन्य अधिकारों का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। यदि इन अधिकारों के पूर्वापर प्रभाव को ध्यान में रखते हुए पर्वों का इनमें विभाजन किया जाय तो वह कश्चित् इस प्रकार है : (१) स्थिति (१-४), (२) वंशसमुत्पत्ति (५-२५), (३) प्रस्थान (२६-४४), (४) सयुग (४५-८०), (५) लवणाकुशसभूति (८१-१०५), (६) भवोक्ति (१०६-११६) तथा (७) परनिवृत्ति (१२०-१२३) ।

किन्तु यदि 'पद्मपुराण' के पर्वों का इन छः भागों में विभाजन किया जाय तो स्पष्टता तथा सुगमता अधिक रहती है : (१) रावण चरित (१-२०), (२) राम और सीता का जन्म तथा विवाह (२१-३२), (३) वनभ्रमण (३३-४२), (४) सीताहरण और खोज (४३-५३), (५) युद्ध (५४-८८), (६) उत्तर-चरित (८९-१२३) । इन्हीं छः भागों के आधार पर हम 'पद्मपुराण' के कथा-रोहण पर विचार करेंगे ।

(१) रावणचरित (पर्व १-२०) : मगलाचरण, ग्रन्थकर्तृप्रतिज्ञा, सत्कथा-

४४. इन पर्वों को काण्डों में विभक्त करने का अछूरा उपक्रम भी किया गया है। ११वें पर्व के बाद निम्ना मिलना है—'इति विद्याधरकाण्ड समाप्तम् ।' इसी प्रकार मन्जिद खजुर घानी तथा बम्बई वाली प्रति में २३वें पर्व के अन्त में 'इति श्रीजनक-व्यसरथ कालनिवर्तनम्' निम्ना मिलना है। किन्तु 'विद्याधरकाण्ड' के अनिश्चित और किसी काण्ड का उल्लेख नहीं है।

हा मकना है कि रीत्येन के बाद किसी निष्कर्ष में 'पद्मपुराण' को काण्डों में विभाजित करना चाहता हा जैसा बाद में स्वयम्भू के 'पद्मचरित' का काण्डों में विभाजन है किन्तु बाद उसको ध्यान में न आर न रहा हा अथवा उसने जानबूझकर छोड़ दिया हो ।

४५. यथा—'सन्मार्ग प्रकटीकृत हि रविना कश्चारुदृष्टिः स्थलेत् ?' (१।१०३)

'रविरिव शरदभ्रादारबृन्दावधामीत् ।' (२।२५६)

'भित्वा ध्वान्तं वे रवेस्तुल्येष्येष्टा ।' (३।३३९)

'पुरुषरवे विद्धि सादरं वच्मि ।' (४।१३२) आदि ।

प्रशंसा, सज्जन-प्रशंसा तथा दुर्जननिन्दा के साथ ग्रन्थ का अवतरण होता है तथा ग्रन्थ में निरूप्यमाण विषयों का 'सूत्र-विधान' किया गया है (पर्व १)। मगध-देश में स्थित राजगृह नगर के राजा श्रेणिक का महावीर के समवसरण में गमन होता है तथा लौटकर रात्रि में उसे रामकथा-सम्बन्धी सन्देश होता है। मुख्य सन्देश वानर और राक्षसों के विषय में है (पर्व २)। अगले दिन वह समवसरण में जाकर रावण के वास्तविक स्वरूप और चरित के विषय में प्रश्न करता है जिसके उत्तर में शीतल गणधर उसे रावण का वास्तविक चरित्र सुनाने का उपक्रम करते हैं तथा इसके लिए वे एक प्रस्तावना तैयार करते हैं; क्योंकि 'न बिना पीठबन्धेन विधातुं सद्मं शक्यते।' इसी प्रस्तावना के रूप में क्षेत्र, काल तथा चौदह कुलकरो का वर्णन, चौदहवें कुलकर नाभिराय और उनकी स्त्री मरुदेवी का वर्णन, भगवान् ऋषभदेव के गर्भारोहण, जन्म कल्याणक तथा दीक्षा-कल्याणक का वर्णन एवं भगवान् आदिनाथ के ध्यानारूढ रहने के समय नमि-विनमि के आगमन के और घरणेन्द्र के द्वारा उन्हें उत्तर-दक्षिण श्रेणियों के राज्यदान का वर्णन है, (पर्व ३)। प्रसंगानुसार भगवान् ऋषभदेव का राजा सोमप्रभ और श्रेयांस के आहार होना, केवल ज्ञान की उत्पत्ति, समवसरण की रचना, दिव्य-ध्वनि का श्रवण, भरत-बाहुबली का युद्ध तथा बाहुबली का दीक्षा लेना, भरत के द्वारा ब्राह्मण वर्ण की सृष्टि आदि वर्णित है (पर्व ४)। तदनन्तर चार महा-वशो—(इक्ष्वाकुवश, ऋषि अथवा चन्द्रवश, विद्याधरवश तथा हरिवश) का संक्षिप्त वर्णन, विद्याधर वश के अन्तर्गत विशुद्ध और संजयन्त मुनि का वर्णन अजित-नाथ भगवान् का वर्णन, सगर चक्रवर्ती का वर्णन, पूर्णघन-सुलोचन-सहस्रनयन-मेघबाहन आदि का वर्णन, मेघबाहन और सहस्रनयन के पूर्व जन्म-सम्बन्धी वर का वर्णन, राक्षसों के इन्द्र भीम और सुभीम के द्वारा मेघबाहन के लिए राक्षस-द्वीप की प्राप्ति तथा राक्षस-वंश के विस्तार का वर्णन एवं वानर वश का विस्तृत वर्णन है (पर्व ५-६)। इसके बाद रथनूपुरनगर में राजा सहस्रार के यहाँ इन्द्र विद्याधर का जन्म तथा उसके प्रभाव-प्रताप आदि का वर्णन, लंका के राजा मान्दी का इन्द्र के विरुद्ध अभियान तथा युद्ध और युद्ध में माली की मृत्यु का वर्णन, लंकापालों की उत्पत्ति तथा वैश्रवण के लंका निवास का वर्णन, इन्द्र से हार कर सुमाली के अलंकारपुर में निवास, रत्नश्रवा-नामक पुत्र के लाभ, रत्नश्रवा की केकसी रानी से दशानन, भानुकर्ण, चन्द्रनखा तथा विभीषण की उत्पत्ति का वर्णन, वैश्रवण की गगनयात्रा देखकर दशानन आदि की अनावृत यक्ष के उपद्रव के बावजूद भी विद्यासिद्धि का वर्णन और राक्षसवश में दशानन के प्रभाव का वर्णन किया गया है (पर्व ७)। तत्पश्चात् असुर सगीतनगर के राजा मय की

पुत्री मन्दोदरी का दशानन के साथ विवाह, दशानन की मेघरव पर्वत पर बनी बापिका में छह हजार कम्पाओ के साथ जलक्रीड़ा तथा उनके साथ विवाह, भानु-कर्ण और विशीषण के विवाह, दशानन द्वारा वैश्रवण की पराजय, पुष्प ६ पर आरूढ़ होकर उसकी दक्षिण-यात्रा, सुमाली द्वारा हरिषेण चक्रवर्ती का माहात्म्य-कथन, दशानन द्वारा त्रिलोक-मण्डन हाथी का वश करना तथा यमलोकपाल-विजय एवं लंका नगरी प्रवेश निबद्ध है (पर्व ८) । आगे बालि-सुग्रीव-नल-नीलादि की उत्पत्ति, खरदूषण के द्वारा रावण की बहिन चन्द्रनखा का हरण, विराधित का जन्म, बालि का दशानन के साथ संघर्ष, बालि का दीक्षा-ग्रहण, सुग्रीव द्वारा अपनी बहिन का दशानन के साथ विवाह, बालि के प्रभाव से दशानन का विमान रुकना, रावण द्वारा कैलास को उठाना, बालि द्वारा उसकी रक्षा, रावण द्वारा जिनेन्द्र स्तुति एवं नागराज के द्वारा 'अमोघविजया' शक्ति का दान वर्णित है (९) । फिर सुग्रीव का सुतारा के साथ विवाह, उससे अंग और अगद नामक पुत्रों का जन्म, सुतारा को प्राप्न करने की इच्छा से साहसगति विद्याधर का हिमवत् पर्वत की दुर्गम गुहा में विद्या सिद्ध करना, रावण का दिग्विजय के लिए निकलना, सहस्ररश्मि आदि राजाओं को वश में करना, नारद का मरुत्वान के यज्ञ में ब्राह्मणों में शास्त्रार्थ तथा ब्राह्मणों द्वारा पीटे जाने पर रावण द्वारा उसकी रक्षा, नलकूबर की मंत्री का रावण के प्रति अनुराग और रावण का उसे समझाना, नलकूबर-विजय, सहस्रार के पुत्र इन्द्र की रावण द्वारा पराजय एवं सहस्रार के कथन पर उसकी मुक्ति इन्द्र की दीक्षा तथा रावण का अनस्तव्य केवली के समक्ष यह व्रतग्रहण—'जो स्त्री मुझे नहीं चाहेगी मैं उसे नहीं चार्हूंगा'—वर्णित है (पर्व १०-१४) । तदनन्तर पवनजय-अंजना वृत्तान्त, पवनजय का रावण की ओर से वरुण से गुद्ध करने के लिए जाना, चक्रवाक-रहित-चक्रवाकी के दर्शन से प्रेरित पवनजय का छिपकर अंजना से सम्भोग करना, गर्भचिह्न प्रकट हो जाने पर अज्ञानवश केतुमती द्वारा निर्वासित अंजना का हनूमान्-पुत्र को बन में उत्पन्न करना, अंजना-पवनजय-मिलाप, रावण का वरुण-दमनाथ सभी राजाओं का आह्वान, हनूमान् का वरुण को परास्त करना, रावण द्वारा उसकी प्रशंसा, कुम्भकर्ण को वरुण के नगर की स्त्रियों के पकड़ने पर रावण की फटकार, रावण का हनूमान् के लिए चन्द्रनखा की पुत्री देना, रावण के साम्राज्य एवं चौबीस तीर्थंकरों आदि शलाका पुरुषों का वर्णन निबद्ध है (पर्व १५-२०) ।

२. राम और सीता का जन्म तथा विवाह (पर्व २१-३१) : रामादि के जन्म के लिए पहले उनके वंशों का परिचय दिया गया है । फिर मुनि सुव्रतनाथ तथा उनके वंश का वर्णन, इक्ष्वाकुवंश में सौदास आदि के बाद अनरण्य के यहाँ

दशरथ का जन्म, नारद द्वारा रावण के दुर्विचार सुनकर उनका एवं जनक का राज्य छोड़कर जाना, कशानिपुण केकया का दशरथ से विवाह एवं वर की प्राप्ति तथा दशरथ की रानियों से राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न की उत्पत्ति, जनक की विदेहा रानी से सीता और भामण्डल की उत्पत्ति, भामण्डल का अपहरण, म्लेच्छों के विरुद्ध राजा दशरथ से सहायता पाकर जनक का राम के लिए अपनी पुत्री (सीता) देने का निश्चय, नारद की करतूत से भामण्डल का सीता के प्रति अनुराग, राम एवं अन्य भाइयों का सीता आदि से विवाह, वृद्ध कंचुकी को देख दशरथ का वैराग्य, भामण्डल को अपने पूर्व भव का ज्ञान तथा जनक का भामण्डल से मिलना, सर्वभूतहित मुनिराज के द्वारा दशरथ के पूर्वजनों का वर्णन एवं उनकी दीक्षा लेने की विचारधारा वर्णित है (पर्व २१-३१)। तदनन्तर राम को दशरथ का राज्य देने का विचार, केकया द्वारा वर के बदले भरत के लिए राज्य माँगना, दशरथ का असमजस, राम की साम्त्वना, लक्ष्मण का रोष, भरत का दीक्षा लेने का आग्रह, किन्तु सबके समझाने पर राम के पुनरावर्तन तक राज्य स्वीकार कर लेना, राम-लक्ष्मण-सीता का सबसे विदा लेना एवं दशरथ की दीक्षा वर्णित है (पर्व ३१)।

३. वनभ्रमण (पर्व ३२-४२) : इस खंड में राम-लक्ष्मण-सीता जैसे-तैसे नगरवासियों से विदा होकर वन के लिए चले ही गये भरत ने द्युतिभट्टारक से धर्म का यथार्थ उपदेश लिया (पर्व ३२)। आगे राम का चित्रकूट पारकर अवन्ति देश में गमन, वज्रकर्ण-सिंहोदर वृत्तान्त, कल्याणमाला-वृत्तान्त, कपिल-ब्राह्मण का वृत्तान्त एवं लक्ष्मण पर आसक्त वनमाला का वृत्तान्त आता है। (पर्व ३३-३६)। तत्पश्चात् नर्तकी वेशघारी राम-लक्ष्मण का भरत-विरोधी राजा अतिवीर्य को ध्वस्त करना, अतिवीर्य की दीक्षा, लक्ष्मण का 'जितपद्मा' से विवाह, राम-लक्ष्मण द्वारा देशभूषण, कुलभूषण, मुनियों का उपसर्ग—दूरीकरण, वश-स्थलपुत्र के राजा मुरप्रभ द्वारा चरमगरीरी राम का अभिवादन, राम का दण्डक-वन-प्रस्थान, रामगिरि-वर्णन (पर्व ३७-४०) राम-लक्ष्मण तथा सीता का कर्णरवा नदी को प्राप्त कर उसमें अवगाहन, सुमुप्ति और गुप्ति नामक दो मुनियों को आहार दान देने से उन्हें पचासचर्य की प्राप्ति, मुनिराज के दर्शन से गृध्र पक्षी का पूर्वभवं-ज्ञान उत्पन्न होना तथा मुनिवन्दना के कारण दिव्य शरीर की प्राप्ति, मुनि द्वारा गृध्र के पूर्वभवं का कथन करना, राम द्वारा उसका 'जटापु' नामकरण तथा राम-लक्ष्मण-सीता का दण्डक-वन में भ्रमण, उपनिबद्ध है (पर्व ४०-४२)।

४. सीताहरण और खोज (पर्व ४३-५३) : इस खण्ड में सूर्यहास-साधक चन्द्रनखासुत शम्भूक का लक्ष्मण द्वारा अचानक वध, चन्द्रनखा का विलाप, राम-

लक्ष्मण को देखकर उसका मुग्ध होना किन्तु राम-लक्ष्मण का अविचलित रहना (बाद में लक्ष्मण का चंचल होना) (पर्व ४३) कामेच्छा पूर्ण न होने पर चन्द्रनखा का पुत्र-ओकाभिभूत होना, खरदूषण को पुत्रवध से परिचित कराना, खरदूषण का लक्ष्मण के साथ युद्ध होना, रावण का सहायतार्थ आना, सीता को देखकर उसका मोहित होना, सिंहनाद द्वारा राम को लक्ष्मण के पास भेज देना और सीता को हर लेना, जटायु का सीता को बचाने का व्यर्थ प्रयत्न करना। सीता के बिना राम का करुण-विलाप करना, विराधित का राम-लक्ष्मण की सहायता करना, राम का विराधित से अनुरोध, उनका पाताललका में जाना तथा सीता-विरह में भूलसना, सीता का देवारण्य उद्यान में ठहराया जाना, रावण की प्रेम-याचना का सीता का ठुकराया जाना, रावण की विप्रलम्भजग्य दुर्दशा पर दयालु होकर मन्दोदरी का सीता को समझाना किन्तु सीता द्वारा कड़ी लताड़ मारना (पर्व ४४-४६), कृत्रिम सुग्रीव साहसगति को मारकर राम का सुग्रीव की सहायता करना, सुग्रीव द्वारा १३ कन्याओं का राम को समर्पण, लक्ष्मण का बिलम्ब करते सुग्रीव पर कोप, रत्नजट्टी द्वारा सीता की रावण के यहाँ स्थिति बताना, सभी के होश ठण्डे पड़ना, लक्ष्मण का कोटि शिला उठाकर सभी को विष्वस्त करना, हनूमान् का राम के पास आगमन लकागमन, मार्ग में महेन्द्रनगर में अपनी माता और महेन्द्र से मिलना, दधिमुख द्वीप में स्थित मुनियों के उपसर्ग का हनूमान् द्वारा दूरीकरण, राम को गन्धर्व कन्याओं की प्राप्ति, हनूमान् का लकामुन्दरी-लाभ, विभीषण-हनूमान्-मिलन, सीता को हनूमान् द्वारा राम का सन्देश देना, उद्यान को क्षतिग्रस्त करना और बन्धन तोड़कर लौट आना वर्णित है (पर्व ४७-५३)।

५. युद्ध (पर्व ५४-८०) इसमें हनूमान् द्वारा सीता का समाचार देने पर विद्याधरों सहित राम का लका की ओर प्रस्थान (५४), लका में इन्द्रजित विभीषण का वाक्मघर्ष, रावण से तिरस्कृत विभीषण का लकः त्यागकर राम से आ मिलना (पर्व ५५) रावण की अक्षौहिणी आदि का वर्णन (पर्व ५६), लकानिवासिनी सेना की तैयारी तथा लंका से बाहर आने का वर्णन (पर्व ५७), नल और नील के द्वारा हस्त और प्रहस्त का माग जाना (पर्व ५८), हस्त-प्रहस्त और नल-नील के पूर्व-भर्वां का वर्णन (पर्व ५९), अनेक राक्षसों का माग जाना तथा राम और लक्ष्मण को दिव्यास्त्र एवं सिंहबाहिनी और गरुडबाहिनी विद्याओं की प्राप्ति (पर्व ६०), सुग्रीव और भामण्डल का नागपाश से बाँधा जाना तथा राम-लक्ष्मण के प्रभाव से उनका बन्धनमुक्त होना (पर्व ६१), वानर और राक्षस-वंशी राजाओं का युद्ध, विभीषण-रावण-संवाद, योद्धाओं की रणीन्मादिनी चेष्टाएँ रावण द्वारा शक्ति चलाये जाने पर लक्ष्मण का मूर्च्छित होना एवं राम का विलाप

(पर्व ६२-६३), इन्द्रजित, मेघवाहन तथा भानुकर्ण के मरने की आशंका से रावण का दुःखी होना, लक्ष्मण-शक्ति के समाचार से सीता का दुःखी होना, हनुमान-भामण्डल-अंगद का अयोध्यागमन, अयोध्या का क्षोभ, विशल्या का लक्ष्मण के पास जाना एवं लक्ष्मण-विशल्या-विवाह (पर्व ६५), रावण द्वारा राम के पास दूत-प्रेषण, भामण्डल का क्रोध, रावण का बहुरूपिणी मिद्ध करने के लिए जिनालयों की सज्जा का आदेश तथा त्रिन पूजा (पर्व ६६-६६), राम-सेना में इस समाचार से खलबली मचना, अंगदादि द्वारा लंका में उपद्रव, रावण का विद्या सिद्ध कर लेना, सीता के ऊपर रावण की दया एवं मन में पश्चात्ताप किन्तु फिर युद्ध का दृढ़ निश्चय (पर्व ७०-७२), भयंकर-युद्ध और रावण का लक्ष्मण द्वारा चक्ररत्न से वध (पर्व ७३-७६), रावण के परिजनों का विलाप, राम के द्वारा रावण का संस्कार, इन्द्र-जितादि की मुक्ति तथा उनके द्वारा दीक्षा-ग्रहण (पर्व ७७-७८), राम-सीता-मिलन, विभीषण द्वारा रामादि का सत्कार एवं छः वर्ष तक राम का लंका-निवास और मय मुनिराज का माहात्म्य (पर्व ८०) वर्णित हैं।

६—उत्तरचरित (पर्व ८१-१२३) : इसमें नारद द्वारा माताओं की अवस्था सुनकर राम का अयोध्यापुरी आगमन, विभीषण द्वारा कारीगरों से अयोध्या का नवीनीकरण, रामादि का भरतादि के द्वारा अपार स्वागत (पर्व ८१-८२), रामलक्ष्मण की विभूति का वर्णन, भरत का वैराग्य, त्रिलोकमण्डन हाथी का बिगड़ना, देशभूषण-कुलभूषण का आगमन एवं धर्मोपदेश (पर्व ८३-८५), मुनिराज से भवान्तर सुनकर भरत का दीक्षा-ग्रहण, कैकया का ३०० स्त्रियों के साथ आर्यिका होना (पर्व ८६), त्रिलोकमण्डन का समाधि धारण कर ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में देव होना एवं भरत मुनि का अष्ट कमों का क्षय कर निर्वाण प्राप्त करना (पर्व ८७), राम और लक्ष्मण का राज्याभिषेक तथा उनके द्वारा अन्य राजाओं को राज्य देना (पर्व ८८), मधु-क्षत्रुघ्न युद्ध, बमरेन्द्र का कुपित होकर मधुरा में महामारी फैलाना, शत्रुघ्न का अयोध्या जाना (पर्व ८९-९०), शत्रुघ्न के पूर्व-भवों का वर्णन (पर्व ९१), अर्हद्भूत का वृत्तान्त (पर्व ९२), राम के लिए श्रीदामा और लक्ष्मण के लिए मनोरमा कन्या की प्राप्ति (पर्व ९३), राम और लक्ष्मण का अनेक विद्याधर राजाओं को वध करना (पर्व ९४), सीता के भले और बुरे स्वप्न का राम के द्वारा फल-कथन, सीता के लोकापवाद को सुनकर राम का खेद (पर्व ९५-९६), लक्ष्मण-कृतान्तवध सेनापति द्वारा सीता का दोहद-पूति के बहाने से वन में छुड़ावाना, सीता का विलाप (पर्व ९७), वज्रजङ्घ का सीता को लाना तथा पुण्डरीकपुर में सीता के अनगलवण और मदनकुण-दो पुत्रों का जन्म (पर्व ९८-१००), लवणाकुश के विवाह, उनकी दिग्विजय तथा

राम लक्ष्मण से युद्ध, हनूमान् का लवणांकुश की ओर से लांगूलास्त्र से लड़ना, पिता-पुत्र-परिचय (पर्व १०१-१०३), सीता की अग्नि-परीक्षा और दीक्षा (पर्व १०४-१०५), राम-लक्ष्मण-सीता के भवान्तरो का वर्णन (पर्व १०६), कृतान्त-वक्त्र का दीक्षाग्रहण (पर्व १०७), लवणाकुश-चरित (पर्व १०८), सीता का प्रतीन्द्र होना (पर्व १०९), लक्ष्मण के पुत्रों का दीक्षा-ग्रहण (पर्व ११०) ब्रजपात से भागण्डल की मृत्यु (पर्व १११), राम-लक्ष्मण का विलास, हनूमान् का दीक्षा-ग्रहण (पर्व ११२-११३), लक्ष्मणमरण, राम का मोह, विभीषणादि के समझाने पर भी राम का लक्ष्मण के शव को न छोड़ना, छः मास बाद दाह-संस्कार करना (पर्व ११४-११८) राम का दीक्षा ग्रहण करके अविचल तपस्या में केवली होना तथा निर्वाण-लाभ, ग्रन्थ-माहात्म्य (पर्व ११९-१२३) निबद्ध है।

इस विधि में रविषेण ने राम-कथा को क्रमबद्ध करके प्रस्तुत किया है। कथा कही विच्छिन्न नहीं है। हाँ, शास्त्रार्थ-वर्णन, धर्मोपदेश तथा नामावली-वर्णन में कही-कही जी नहीं रम पाता।

पौराणिक-चरित-महाकाव्य. 'पद्मपुराण' एक स्वस्थ 'पौराणिक-चरित-महाकाव्य' है। द्वितीय अध्यायोक्त पौराणिक काव्य एवं चरितकाव्य के लक्षण इसमें पूर्णतया पटते हैं।

वस्तुतः ये 'पौराणिक चरितकाव्य' आदि भेद तो बहुत बाद में कल्पित किये गये हैं। रविषेण का समय सप्तम शताब्दी ई० का उत्तरार्द्ध है, जब तक ये भेद प्रचलित नहीं हुए थे। तब तक संस्कृत के पद्यात्मक श्रव्य काव्य के प्रधानतः दो ही भेद थे—प्रबन्ध और मुक्तक। प्रबन्ध के महाकाव्य और खण्डकाव्य-दो भेद थे। भामह (५वीं श० ई०) और दण्डी (६ठी श० ई०) ने महाकाव्य की कसौटी रविषेण के समय तक निर्धारित कर दी थी किन्तु उन्होंने पौराणिक या रोमांसिक आदि भेद नहीं किया था। अतः उस काल में रविषेण का यह काव्य शुद्ध महाकाव्य का अधिकारी था और उस दृष्टिकोण से आज भी है। जहाँ तक आज के आलोचकों द्वारा निर्णीत १-महदुष्टेय, महत्प्रेरणा और महती काव्य-प्रतिभा, २-गुरुत्व, गाम्भीर्य और महत्त्व, ३-महत्कार्य और युग-जीवन का समग्र-चित्रण, ४-मुमर्षित जीवन्त कथानक, ५-महत्त्वपूर्ण नायक तथा अन्य पात्र, ६-गारिमामयी उदात्त शैली, ७-तीव्र प्रभावान्विति और गम्भीर रसव्यञ्जना एव, ८-अनवरुद्ध जीवन्ती-शक्ति और सशक्त प्राणवत्ता-महाकाव्य के इन तत्वों के आधार पर 'पद्मपुराण' की परीक्षा की जाती है, तो ये भी उसमें स्पष्ट परिलक्षित होते हैं^{४६} जिनका उल्लेख हम पूरी तरह से अग्रिम अध्यायो में

करेंगे। यहाँ संक्षिप्त संकेतमात्र करते हैं।

‘महाकाव्य’ के लक्षण में यद्यपि दण्डी और विश्वनाथ प्रायः समान मत ही प्रस्तुत करते हैं तथापि हम यहाँ कालक्रम को दृष्टि में रखते हुए दण्डी का ही ‘महाकाव्य-लक्षण’ उद्धृत करके उस पर ‘पद्मपुराण’ को कसेंगे। ‘दण्डी’ ने महाकाव्य का स्वरूप इस प्रकार बताया है :—

“सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।

आशीर्नमस्त्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्॥

इतिहामकथोद्भूतमितरद् वा सदाश्रयम्।

चतुर्वर्गफलायत्तं चतुरोदात्तनायकम्॥

नगरार्णवशैलतु चन्द्रार्कोदयवर्णनैः।

उद्यानसलिलश्रीडामधुपानरतोत्सवैः॥

विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः।

मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाम्युदयरपि॥

अलंकृतमसाक्षितं रसभावनिरन्तरम्।

सर्गेरनतिविस्तीर्णं श्रव्यवृत्तं सुसन्धिभिः॥

मर्वत्र भिन्नवृत्तान्तरूपेत लोकरजकम्।

काव्य कल्पान्तरस्थापि जायते सदलकृति॥”४७

‘पद्मपुराण’ में इन सभी लक्षणों का गालन हुआ है। वह सर्गों और अवान्तर-प्रकरणों (पर्वनामक) में विभक्त है। उसके प्रारम्भ में मंगलाचरण है। इतिहास-प्रसिद्ध रामकथा का उसमें नवीन दृष्टिकोण से प्रतिपादन है। चतुर्वर्ग की प्राप्ति का वह साधन है जैसा कि उसके माहारम्य से सिद्ध होता है। इसके नायक उदात्त (त्रिषष्टिशलाकापुरुषो मे अन्यतम) हैं। नगरादि के प्रचुर हृदयंगम वर्णन है (जिनका हम कलापक्ष के अन्तर्गत विस्तृत उल्लेख करेंगे)। अलंकारों का उसमें मज्जुल समाहार है, कथानक उसका लम्बा है, रसव्यजना उसमें वैभवशालिनी है। कुछ सर्गों (पर्वों) को छोड़कर उनका विस्तार समुचित है। सर्गान्त में छन्द बदले हुए हैं। कोई सर्ग नानावृत्तमय भी है। इन सभी के उदाहरण प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के ‘भावपक्ष-कलापक्ष’-शीर्षको में द्रष्टव्य है।

जहाँ तक आधुनिक आलोचको द्वारा मान्य पूर्वोक्त आठ तत्वों का प्रश्न है—वे सभी इसमें हैं। इसका उद्देश्य जनता की मिथ्या मान्यताओं का खण्डन एवं उसमें अपने दृष्टिकोण से सद्धर्म का प्रचार करना है जिसके लिए व्यञ्जान्त-स्व-

रान्त-वाचिक-लक्षक व्यञ्जक-शब्द-अलंकार आदि समस्त काव्य तत्त्वों का प्रयोग हुआ है। धार्मिक दृष्टि से इसका अपना महत्व है। अनीति का लोप एवं शान्ति-लाभ इसका गृहकार्य है, समाज की प्रवृत्तियों का इसमें चित्रण है जिसको विविध उपाख्यानों में देखा जा सकता है। सुव्यवस्थित कथानक है जिसका पीछे उल्लेख किया जा चुका है। इसके नायक तथा अन्य प्रधान पात्र महत्वपूर्ण हैं, राम-लक्ष्मण-रावण त्रिषष्टिशलाका-पुरुषों में परिगणित हैं। पात्रों के चरित्रों पर आगे चरित्र-चित्रण वाले अध्याय में पूरा विचार किया जायेगा। इसकी शैली गरिमाययी है जिसमें भाषा छन्द अलंकार आदि सभी उत्कृष्ट रूप में अवस्थित है जिनका वर्णन आगे किया जायेगा। तीव्रप्रभान्विति और रसव्यजना का तो यह हाल है कि शान्त-शृंगार वीर-रसों में तो पाठक पद-पद पर मस्ती भरी डुबकियाँ लेता ही है, अन्य रसों के उदाहरणों में भी वह पर्याप्त रमता है। इनके उदाहरण हम भाव-पक्ष के अन्तर्गत देंगे। इसी प्रकार उसकी अनवरुद्ध प्राणवत्ता में भी सन्देह नहीं है।

भाव यह है कि 'पद्मपुराण' को यदि 'पौराणिक-चरितकाव्य' की दृष्टि से देखा जाय तो यह पौराणिक चरितकाव्य है, यदि महाकाव्य के प्राचीन एवं अर्वाचीन दृष्टिकोणों से देखा जाय तो यह सफल महाकाव्य है और यदि 'पुगतन पुराण स्यात्तन्महम्महदाश्रयात्' वाली जैन मान्यता के अनुसार देखा जाय तो यह 'पुराण' है।

धार्मिक आवरण : 'पद्मपुराण' का जैन-धर्म के तत्त्वों के निरूपण एवं जैनधर्म के प्रचार के दृष्टिकोण से भी महत्त्व है। दिगम्बर-जैन-धर्म का यह 'धर्मग्रन्थ' है।

भगवत्कुन्दकुन्द-उमास्वाति आदि के जितने भी ग्रन्थ हैं उन सभी का निचोड़ 'पद्मपुराण' में है जो विविध मुनियों के उपदेशों के रूप में प्रकट हुआ है। नारद शास्त्रार्थ में जैन धर्म का पोषण एवं परधर्म का क्षर्षण किया गया है। सारांश यह है कि तत्कालीन धार्मिक दशा का यह पूर्ण प्रतिनिधित्व सा करता दिखाई देता है।

बौद्धिकता:—'पद्मपुराण' में 'रामायण' आदि की तर्क के दृष्टिकोण के अति मानवीय या असम्भव लगने वाली घटनाओं को तर्क सम्मत बनाया गया है। इसलिए इसमें इन्द्र, यम आदि देवता न होकर मनुष्य हैं। लागून नामक हनूमान् का शस्त्र-विशेष है, पूँछ नहीं। इसी प्रकार राक्षस और वानर भी वंश विशेष है, राक्षस और बन्दर नहीं। इसी प्रकार अनेक स्थानों पर बौद्धिक व्याख्याएँ हैं जिनका उल्लेख हम 'पद्मपुराण' के कथानक का विवेचन करते समय करेंगे।

‘पद्मपुराण’ और ‘पद्मचरिय’:

जैन-रामकथा-साहित्य में प्राकृत में विमलसूरि का ‘पद्मचरिय’, संस्कृत में रविवेण का ‘पद्मचरित’ या ‘पद्मपुराण’ और अपभ्रंश में स्वयम्भू का ‘पद्मचरित’ सबसे प्राचीन रचना है। ग्रंथ में निर्दिष्ट समय के अनुसार विमलसूरि का ‘पद्मचरिय’ सर्वप्राचीन सिद्ध होता है। विमलसूरि के अनुसार यह वि० सं० ६० की रचना है।

उपर्युक्त तीनों ग्रंथों की कथावस्तु और अनेक स्थलों पर शैली भी एक सी है।^{४८} इनमें स्वयम्भू का ‘पद्मचरित’ सबसे बाद की रचना सिद्ध हो चुका है। अन्तः-साक्ष्य और बहिः साक्ष्य—दोनों ही इसके पोषक हैं। स्वयम्भू ने रविवेण का नाम स्मरण किया है और रविवेणोक्त रामकथा-परम्परा का ही कथन किया है।

वद्धमाण-मुह-कुहर-विणिग्गय। रामकहाणइ एह कमागय ॥

एह राम कह-सरि सोहंती। गणहर देवहि दिट्ठ बहती ॥

पच्छइ इवभूइ आयरिए। पुणु धम्मणेण गुणालकरिएं ॥

पुणु एवहि संसागराए। किस्सिहरेण अणुत्तर वाएं ॥

पुणु रविसेणायरिय-पसाए। बुद्धिए अवगाहिय कइराएं ॥^{४९}

रविवेण ने भी यही आधार अपने ग्रंथ का बताया है,—

वद्धमानजिनेन्द्रोक्तः सौज्यमर्थो गणेश्वरम् ।

इन्द्रभूति पद्मिप्राप्तः सुधर्म धारणीभवम् ॥

प्रभव क्रमत कीर्त्ति ततोऽनुत्तरवाग्मिनम् ।

निमित्त तस्य सम्प्राप्य रवेर्यत्नोऽयमुद्गतः ॥

तथा

निर्दिष्टं सकलैर्नन्तेन भुवनैः श्रीवद्धमानेन यत्,

तत्त्ववासवभूतिना निगदिनं जम्बोः प्रशिष्यस्य च ।

शिष्येणोत्तरवाग्मिना प्रकटितं पद्मस्य वृत्तं मुने.

श्रेयः साधु समाधिबुद्धिकरणं सर्वोत्तमं मगलम् ॥^{५०}

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वयम्भू का आदर्श रविवेण कृत ‘पद्मचरित’ या ‘पद्मपुराण’ था ।

^{४८} देखिय-हर्षकलम कूनीलान भवानी द्वारा सम्पादित ‘पद्मचरित’, सिन्धी-जैन-ग्रन्थमाला, ग्रन्थक ३४, सिन्धी-जैन-शास्त्र-शिक्षापीठ, भारतीय-विद्या-भवन, बम्बई, वि०स २००९, परिशिष्ट भाग ।

^{४९} पद्मचरित १।२।१

^{५०} पद्मपुराण १।४१-४२ तथा बही १२३।१६७

किन्तु रविषेण का आधार क्या था ? पं० नाथूराम प्रेमी ने सिद्ध किया है कि रविषेण ने विमलमूर्ति के ग्रंथ का संस्कृत-छायानुवाद किया है।^१ उनके अनुसार—
 “...यह स्पष्ट है कि ‘पद्मचरिय’ ‘पद्मपुराण’ से पुराना है और दोनों ग्रंथों का अच्छी तरह मिलान करने से मालूम होता है कि ‘पद्मपुराण’ के कर्ता के सामने ‘पद्मचरिय’ अवश्य मौजूद था। ‘पद्मपुराण’ एक तरह से प्राकृत ‘पद्मचरिय’ का ही पल्लवित किया हुआ संस्कृत छायानुवाद है। ‘पद्मचरिय’ अनुष्टुप् श्लोकों के प्रमाण से दस हजार है और ‘पद्मचरित’ अठारह हजार। अर्थात् प्राकृत से लगभग पौने दो गुना है। प्राकृत ग्रन्थ की रचना आर्या छन्द में की गयी है और संस्कृत की अनुष्टुप् छन्द में। इसलिए ‘पद्मपुराण’ में पद्य तो शायद दुगुने से भी अधिक होंगे। छायानुवाद कहने के कुछ कारण—

- १— दोनों का कथानक बिल्कुल एक है और नाम भी एक है।
- २— पर्वों या उद्देश्यों तक के नाम दोनों के प्रायः एक से हैं।
- ३— हर एक पर्व या उद्देश्य के अन्त में दोनों में छन्द बदल दिये हैं।
- ४— ‘पद्मचरिय’ के उद्देश्य के अन्तिम पद्य में ‘विमल’ और ‘पद्मचरित’ के अन्तिम पद्य में ‘रवि’ शब्द अवश्य आता है। अर्थात् एक विमलांक है और दूसरा रव्यक।
- ५— ‘पद्मचरित’ में जगह-जगह प्राकृत आर्याओं का शब्दशः अनुवाद दिखाई देता है।

पल्लवित कहन का कारण यह है कि मूल में जहाँ स्त्री-रूप-वर्णन, नगर-उद्यान-वर्णन आदि प्रसंग दो चार पद्यों में ही कह दिये गये हैं वहाँ अनुवाद में द्योक्ते-दूने पद्य लिखे गये हैं।

‘पद्मचरिय’ के कर्ता ने चौथे उद्देश्य में ब्राह्मणों की उत्पत्ति बतलाते हुए कहा है कि जब भरत चक्रवर्ती का मालूम हुआ कि वीर भगवान् के अवमान के बाद ये लोग कुलीयी पापण्डी हो जाएंगे और भूटं शास्त्र बनाकर यज्ञों में पशुओं की हिंसा करेंगे, तब उन्होंने उन्हें शीघ्र ही नगर से निकाल देने की आज्ञा दे दी, और इस कारण जब लोग उन्हें मारने लगे, तब ऋषभदेव भगवान् ने भरत को यह कहकर रोका कि हे पुत्र, इन्हें ‘मा हण मा हण-मत मारो, मत मारो’, तब से उन्हें ‘माहण’ कहा जाने लगा।

संस्कृत ‘ब्राह्मण’ शब्द प्राकृत में माहण (माहण) हो जाता है। इसलिए प्राकृत में तो उसकी ठीक उपपत्ति उक्त रूप से बतलाई जा सकती है। परन्तु

संस्कृत में ठीक नहीं बैठती। क्योंकि संस्कृत 'आह्वण' शब्द में से 'मत मारो' जैसी कोई बात शीघ्र-तान कर भी नहीं निकाली जा सकती। संस्कृत 'पद्मपुराण' के कर्त्ता के सामने यह कठिनाई अवश्य आई होगी, परन्तु वे लाचार थे। क्योंकि मूल कथा तो बदली नहीं जा सकती और संस्कृत के अनुसार उपपत्ति बिठाने की स्वतन्त्रता बँसे ली जाय ? इसलिए अनुवाद करके ही उनको सन्तुष्ट होना पड़ा—

यस्मान्मा हनन पुत्र कार्षीरिति निवारितः।

अपभ्रंशेन ततो याता 'माह्वणा' इति ते श्रुतिम् ॥^{५१}

(पद्म० ४।१२२)

इस प्रसंग से यही जान पड़ता है कि प्राकृत ग्रन्थ से ही संस्कृत के ग्रन्थ की रचना हुई है।

परन्तु इसके विरुद्ध कुछ लोगों ने तो यह कहने तक का साहस किया है कि संस्कृत से प्राकृत में अनुवाद किया गया है। परन्तु मेरी समझ में बहुत साहस ही है। प्राकृत में संस्कृत में बीसों ग्रन्थों के अनुवाद हुए हैं।^{५२} बल्कि सारा का सारा प्राचीन जैन साहित्य ही प्राकृत में लिखा गया था। भगवान् महावीर की दिव्य ध्वनि भी अर्धमागधी प्राकृत में ही हुई थी। संस्कृत में ग्रन्थ रचने की ओर तो जैनाचार्यों का ध्यान बहुत पीछे गया है और संस्कृत से प्राकृत में अनुवाद किये जाने का तो शायद एक भी उदाहरण नहीं है।

उसके गिनाय प्राकृत पद्यमञ्जरि की रचना जितनी सुन्दर, स्वाभाविक और आश्चर्यग्रहित है उसनी पद्यमञ्जरी की नहीं है। जहाँ-जहाँ वह शुद्ध अनुवाद है वहाँ नां खेर डीक है, परन्तु जहाँ पल्लवित किया गया है वहाँ अनावश्यक रूप से बोझिल हो गया है। उदाहरण के लिए अजना और पवनजय के समागम को ले लीजिये। प्राकृत में केवल चार-पाँच आर्या छन्दों में ही इस प्रसंग को सुन्दर ढंग में कह दिया गया है, परन्तु संस्कृत में वार्द्ध पद्य लिखे गये हैं और बड़े विस्तार से आलिङ्गन-पीटन-चुम्बन, दशनच्छद, नोबी-विमोचन, मीत्कार आदि काम कलाएँ चित्रित की गयी हैं जो अश्लीलता की गीमा तक पहुँच गयी हैं।

प्रेमी जी एसे विक्रम संवत् ६० की रचना ही स्वीकार करते हैं।

५२. मा हण म पुत्त म्म त्र उमभाज्जिणे वारिओ भरहो।

नेण इमे सयन चिय वृत्तानि व 'माह्वणा' लोण ॥ (पद्यमञ्जरि ४।८४)

५३. उदाहरणार्थ—भगवती-प्रार्थना और पद्म-ग्रन्थ के अंतिममतिभूषित संस्कृत अनुवाद, वेदसेन के भावसंग्रह का बामदेवकृत संस्कृत अनुवाद, अमरकीर्ति के 'छन्दमोचन' का संस्कृत 'पद्यकर्मोपदेन-माला'—नामक अनुवाद, सर्वनन्दि के लोकविभाग का मिहसुरिङ्गित संस्कृत अनुवाद आदि।

प्रेमी जी के समान ही डा० कामिल बुल्के भी लिखते हैं—“रविषेण ने मौलिकता का किंचित् भी प्रदर्शन नहीं किया है। उनकी समस्त रचना ‘पद्मचरिय’ का पलनवित् छायानुवाद मात्र प्रतीत होती है।”^{५६}

किन्तु यहाँ यह प्रश्न उठता है कि यदि रविषेण ने विमलसूरि के ‘पद्मचरिय’ का अनुवाद किया है तो उनका नाम क्यों नहीं दिया ? एक जैनाचार्य को अपने उपजीव्य ग्रन्थ के प्रणेता जैनाचार्य का कृतज्ञतावश उल्लेख अवश्य करना चाहिए था। किन्तु न तो रविषेण ने और न स्वयंभू ने ही ‘विमलसूरि’ को स्मरण किया है। उन्होंने बद्ध मान-गणधर-इन्द्रभूति-मुघर्म-कीर्तिधर का उल्लेख किया है। ऐसी दशा में यह विचारणीय हो जाता है कि क्या वस्तुतः विमलसूरि रविषेण से पूर्व हुए थे और क्या उनका ग्रन्थ ही ‘पद्मपुराण’ का उपजीव्य है ? क्या रविषेण ने अपने ग्रन्थ में कुछ भी मौलिकता नहीं दिखाई ? क्या एक अनुवाद मात्र होने से उनकी रचना का कोई विशिष्ट महत्व नहीं ? इन सभी प्रश्नों का समाधान ढूँढने का प्रयत्न हम करेंगे।

विमलसूरि का रविषेण ने नाम नहीं लिया—यह कोई अधिक आश्चर्य की बात नहीं है। दोनों के आधार भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। दूसरे, रविषेण के मामले यदि कोई प्राकृत ‘पद्मचरिय’ रहा हो तो वह उस समय विमलसूरि के नाम से प्रसिद्ध न रहा हो। हो सकता है कि ‘कीर्तिधर’ नामक जिन पूर्ववर्ती ग्रन्थकार का उन्होंने उल्लेख किया है वह विमलसूरि का ही अपर नाम हो अथवा कीर्तिधर के ग्रन्थ को विमलसूरि नामक किसी विद्वान् ने कुछ नवीन रूप देकर अपने नाम से कालान्तर में प्रसिद्ध कर दिया हो। उपजीव्य राम-कथाकारों का निरूपण करते हुए रविषेण और स्वयंभू ने ‘कीर्ति’^{५७} या ‘कित्तिहर’^{५८} का भी उल्लेख किया है किन्तु विमलसूरि ने ‘आखण्डलभूह’^{५९} (आखण्डल = इन्द्र-भूति) का ही किया है। विमलसूरि की प्रशस्ति में ‘कीर्तिधर’ नाम न आकर ‘विमल’ आया है। शेष आधार समान है। अतः यह सम्भावना असम्भव जान नहीं पड़ती कि ‘कीर्तिधर’ विमलसूरि का ही नाम हो।

अन्तु यह मान लेने पर भी कि रविषेण का ग्रन्थ विमलसूरि के आधार पर लिखा गया है तो भी रविषेण के ‘पद्मपुराण’ का अपना महत्व अक्षुण्ण रहता है। प्रायः कथानक की एकता तो अनेक काव्यों में होती है किन्तु इसी आधार पर कवि

५६. रामकथा, पृ० ६५

५५. पद्य० १।४१-४२

५६. पद्मचरित १।२।१

५७. पद्मचरिय १२३।१६७

की रचना को 'मौलिक' कहना अधिक युक्तिसंगत नहीं है। 'पद्मपुराण' ('पद्मचरित'), 'पद्मचरित' और 'पद्मचरित' का कथानक तो समान ही है किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि ये तीनों मौलिक नहीं है। कथानक मात्र के आधार पर मौलिकता का निर्धारण नहीं होता, वह उसकी प्रतिपादन-शैली से भी होता है। माना कि इन तीनों का कथानक समान है; किन्तु रविवेण की रचना की कलापक्ष-गत मौलिकता अक्षुण्ण है। साथ ही उसके वर्णनो, जिन पर प्रेमी जो ने अनावश्यक रूप से बोझिलता का आरोप लगाया है, से एक सांस्कृतिक अध्ययन का द्वार खुलता है जिसका परिचय हम उसका 'सांस्कृतिक अध्ययन' करते हुए देंगे। 'पद्मपुराण' के सम्वाद, लोक-शास्त्र काव्याद्यवेक्षण का प्रतिफलन, भाषा-अविकार एवं यथास्थान कथानक में छोटे-छोटे मनोरम परिवर्तन उसको अपने ढंग का अनुपम ग्रन्थ सिद्ध करते हैं।

'पद्मपुराण' का महत्त्व कई दृष्टियों से है। वह जैन-धर्म का सर्वप्रसिद्ध ग्रन्थ है। वह जैन-धर्म का सर्वप्रथम रामकथा-विषयक संस्कृत-महाकाव्य है। उसमें पाण्डित्य का चमत्कार है, वह काव्यात्मकता के उत्कर्षण का मञ्जुल निदर्शन है, वह वर्णनो का भण्डार है, वह उपाख्यानो का आकर है, वह तत्कालीन भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने का प्रमुख साधन है। हिन्दी खड़ी बोली के इतिहास में इस 'पद्मचरित' का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि सं० १८१८ में दीनतराम ने इसका भाषा में अनुवाद किया था।^{५८}

जैन रामकथा के स्रोत

क्योंकि 'पद्मपुराण' जैन-रामकथा का महनीय ग्रन्थ है इसलिए जैन रामकथा के स्रोत और जैन राम-काव्य-परम्परा की संक्षिप्त चर्चा प्रसक्तानुप्रसक्त्या की जा रही है।

रामकथा भारतवर्ष की सबसे अधिक लोकप्रिय कथा है और इस पर विपुल साहित्य-निर्माण किया गया है। हिन्दू, बौद्ध और जैन—इन तीनों ही प्राचीन सम्प्रदायों में यह कथा अपने अपने ढंग से लिखी गयी है और तीनों ही सम्प्रदाय वाले राम को अपना-अपना महापुरुष मानते हैं।

अभी तक अधिकांश विद्वानों का मत यह है कि इस कथा को सबसे पहले वाल्मीकि मुनि ने लिखा और संस्कृत का सबसे पहला महाकाव्य ('आदिकाव्य') 'वाल्मीकिरामायण' है।^{५९} इस प्रकार जैन-रामकथा का भी मूल स्रोत तो

५८. रामकथा पृ० ६८

५९. जैन-साहित्य और इतिहास पृ० २७७

वाल्मीकि-रामायण ही ठहरता है किन्तु जैन रामकथा का दृष्टिकोण उससे पृथक् है। हमें यहाँ यह देखना है कि आर्य-रामकथा से पृथक् दृष्टिकोण वाली जैन राम कथा का कहाँ से और कैसे यथास्थित रूप में प्रचलन हुआ ?

जैन-रामकथा-साहित्य पर दृक्पात करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि 'जैन-रामकथा के दो भिन्न रूप प्रचलित हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में तो केवल विमलसूरि की रामकथा का प्रचार है लेकिन दिगम्बर सम्प्रदाय में इसके दो रूप मिलते हैं अर्थात् विमलसूरि और गुणभद्र दोनों की रामकथा प्रचलित है यद्यपि विमलसूरि की परम्परा को अधिक महत्त्व मिला है^{६०} इन्हीं दो परम्पराओं की भूमिका पर जैन रामकथा सम्बन्धी विशाल वाङ्मय-भवन खड़ा हुआ है।

विमलसूरि की परम्परा . विमलसूरि ने 'पद्मचरिय' (प्राकृत जैन महा-राष्ट्री) के प्रणयन से सर्वप्रथम लोकप्रिय रामकथा को जैनधर्म के साँचे में ढालने का प्रयत्न किया है। कवि ने इसके मूल स्रोत का उल्लेख करते हुए कहा है कि यह 'पद्मचरित' आचार्यों की परम्परा से चला आ रहा था और नामावली निबद्ध था :—

“नामावलीय निबद्ध आचार्यपरम्परायं सर्व्व ।

बोच्छार्मि पद्मचरियं अहाणुगुब्बि समारोण ॥”^{६१}

इसका अर्थ यह हो सकता है कि रामचन्द्र का चरित्र उम समय तक केवल नामावली के रूप में था अर्थात् उसमें कथा के प्रधान पात्रों के, उनके माता-पिताओं, स्थानों और भवान्तर्गो आदि के नाम ही होंगे। वह पल्लवित कथा के रूप में न होगा और उगी की विमलसूरि ने विस्तृत चरित्र के रूप में रचना की होगी।^{६२} 'नामावली' शब्द में सम्भवतः ६३ महापुरुषों की किसी प्राचीन नामावली की ओर संकेत है।^{६३}

विमलसूरि का काल विवादास्पद है। विभिन्न विद्वानों ने प्रथम श० ई० से ६ठी श० ई० तक उनका काल माना है।^{६४}

६० 'रामकथा' (कर्मचर्या) पृ० २३

६१ 'पद्मचरिय' (प्राकृत टीका रामाष्ट्री, वाग्वंशी, मन्त्र० १९, ६२) १।८

६२ नाथुराम प्रेमी—'जैन साहित्य और इतिहास', पृष्ठ २८०

६३ जैन मान्यता के अनुसार पनेक तत्त्व में विघटित (६३) महापुरुष होते हैं—२४ तीर्थंकर (जैन धर्मोपदेसक), १. चक्रवर्ती (भारत के सम्राट), १. ब्रह्मदेव, ९ बामुदेव तथा ९ प्रतिबामुदेव। ब्रह्मदेव, बामुदेव तथा प्रतिबामुदेव सर्व्व समझाने वाले होते हैं। राम, लक्ष्मण और रावण क्रमशः अष्टम ब्रह्मदेव, बामुदेव तथा प्रतिबामुदेव हैं।

६४ डा० विष्टरनिट्ज़, प० नाथुराम प्रेमी आदि कुछ विद्वान् तो 'पद्मचरिय' में निर्दिष्ट समय को ठीक मानते हुए, विमलसूरि को प्रथम श० ई० का ही स्वीकार करते हैं किन्तु डा० हर्मेन

विमलसूरि की परम्परा का दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ है—रविषेण का 'पद्मपुराण' जो ६७७-७८ ई० में रचा गया है एक जिसका सक्षिप्त परिचय हम इसी अध्याय में पहले दे चुके हैं। वही इसका सक्षिप्त कथानक तथा रविषेण की मौलिकताओं का उल्लेख किया जा चुका है। विस्तृत कथानक का विवेचन हम आगे करेंगे।

'आगे चलकर जैन कवियों ने रविषेण का अनुकरण किया है, उनकी रचनाओं में प्रायः कथानक का कोई भी महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं है।'^{१५}

विमलसूरि तथा रविषेण की रामकथा-परम्परा आगे चलकर प्राकृत-संस्कृत अपभ्रंश आदि में फलती-फूलती रही जिसकी सूचां इस प्रकार दी जा सकती है:—

(१) प्राकृत :

- १— विमलसूरि कृत 'पद्मचरिय' (पहली श० ई० से पाँचवी श० ई०)
- २— शील/आचार्यकृत 'चउपन्नमहापुरिसचरिय' के अन्तर्गत 'रामलक्षणचरिय' (नवी श० ई०) (यह रामकथा विमलसूरि की परम्परा के अनुसार होने पर भी बाल्मीकीय कथा से प्रभावित है।)
- ३— भद्रेश्वर कृत कहावली (११ वी श० ई०) के अन्तर्गत 'रामायणम्'
- ४— भुवनेश्वर सूरिकृत 'सीयाचरिय' तथा 'रामलक्षणचरिय'

(२) संस्कृत :

- १— आचार्य रविषेण कृत 'पद्मपुराण' या 'पद्मचरित' (६७७-७८ ई०)
- २— हेमचन्द्रकृत 'त्रिपिटशलाकापुष्पचरित' (१२ वी श० ई०) के अन्तर्गत 'जैन रामायण' (कलकत्ता स० १९३०)
- ३— हेमचन्द्रकृत योगशास्त्र की टीका के अन्तर्गत 'मीतारावणकथानकम्'
- ४— जिनदासकृत 'रामायण' अथवा 'रामदेवपुराण' (१५ वी श० ई०) (देखिये—एम० विण्टर्गनट्ज—हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ४६६)
- ५— पद्मदेवविजयगणिकृत 'रामचरित' (१६ वी श० ई०), (देखिये—राजेन्द्रलाल मिश्र, नोरिसस संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स, भाग १०, पृ० १३४ और भण्डारकर-रिपोर्ट १८८२-८३, पृ० ८२)

याकोबी; 'पद्मचरिय' की रचना जैनी, भाषा आदि में इसे तीसरी-चौथी श० ई० की रचना मानते हैं। कुछ चिह्नान् ६० की व आदि हमें 'दीनार' और ज्योतिष शास्त्र सम्बन्धी कुछ ग्रीक भाषा के शब्दों के पाये जाने के कारण इसे ३०० ई० या उसके भी बाद की रचना बताते हैं। श्री दीवान बहादुर केशवलाल धुव तो इसे बहुत बाद की रचना बताते हैं।

६५. 'रामकथा', कामिलबुस्के—पृ० ६८

६—सोमसेनकृत 'रामचरित' (१६वीं श० ई०), (इसकी हस्तलिपि जैन-सिद्धांत-भवन, आरा में सुरक्षित है।)

७—आचार्य सोमप्रभकृत 'लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित'

८—मेघविजयगणिबरकृत 'लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' (१७वीं श० ई०)

इन रचनाओं के अतिरिक्त 'जिनरत्नकोष' में धर्मकीर्ति, चन्द्रकीर्ति, चन्द्रसागर, श्रीचन्द्र, पद्मनाभ आदि द्वारा रचित विभिन्न 'पद्मपुराण' अथवा 'रामचरित्र' नामक ग्रन्थों का उल्लेख है। 'सीताचरित्र' के तीन रचयिताओं के नामों का उल्लेख है—ब्रह्मणेमिदत्त, शान्तिसूरि तथा अमरदास। उपर्युक्त सामग्री में अधिकांश सामग्री अप्रकाशित है।

दसवीं शताब्दी के हरिषेणकृत 'कथाकोष' में 'रामायण कथानकम्' (नं० ८४) तथा 'सीताकथानकम्' (नं० ८६) पाया जाता है। इस अन्तिम रचना में विमलसूरि के अनुसार सीता की अग्नि-परीक्षा वर्णित है किन्तु 'रामायण कथानकम्' (५७ श्लोक) प्रायः वाल्मीकीय कथा पर निर्भर है। रामचन्द्र मुमुक्षुकृत 'पुण्याश्रवकथाकोष' (१३३१ ई०), हिन्दी अनुवाद, निर्णय सागर प्रेस, मुंबई, १९०७ ई० में जो लव-कुश की कथा मिलती है, वह भी विमलसूरि की परम्परा पर निर्भर है। हरिभद्रकृत 'धूर्तयानम्' (८वीं श० ई०) तथा अमितगतिकृत 'धर्मपरीक्षा' (११ वीं श० ई०) में बान्मीकिरामायण में वर्णित हनूमान् के समुद्रलंघनादि को अनम्भव तथा उपहास्यास्पद बताया गया है। 'शत्रुजयमाहारम्भ' के नवें सर्ग में रामकथा विमलसूरि और रविषेण के अनुसार है किन्तु कैंकेयी राम और लक्ष्मण दोनों के वनवास का वर मांग लेती है (१२ वीं श० ई०)।

(३) अपभ्रंश :

१—स्वयम्भू देवकृत 'पउमचरित' अथवा 'रामायणपुराण'

(८ वीं श० ई०)

(भारतीय विद्याभवन, बम्बई स० २००६)

२—रघूकृत 'पद्मपुराण' अथवा 'वनभद्रपुराण'

(१५ वीं श० ई०)।

(दे० हरिवंश कोछड़, 'अपभ्रंश-साहित्य')

(४) कन्नड :

१—नागचन्द्र (अभिनव गम्प)-कृत 'पम्परामायण' अथवा

'रामचन्द्रचरितपुराण' (११ वीं श० ई०)। यह रचना कन्नड़

भाषा के कई रामचरित सम्बन्धी ग्रन्थों का आधार है।

(दे० इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, भाग २५, पृ० ५७४-६४)

२—कुमुदेन्दुकृत 'रामायण' (१६ वीं श० ई०)

३—देवप्पकृत 'रामविजयचरित' (१६ वीं श० ई०)

४—देवचन्द्रकृत 'रामकथावतार' (१८ वीं श० ई०)

५—चन्द्रसागरवर्णिकृत 'जिनरामायण' (१९ वीं श० ई०)

विमलसूरि तथा रविषेण की रामकथा और वाल्मीकि की रामकथा की तुलना करने पर यह सहज ही प्रतिभासित हो जाता है कि 'वाल्मीकि-रामायण' ही इस परम्परा का मूल स्रोत है। उसी के विभिन्न तत्त्वों में जैनधर्म के अनुसार नये मोड़ देकर इस जैन-रामकथा का विकास किया गया है।

गुणभद्र की परम्परा :

जैन राम-कथा का दूसरा रूप हमें पहले-पहल गुणभद्रकृत 'उत्तरपुराण' में मिलता है। गुणभद्र जिनसेन के शिष्य तथा कर्नाटक प्रान्त के निवासी थे। इन्होंने अपने गुरु के 'आदिपुराण' के अन्तिम १६२० श्लोक रचकर उसे समाप्त कर दिया और उस के बाद 'उत्तरपुराण' अर्थात् 'त्रिषष्टिलक्षणमहापुरुष' का द्वितीय भाग भी लिखा है। इस 'उत्तरपुराण' के अन्तर्गत आठवें बन्धदेव, नारायण तथा प्रतिनारायण (अर्थात् राम-लक्ष्मण-रावण) का चरित्र ६७ वें तथा ६८ वें पर्व में १११७ श्लोकों में वर्णित है (दे० स्याद्वादग्रन्थमाला, न० ८, इन्दौर सं० १९७५)। यह रामकथा विमलसूरि तथा वाल्मीकि के कथानक से बहुत भिन्न है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इसमें सीता का रावण तथा मन्दोदरी की औरस पुत्री माना गया है। सीता-जन्म का यह रूप पहले पहल सघदास के 'वसु-देवहिंसी' में प्रस्तुत किया गया है।

गुणभद्र का आधार बहुत कुछ अज्ञात है। किन्तु वे विमलसूरि तथा सघदास की रचनाओं अथवा उनकी परम्परा से अवश्य परिचित थे। जिनसेन अपने 'आदिपुराण' में कवि परमेश्वर की 'गद्य-कथा' का उल्लेख करते हैं और उसे अपनी रचना का आधार मानते हैं। गुणभद्र जिनसेन की रचना पूरी करते हैं। अतः बहुत सम्भव है कि ये भी कवि परमेश्वर की कथा पर निर्भर रहे हों। कवि परमेश्वर की रचना अप्राप्य है लेकिन निम्बती रामायण तथा अन्य ग्रन्थों में भी सीता मन्दोदरी की पुत्री मानी जाती है। अतः रामकथा का यह रूप सम्भवतः जनसाधारण में प्रचलित हुआ होगा और कवि परमेश्वर या गुणभद्र ने उसे जैनधर्म के अनुरूप करके अपनी रचना में स्थान दिया होगा। श्री नाथूराम ग्रेमी ६९

गुणभद्र की रामकथा के आधार के विषय में इस प्रकार लिखते हैं—'हमारा अनुमान है कि गुणभद्र से बहुत पहले विमलसूरि ही के समान किसी अन्य आचार्य ने श्री जैन धर्म के अनुकूल सोपपत्तिक और विद्वत्सनीय स्वतंत्र रूप से रामकथा लिखी होगी और वह गुणभद्राचार्य को गुरु-परम्परा द्वारा मिली होगी। गुणभद्र की गुरु-परम्परा के दो और नाम कन्नड भाषा के कवि चामुण्डराय की रचना में मिलते हैं। चामुण्डराय 'त्रिषष्टिलक्षणमहापुरुष' के लेखकों की निम्नलिखित सूची देते हैं—कूचि, भट्टारक, नन्दिमुनीश्वर, कविपरमेश्वर, जिनसेन तथा गुणभद्र। गुणभद्र की रामकथा अन्य जैन रचनाओं में भी ज्यों की त्यों मिलती है।

संस्कृत—१—गुणभद्रकृत 'उत्तरपुराण' (नवीं श० ई०)

२—कृष्णदासकविकृत 'पुण्यचन्द्रोदयपुराण'

(१६वीं श० ई०)

प्राकृत—पु'पदन्तकृत 'तिसट्ठी-महापुरिस-गुणालकार'

(१०वीं श० ई०)

कन्नड—१—चामुण्डरायकृत 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराण'

(११वीं श० ई०)

२—बन्धुवर्माकृत 'जीवनसम्बोधन' (१२०० ई०)

३—नागराजकृत 'पुण्याश्रवकथासार' (१३३१ ई०)

'पुण्यचन्द्रोदय पुराण' को छोड़कर उपर्युक्त रचनाओं में रामकथा के अतिरिक्त अन्य ६३ महापुरुषों के चरित भी मिलते हैं।

इस प्रकार 'पद्मचरिय' तथा 'उत्तरपुराण' की रामकथा की दो धाराएँ अलग-अलग स्वस्वरूप से निमित्त होकर आगे बढ़ी हैं।

यहाँ एक प्रश्न हो सकता है कि विमलसूरि और रविप्रेम से भी बाद में उत्पन्न होने वाले गुणभद्र ने उनके कथानक का अनुसरण क्यों नहीं किया? इसका उत्तर देते हुए प० नाथूराम प्रेमी लिखते हैं:—'इन दो धाराओं में गुरुपरम्परा भेद भी हो सकता है। एक परम्परा ने एक धारा को अपनाया और दूसरी ने दूसरी को। ऐसी दशा में गुणभद्र स्वामी ने 'पद्मचरिय' की धारा से परिचित होने पर भी इस खयाल से उसका अनुसरण न किया होगा कि यह हमारी गुरुपरम्परा की नहीं है। यह भी संभव हो सकता है कि उन्हें 'पद्मचरिय' के कथानक की अपेक्षा यह कथानक ज्यादा अच्छा मालूम हुआ हो।'^७

'उत्तरपुराण' का संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है:—'दशरथ (वाराणसी के

राजा) के चार पुत्र उत्पन्न होते हैं—राम सुबाला के गर्भ से, लक्ष्मण कैकेयी के गर्भ से और बाद में जब दशरथ अपनी राजधानी को साकेतपुर स्थापित कर चुके हैं तब भरत और शत्रुघ्न किसी अन्य रानी के गर्भ से, जिसका नाम नहीं दिया जाता है। दशानन विनमि विद्याधर वंश के पुलस्त्य का पुत्र है। किसी दिन वह अमितवेग की पुत्री मणिमती को तपस्या करते देखता है और उसपर आसक्त होकर उसकी साधना में बिध्न डालने का प्रयत्न करता है। मणिमती निदान करती है — 'मैं उसकी पुत्री होकर उसे मारूँगी।' मृत्यु के बाद वह रावण की रानी मन्दोदरी के गर्भ में आती है। उसके जन्म के बाद ज्योतिषी रावण से कहते हैं कि वह आपका नाश करेगी। अतः रावण ने भयभीत होकर मारीचि को आज्ञा दी कि वह उसे कहीं छोड़ दे। कन्या को एक मंजूषा में रखकर मारीचि उसे मिथिला देश में गाड़ आता है। हनु की नोक से उगम जाने के कारण वह मंजूषा दिखलाई पड़ती है और लोगों के द्वारा जनक के पास ले जाई जाती है। जनक मंजूषा को खोलकर एक कन्या को देखते हैं और उसका नाम सीता रखकर उसे पुत्री की तरह पालते हैं। बहुत समय के बाद जनक अपने यज्ञ की रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण को बुलाते हैं। इस यज्ञ के समाप्त होने पर राम और सीता का विवाह होता है। इसके बाद राम सात अन्य कुमारियों से विवाह करते हैं और लक्ष्मण पृथ्वीदेवी आदि १६ राज-कन्याओं से। दोनों दशरथ से आज्ञा लेकर वाराणसी में रहने लगते हैं।

नारद से सीता के सौंदर्य का वर्णन सुनकर रावण उसे हर लाने का संकल्प करता है। सीता का मन जानने के लिए शूर्पनखा भेजी जाती है लेकिन सीता का सतीत्व देखकर वह रावण से यह कहकर लौटती है कि सीता का मन चलायमान करना असंभव है। जब राम और सीता वाराणसी के निकट चित्रकूट बाटिका में बिहार करते हैं तब मारीचि स्वर्णमृग का रूप धारण करके राम को दूर ले जाता है। इतने में रावण राम का रूप धारण कर सीता से कहता है कि मैंने मृग को महल भेजा है और आपको पालकी पर चढ़ने की आज्ञा देता है। यह पालकी वास्तव में पुष्पक विमान है जो सीता को लका ले जाता है। रावण सीता का स्पर्श नहीं करता है क्यों पतिव्रता के स्पर्श से उसकी आकान्त-मार्मिनी विद्या नष्ट हो जाएगी।

दशरथ को स्वप्न द्वारा मालूम हुआ कि रावण ने सीता का हरण किया है और वे राम के पास यह समाचार भेजते हैं। इतने में सुग्रीव और हनुमान् बालि के विरुद्ध सहायता माँगने के लिए पहुँचते हैं। हनुमान् लका जाते हैं और सीता को सान्त्वना देकर लौटते हैं। इसके बाद लक्ष्मण द्वारा बालि का वध होता है और सुग्रीव अपने राज्य पर अधिकार प्राप्त करता है। सेतुबन्ध का प्रसंग छोड़ दिया गया है, वानरों और राम की सेना विमान से लका पहुँचाई जाती है। युद्ध के अने-

साकल्य विस्तृत वर्णन के अन्त में लक्ष्मण चक्र से रावण का सिर काटते हैं। राम परीक्षा लिये बिना सीता को स्वीकार करते हैं। इसके बाद लक्ष्मण राम के साथ बयासीस वर्ष तक दिग्विजय यात्रा करते हैं और अर्धचक्रवर्ती बनकर अयोध्या लौटते हैं। अनन्तर दोनों का सम्मिलित अभिषेक सम्पन्न हो जाता है। लक्ष्मण की १६ हजार और राम की आठ हजार रानियाँ बताई जाती हैं। कुछ वर्ष बाद राम तथा लक्ष्मण भरत तथा शत्रुघ्न को राज्य देकर वाराणसी चले आये। सीता के विजयराम आदि आठ पुत्र उत्पन्न होते हैं (सीता-त्याग का उल्लेख नहीं मिलता)। लक्ष्मण एक असाध्य रोग से मरकर रावण-वध के कारण नरक जाते हैं। राम लक्ष्मण के पुत्र पृथ्वीचन्द्र को राज्यपद और सीता के कनिष्ठ पुत्र अजितंजय को युवराज-पद पर अभिषिक्त करके सुग्रीव, अणुमान तथा विभीषण आदि पाँच सौ राजाओं और १८० पुत्रों के साथ सावना करने जाते हैं। ३६५ वर्ष बीत जाने पर राम को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। सीता भी अनेक रानियों के साथ दीक्षा लेती है। अन्त में राम तथा अणुमान् की मोक्षप्राप्ति का उल्लेख किया गया है, सीता स्वर्ग में पहुँचती है तथा लक्ष्मण के सम्बन्ध में कहा जाता है कि नरक से निकलकर वे भी संयम धारण करेंगे तथा मोक्ष प्राप्त कर सकेंगे।

‘पद्मपुराण’ पर ‘वाल्मीकि-रामायण’ का प्रभाव

वस्तुतः ‘वाल्मीकिकृत-रामायण’ ही समस्त प्रचलित राम-कथा-साहित्य का मूलजोत प्रमाणित होता है। अत्यन्त विस्तृत रामकथा-साहित्य में जो वैभिन्न आ गया है वह वाल्मीकिकृत रामायण के विकास तथा उसके कथानक पर विभिन्न प्रभावों का परिणाम माना जा सकता है।”^{१८}

रविषेण ने ‘पद्मपुराण’ की रचना ‘रामायण’ की दोषपूर्णता सिद्ध करते हुए की है। उन्होंने श्रेणिक और गौतम के मुख से प्रचलित ‘रामायण’ ग्रंथ की उपर्युक्त-विद्वत्ता उद्धोषित की है तथा वास्तविक ‘पद्म (राम) चरित’ का प्रकाशन कराया है। राजा श्रेणिक के मन में प्रचलित रामायण के विषय में सन्देह उत्पन्न होता है—

“अथास्य चरिते पद्मसम्बन्धिनि गतं मनः ।
सन्देह इव चेत्यासीद्वक्षःसु प्लवगेषु च ॥
कथं जिनेन्द्रधर्मेण जाताः सन्तो नरोत्तमाः ।
महाकुलीना विद्वांसो विद्याधोतितमानसाः ॥

श्रूयन्ते लौकिके ग्रंथे राक्षसा रावणादयः ।
 वसाशोणितमांसादिपानभक्षणकारिणः ॥
 रावणस्य किल भ्राता कुम्भकर्णो महाबलः ।
 घोरनिद्रापरीतः यष्मासान् क्षेते निरन्तरम् ॥
 मत्तैरपि गजैस्तस्य क्रियते मर्दनं यदि ।
 तप्ततैलकटाहैश्च पूर्यते श्ववणी यदि ॥
 भेरी-शंख-निनादोऽपि सुमहानपि जन्यते ।
 तथापि किल नायाति कालेऽपूर्णे विबुद्धताम् ॥
 क्षुत्तृष्णाव्याकुलश्चासौ विबुद्धः सम्महोदरः ।
 भक्षयत्यग्रतो दृष्ट्वा हस्त्यादीनपि दुर्द्धरः ॥
 तिर्यग्भिर्मनुषैर्देवैः कृत्वा तृणितं तन. पुनः ।
 स्वपित्येव विमुक्तान्धति शेषपुरुषस्थितिः ॥
 अहो कुकविभिर्मूर्खैर्विद्याघरकुमारकः ।
 अभ्याख्यानमिदं नीतो दुःकृतग्रन्थकथकैः ॥
 एवंविधं किल ग्रन्थं राचायणमुदाहृतम् ।
 शृण्वता सकल पाप क्षयमायाति तत्क्षणात् ॥
 ताप-त्यजनचित्तस्य सोऽयमग्निसमागमः ।
 शीतापनादकामस्य तुषारानिलसंगमः ॥
 ह्रियंगवीनकाक्षस्य तदिदं जलमग्न्यनम् ।
 सिकतापीडनं तैलमबातुमभिवाञ्छनः ॥
 महापुरुषचारित्रकूटदोषविभाविषु ।
 पापैरघमंशास्त्रेषु धर्मशास्त्रमतिः कृता ॥
 अमराणां किलाघीशो रावणेन पराजितः ।
 आकर्णाकृष्टनिर्मन्तैर्बाणैर्नर्मविदारिभिः ॥
 देवानामधिपः क्वासौ वराकः क्वैष मानुषः ?
 तस्य चिन्तितमात्रेण यायाद् यो भस्मराशिताम् ॥
 ऐरावतो गजो यस्य, यस्य वज्रं महायुधम् ।
 समेरुवारिषि क्षोणीं योज्जायासात् समुदरेत् ॥
 सोऽयं मानुषमात्रेण विद्याभाजाऽल्पशक्तिना ।
 आनीयते कथं भगं प्रभुः स्वर्गनिवासिनाम् ॥
 बन्दीगृहगृहीतोऽसौ प्रभुणा रक्षसां किल ।
 लंकायां निवसन् कारागृहे नित्यं सुसंयतः ॥

मृगैः सिंहवधः सोऽयं शिलानां पेषणं तिलैः ।
 वधो गण्डूपदेनाहेर्गजेन्द्रशसनं शुना ॥
 व्रतप्राप्तेन रामेण सौवर्णो हरराहतः ।
 मुषीवस्याग्रजः स्वयं जनकेन समस्तथा ॥
 अश्रद्धेयमिदं सर्वं वियुक्तमुपपत्तिभिः ।
 भगवन्तं गणाधीशं ध्वोऽहं पृष्टास्मि गौतमम् ॥''^{६९}

इस सन्देह की निवृत्ति के लिए वह गौतम गणधर से तार्किक रामचरित सुनने की इच्छा करता हुआ कहता है:—

“भगवन् ! पद्मचरितं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
 उत्पादितान्यथैवास्मिन् प्रसिद्धिः कुमतानुगैः ॥
 राक्षसो हि स लकेणो विद्यावान् मानवोऽपि वा ।
 तिर्यग्भिः परिभूतोऽसौ कथं क्षुद्रकवानरैः ॥
 अस्ति चात्यन्तदुर्गन्धं कथं मानुषविग्रहम् ।
 कथं वा रामदेवेन बालिशच्छ्रेण नाशितः ॥
 गत्वा वा देवनिलयं भद्रकत्वोपवनमुत्तमम् ।
 वन्दीगृहं कथं नीतो रावणं नामर्गाधिपः ॥
 सर्वशास्त्रार्थकुशलो रोगवजितविग्रह ।
 शोते च स कथं मासान् पठेतस्य वरोऽनुजः ॥
 कथं चात्यन्तगुह्यं पर्वतैरलमुन्नत ।
 सेतुः शालामृगैर्वद्धो यः मूर्खैरपि दुर्घटः ॥
 प्रसीद भगवन्नेतत्सर्वं कथयितुं मम ।
 उत्तारयन् बहून् भक्ष्यान् सशयोदारकर्मजान् ॥''^{७०}

और फिर गौतम गणधर ‘तत्त्वज्ञसनत्पर’ ‘जिनेन्द्रोक्त’ वाक्य से उसे समझाते हुए कहते हैं:—

“रावणो राक्षसो नैव न चापि मनुजाशन ।
 अलीकमेष तत्सर्वं यद्वदन्ति कुवादिन ॥''^{७१}

उपर्युक्त समस्त प्रकरण से यही सिद्ध होता है कि रावणेन के सम्मुख ऐसी रामायण अवश्य रही होगी जिसमें रावणादि को राक्षस और मासभक्षी बताया गया हो । कुम्भकर्ण को छः महीने सोने वाला भयकर राक्षस कहा गया हो, राम के

द्वारा छिपकर बालिवध आदि का व्याख्यान हो। इसकी अलीक, उपपत्तिविरुद्ध एवं अविवेकसनीय बातों को सत्य, सोपपत्तिक और विवेकसनीय बनाने का प्रयत्न रविवेचन ने किया है। भाव यह है कि रविवेचन के दृष्टिकोण से रामायण की श्रुतियों का परिमार्जन 'पद्मपुराण' में किया गया है।

यह 'रामायण-ग्रन्थ' किसका बनाया हुआ था—इसका रविवेचन ने कोई स्पष्ट संकेत नहीं किया तथापि यह अनुमान सहजतया लगाया जा सकता है कि 'वाल्मीकिकृत रामायण' पर ही उनका कटाक्षाक्षेप है क्योंकि उसमें सभी बातें पाई जाती हैं, यथा—

१—“श्रूयन्ते लौकिके ग्रन्थे राक्षसा राक्षणादयः।” (पद्म० २।२३५)
तुल०—“शृणु रामायण विप्र वाल्मीकिमुनिना कृतम्।

येन रामायतारण राक्षसा राक्षणादयः।

हतास्तु देवकार्यं हि चरितं तस्य तच्छृणु ॥”

(रामा० १।२।४०-४१)

२—एवविधं किल ग्रन्थं रामायणमुदाहृतम्।
शृण्वतां सकलं पापं क्षयमामाप्ति तत्क्षणात् ॥’ (पद्म०, २।२३८)
तुल०—“यन्नामस्मरणादेव महापातककोटिमिः।

विमुक्तः सर्वपापेभ्यो नरो याति परां गतिम् ॥

रामायणेति यन्नाम सकृदप्युच्यते यदा।

तदैव पापनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥’ (रामा० ३।७१-७३)

‘इदमाख्यानमायुष्यं सौभाग्यं पापनाशनम्। (उत्त०, १११।४)

‘सर्वपापैः प्रमुच्येत पादमप्यस्य यः पठेत्।’ (उत्त० १११।५)

‘पापान्यपि हि यः कुर्यादहन्यहनि मानव।

पठत्येकमपि श्लोकं पापास्त परिमुच्यते ॥’ (उत्त० १११।६)

‘सम्यक्श्रद्धासमायुक्तः शृणुते राघवी कथाम्।

सर्वपापात् प्रमुच्येत विष्णुलोकं स गच्छति ॥ (उत्त० १११।१५)

‘यः पठेच्छृणुयान्नित्यं चरितं राघवस्य ह।

भक्त्या निष्कलमघो भूत्वा दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥’ (उत्त० १११।१६)

आदि।

इस प्रकार यह सिद्ध हो जाने पर कि रविवेचन ने वाल्मीकिकृत रामायण को पढ़कर उसके दोषों का अपने ‘पद्मपुराण’ में परिमार्जन किया यह कथन बहुत सुगम हो जाता है कि ‘पद्मपुराण’ पर ‘वाल्मीकि रामायण’ का प्रचुर प्रभाव पड़ा है। किसी ग्रन्थ को आद्यन्त पढ़कर उसके कुछ अंशों में परिवर्तन प्रस्तुत करके

उसी की कथा प्रकारान्तर से यदि कोई कवि अपने ग्रन्थ में कहता है तो उस पर पूर्ववर्ती कवि की रचना का प्रभाव पड़ना अवश्यभावी है। यह प्रभाव अनुकूल भी पड़ सकता है और प्रतिकूल भी। यहाँ 'वाल्मीकीय-रामायण' के 'पद्मपुराण' पर इस अनुकूल तथा प्रतिकूल प्रभाव का विवेचन करना ही अपना लक्ष्य है।

यहीं एक बात और कह देनी महत्वपूर्ण है कि वाल्मीकिकृत रामायण के मौखीय, दाक्षिणात्य, उदीच्य तथा पश्चिमोत्तरीय आदि अनेक पाठों का पर्यालोचन करने पर मूल वाल्मीकीय रामायण में अनेकों अंश प्रक्षिप्त सिद्ध होते हैं जिनका पूर्ण विवेचन श्री कामिलबुल्के ने 'रामकथा' में किया है। ये प्रश्न प कब हुए—यह पूर्ण रूप से कहना कठिन है किन्तु यह निश्चित है कि ये रविषेण से पहले रामायण में मिल चुके थे। अतः 'पद्मपुराण' पर 'वाल्मीकीय-रामायण' का प्रभाव दिखाते समय इन प्रक्षेपों को भी ध्यान में रखा जायेगा। रामायण के कथानक और शैली-दोनों ने ही 'पद्मपुराण' को पर्याप्त प्रभावित किया है।

कथानक पर प्रभाव :

'पद्मचरित' की कथा का अधिकांश 'वाल्मीकि-रामायण' के ढंग का है।^{७२} कहीं तो वाल्मीकि-रामायण का कथानक ज्यों का त्यों साधारण से हेर-फेर के साथ ग्रहण कर लिया गया है और कहीं उपपात-विरोध को देखकर उसे अन्यथा कल्पित कर लिया गया है। इस 'अन्यथा प्रकल्पन' का पूर्णतया उल्लेख हम चतुर्थ अध्याय में विषयवस्तु के विवेचन के समय करेंगे। यहाँ कथानक के अनुकूल प्रभाव का अध्ययन हमें करना है।

वाल्मीकि-रामायण का कथानक (प्रक्षेपों सहित) सात काण्डों में विभक्त जिसका क्रमशः प्रभाव 'पद्मपुराण' पर हमें देखना है।

बालकाण्ड की कथावस्तु—को पाँच मुख्य विभागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) भूमिका (सर्ग १-४) :—नारद का वाल्मीकि से अयोध्या काण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की राम कथा का कथन (सर्ग १), श्लोकोत्पत्ति, नारद से सुनी हुई रामकथा को श्लोकबद्ध करने की वाल्मीकि की ब्रह्मा की आज्ञा (सर्ग २), अनुक्रमणिका (सर्ग ३), वाल्मीकि का कुश-लव को अपना काव्य सिखाना और उनका राम के सम्मुख उसे सुनाना (सर्ग ४)।

(२) वनारण-व्यस (सर्ग ५-१७) :—अयोध्या का वर्णन, राजा-नागरिक-

मन्त्री-पुरोहितों का वर्णन (सर्ग ५-७), अश्वमेधयज्ञ का संकल्प सर्ग (८), ऋष्य-शृंग की कथा (सर्ग ९-११), ऋष्यशृंग द्वारा अश्वमेध (सर्ग १२-१४), ऋष्यशृंग द्वारा पुत्रेष्टियज्ञ, देवताओं की विष्णु से अवतार लेने की प्रार्थना, पायस प्राप्तकर दशरथ का उसे अपनी पत्नियों में बाँटना (सर्ग १५-१६), देवताओं का अप्सराओं और गन्धर्वियों से वानरों की उत्पत्ति करना (सर्ग १७)।

(३) राम का जन्म तथा प्राकृतिक कृत्य (सर्ग १८-३१) :—राम-धरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्न-जन्म, विश्वामित्र का आगमन (सर्ग १८) और अपने यज्ञ की रक्षा के लिए दशरथ से राम लक्ष्मण को माँगना (सर्ग १९-२१), राम-लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ गमन, सरयू-तट पर विश्वामित्र से कला और अतिकला की प्राप्ति (सर्ग २२), गंगा-सरयू के संगम पर विश्वामित्र द्वारा काम-दहन की कथा (सर्ग २३), मलद और कण्व की कथा (सर्ग २४), ताटका की कथा (सर्ग २५), राम द्वारा उसका वध (सर्ग २६), राम को दिये गये आयुष्यों की सूची (सर्ग २७-२८), सिद्धाश्रम पर वामनावतार की कथा (सर्ग २९), भारीच का समुद्र में निक्षेप और सुबाहु का वध (सर्ग ३०), मिथिला के लिए प्रस्थान (सर्ग ३१)।

(४) पौराणिक कथाएँ (सर्ग ३२-६५) :—विश्वामित्र के वंश की कथा (सर्ग ३२-३४), हिमवान् की पुत्रियाँ, गंगा का स्वर्गारोहण, उमा का शिव से विवाह, कातिकेयजन्म (सर्ग ३५-३७), सगर-पुत्रों का पाताल में भ्रम होना, भगीरथ द्वारा गंगावतरण, जह्नु द्वारा गंगा का पिया जाना और भगीरथ द्वारा अनुसरण करने हुए पाताल में सगरपुत्रों का उद्धार करना (सर्ग ३२-४४)। समुद्र-मन्थन की कथा (सर्ग ४५-४७), गौतम द्वारा इन्द्र और अहल्या को दिये गये धापों की कथा, अहल्योद्धार (सर्ग ४८-४९), जनक द्वारा विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण का स्वागत (सर्ग ५०), विश्वामित्र की कथा : शतानन्द द्वारा विश्वामित्र के ब्राह्मण बनने की कथा, राजा विश्वामित्र का वसिष्ठ को परास्त न कर सकने के कारण ब्राह्मण बननेका निश्चय (सर्ग ५१-५६), उनका राजर्षि बनना, त्रिशंकु की कथा (सर्ग ५७-६०), अम्बरीष के यज्ञ में शूनःशेप का बलिदान, विश्वामित्र का ऋषि बनना, मेनका की सफलता एवं रम्भा की असफलता और अन्त में विश्वामित्र का ब्रह्मर्षि बनना (सर्ग ६१-६५)।

(५) राम-विवाह (सर्ग ६६-७७) :—धनुर्भंग : जनक द्वारा धनुष तथा सीता के अलौकिक जन्म की कथा, उनकी सीता-विवाह-विषयक प्रतिज्ञा, राजाओं की असफलता और उनका आक्रमण (सर्ग ६६), राम द्वारा धनुर्भंग, दशरथ का बुलावा और मिथिला में उनका आगमन (सर्ग ६७-६९), विवाह : वसिष्ठ द्वारा

- दशरथ के वंश का परिचय, जनक का अपना वंश-वर्णन, चारों भाइयों का विवाह (सर्ग ७०-७३), परशुराम : उत्तरीय पर्वतों पर विश्वामित्र का गमन, दशरथ के मार्ग में अपशकुन और परशुराम का आगमन, वैष्णव धनुष चढ़ाकर राम द्वारा परशुराम की पराजय (सर्ग ७४-७६), अयोध्यागमन, भरत और शत्रुघ्न का प्रस्थान, राम की लोकप्रियता (सर्ग ७७) ।

बालकाण्ड की कथावस्तु के भूमिका भाग का 'पद्मपुराण' पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा है। केवल 'अनुक्रमणिका' के सद्युक्त उसमें सूत्र-विधान किया गया है (पर्व १), शेष चारों भागों का समष्टिगत प्रभाव 'पद्मपुराण' पर है, केवल यज्ञ-संस्कृति-मूलक प्रभाव नहीं पड़ा है। दशरथ अपनी पत्नियों को यन्त्रोदक बँटवाते हैं जो यज्ञोत्प-पायस-वितरण का ही जैनी रूप है। दशरथ की विभिन्न रानियों से राम आदि चार पुत्रों का जन्म, बचपन में ही राम-लक्ष्मण का दशरथ से अलग चले जाना, सगरपुत्रों का भस्म होना, धनुष चढ़ाना, आदि 'पद्मपुराण' में भी थोड़े हेर-फेर से वर्णित है। ऐसे वर्णनों में रविवेण का दृष्टिकोण यही रहा है कि इन घटनाओं की बौद्धिक और तर्कसम्मत व्याख्या की जाय एवं उनको जैनी आवरण प्रदान किया जाय। यही कारण है कि वाल्मीकि-रामायण से प्रभावित होते हुए भी 'पद्मपुराण' में कुछ नवीनता आ गयी है, उदाहरणार्थ—दशरथ की वंशावली में नघुष, सौदास, मान्धाता, ककुत्स्थ, रघु, अनरण्य तथा दशरथ नाम तो वाल्मीकि रामायण के अनुसार हैं किन्तु इस वंशावली का विस्तार काफी है यथा—विजय, मुरेन्द्रमन्यु, पुरन्दर, कीर्तिधर, मुकोसल, हिरण्यगर्भ, नघुष, सौदास, सिंहरथ, ब्रह्मरथ, चतुर्मुख, हेमरथ, शतरथ, मान्धाता, वीरसेन, पीतमन्यु, कमल-बन्धु, रविमन्यु, वसन्ततिलक, कुबेरदत्त, कीर्तिमान्, कुन्धुभक्ति, शरभरथ, द्विरदरथ, सिंहदमन, हिरण्यकशिपु, पुञ्जस्थल, ककुत्स्थ, रघु, अनरण्य, दशरथ। अनरण्य के दो पुत्र हुए थे—अनन्तरथ और दशरथ। अनन्तरथ ने दीक्षा ले ली (पर्व २१-२२)। इसी प्रकार यद्यपि दशरथ की अनेक रानियाँ तथा चार संतान वाल्मीकि-रामायण के समान ही हैं तथापि कुछ अन्तर है। 'वाल्मीकि-रामायण' में दशरथ की कौशल्या रानी से राम, सुमित्रा से लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न एवं कैकेयी से भरत हुए हैं जबकि 'पद्मपुराण' में अपराजिता से राम, सुमित्रा (कैकेयी) से लक्ष्मण, केकया से भरत तथा सुप्रभा से शत्रुघ्न हुए। ये अनेक राजाओं की पुत्रियाँ थीं (पर्व २२-२५)। इनके अतिरिक्त जिस प्रकार 'वाल्मीकि रामायण' में दशरथ की ३५० स्त्रियों का उल्लेख है—'वयः शत-शतार्धा हि ददशविक्रय मातरः' (२।३१।३६) इसी प्रकार 'पद्मपुराण' में भी उनकी ५०० उत्तम स्त्रियों का उल्लेख है।

वाल्मीकि-रामायण के इन्द्र-अहल्या-वृत्तान्त का भी 'पद्मपुराण' पर प्रभाव पड़ा है किन्तु है वह हेर-फेर के साथ ही। वाल्मीकि-रामायण के उत्तरकांड में गौतम-अहल्या के विवाह का वृत्तान्त इस प्रकार मिलता है—ब्रह्मा ने दूसरे प्राणियों के सर्वश्रेष्ठ अंग लेकर एक हूल (कुरूपता)-रहित स्त्री का निर्माण किया और उसका नाम अहल्या रखा। इन्द्र अहल्या की अभिलाषा करता था किन्तु ब्रह्मा ने उसे धरोहर के रूप में गौतम ऋषि के यहाँ रखा। अनेक वर्षों के बाद गौतम ने जब उसे ब्रह्मा को लौटाया तो उन्होंने ऋषि की सिद्धि देखकर अहल्या को उनकी पत्नी बना दिया। 'पद्मपुराण' (पर्व १३) में भी अहल्या पर इन्द्र की आसक्ति का संकेत है। वह अरिजयपुर नगर में बल्लिवेग विद्याधर की बेगवती रानी से उत्पन्न पुत्री थी जिसने इन्द्र विद्याधर को न ग्रहण करके स्वयंवर में आनन्दमाल राजा को बरा था।

परशुराम के क्षत्रियद्वेष का संकेत वाल्मीकि ने (बाल० ७४।१७, २२, ७५।६) किया है उसी का विकसित अथवा विकृतरूप 'पद्मपुराण' में (पर्व २०) उपलब्ध होता है जहाँ कहा गया है कि परशुराम (जामदग्न्य) ने पृथ्वी को सात बार निःक्षत्रिय किया था किन्तु सुभूम चक्रवर्ती ने २१ बार पृथ्वी को ब्राह्मण-रहित कर दिया।

'रामायण' में राम-लक्ष्मण की अभिन्न प्रीति का उल्लेख किया गया है—'न च तेन विना निद्रा लभते पुरुषोत्तमः' (बाल० १८।३०)। 'पद्मपुराण' में भी 'अनेक-जन्मसंबद्धस्नेहान्योन्यवशानुगौ' (पर्व २५।३०) कहकर इसकी स्वीकृति दी गयी है।

'रामायण' में राम-लक्ष्मण बचपन में ही अपनी वीरता से ताटकारि दुष्टों का वध करते हैं 'पद्मपुराण' में वे म्लेच्छों को पराजित करते हैं। यह उनकी प्रारम्भिक वीरता का प्रकारान्तर से स्वीकरण है।

'वाल्मीकि-रामायण' में शिव-धनुर्भंग करके राम सीता की प्राप्ति करते हैं (बाल० ३१।६६, ७३), 'पद्मपुराण' में राम 'वज्रावर्त' धनुष चढ़ाकर उसकी प्राप्ति करते हैं। यहाँ भी धनुष-सम्बन्धी प्रभाव है।

'रामायण' में राम के अतिरिक्त अन्य तीन भाइयों का भी सीता की बहिनी से विवाह वर्णित है (बाल० ७३), 'पद्मपुराण' में राम के अतिरिक्त उनके भाई भरत का और लक्ष्मण का विवाह वर्णित है। अन्तर इतना है कि भरत की उदासी का मनोवैज्ञानिक-सा हेतु दिया गया है।

'रामायण' में राम का एक-पत्नीत्व प्रधानतः वर्णित है किन्तु यत्र-क्वचित् उनके बहुपत्नीत्व के संकेत भी हैं यथा—'हृष्टाः खलु भविष्यन्ति रामस्य परमाः स्त्रियः' (२।८।१२) तथा 'भुजैः परमनारीणामभिमुष्टमनेकधा' (६।२१।३)।

‘पद्मपुराण’ में भी राम की अनेक (८०००) पत्नियों में सीता के अनन्य प्रेम की चर्चा की गयी है—‘न भोगेषु मनश्चक्रे वेदेहीं प्रति संहृतम् (पद्म० ४८।३)। किन्तु यहाँ अधिक पत्नियों का वर्णन भी है जबकि रामायण में संकेत ही।

‘रामायण’ में सीता जनकात्मजा तथा भूमिजा मानी गयी है। ‘पद्मपुराण’ में भी वह जनक की पुत्री है जो अपने भाई भामण्डल के साथ उत्पन्न हुई है तथा उसे भूमिसाम्य से बौद्धिक व्याख्यानुसार ‘सीता’ भी कहा गया है—

‘प्रभवति गुणसस्यं येन तस्यां समृद्धं

भजदल्लजजनानां सौख्यसंभारदानम् ।

तदतिशयमनोशा चारुलक्ष्मान्वितांगा

जगति निगदितासौ भूमिसाम्येन सीता ॥’^{७१}

वाल्मीकि ‘रामायण’ के बालकाण्ड (३६, ४०) में सगर के भूमिलनक साठ हजार पुत्रों के भस्म होने की कथा आयी है। ‘पद्मपुराण’ में भी सगर के साठ हजार पुत्रों के नाश की कथा (पर्व ५) आयी है। अन्तर यह है कि रामायण में वे कपिल के रोष से भस्म हुए हैं यहाँ नारैन्द्र के क्रोध से। साथ ही यहाँ जैनी विचारधारा लगी हुई है। ‘षष्टिः पुत्रसहस्राणि’ का उभयत्र उल्लेख है—

१—“षष्टिः पुत्रसहस्राणि वाक्यमेतदुवाच ह ।” (बाल० ३६।१२)

“षष्टिः पुत्रसहस्राणि रसातलमभिद्रवन् ।” (बाल० ४०।१२)

“षष्टिः पुत्रसहस्राणि विभिदुर्बसुधातलम् ।” (बाल० ४०।२३)

“सगरस्य च पत्नीनां सहस्राणां षडुत्तराः ।

नवतिः शक्रपत्नीनामभवन् तुल्यतेजसाम् ॥

सपुत्राणांच पुत्राणां विभ्रता शक्तिमुत्तमाम् ।

जाता षष्टिः सहस्राणां रत्नस्तम्भसमन्विताम् ॥” (पद्म० ५।२४७-४८)

२—“विभिदुर्बरणीं राम रसातलमनुत्तमम् ।” (बाल० ३६।२१)

आरसातलमूलां तां दृष्ट्वा खातां वसुन्धराम् ।” (पद्म० ५।२५१)

३—“भस्मराशीकृताः सर्वे काकुत्स्थ ! सगरात्मजाः ।” (बाल० ४०।३०)

“भस्मसाद्भावमायाताः सुनास्ते चकवर्तिनः ।” (पद्म० ५।२५२)

‘रामायण’ के ‘अयोध्या काण्ड’ की कथावस्तु को भी पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) राम का निर्वासन (सर्ग-१-४४) :—भरत और शत्रुघ्न का अश्वपति के यहाँ रहना, राम की लोकप्रियता और गुणकथन (सर्ग १।१-३४)। राम के

यीश्वराज्याभिषेक की तैयारी (सर्ग १।३५-सर्ग ६) । मन्थरा-कैकेयी संवाद—
दो बर माँगने के विषय में मन्थरा की सफलता (सर्ग ७-९), दशरथ-कैकेयी-
संवाद,—दशरथ द्वारा दो बरों की स्वीकृति (सर्ग १०-१४), दशरथ के पास राम
का आगमन, दशरथ के सम्मुख कैकेयी का समाचार-कथन (सर्ग १५-१९), राम-
कौशल्या-संवाद, लक्ष्मण और कौशल्या द्वारा निर्वासन का विरोध, राम का उनको
समझाना, कौशल्या द्वारा विदा और मंगलाकांक्षा (सर्ग २०-२५) । राम-सीता-
संवाद, वन की भयंकरता से राम का सीता को भयभीत करना, अन्त में साथ
चलने की स्वीकृति देना (सर्ग २६-३०), लक्ष्मण का आग्रह और राम द्वारा साथ
ले चलने की स्वीकृति (सर्ग ३१), प्रस्थान-दान-वितरण, राम का राजा के पास
जाना । (सर्ग ३२-३४), सुमन्त्र के द्वारा कैकेयी की भर्त्सना (सर्ग ३५), दशरथ
का राम के साथ सेना भेजने का प्रस्ताव, कैकेयी की आपत्ति (सर्ग ३६), कैकेयी
द्वारा दिये गये वल्कल का धारण करना, (सर्ग ३७), दशरथ द्वारा कैकेयी की
भर्त्सना (सर्ग ३८), सुमन्त्र का रथ लाना, कौशल्या द्वारा सीता को शिक्षा एवं
विदा (सर्ग ३९-४०), विलाप-कलाप, दशरथ मूर्च्छा, कौशल्या का विलाप तथा
सुमित्रा का सान्त्वना देना (सर्ग ४१-४४) ।

(२) चित्रकूट की यात्रा (सर्ग-४५-५६) :—अयोध्या-निवासी : उनका
रथ के साथ जाना, तमसा के पास रात्रि-निवास, उनके सोते समय तीनों का
सुमन्त्र के साथ प्रस्थान (सर्ग ४५-४६), लोगों का विलाप और अयोध्या लौटना
(सर्ग ४७-४८) । गुह : वेदश्रुति और गोमती पार गुह का मिलन (सर्ग ४९-५०)
लक्ष्मण और गुह का राम का गुण-कथन करते हुए रात्रि व्यतीत करना (सर्ग ५१),
सुमन्त्र को विदा करके गुह की नौका पर गंगा पार करना (सर्ग ५२) । भरद्वाजः
राम का विलाप और लक्ष्मण की सान्त्वना, यमुना और गंगा के संगम पर भरद्वाज-
जाश्रम में आना, भरद्वाज की चित्रकूट-निवास की मन्त्रणा (सर्ग ५३-५४), यमुना
को पार करना, चित्रकूट पहुँचना, वाल्मीकि से मिलन और लक्ष्मण द्वारा एक
पर्णशाला का निर्माण (सर्ग ५५-५६) ।

(३) दशरथ-मरण (सर्ग-५७-६८) :— सुमन्त्र का लौटना: सुमन्त्र से राम
का सन्देश सुनकर दशरथ की मूर्च्छा और विलाप सुमन्त्र द्वारा कौशल्या को
सान्त्वना (सर्ग ५७-६०), दशरथ-मरण : कौशल्या की भर्त्सना से दशरथ का
मूर्च्छित होना (सर्ग ६१-६२), दशरथ द्वारा अन्धमुनि-पुत्र-वध की कथा, दशरथ-
मरण, विलाप (सर्ग ६२-६६), भरत का राज्य अस्वीकृत करना : भरत का बुलया
जाना और अयोध्या-आगमन, कैकेयी द्वारा राज्य-ग्रहण का अनुरोध, भरत की
भर्त्सना और मन्त्रियों के सम्मुख राज्य को अस्वीकृत करना तथा उनका कौशल्या

से अपने निरपराधी होने का आश्वासन पाना (सर्ग ६७-७५)। दशरथ की अन्त्येष्टि : भरत द्वारा अन्त्येष्टि-क्रिया और दान-वितरण, भरत और शत्रुघ्न का विलाप, शत्रुघ्न द्वारा मन्धरा की ताड़ना (सर्ग ७६-७८)।

(४) भरत की चित्रकूट-यात्रा (७९-११५) :—प्रस्थान : भरत का पुनः राज्य को अस्वीकार करना और यात्रा की आज्ञा देना, सभा में वसिष्ठ का भरत को समझाना परन्तु उनका न मानना, प्रस्थान और शृंगवेरपुर-आगमन (सर्ग ७९-८३)। गृह और भरद्वाज : भरत द्वारा गृह का सन्देह निवारण, गृह का लक्ष्मण की वार्ता का उल्लेख करना तथा राम का शयनस्थल दिखलाना (सर्ग ८४-८८), गंगा पार करना, भरद्वाज का तपःशक्ति से आतिथ्य-सत्कार (सर्ग ८९-९२)। चित्रकूट-आगमन : चित्रकूट को देखकर भरत का सेना रोकना (सर्ग ९३), राम द्वारा चित्रकूट और मन्दाकिनी की शोभा का वर्णन, सेना को निकट आते देख लक्ष्मण का आक्रोश और राम का उनको शांत करना (सर्ग ९४-९७), भरत और शत्रुघ्न का राम के निकट जाना, राम का कुशल-प्रश्न (सर्ग ९८-१००)। राम द्वारा प्रत्यागमन की अस्वीकृति : भरत का दशरथ-मरण का समाचार देना और राम से राज्यग्रहण का अनुरोध, राम का अस्वीकार करना (सर्ग १०१-१०२), राम का विलाप और दशरथ के लिए जनक्रिया करना (सर्ग १०३), माताओं का आना (सर्ग १०४), सभा में भरत का अनुरोध और राम की अस्वीकृति (सर्ग १०५-१०७), जाबालि-वृत्तान्त (सर्ग १०८-१०९), वसिष्ठ का आग्रह भरत द्वारा प्रायोपवेशन की धमकी, लौटने पर राज्यग्रहण का राम द्वारा आश्वासन (सर्ग ११०-१११), ऋषियों की आकाशवाणी सुनकर भरत का पादुकाएँ लेकर वापस जाना (सर्ग ११२)। भरत का प्रत्यागमन : भरद्वाज से मिलकर भरत का जन-शून्य अयोध्या में लौटना, राज्य-सिंहासन पर पादुकाएँ स्थापित कर भरत का नन्दिग्राम में निवास (सर्ग ११३-११५)।

(५) राम का चित्रकूट से प्रस्थान (सर्ग-११६-११९)—राक्षसों के उपद्रव से तपस्वियों का चित्रकूट-त्याग और राम से भी आग्रह, राम का अस्वीकार करना (सर्ग ११६), बाद में चित्रकूट त्याग कर राम का अग्नि के आश्रम में जाना। सीता-अनसूया-सवाद, अनसूया का माला-वस्त्राभूषण-अंगराग प्रदान करना, सीता का अपना जीवनवृत्तान्त कहना (सर्ग ११७-११८) प्रस्थान (सर्ग ११९)।

‘अयोध्याकाण्ड के कथानक का ‘पद्मपुराण’ पर पर्याप्त प्रभाव है। इसकी प्रधान कथावस्तु राम का निर्वासन है जो ‘पद्मपुराण’ में भी मिलता है। केकया की वर-याचना, दशरथ द्वारा स्वीकृति, लक्ष्मण का रोव, राम का दशरथ को

समझाना, माताओं से विदा (पर्व ३१), सीता-लक्ष्मण सहित राम का वनगमन (पर्व ३२), अयोध्यानिवासियों को सोते हुए छोड़कर जाना, अयोध्यावासियों का दुःख, बिचकूट-गमन (पर्व ३२-३३), नदी पार करना, दशरथ का निवेद, भरत का राज्य अस्वीकृत करना (पर्व ३२), भरत और केकया का राम को लौटाने का प्रयत्न, राम द्वारा अस्वीकृति, कथंचित् भरत का राज्य-संचालन स्वीकार करना (पर्व ३२) आदि धं-ड़े-बहुन हेर-फेर के साथ 'पद्मपुराण' में भी वर्णित हैं इसीलिए कवि के दृष्टिकोण के अनुसार उपर्युक्त तथा अन्य प्रसंगों में कुछ नवीनता आ गयी है। उदाहरणार्थ—

'पद्मपुराण' में वन-भ्रमण का अधिक विस्तृत वर्णन मिलता है (पर्व ३३-४२), केकया के एक वर का उल्लेख है जिसे उसने अपने स्वयंवर के उपरान्त दशरथ का रथ हाँक कर प्राप्त किया था और जिसे उसने धरोहर के रूप में उनके पास रख छोड़ा था—

“नाथ न्यासोऽयमास्तां मे त्वयि वाञ्छितयाचनम् ।

प्रार्थयिष्ये यदा तस्मिन् काले दास्यसि निर्वचः ॥”^{७४}

इसलिए राम का निर्वासन पिता की आज्ञा से नहीं अपितु स्वेच्छा से है। राम अवमंजस-ग्रस्त पिता को समझाते हैं—

“तात रक्षात्मनः सत्यं त्यजास्मत्परिचिन्तनम् ।

शक्रस्यापि श्रिया किं मे त्वय्यकीर्तिमुपागते ॥”^{७५}

वे भरत को स्वतः ही अपने वनमार्ग-ग्रहण का विचार बताते हैं (पद्म० ३१। १६०) और सबसे विदा लेकर चल पड़ते हैं (३१। १५४-२१८)। राम को लौटाने का प्रयत्न भी कुछ अन्तर रखता है। केकया ने भरत का वैराग्य दूर करने के उद्देश्य से उनके लिए राज्य माँगा था, उसने राम के वनवास के विषय में कुछ नहीं कहा था। सीता और लक्ष्मण के साथ जब राम स्वेच्छा से चले जाते हैं तब केकया अपनी सपत्नियों को शोकातुर देखकर नगर के पास टिके हुए राम-लक्ष्मण-सीता के पास भरत को उन्हें लौटा लाने के लिए भेजती है

“तस्मादानय तौ क्षिप्रं समं ताम्यां महासुखः ।

सुखिरं पालय क्षोणीमेवं सर्वं विराजते ॥”^{७६}

७४. पद्य०, २४। १३०

७५. बही, ३१। १२५

७६. बही, ३२। १०९

भरत के प्रस्थान के बाद वह स्वयं भी जाती है—

ब्रवीत्येवमसौ यावत्केकया तावदागता ।

वेगिनं रथमवह्य सामन्तसतमध्यगा ॥^{७०}

और राम के पास जाकर क्षमा माँगती है—

“पुत्रोत्पिष्ठ पुरीं यामः कुरु राज्यं सहानुजः ।

ननु त्वया विहीनं मे सकलं विपिनायते ॥

भरतः शिक्षणीयोऽयं तवात्यन्तमनीषिणः ।

स्वैणेन नष्टबुद्धेर्मे क्षमस्व दुरनुष्ठितम् ॥^{७१}

वाल्मीकि-रामायण में केकया चित्रकूट में मौन ही रहती है। ऐसे ही छोटे-मोटे अन्तर और भी हो सकते हैं। इस प्रकार रामायण का अयोध्याकाण्ड भी अपनी मुख्यघटनाओं से ‘पद्मपुराण’ को प्रभावित करता है।

‘रामायण’ के ध्वज-काण्ड की कथा-वस्तु को चार मुख्य-भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) दण्डकारण्य-प्रवेश (सर्ग १-१६)—विराधः दण्डकारण्य-निवासी ऋषियों का स्वागत (सर्ग १), विराध द्वारा सीता-अपहरण तथा राम लक्ष्मण का उसे परास्त करना (सर्ग २-४)। शरभंगः राम को देख इन्द्र का आश्रम से प्रस्थान, शरभंग का राम को सुतीक्ष्ण के आश्रम में भोजना, राम द्वारा राक्षसों के विरुद्ध सहायता देने की प्रतिज्ञा (सर्ग ५-६)। सुतीक्ष्णः सुतीक्ष्ण के आश्रम में रात्रि व्यतीत कर प्रस्थान (सर्ग ७-८), सीता द्वारा अहिंसा का आग्रह, राम द्वारा राक्षसों के विरुद्ध सहायता करने की प्रतिज्ञा का उल्लेख (सर्ग ९-१०)। अगस्त्यः पंचाप्सर-तटान पर आगमन। राम का तटान के चारों ओर के आश्रमों में दस वर्ष तक निवास, सुतीक्ष्ण से अगस्त्य-आश्रम का मार्ग पूछना। अगस्त्य द्वारा इल्वल और वातापि के वध की कथा का राम द्वारा उल्लेख, अगस्त्य का स्वागत और विष्णु-धनुष देना, फिर गोदावरी-तट पर स्थित पंचवटी का पथ-प्रदर्शन (सर्ग ११-१३)। जटायुः दणरथ के मित्र और सम्पाति के भाई जटायु से मिलना (सर्ग १४), पंचवटी में लक्ष्मण द्वारा पर्णकुटी-निर्माण, लक्ष्मण का कैकेयी को दोष देना, राम का उन्हें रोककर भरत गुण-कथन के लिए आग्रह (सर्ग १५-१६)।

(२) शूर्पणखा (सर्ग १७-३४)—शूर्पणखा का विरूपीकरणः राम और लक्ष्मण से प्रवंचित होकर शूर्पणखा का सीता की ओर भ्रष्टान। लक्ष्मण का उसके नाक-कान काटना (सर्ग १७-१८), खर के भेजे हुए १४ राक्षसों का

राम द्वारा वध (सर्ग १६-२०) खर-वध : खर के १४००० सेना लेकर पहुँचने पर सीता और लक्ष्मण का गुफा में जाना (सर्ग २१-२४), राम द्वारा राक्षसों तथा वृषण, त्रिशिरा और खर का वध (सर्ग २५-३०), अकम्पन का रावण को समाचार देना और सीताहरण के लिए प्रोत्साहित करना, मारीच से मन्त्रणा (सर्ग ३१), धूर्पणखा-रावण-संवाद: धूर्पणखा का लंका जाकर रावण की भर्त्सना करना और सीता के सौन्दर्य का वर्णन करना, रावण का सीताहरण का निश्चय (सर्ग ३२-३४)।

(३) सीताहरण (सर्ग ३५-५६)—रावण का मारीच के सम्मुख सीताहरण का प्रस्ताव रखना, मारीच का समझाना, बाद में चेतावनी देकर स्वीकार करना (सर्ग ३५-४१)। कनकमृग : मारीच के कनक-मृग-रूप को देखकर सीता का उसके लिए प्रार्थना करना। सीता को लक्ष्मण की रक्षा में छोड़कर राम का मृग के लिए जाना। दूर जाने पर राम का मारीच को मारना। मरते समय उसका राक्षस-रूप में 'सीता-लक्ष्मण' शब्द करना, सीता की लांछना से लक्ष्मण का प्रस्थान (सर्ग ४२-४५)। सीताहरण : परिव्राजक के रूप में रावण का सीता से जीवन वृत्तान्त सुनना। प्रकट होकर रावण का बल पूर्वक सीता को अपने रथ पर ले चलना। सीता द्वारा पुकारे जाने पर जटायु का युद्ध करना और आहत होना (सर्ग ४६-५१), सीता के आभूषण फेंकना, लंका में सीता का अशोकवन में राक्षसियों के नियंत्रण में रहना (सर्ग ५२-५६), (एक प्रक्षिप्त सर्ग : इन्द्र का सीता के लिए हवि ले आना)।

(४) सीता की खोज (सर्ग ५७-७५)—शून्य पर्णशाला : लौटते समय राम का लक्ष्मण से मिलना और शकाकुल होकर लक्ष्मण को दोष देना (सर्ग ५७-५९), शून्य कुटी देखकर राम का विलाप और लक्ष्मण की सान्त्वना, गोदावरी-तट पर खोज, पुष्प तथा आभूषणों का मिलना, जटायु-युद्ध के बिह्व दिखाई देना (सर्ग ६०-६४), लक्ष्मण की सान्त्वना (सर्ग ६५-६६)। जटायु : मरण के पूर्व जटायु का रावण द्वारा सीताहरण तथा दक्षिण की ओर प्रस्थान का उल्लेख (सर्ग ६७-६८)। कबन्ध : लक्ष्मण का अयोमुखी विरूपको करना। कबध का बाहुविच्छेद, उसके विषय में स्यूलशिर तथा इन्द्र के दाय का उल्लेख, चिता के प्रज्वलित होने पर कबन्ध का दिव्य रूप में सुग्रीव के पास जाने की मन्त्रणा देना (सर्ग ६९-७२)। शबरी : पम्पासर-स्थित आश्रम में शबरी का स्वागत और उसका स्वर्गारोहण, पम्पावर्णन और राम का विलाप (सर्ग ७४-७५)।

'पद्यपुराण' पर 'अरण्यकाण्ड' की कथा का भी पर्याप्त प्रभाव है। अरण्यकाण्ड की मुख्य कथावस्तु सीताहरण है—जो पद्यपुराण में भी निबद्ध है। दण्डकारण्य

प्रवेश (पर्व ४२), चन्द्रनखा (शूर्पणखा) के कारण खर का लक्ष्मण से १४००० सैनिकों के साथ युद्ध (चतुर्विंश सहस्राणि सुहृदां निर्ययुः पुरात् ॥ ४५।३७), घोड़े से राम-लक्ष्मण का पृथक्करण एवं सीता का रावण के द्वारा हरण, जटायु द्वारा सीता को बचाने का भ्रमक प्रयत्न तथा आहत होना, पुष्पक पर चढ़ाकर रावण का सीता को ले जाना, जटायु की सद्गति, सीताहरण पर राम-विलाप तथा सीता पर लंका में नियंत्रण—ये सभी विषय 'पद्मपुराण' में यत्किंचित् हेर-फेर के साथ उपनिबद्ध हैं। जो प्रधान अन्तर है वह यह है—

विराधित (विराध) राम-लक्ष्मण का विरोधी नहीं है। वह एक विद्याधर है जो खरदूषण की सेना को हराने में लक्ष्मण की सहायता करता है तथा उसके सेवक सीता की खोज करते हैं और लंका के युद्ध में उसकी सेना राम का साथ देती है। वह चन्द्रोदर तथा अनुराधा का पुत्र है।

लक्ष्मण वन में संवमी होकर नहीं रहते, वे अनेक कुमारियों से विवाह करते हैं।

चन्द्रनखा-विषयक अन्तर भी है। सूर्यहास-साधक अपने पुत्र शम्बूक का वध देखकर चन्द्रनखा दुःखी हुई किन्तु राम-लक्ष्मण के रूप को देखकर मुग्ध हो गयी। उनके द्वारा प्रोत्साहित न होकर खरदूषण के पास शिकायत करने गया। यहाँ चन्द्रनखा का विरूपीकरण नाक-कान काटकर नहीं किया गया है। उसने स्वयं ही अपना रूप विरूपित किया है—

“ता विनष्टधृति दृष्ट्वा घरणीभूलिघूसराम् ।
प्रकीर्णकेश-सम्भारां शिथिलीभूतमल्ललाम् ॥
नखविक्षतकक्षोरुकुचक्षोणी सशोणिताम् ।
कर्णाभरणनिर्मुक्तां हारलावण्यवजिताम् ॥
विच्छिन्नकंचुकां भ्रष्टस्वभावतनुतेजसम् ।
आलोडितां गजेनेव नलिनीं मदबाहिना ॥”^{७९}

साथ ही लक्ष्मण को आसक्ति भी चन्द्रनखा के प्रति वर्णित है—

“पुनरालोकनाकांक्षो विरहादाकुलो ऽ भवत् ।

• • •

अटवीं पादपद्याभ्यां बभ्रामान्वेषणातुरः ॥” (४३।११४-११५)

‘पद्मपुराण’ में जटायु एक पक्षी ही है जो पूर्व जन्म में दण्डक था। वह अपने

अपवित्र शरीर का परित्याग करके पुण्योदय के कारण देवता बन जाता है (पद्म ४४।१११) इसके पूर्वभव का वृत्तांत यह है : 'दण्डक राजा एक श्रमण का धर्म देखकर अपनी राजधानी में श्रमणों को बुलाकर उन्हें विशेष आदर देने लगा था। उसकी पत्नी बड़ी दुष्टा तथा परिव्राजकों की भक्त थी। एक पापी परिव्राजक ने निर्ग्रन्थ मुनि का वेष धारण कर दण्डक के अन्तःपुर में प्रवेश किया (निर्ग्रन्थरूप-भूदेव्याः सम्पर्कमभजत्पुनः) जिससे राजा ने क्रोध में आकर सब श्रमणों को यन्त्रों में पेलने का आदेश दिया। एक ही मुनि उस राजधानी में नहीं थे, लौटकर उन्होंने अपनी क्रोधान्धता से समस्त नगर को जला दिया—वही स्थान अब 'दण्डकारण्य' है। दण्डक चिरकाल तक पृथ्वी पर भटकता रहा, फिर एक गीध के रूप में प्रकट हुआ। एक मुनि ने उसे सदुपदेश दिया जिससे वह श्रावक धर्म में सम्मिलित हुआ तथा मुनि ने सीता से निवेदन किया कि वह उसकी रक्षा करे। राम ने उसके सिर की जटाएँ देखकर उसका नाम जटायु ही रखा (पर्व ४१)।

'पद्मपुराण' में सीताहरण का कारण शम्भूक-वध है, धूर्पणखा का नाक-कान काटना नहीं। इसी प्रकार लक्ष्मण से खरदूषण का युद्ध होता है, राम से नहीं, रावण सिंहाद करता है, कनक-मृग मारीच नहीं।

'रामायण' के 'किष्किन्धा-काण्ड' की कथावस्तु को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) सुग्रीव से भेंट (सर्ग १-१२)—हनूमान् : पम्पासर देखकर राम की बिरह-व्यथा, सुग्रीव का हनूमान् को भोजना, हनूमान् का उनको सुग्रीव के पास ले जाना (सर्ग १-४)। सुग्रीव : सुग्रीव का स्वागत तथा अपनी कथा बताना, राम द्वारा बालिवध की प्रतिज्ञा, सुग्रीव का राम को सहायता का वचन देना तथा सीता के आभूषण दिखाना (सर्ग ५-६), सुग्रीव का पुनः सहायता के लिए वचन देना तथा अपनी कथा सुनाना (सर्ग ७-१०)। राम की परीक्षा : सुग्रीव द्वारा बालि की शक्ति का वर्णन, राम द्वारा दुंदुभि के अस्थि ककाल का फेंका जाना, अनन्तर राम से सात ताल-वृक्षों के एक बाण द्वारा भेदे जाने पर सुग्रीव का विश्वस्त होना, किष्किन्धा जाकर सुग्रीव का बालि से प्रथम द्वन्द्वयुद्ध, राम का सुग्रीव को न पहचानना, शृङ्गमूक में लौटना (सर्ग ११-१२)।

(२) बालिवध (सर्ग १३-२८)—बालि का आहूत होना। द्वितीय बार सुग्रीव का बालि को द्वन्द्वयुद्ध के लिए ललकारना (सर्ग १३-१४), तारा द्वारा रोके जाने पर भी बालि का युद्ध के लिए जाना तथा राम के बाण से आहूत होना (सर्ग १५-१६), बालि की भर्त्सना : इन्द्रमाला के कारण बालि का जीवित रहना तथा राम को भर्त्सना देना, राम का प्रत्युत्तर (सर्ग १७-१८)।

द्वारा-विलाप : समाचार पाकर तारा का आना और विलाप करना (सर्ग १६-२०), हनुमान् का तारा को सान्त्वना देना (सर्ग २१) । बालि-मरण : बालि का सुग्रीव के हाथ में अंगद को सौंपना, सुग्रीव के इन्द्रमाला उतार लेने पर उसका मरण, बानरों और तारा का विलाप (सर्ग २२-२३), सुग्रीव का पद्माताप और राम का सान्त्वना देना (सर्ग २४-२५) । वर्षा-ऋतु : राम का प्रसवण पर्वत की एक गुफा में वर्षा-निवास, सुग्रीव का अभिवेक तथा अंगद का बुवराज होना, राम द्वारा वर्षा-वर्णन तथा उनका विलाप (सर्ग २६-२८) ।

(३) बानरों का प्रेषण (सर्ग २९-४४) — शरद्-ऋतु : सुग्रीव का बानर-सेना बुलाना, राम का शरद्-ऋतु-वर्णन तथा सुग्रीव की कृतघ्नता का उल्लेख करना, क्रुद्ध होकर लक्ष्मण का सुग्रीव के पास जाना (सर्ग २९-३२) । लक्ष्मण-सुग्रीव-भेंट : तारा का लक्ष्मण को शांत करना, लक्ष्मण का सुग्रीव को भर्त्सना करना, तारा तथा सुग्रीव की क्षमा-प्रार्थना, सुग्रीव की आज्ञा से सेना का आगमन (सर्ग ३३-३७) । दिग्वर्णन : सुग्रीव का सेना के साथ राम के पास पहुँचना (सर्ग ३८-३९), दिशाओं का वर्णन करते हुए सुग्रीव का बानरसेना को चतुर्दिक् भेजना (सर्ग ४०-४३), विश्वासपात्र हनुमान् का दक्षिण दिशा में भेजा जाना तथा राम का उन्हें अभिमान रूप में अगूठी देना (सर्ग ४४) ।

(४) बानरों की खोज (सर्ग ४५-६७) — असफलता : बानरों का प्रस्थान तथा पूर्व, पश्चिम और उत्तर से बानरों का निराश लौटना (सर्ग ४५-४७), हनुमान् और उनके साथियों की विन्ध्य पर्वत में व्यर्थ खोज (सर्ग ४८-४९) । स्वयम्भवा : उनका कन्दरा में प्रवेश, स्वयम्भवा द्वारा सत्कार तथा आँखें बन्द करवाकर उन्हें गुंफा से बाहर ले जाना (सर्ग ५०-५२) । अंगद की निराशा : कन्दरा से निकलकर विन्ध्य-तल के सागर तट पर उनका पहुँचना, अंगद का प्रायोपवेशन के लिए प्रस्ताव, अंगद का सुग्रीव से भयभीत होना, सभी का दुःखी और निराश होना (सर्ग ५३-५५) । संपाति : संपाति के सम्मुख अंगद द्वारा जटायु-मृत्यु का उल्लेख, संपाति का वृत्तान्त पूछना और लंका की स्थिति बताना (सर्ग ५६-५८), उसका अपने पुत्र सुपाश्वं द्वारा रावण को सीता ले जाते देखने का उल्लेख करना, ऋषि निदाकर के कथनानुसार संपाति के पक्षों का फिर से उग आना (सर्ग ५९-६३) । सागर का तट : सागर के तट पर पहुँचकर अंगद की निराशा, जाम्बवान् द्वारा हनुमान् की कथा तथा सामर्थ्य-वर्णन, हनुमान् का महेन्द्र पर्वत पर चढ़कर कूदने के लिए तत्पर होना (सर्ग ६४-६७) ।

‘किष्किन्वाक/ण्ड’ की आधिकारिक कथावस्तु—सुग्रीव मैत्री तथा सीता-खोज—पद्मपुराण में भी है । सुग्रीव की राम द्वारा सहायता, उसके प्रतिद्वन्द्वी से

उसकी मुक्ति, वर्षा-वर्णन, शरद्वर्णन, सुग्रीव पर लक्ष्मण का कोप, सुग्रीव का बानर सेना को चतुर्दिक् भोजना, विश्वासपात्र हनुमान के हाथ राम का अँगूठी भिजवाना, सीता-खोज में असफलता, फिर किसी से सीता का लंका-निवास-ज्ञान होना, हनुमान् का लंकागमन तथा मार्ग में महेन्द्र पर्वत का मिलना थोड़े से परिवर्तन के साथ 'पद्यपुराण' में भी निबद्ध हैं। हेर-फेर के कारण जो नवीनता आ गयी है वह संक्षेपतः इस प्रकार है:—

बालि-सुग्रीव की उत्पत्ति सूर्यरजा: और इन्दुमालिनी से हुई है (पर्व ६)। यहाँ बालि-सुग्रीव का युद्ध न होकर साहसगति विद्याधर का युद्ध होता है तथा बालि के पूर्वजन्मों का भी उल्लेख है।

'रामायण' के 'सुन्दरकाण्ड की कथावस्तु को पाँच मुख्य भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) लंका में हनुमान् का प्रवेश (सर्ग १-१७).—समुद्रलघन लघन करते हुए हनुमान् से मीनाक का आग्रह, सुरसा से भेंट, सिंहका-वध (सर्ग १)। लंका वर्णन : विडाल जितने आकार में हनुमान् का लंका में प्रवेश, लंकादेवी को परास्त करना, नगर-महल-पुष्पक-शयनागारादि-वर्णन, सीता का पता न मिलना (सर्ग २-१२) अशोक-वन : हताश होकर हनुमान् का अशोक वन में प्रवेश और वहाँ राक्षसों से घिरी हुई सीता को देखना (सर्ग १३-१७)।

(२) रावण-सीता-संवाद (सर्ग १८-२८) :—रावण की प्रताड़ना: कामा-तुर रावण का सीता से अनुरोध तथा सीता की अस्वीकृति (सर्ग १८-२१), रावण का भय दिखलाना और दो महीने की अवधि देना, सीता की भर्त्सना, सीता को समझाने के लिए रावण द्वारा राक्षसियों का प्रयास और सीता की अस्वीकृति तथा विलाप (सर्ग २३-२६)। त्रिजटा का स्वप्न : त्रिजटा का राक्षस-पराजय-सूचक-स्वप्न-वर्णन (सर्ग २७), सीता-विलाप (सर्ग २८)।

(३) हनुमान्-सीता-संवाद (सर्ग २९-४०) :—सीता को शकुन होना (सर्ग २९) हनुमान् का राम-कथा-वर्णन (सर्ग ३०-३१), सीताका भयभीत होना (सर्ग ३२), हनुमान् का प्रकट होना, सीता का सन्देश, हनुमान् द्वारा राम का वर्णन, सीता का विश्वास करना (सर्ग ३३-३५), हनुमान् का राम मुद्रिका देना और शीघ्र छुटकारे का आश्वासन, हनुमान् की पीठ पर जाने की सीता द्वारा अस्वी-कृति, अभिज्ञान-स्वरूप सीता का काकवृत्तान्त सुनाना तथा चूड़ामणि देना, विदा (सर्ग ३६-४०)।

(४) लंका-बहल (सर्ग ४१-५५) :—अशोक वन-ध्वंस : हनुमान् द्वारा अशोक वन और चैत्य का विध्वंस तथा प्रहस्तपुत्र जम्बुमाली और रावणकुमार अक्ष का

बध (सर्ग ४१-४७)। हनूमान् बन्धन : ब्रह्मास्त्र से इन्द्रजीत् द्वारा बन्धन, राम दूत के रूप में हनूमान् का रावण से सीता मुक्ति का आग्रह, विभीषण द्वारा हनूमान् की रक्षा (सर्ग ४८-५२)। लंका-दहन : दण्डरूप हनूमान की पृष्ठ जलाई जाने की रावण द्वारा आज्ञा, हनूमान् द्वारा लंका-दहन, चारणों की बातचीत से हनूमान् को सीता की रक्षा का आश्वासन (सर्ग ५३-५५)।

(५) हनूमान् का प्रत्यावर्तन (सर्ग ५६-६८) :—समुद्र-लंघन : हनूमान् का आकाश-मार्ग से अपने साथियों के पास प्रत्यागमन और अपनी सफलता का वर्णन, (सर्ग ५६-५९), अगद द्वारा सीता मुक्ति का प्रस्ताव, जाम्बवान् का विरोध (सर्ग ६०), मधुवन में पहुँचकर हनूमान् आदि का उत्पात, दक्षिमुख का सुग्रीव को समा-चार देना (सर्ग ६१-६४), हनूमान् का रावण से सीता के जीवित होने का समा-चार कहना और अभिज्ञान देना (सर्ग ६५), राम का विलाप (सर्ग ६६), हनूमान् का काक-वृत्तान्त कहना और सीता-संवाद का उल्लेख करना (सर्ग ६७-६८)।

'सुन्दरकाण्ड' की कथावस्तु का भी 'पद्मपुराण' की कथावस्तु पर प्रचुर प्रभाव है। मार्ग में हनूमान् की गति का कुछ अवरोध तथा उसका निराकरण, लंका-दर्शन, उद्यान-प्रवेश, कामातुर रावण का सीता से अनुरोध एवं सीता की अस्वीकृति, रावण का भयदर्शन, सीता को राक्षसियों द्वारा फुसलाने का प्रयत्न, सीता-विलाप, हनूमान् द्वारा अंगूठी देना, हनूमान् का रामकथा कहना, सीता का सम्प्रेक्ष, सीता का चूड़ामणि-दान, उपान-उपद्रव, बन्धनग्रस्त हनूमान् का रावण के सम्मुख आना, विभीषण-हनूमान्-मिलन, लंका-ध्वश, हनूमान् का प्रत्यावर्तन तथा अपनी सफलता का वर्णन, राम को सीता का साभिज्ञान सन्देश दान-आदि सभी प्रमुख विषय यत्किचित् परिवर्तन के साथ 'पद्मपुराण' में निबद्ध है। जो थोड़ी नवीनता है वह 'रामायण' की कथा का विकास ही है यथा—

हनूमान् का वज्रायुध को मारना, उसकी पुत्री लंका सुन्दरी से युद्ध एवं उससे विवाह (पर्व ५२), विभीषण द्वारा हनूमान् का स्वागत (पर्व ५३), मन्दोदरी का सीता को फुसलाना, हनूमान् का मन्दोदरी की उपस्थिति में सीता से मिलना (पर्व ५३), लंका-दहन के स्थान पर लंकाध्वंस (पर्व ५३)। लंकाध्वंस का वृत्तान्त इस प्रकार है—इन्द्रजीत्, हनूमान् को बौधकर रावण के सम्मुख प्रस्तुत करता है। रावण उसे नगर के चारों ओर घुमाकर प्रजा को दिखाने का आदेश देता है।^{८०} किन्तु हनूमान् अपने बन्धनों को उसी प्रकार तोड़ लेता है—'मोहपाश यथा यतिः' (५३।२६२) और लंका ध्वंस करता है—

“पादविन्यासमात्रेण भङ्गत्वा गोपुरमुन्नतम् ।
 द्वाराणि च तद्यज्यानि क्षमुत्पत्य ययौ मुदा ॥
 शक्रप्रासादसंकाशां भवनं रक्षसां विभोः ।
 हनूमत्पादघातेन विस्तीर्णं स्तम्भसंकुलम् ॥
 पतता वेश्मना तेन यन्त्रिताऽपि महानरीः ।
 धरणी कम्पमानीता पादवेगानुधाततः ॥” ८१

‘रामायण’ के सुदृढ-काण्ड की कथावस्तु को तीन मुख्य भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) लंका का अभियान (सर्ग १-४१)—समुद्र की ओर प्रस्थान : समुद्र की बाधा के विचार से राम की निराशा तथा सुग्रीव द्वारा सेतुबन्ध का प्रस्ताव (सर्ग १-२), हनूमान् द्वारा लंका का वर्णन (सर्ग ३), समुद्र तक पहुँचना तथा राम का विरह-वर्णन (सर्ग ४-५) । रावणसभा : सभासदों द्वारा रावण को विजय का अश्वासन तथा सीता लौटा को देने की विभीषण की मन्त्रणा (सर्ग ६-६), दूसरे दिन विभीषण द्वारा चेतावनी, कुम्भकर्ण का जगकर रावण को दोष देना किन्तु सहायता की प्रतिज्ञा करना (सर्ग १०-१२), पुजिकस्थला के कारण पितामह के शाप का रावण द्वारा उल्लेख (सर्ग १३), इन्द्रजित् तथा रावण द्वारा निन्दित होकर विभीषण का रावण को छोड़कर जाना (सर्ग १४-१६) । विभीषण की शरणागति : सुग्रीवादि के विरोध करने पर भी हनूमान् के आप्रह् के कारण विभीषण को शरण मिलना, राम द्वारा विभीषण का अभिषेक, प्रायोपवेशन द्वारा समुद्र को विवश करने की विभीषण की मन्त्रणा (सर्ग १७-१९) शार्दूल द्वारा रावण को राम-सेना की सूचना मिलना सुग्रीव का अपनी ओर मिलाने के लिए रावण द्वारा शुक का भेजा जाना, शुक का बंधन और राम द्वारा मुक्ति (सर्ग २०) । सेतुबन्ध : तीन दिन के प्रायोपवेशन के बाद राम का समुद्र पर ब्रह्मास्त्र प्रयोग के लिए तत्पर होना । समुद्र की विनय तथा द्रुमकुल्य का ब्रह्मास्त्र द्वारा विध्वंस, सागर के कथन से नल द्वारा सेतु-बन्ध और सेना का सन्तरण (सर्ग २१-२२), लंका में अपशकुन तथा शुक का रावण को समाचार देना (सर्ग २३-२४) । शुक-सारण-शार्दूल : रावण-गुप्तचर शुक और सारण का विभीषण द्वारा बन्धन और राम द्वारा मुक्ति, उनका रावण को समाचार देना, शार्दूल का रावण द्वारा भेजा जाना, उसका बन्धन, मुक्ति और समाचार देना (सर्ग २५-३०) । राम का मायामय शीर्ष : विष्णुजिह्व द्वारा निर्मित राम के मायामय शीर्ष का सीता को दिखवाया जाना, सीता का बिलाप तथा सरमा द्वारा

रहस्योद्घाटन (सर्ग ३१-३३), सरमा द्वारा सीता को रावण-सभा का समाचार मिलना (सर्ग ३४), मात्स्यवान् का रावण को समझाना, अपशकुन होने पर भी रावण का दृढ़निश्चय होकर नगर के प्रवेशद्वारों की रक्षा की आज्ञा देना (सर्ग ३५-३६)। लंका का अवरोध : सुवेल पर्वत से राम का लंका-दर्शन (सर्ग ३७-३८), सुग्रीव-रावण-द्वन्द्व (सर्ग ४०), लंका विरोध तथा अंगद का दूतकार्य (सर्ग ४१)।

(२) युद्ध प्रकरण (सर्ग ४२-११२) : शरपाश : रात्रि तक दोनों सेनाओं का युद्ध, अंगद द्वारा इन्द्रजित् की पराजय, अदृश्य इन्द्रजित् द्वारा राम लक्ष्मण का शरपाश में बन्धन (सर्ग ४२-४५), रावण का सीता को पुष्पक से भेजकर आहत राम-लक्ष्मण को विल्लाना। सीता-विलाप, त्रिजटा की सान्त्वना (सर्ग ४६-४८), जगकर राम का लक्ष्मण के लिए विलाप, हनुमान् द्वारा विशल्या औषधि को लाने के लिए सुषेण का प्रस्ताव, गरुड़ का राम-लक्ष्मण को स्वस्थ करना (सर्ग ४९-५०) द्वन्द्व युद्ध : घूमाक्ष, वज्रदंष्ट्र, अकंपन तथा प्रहस्त का वध। रावण-लक्ष्मण, द्वन्द्व-युद्ध, लक्ष्मण का आहत होना, मुष्टिप्रहार से हनुमान् का रावण को मूर्च्छित करना, राम-रावण-युद्ध, रावण की पराजय और सज्जित होकर लौटना (सर्ग ५१-५६)। कुम्भकर्ण-वध : कुम्भकर्ण का जागरण (सर्ग ६०), विभीषण द्वारा राम से कुम्भकर्ण की निन्ना की कथा का उल्लेख (सर्ग ६१), कुम्भकर्ण द्वारा रावण की भरसना, कुम्भकर्ण-सुग्रीव-द्वन्द्व, राम द्वारा कुम्भकर्ण-वध, रावण-विलाप (सर्ग ६२-६८)। द्वन्द्व-युद्ध : रावण के चार पुत्रों (नरास्तक-देवान्तक-त्रिशिर-अतिकाय) का तथा दो भाइयों (महोदर-महापाशर्व) का वध, रावण-विलाप, इन्द्रजित् का अदृश्य होकर युद्ध करना तथा राम और लक्ष्मण को व्यथित करना (सर्ग ६९-७३)। लंकावहन : हनुमान् का औषधि-पर्वत लाकर आहतों तथा राम-लक्ष्मण को स्वस्थ करना (सर्ग ७४), रात्रि में बानरों द्वारा लंकादहन (सर्ग ७५), कम्पन, कुम्भ, निकुम्भ तथा मकराक्ष का वध (सर्ग ७६-७९)। इन्द्रजित्-वध : यज्ञ करके इन्द्रजित् का युद्धारम्भ (सर्ग ८०) मायामय सीता का बानर-सेना के सम्मुख वध, राम-विलाप तथा लक्ष्मण द्वारा सान्त्वना (सर्ग ८१-८३), विभीषण द्वारा मायामय सीता का रहस्योद्घाटन तथा निकुम्भला में इन्द्रजित्-यज्ञ-ध्वंस का परामर्श, सेना सहित लक्ष्मण द्वारा यज्ञ-ध्वंस तथा इन्द्रजित्-वध (सर्ग ८४-९०), सुषेण द्वारा लक्ष्मण की चिकित्सा (सर्ग ९१), रावण-विलाप, सुपाशर्व का रावण को सीता वध से रोकना (सर्ग ९२)। विभिन्न युद्ध : विरूपाक्ष, महोदर तथा महापाशर्व का वध (सर्ग ९३-९८), राक्षसियों का विलाप सर्ग (९४)। रावण-वध : रावण द्वारा लक्ष्मण को शक्ति लगना तथा हनुमान् द्वारा महोदय पर्वत से औषधि लाना (सर्ग ९९-१०१), इन्द्ररथ का मातलि सहित भेजा जाना, राम-रावण युद्ध का आरम्भ

(सर्ग १०२-१०४), अश्वत्थ का राम को आदित्य-हृदय नामक स्तोत्र सिखाना (सर्ग १०५), सात दिन के युद्ध के बाद ब्रह्मास्त्र से रावण-वध (सर्ग १०६-१०८) विभीषणदि का विलाप, रावण की अन्त्येष्टि (सर्ग १०९-१११) विभीषण का अभिषेक और राम का सीता को बुला भोजना (सर्ग ११२) ।

(३) प्रत्यावर्तन (सर्ग ११३-१२८)—अग्नि-परीक्षा : राम का सीता को अस्वीकार करना (सर्ग ११३-११५), लक्ष्मण द्वारा निमित्त चिता में सीता का प्रवेश (सर्ग ११६), देवताओं द्वारा राम की विष्णु रूप में पूजा (सर्ग ११७), अग्नि द्वारा राम को सीता का समर्पण (सर्ग ११८), शिव द्वारा प्रशंसा, दशरथ की शिक्षा, मृत वानरों का इन्द्र द्वारा जीवित किया जाना, विभीषण का यात्रा के लिए पुष्पक तैयार करना, वानरों को दान दिया जाना (सर्ग ११९-१२२) । वापसी-यात्रा : आकाश मार्ग से विभिन्न स्थानों का वर्णन करना, किष्किन्वा में वानर-पत्नियों का साथ लेना, भरद्वाज से भेंट (सर्ग १२३-१२४), हनुमान् का गुह्य और भरत को आगमन का समाचार देना (सर्ग १२५-१२६) । अयोध्या प्रवेश : अयोध्यावासियों सहित भरत और शत्रुघ्न का राम से मिलन, नन्दिग्राम में भरत का राम को शासन सौंपना, पुष्पक का कुबेर के पास लौटाया जाना (सर्ग १२७), रामाभिषेक, राम-राज्य-वर्णन तथा फलश्रुति (सर्ग १२८) ।

‘लंकाकण्ड’ की आधिकारिक कथावस्तु-राम-रावण-युद्ध, रावण-वध एवं सीतासहित राम-लक्ष्मण का प्रत्यावर्तन-‘पद्मपुराण’ में भी निबद्ध है । समुद्र की समस्या का हल, लंका-वर्णन, रावण-सभा, विभीषण का उद्बोधन, विभीषण का राम-सेना में जाना, राम का उसे लक्ष्मण स्वीकार करना, रावण की कूटनीति, शुक-सारण का उल्लेख, अपराकुल, अंगद का लंकागमन, दोनों सेनाओं का युद्ध, इन्द्रजित्-लक्ष्मण-युद्ध, लक्ष्मण शक्ति पर राम का विलाप, विशल्या के द्वारा लक्ष्मण का आरोग्य, भानुकर्ण का युद्ध, भ्रातृ-निग्रह के कारण रावण की चिन्ता, रावण की सिद्धि, रावण का युद्ध एवं चिरकाल बाद वीरता-पूर्वक मरण, राम-सीता-मिलन, सीता की अग्नि-परीक्षा, विभीषण द्वारा रामादि का सत्कार, विविध स्थानों का वर्णन करते हुए पुष्पक से राम-सीता-लक्ष्मण का प्रत्यावर्तन, अयोध्या में भरतादि के द्वारा स्वागत एवं राम का राज्याभिषेक आदि विषय रूपान्तर से ‘पद्मपुराण’ में भी वर्णित है । अन्तर इस प्रकार है—

‘पद्मपुराण’ में सीता का भाई भामण्डल अपनी सेना के साथ आकर राम की सहायता करता है । (पर्व ५५), विभीषण ३० अक्षौहिणी सेना के साथ राम से आ मिलता है (साध्याभिक्षाव्यसनाभिः त्रिषांदिभिः परिवारितः । अक्षौहिणी-भिर्युक्तो गन्तुं पद्मस्य संश्रयम् ॥ ५५।३९) । समुद्र नामक राजा की नस द्वारा

भरावय है, समुद्रमन्थन नहीं (५४।६५-६६) विशाल्वा जोषधि नहीं अपितु द्रोण-
मेघ की कन्या है जो लक्ष्मण को स्वस्थ करती है (पर्व ६५) भानुकर्ण (कुम्भकर्ण)
और इन्द्रजित् का वध नहीं हुआ है, वे बन्दी बनाये गये हैं और बाद में मुक्त होने
पर वे दीक्षा ले लेते हैं। रावण का वध राम नहीं लक्ष्मण चक्रवर्त्तन से करते हैं
क्योंकि 'नारायण' ही 'प्रतिनारायण' को मारते हैं। इन्द्रजित् यज्ञ नहीं करता अपितु
रावण बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करता है। रावण शक्तिनिहृत लक्ष्मण को देखने
की राम को अनुमति देता है। अग्नि-परीक्षा लंका में नहीं हुई है अपितु लवणा-
कुशोत्पत्ति के बाद हुई है (पर्व १०५)। रावण-वध के बाद राम-लक्ष्मण-सीता
ने छः वर्ष लंका में बिताये हैं (पर्व ८०)। युद्ध के पूर्व राक्षस-राक्षसियों तथा
रावण-मन्दोदरी की शृंगार चेष्टाओं का वर्णन किया गया है (पर्व ७१-७३)।

'रामायण' के उत्तरकाण्ड की कथावस्तु को तीन मुख्य भागों में विभक्त
किया जा सकता है—

(१) रावण-चरित (सर्ग १-३६)—(यह भाग अगस्त्य द्वारा कहा गया है)
वैश्रवणः विश्रवा-देववर्णिनी के पुत्र वैश्रवण का चतुर्थ लोकपाल द्वारा धनेश बनना
और पुष्पक प्राप्त कर उनका लका-निवास (सर्ग १-३)। राक्षस-वधः प्रहेति
तथा हात के वंश से उत्पन्न राक्षसों का लंका-निवास तथा विष्णु द्वारा पराजित
होने पर उनका पाताल-प्रवेश (सर्ग ४-८)। रावण का जन्मः विश्रवा-कैकसी से
दशमीव, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा तथा विभीषण का जन्म, वैश्रवण से ईर्ष्या होने के
कारण तानी भाइयों की तपस्या तथा ब्रह्मा से वर प्राप्ति (सर्ग ९-१०), रावण
की आशका से वैश्रवण का लका त्याग तथा कैलास पर निवास, राक्षसों का लका
में प्रवेश, भयमुता मन्दोदरी से रावण का विवाह (सर्ग ११-१२)। रावण की
प्रथम विजययात्राः वैश्रवण को पराजित कर रावण का पुष्पक को प्राप्त करना
(सर्ग १३-१५), रावण को नान्द-शाप, रावण का कैलास को उठाना तथा शिव
से 'रावण' नाम तथा 'चन्द्रहास' खड्ग को प्राप्त करना (सर्ग १६), वेदवती का
रावण को शाप देना (सर्ग १७), रावण द्वारा अनेक राजाओं की पराजय तथा
राजा अनरण्य का उसे शाप देना (सर्ग १८-१९), नारद की प्रेरणा से रावण
का यम पर आक्रमण तथा ब्रह्मा द्वारा यम से रावण की रक्षा (सर्ग २०-२२),
शूर्पणखा के पति विद्युज्जिह्व का रावण द्वारा वध और वधन पुत्रों की पराजय (सर्ग
२३) (पाँच प्रक्षिप्त सर्गः बलि से रावण की भेंट, सूर्य तथा चन्द्रलोक की यात्रा,
कपिल से भेंट)। रावण के अन्य युद्धः रावण द्वारा अनेक कन्याओं और पत्नियों
का हरण और शूर्पणखा को खर तथा दूषण के साथ वन्द्यकारण्य भेज देना। कुम्भ-
नसी के द्वारा मधु की रक्षा, नलकूबर का शाप (सर्ग २४-२६), मेघनाद द्वारा

इन्द्रबन्धन तथा देवताओं की प्रार्थना से मुक्ति, देवताओं से मेघनाद की वरप्राप्ति कि किसी भी युद्ध के पूर्व यज्ञ कर लेने पर वह अजेय होगा (सर्ग २७-३०) अर्जुन, कर्तवीर्य तथा बालि द्वारा रावण की पराजय (सर्ग ३१-३४) अर्जुन-हनुमत्कथा : हनुमान् की जन्म-कथा और चरित्र (सर्ग ३५-३६) ।

(२) सीतात्याग (सर्ग ३७-८२)—अतिथियों का प्रस्थान : अभिषेक के दूसरे दिन राम का ऋषियों, राजाओं, वानरों तथा राक्षसों द्वारा अभिवादन (सर्ग ३७), (पाँच प्रक्षिप्त सर्ग—बालि और सुग्रीव की जन्मकथा, रावण का मुक्ति-प्राप्त करने के उद्देश्य से सीताहरण का निश्चय, श्वेतद्वीप में स्त्रियों द्वारा रावण की पराजय) जनक, युष्वाजित् तथा प्रतापन का प्रस्थान, दो मास पश्चात् सुग्रीव, अंगद, हनुमान्, विभीषण तथा वानरों राक्षसों और ऋषियों के प्रस्थान (सर्ग ३८-४०), पुष्पक का प्रत्यागमन और राम द्वारा विदा (सर्ग ४१) । सीता-त्याग : आश्रमों को देखने जाने का सीता का दोहद, लोकापवाद के कारण वाल्मीकि आश्रम में सीता को छोड़ने की राम की आज्ञा (सर्ग ४२-४५), गंगा के उस पार लक्ष्मण का सीता को त्याग का समाचार देना, सीता का विलाप (सर्ग ४६-४८), वाल्मीकि का सीता को आश्रय देना (सर्ग ४९) सुमन्त्र का लक्ष्मण को सीता-त्याग का कारण बतलाना (सर्ग ५०-५२) । नृग, निमि और ययाति की कथाएँ : राम द्वारा लक्ष्मण को नृग, निमि और ययाति की कथाओं का सुनाया जाना (सर्ग ५३-५६) । (तीन प्रक्षिप्त सर्ग : राम से न्याय माँगने की श्वान की कथा, गूध तथा उलूक की कथा) । शत्रुघ्न-चरितः भागवत च्यवन के आप्रहृ से राम का लवण का वध करने के लिए शत्रुघ्न को भोजना (सर्ग ६०-६४), शत्रुघ्न का वाल्मीकि-आश्रम में रात्रि व्यतीत करना तथा उसी रात्रि में कुश-लव का जन्म (सर्ग ६५-६६), शत्रुघ्न द्वारा लवण-वध और मधुपुरी का बसाया जाना, १२ वर्ष बाद राम के पास लौटते समय वाल्मीकि के आश्रम में शत्रुघ्न का रामा-यण-गान सुनना । राम से मिलकर उनका अपने राज्य में वापिस जाना (सर्ग ६७-७२) । शम्बूक-वध . ब्राह्मण पुत्र की मृत्यु पर नारद का शूद्र की तपस्या को उसका कारण बताना, राम का दक्षिण जाकर शम्बूक-वध करना, अनन्तर अगस्त्य से दण्डकारण्य की कथा सुनना (सर्ग ७३-८२) ।

(३) अश्वमेध (सर्ग ८३-१११) अश्वमेध-माहात्म्यः—राजसूय यज्ञ का भरत द्वारा विरोध, लक्ष्मण का अश्वमेध का प्रस्ताव तथा उसके माहात्म्य में इन्द्र की ब्रह्महत्या से अपवमेध द्वारा शुद्धि की कथा सुनाना (सर्ग ८३-८६), राम द्वारा इसा के अश्वमेध से पुरुषत्व प्राप्त करने की कथा (सर्ग ८७-९०) । अश्वमेध में सीता का पृथ्वी-प्रवेश : नैमिषवन में अश्वमेध के अवसर पर कुश-लव का

सभा के साथने रामायण-नाम करना (सर्ग ६१-६४), कुश-लव को सीता पुत्र जानकर राम का बाल्मीकि के पास सन्देश भेजना और सभा के सम्मुख अपनी बुद्धि का साक्ष्य देने के लिए सीता से अनुरोध करना (सर्ग ६५), सीता की शपथ, पृथ्वी का सीता को अपने साथ ले जाना, राम द्वारा सीता को लौटा देने का व्यर्थ अनुरोध (सर्ग ६६-६८), कुश-लव द्वारा उत्तरकाण्ड का गान, सभा-विसर्जन, माताओं की मृत्यु (सर्ग ६९)। विजय-यात्राएँ : भरत के पुत्रों (तक्ष-पुष्कल) का तक्षशिना तथा पुष्कलवती में राज्य-स्थापन (सर्ग १००-१०१)। लक्ष्मण के पुत्रों (अंगद-चन्द्रकेतु) का अंगदीप और चन्द्रकान्त में राज्य-स्थापन। लक्ष्मण मृत्यु : काल का राम को अपना विष्णु-रूप प्राप्त करने का स्मरण दिलाना, दुर्वासा के आग्रह से लक्ष्मण का राम तथा काल के पास जाना और इसके कारण लक्ष्मण का सरयु-प्रवेश (सर्ग १०२-१०६)। स्वर्गगमन : राम का कुश को कुशावती में और लव को श्रावस्ती में राज्य देना, अपने पुत्रों (सुबाहु और शत्रुघातिन्) को राज्य देकर शत्रुघ्न का अयोध्या जाना, सुभीव और बानरों का जाना, विभीषण और हनुमान् को अमरत्व का वरदान (सर्ग १०७-१०८), राम का अपने भाइयों के साथ विष्णु-रूप में तथा बानरों का अंशानुसार देवताओं में प्रवेश, नागरिकों की स्वर्ग प्राप्ति तथा फलश्रुति (सर्ग १०९-१११)।

‘उत्तरकाण्ड’ के कथानक का ‘पद्मपुराण’ के ‘रावण-चरित’ (पर्व १-२०) और ‘उत्तरचरित’ (पर्व ८१-१२३) शीर्षकों में पर्याप्त प्रभाव देखा जा सकता है। वैश्रवण का लोकपाल बनना, पुष्पक प्राप्ति, राक्षसों का लका निवास, केकसी से रावणादि का जन्म, तीनों भाइयों की तपस्या तथा सिद्धि, रावण की लका-प्राप्ति, मयसुता मन्दोदरी से रावण का विवाह, रावण का कैलास को उठाना, ‘रावण’ नाम प्राप्त करना, रावण के अनेक विवाह, यम-इन्द्र-वरुण आदि पर उसकी विजय, माहिष्मती-नरेश और बालि से रावण का सघर्ष, सीता की दोह-दोत्पत्ति, राम का लोकापवाद के कारण उसे वन में छोड़वाना, सीता का बिलाप, सीता का दो पुत्रों को उत्पन्न करना, उनका प्रताप, राम-लक्ष्मण की सेना से उनका युद्ध, युद्ध में पिता-पुत्र का परिचय, सीता का राम-वरधार में जाकर अपने सतीत्व का परिचय देना, राम-लक्ष्मण-शत्रुघ्न-भरत की सन्तानों का राज्य करना तथा राम का स्वर्ग गमन—‘पद्मपुराण’ में भी हेर-फेर के साथ स्वीकृत है। मुख्य अन्तर संक्षेपतः इस प्रकार है:—

शम्बूक शूद्र नहीं, चन्द्रनखा का पुत्र है जो सूर्यहास सङ्घ की सिद्ध करता है, वह लक्ष्मण के द्वारा जनजाने में मारा जाता है, राम द्वारा जान-बूझकर नहीं। रावण की वशावली रामायणसे भिन्न है, सुकेश के तीन पुत्र हैं—मासी, सुमासी

और मात्स्यवान् । सुमाली का पुत्र रत्नश्रवा अपवी पत्नी केकसी (व्योमविन्दु की पुत्री) से क्रमशः दशानन, भानुकर्ण, चन्द्रनखा तथा विभीषण को उत्पन्न करता है । रावणादि विद्यासिद्धि करते हैं, तपस्था करके वर प्राप्ति नहीं । रावण का सुग्रीव की बहन श्रीप्रभा के साथ विवाह उल्लिखित है, साथ ही ६००० विद्याधर पत्नियों का उल्लेख है । रावण द्वारा सहस्ररश्मि, नलकूबर, इन्द्र, वरुण आदि की पराजय वर्णित है किन्तु ये इन्द्रादि देवता न होकर साधारण राजा माने गये हैं । रावण कैलास का शोभ करता है तथा बालि उसे दबा देता है । यहाँ शिवजी का उल्लेख नहीं है क्योंकि जैनियों के अनुसार वे देवता नहीं हैं । बालि से ही रावण 'अमोघविजया' शक्ति की प्राप्ति करता है । नल कूबर की पत्नी उपरम्भा के प्रेम प्रस्ताव को ठुकराकर रावण उदात्तता का परिचय देता है तथा विरक्त परनारी के साथ रमण न करने की प्रतिज्ञा करता है । रावण द्वारा सहस्ररश्मि की पराजय जिनपूजा भंग करने के कारण होती है तथा वह दीक्षा ले लेता है । बालि का वृत्तान्त विभिन्न है—दशानन ने किसी दिन द्रुत भेजकर बालि को आदेश दिया कि वह आकर उसे प्रणाम करे । बालि ने उत्तर दिया कि मेरा मस्तक जितेन्द्रों को छोड़कर और किसी के सामने नहीं झुकता । इस पर दशानन आक्रमण की तैयारी करने लगा । बालि ने सोचा कि न तो मैं राक्षस राजा के सामने झुक सकता हूँ और न जीवों का नाश करने वाला युद्ध ही कर सकता हूँ, अतः उसने सुग्रीव को राजा बना कर दीक्षा ले ली । बाद में दशानन का विमान किसी अवसर पर तपो-धन बालि के प्रभाव से अष्टापद पर्वत (कैलास) के ऊपर रुक गया । रावण उतरा तथा पर्वत को उठा कर उसे ले जाने लगा । बालि ने यह देखकर कि जीवों को कष्ट हो रहा है—पैर के अंगूठे से शिखर को दबाया जिससे दशानन पर्वत के नीचे दबकर भयकर 'राव' करने लगा, तभी से इसका नाम 'रावण' पड़ा । अन्त में बालि ने अपना अगूठा खींचकर रावण को छुड़ाया तथा रावण ने बालि की स्तुति की । हनुमान् रावण और सुग्रीव दोनों के रिश्तेदार हैं—उनके तीन पूर्व-जन्मों का उल्लेख है—वे पहले दमयन्त, सिंहचन्द्र तथा राजकुमार सिंहवाहन थे । उनकी अनेक पत्नियों का उल्लेख है । वे अजना-पवनंजय के पुत्र हैं । वे रावण की ओर से वरुण से युद्ध करते हैं, वे वानर नहीं वानरवंशी हैं । सीतात्याग का परोक्ष कारण यह बताया गया है कि उसने पूर्वजन्म में मुनि की निन्दा की थी । वयजंघ सीता की रक्षा करता है बाल्मीकि नहीं, सीता को सेनापति कृतान्तवचन छोड़कर जाता है लक्ष्मण नहीं । सीता के पुत्रों का नाम मदनकुश और अनंगलवण है—सब और कुश नहीं । हनुमान् लवणाकुश का पक्ष लेते हैं ।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि 'रामकथा' तो बाल्मीकि की ही

है किन्तु उसका संयोजन अपने दृष्टिकोण के अनुसार रचिषेण ने कर लिया है। 'साज' वही है, 'लज' बदली हुई है। कपड़ा वही है, कटिंग दूसरी तरह का है।

कथानक के अतिरिक्त 'पद्मपुराण' में मुख्य तथा गौण पात्रों के नाम भी वाल्मीकि-रामायण से बहुत कुछ लिये गये हैं।

शैलीगत प्रभाव

'पद्मपुराण' की शैली भी 'वाल्मीकि-रामायण' से पर्याप्त प्रभावित है। अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग 'वाल्मीकि-रामायण' का ही प्रभाव है।

'वाल्मीकि-रामायण' में सर्वाधिक रूप में प्रयुक्त अलंकार हैं—उपमा, उत्प्रेक्षा तथा रूपक। ये तीनों ही 'पद्मपुराण' में सर्वाधिकरूप में प्रयुक्त हैं। इनके विशेष उदाहरणों का संकेत हम अन्यत्र करेंगे।

'वाल्मीकि-रामायण' के नगरी-वर्णन, युद्ध-वर्णन, विलाप-वर्णन, तथा वैभव-वादि के वर्णनों से 'पद्मपुराण' के वर्णन पर्याप्त प्रभावित हैं, जिनके उदाहरण यहाँ वेना पुष्कल स्थान-सापेक्ष है।

'वाल्मीकि-रामायण' में रामकथा की कई बार पुनरुक्ति है यथा—हनूमान् द्वारा सीता के सम्मुख रामकथा-कथन, बालकाण्ड के प्रथम सर्ग में नारद द्वारा रामकथा-कथन, लवकुश के द्वारा रामकथा-गायन। इसी प्रकार 'पद्मपुराण' में भी अनेक बार रामकथा कही गयी है, यथा—हनूमान् द्वारा सीता के सम्मुख (पर्व ५३) तथा नारद के द्वारा लवणाकुश के समक्ष (पर्व १०२) रामकथा का प्रकाशन।

'वाल्मीकि-रामायण' के शिल्प-विधान का 'पद्मपुराण' पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। जैसे वहाँ बालकाण्ड के तीसरे सर्ग में पहले समस्त ग्रन्थ की संज्ञा शब्दों से अनुक्रमणी दी गयी है उसी प्रकार 'पद्मपुराण' के प्रथम पर्व में सूत्र विधान किया गया है।^{८९}

'वाल्मीकि-रामायण' में नामों की व्युत्पत्ति स्थान-स्थान पर दी गयी है। इसी प्रकार 'पद्मपुराण' में भी बहुत से ऐसे स्थल हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

वाल्मीकि-रामायण

हनूमान्—'तदा क्षीलाग्रशिलरे बाभो हनुरभज्यत।

ततोऽभिनामधेय ते हनुमानिति कीर्तितम् ॥ (४।६६।२४)

राक्षस—'प्रीतोऽस्मि तव वीरस्य क्षौदीर्याञ्च वसानन।

क्षीलाक्रान्तेन यो मुक्तस्त्वया रावः सुदारणः ॥

यस्मात्सोकत्रयं चैतद् रावितं भयमानतम् ।

तस्मात्तु रावणो नाम नाम्ना राजन् भविष्यति ॥

(७।१६।३६-३७)

राक्षस और यक्ष—रक्षाम इति यैरुक्तं राक्षसास्ते भवन्तु यः ।

यक्षाम इति यैरुक्तं यक्षा एव भवन्तु ते ॥^१

(७।४।१३)

इसी प्रकार 'मेघनाद और इन्द्रजित्' 'कुस-लव', 'बालि-सुग्रीव', 'कल्माष-पाद', 'दण्ड', 'सरमा', 'अहल्या', 'क्षुप', 'निमि', 'मिथि', 'विश्रवा', 'वेदवती', 'सगर', 'सुर', और 'असुर' आदि नामों का कारण निर्देश किया गया है ।^२

पद्मपुराण

१. हिरण्यगर्भ—“तस्मिन् गर्भस्थिते यस्माज्जाता वृष्टिर्हिरण्यमी ।

हिरण्यगर्भनाम्नासौ स्तुतस्तस्मात्सुरेश्वरैः ॥”

(३।१५६)

१. क्षत्रिय—“क्षत्राणो नियुक्ता ये तेन नाथेन मानवाः ।

क्षत्रिया इति ते लोके प्रसिद्धिं गुणतो गताः ॥”

(३।२५६)

३. प्रजाग या प्रयाग—“प्रजाग इति देशोऽसौ प्रजाम्योऽस्मिन् गतो यतः ।

प्रकृष्टो वा कृतस्त्याग. प्रयागस्तेन कीर्तितः ॥”

(३।२८१)

इसी प्रकार 'तीर्थङ्करो', 'कुलकरो', 'वैश्य', 'शूद्र', 'भरत क्षेत्र', 'माहण', 'त्राता', 'रावण', 'इन्द्रजित्' 'चन्द्रनला', 'भानुकर्ण', 'विभीषण', 'दशानन' आदि अन्य अनेक नामों की व्युत्पत्ति दी गयी है ।^४

'बाल्मीकि-रामायण' में जिस प्रकार माहात्म्य-कथन किया गया है उसी प्रकार फलश्रुति और माहात्म्यकथन पद्मपुराण में भी किया गया है (पर्व १२३) ।

उपर्युक्त तथ्यों का साक्षात्कार करने पर सिद्ध हो जाता है कि 'बाल्मीकि रामायण' से 'पद्मपुराण' पर्याप्त प्रभावित है, कथानक से भी और शैली में भी । ●

८३. वे० रामायण-७।३०।२२, ७।७६।४२, ७।५७।१४, ६।५७।१९, ७।२।३१ ७।१७।९, १।७०।३७, १।४५।३६-३७ आदि ।

विशेष देखें-पद्य० १।३-१७; १।२५६-२५९; ३।३८१; ४।५९, १२२, १२३; ५।४, १३, ६४, २१२-२१६, ३७८, ३८६; ६।३, ८४, २०८-२१४, ३८५, ३९०, ३९८, ४०१, ४०२, ४०६, ४०७, ७।२, १८, २२१-२२५, ३०१, ३०२; ८।१०३-१०५, १४४-१४५, १४२, ४३२, ३९४; ९।४४, १५३; ११।३०९, ३१०; १२।५४, ९७; १५।१३-१४, ८०, २०६; १६।१५५, १५६; १८।२, २८, १२२, १२४; २०।१५, १८, २०, २७, १७२, २१०; २१।७, २४, ५३, ७७, ८२, १४०; २२।१०२, ११३, १३१, १४७, १५५, १६०, १६९, १७५, २४।३, ११३; २५।२२, २६ आदि ।

तृतीय अध्याय

आचार्य रविशेषा के समय की परिस्थितियाँ

साहित्य समाज का दर्पण है। देशकाल का साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। कवि समाज का द्रष्टा होने के नाते जहाँ एक ओर परिस्थिति विशेष में उत्पन्न होता, बढ़ता, संस्कार ग्रहण करता, प्रेरणा प्राप्त करता, बनता और उस परिस्थिति को अपनी रचनाओं में प्रतिबिम्बित करता है वहाँ दूसरी ओर स्रष्टा होने के नाते वह अपनी सामसामयिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया के स्वरूप उन्हें बहुत कुछ परिष्कृत करने और बनाने का भी कार्य करता है। अतएव किसी कवि की रचना का युक्तियुक्त मूल्यांकन करने के लिए तत्कालीन परिस्थितियों का परिचय प्राप्त करना भी आवश्यक हो जाता है। इस अध्याय में हम बहिःसाक्ष के आधार पर अपने आलोच्य ग्रन्थ के रचयिता के समय की परिस्थितियों का अध्ययन करके यह देखने का प्रयास करेंगे कि वह उनसे कहाँ तक प्रभावित हुआ है। अपने अध्ययन के सौकर्य की दृष्टि से इन परिस्थितियों को हम चार भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) राजनीतिक परिस्थितियाँ, (२) सामाजिक परिस्थितियाँ, (३) धार्मिक परिस्थितियाँ एवं (४) साहित्यिक परिस्थितियाँ। रविशेषा के 'पद्म-पुराण' की रचना ६७८ ई० में हुई है। इस प्रकार हर्षकालीन एवं हर्षोत्तरकालीन परिस्थितियाँ रविशेषा-कालीन परिस्थितियाँ हैं। इन परिस्थितियों का अध्ययन करने के लिए हमने भारतीय एवं वैदेशिक विद्वानों के द्वारा प्रणीत ऐतिहासिक ग्रन्थों तथा साहित्य-ग्रन्थों को चुना है। इन्हीं के आधार पर जो कुछ सामग्री हमें तत्कालीन परिस्थितियों का परिचय देती है उसे ही हम बहिःसाक्ष कहते हैं। बहिःसाक्ष के आधार पर किये गये परिस्थितियों के अध्ययन के द्वारा हम कवि पर इनके प्रभाव को देखने का प्रयत्न करेंगे।

रविशेषकालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ

छठी शताब्दी भारतीय इतिहास का सबसे अधिक अन्धकारमय काल है। उस समय एक वैश्वीय शक्ति का अभाव था। छोटे-छोटे अनेक राज्य थे। फसतः विदेशी हूणों को आक्रमण करने का सुजबसर मिला। उन्होंने बड़ी निर्ममता एवं पाशविकता के साथ देश को रौंद डाला एवं गुप्त सभ्यता के चिह्नों को नष्ट कर डाला।^{८५} ऐसे ही समय भारतीय इतिहास के रंगमंच पर सम्राट् हर्षवर्धन का आविर्भाव होता है।

जिस समय हर्ष ने सत्ता सभाली, उस समय बड़ी विकट स्थिति थी। एक ओर पिता की मृत्यु हो चुकी थी, दूसरी ओर कुछ ही समय के उपरान्त उसके बहनोई कन्नौज के ग्रहवर्मन् का मालवा के राजा देवगुप्त ने वध कर दिया था। उसकी बहिन राज्यश्री को कन्नौज के कारागार में डाल दिया था। हर्ष का अग्रज राज्य-वर्धन कन्नौज को इन आपत्तियों से मुक्त कराने में तो सफल हुआ, किन्तु गौड़ के राजा शशांक ने धोखे से उसे मार डाला। ऐसी अवस्था में हर्ष को न केवल यानेश्वर वरन् कन्नौज की शासन-व्यवस्था अपने हाथ में लेनी पड़ी। यानेश्वर का वह उत्तराधिकार स्वरूप राजा बना, किन्तु कन्नौज में वह काफी समय तक अभि-भावक बना रहा। कालान्तर में कन्नौज में ही उसकी शक्ति प्रतिष्ठित हो गई और उसी को उसने अपनी राजधानी बना ली। दो राज्यों के संयुक्त हो जाने से तत्कालीन अस्थिर स्थिति में हर्ष को अपनी शक्ति प्रतिष्ठित करने में पर्याप्त सहायता मिली।^{८६}

हर्ष ने एक वृत् एवं विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की, किन्तु उसके सैनिक-अभियानों के सम्बन्ध में निश्चित, प्रामाणिक एवं विस्तृत सामग्री का अभाव है। बाण अपने 'हर्षचरित' में शशांक के प्रति सैनिक अभियान की प्रारम्भिक चर्चा के बाद ही चुप हो जाता है। युवान्-व्यांग के वृत्तान्त में आने वाले प्रसंग मात्र प्रशासनात्मक एवं अस्पष्ट और सामान्य हैं। अतः हर्ष की विजयों का विस्तृत या तिथि-क्रमानुसार विवरण दे सकना संभव नहीं है। हम केवल इतना कर सकते हैं कि उन शक्तियों का नामोल्लेख कर दें जिनके साथ उसने युद्ध किया तथा उप-लब्ध अत्यल्प सामग्री के आधार पर परिणामों का यथा सम्भव निर्वेश कर दें।^{८७}

८५. बोध एम० एन०, भारत का प्राचीन इतिहास, १ (द्वितीय प्रेस लि० प्रमाण, सस्क० १९४१ ई०) पृ० ३८७।

८६. जिपाठी रमाशंकर, प्रा० भा० इतिहास, (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, सस्क० १९६२ ई०) पृ० २२१-२२।

दि क्लैसिकल एज, पृ० ९९-१०२।

८७. बी क्लैसिकल एज, पृ० १०३।

मुख्य रूप से हर्ष के सैनिक-अभियानों के चार दौर रहे हैं जिनमें उसे (१) बलभी और गुर्जर के शासकों, (२) चालुक्य राजा पुलकेशिन् द्वितीय, (३) सिन्धु और (४) पूर्व के मगध, गौड़, ओड़ू तथा कोंगोंदा (जिला गंजाम) के शासकों के साथ युद्ध करना पड़ा।^{८८}

बलभी के पाँच शासक शीलादित्य प्रथम धर्मादित्य, खरगूह, धरसेन तृतीय, ध्रुवसेन द्वितीय बालादित्य तथा धरसेन चतुर्थ हर्ष के समकालीन थे। त्रिपाठी के अनुसार 'यह निर्विवाद सिद्ध है कि बलभी के ध्रुव भट्ट अथवा ध्रुवसेन द्वितीय को उस (हर्ष) के आक्रमण का शिकार होना पड़ा था। हर्ष प्रारम्भ में विजयी भी हुआ और ध्रुव भट्ट को भड़ोच के दहा द्वितीय की शरण लेनी पड़ी। दहा की सहायता से इस राजा ने अपना पैतृक राज्य पुनः प्राप्त कर लिया।^{८९} किन्तु आर० सी० मजूमदार ने इस सम्बन्ध में शंका उठाई है। उनकी शंका का आधार अत्यन्त पुष्ट है। प्रामाणिक स्रोतों के आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि बलभी के साथ हर्ष का संघर्ष हुआ था जिसमें उसे सफलता नहीं मिली।^{९०}

सम्भवतः उपर्युक्त संघर्ष ही "सम्पूर्ण दक्षिणापथ के स्वामी" पुलकेशिन् द्वितीय के साथ हर्ष के युद्ध का कारण बना। ऐहोल-मेगुटी-अभिलेख में इसका पुनर्केशिन् के पक्ष की ओर से दृष्ट वर्णन है। इसमें स्पष्ट है कि हर्ष को पुलकेशिन् के विरुद्ध सफलता नहीं मिली और वह दक्षिण में अपने राज्य का विस्तार न कर सका।^{९१}

हर्षचरित में आये उल्लेख—'सिन्धुराज को मथकर उसकी सम्पत्ति स्वायत्त कर ली'^{९२} के आधार पर अनुमान लगाया जाता है कि उसने सिन्धु पर विजय प्राप्त की किन्तु युवान्-च्वांग के कथन से स्पष्ट है कि सिन्धु एक सशक्त एवं स्वतन्त्र राज्य था और यदि हर्ष ने आक्रमण किया भी होगा तो असफल रहा होगा।^{९३}

वस्तुतः हर्ष को पूर्व में शानदार विजय प्राप्त हुई। 'युवान्-च्वांग के जीवन' से स्पष्ट है कि ६४३ ई० तक हर्ष ने कोंगोंदा, उड़ीसा और मगध इत्यादि पर अपना अधिकार कर लिया था। कामरूप के शासक भास्करवर्मन् के साथ प्रारम्भ से मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो चुका था। बाद में भास्करवर्मन् प्रायः अधीनस्थ राजा हो गया

८८ वही, पृ० १०३।

८९ त्रिपाठी, प्रा० भा० इति० पृ० २२३।

९० बी कर्लसिकल एज, पृ० १०३-१०४।

९१ बी कर्लसिकल एज, पृ० १०४-६, त्रिपाठी, प्रा० भा० इति० पृ० २३३

९२ अत्र पुरुषोत्तमेन सिन्धुराज प्रसज्य लक्ष्मी आत्मोद्धता। हर्षचरित।

९३ बी कर्लसिकल एज, पृ० १०६।

था।^{१४} शासक को पराजित करके बंगाल पर भी हर्ष ने अधिकार कर लिया था।^{१५}

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हैं कि हर्ष ने अपने साम्राज्य के लिए अनेक युद्ध किये, नये राज्यों को जीतकर अपने साम्राज्य की सीमा का विस्तार किया। उसने उत्तरापथ में एक विस्तृत एवं दृढ़ साम्राज्य की स्थापना की। उसने अधिकांश युद्ध प्रारम्भ में ही किये, किन्तु “६४३ ई० के कोंगोंदा (गंजाम जिला) युद्ध से प्रमाणित है कि अपने घटना-बहुल शासन के अन्त तक उसे युद्ध करते रहना पड़ा।”^{१६} इस प्रकार यह निश्चित है कि कुछ समय के लिए हर्ष ने उत्तरी भारत की अस्थिर राजनीतिक दशा को स्थायित्व प्रदान किया और विदेशी आक्रमणों का दौर एक केन्द्रीय शक्ति स्थापित हो जाने के कारण कुछ समय के लिए रुक गया।

हर्ष ने चीन के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किये थे। इस सम्बन्ध के परिणाम-स्वरूप कई बार दूतों का पारस्परिक आदान-प्रदान हुआ।^{१७}

प्रायः ४० वर्षों के घटनापूर्ण शासन के पश्चात् ६४७ अथवा ६४८ ई० में हर्ष की मृत्यु हो गयी। हर्ष के पश्चात् उसका अपना कोई उत्तराधिकारी न था जिससे साम्राज्य में अराजकता फैल गयी। उसके भग्न अरुणाक्ष या अर्जुन ने उसकी गद्दी पर अपना अधिकार कर लिया। इस नये शासक ने एक चीनी-मिशन का विरोध किया। हर्ष के जीवन के अन्तिम दिनों में भेजे गये इस चीनी मिशन के थोड़े-से रक्षकों का वध करा दिया गया तथा उसका माल लूट लिया गया। मिशन का नेता-कांग-ह्वेन-तो सौभाग्य से भाग निकला। उसने नेपाल के तिब्बती नरेश से सैनिक सहायता ली। यह तिब्बती नरेश चीन की एक राजकुमारी ब्याह लाया था। वाग ने तिरहुत पर अधिकार कर लिया तथा अनेक युद्धों के बाद अर्जुन को पराजित कर एव बन्दी बनाकर चीन ले गया। अर्जुन साम्राज्य को जोड़े रखने वाली अन्तिम कड़ी था। इसके टूटते ही साम्राज्य बिखरने लगा।^{१८}

“पश्चात् साम्राज्य के पंजर के लिए राजाओं में होड़ लग गयी। आसाम के भास्करवर्मन् ने हर्ष के प्रान्त कर्ण-सुवर्ण तथा समीपस्थ भूमि पर अधिकार कर लिया और वहाँ से एक ब्राह्मण को भूमिदान कर लेख-पत्र निकाला। मगध में हर्ष के सामन्त माधव गुप्त के पुत्र आदित्यसेन ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी और सम्राटों के विरुद्ध धारण कर अवमेध का अनुष्ठान किया। पश्चिम और उत्तर-

१४. वही, पृ० १०६-१०८।

१५. घोष, भा० प्रा० इति०, पृ० ३९४।

१६. विपाटी, प्रा० भा० इति० पृ० २२५।

१७. घोष, भा० प्रा० इति० पृ० ३८९।

१८. विपाटी, प्रा० भा० इति०, पृ० २३५, घोष, भा० प्रा० इति०, पृ० ४०२।

पश्चिम में जिन शक्तियों पर हर्ष का आतंक छाया रहता था वे अब स्वतन्त्र हो गयीं ।^{११}

हर्ष ने उत्तरी भारत की राजनीति में जो स्थिरता लायी, वह उसकी मृत्यु के पश्चात् ही छिन्न-भिन्न हो गयी। विदेशी आक्रमण पुनः प्रारम्भ हो गये। उत्तर में चीन और तिब्बत की ओर से आक्रमण हुए। उधर अरबों ने सिन्धु पर आक्रमण किया। इन आक्रमणों का, विशेष रूप से मुस्लिम आक्रमणों का, क्रम बराबर जारी रहा। इन आक्रमणों के अतिरिक्त हर्ष के पश्चात् घटने वाली सबसे महत्वपूर्ण घटना युद्धप्रिय राजपूत जाति का उदय एवं उत्तर भारत में कई राजपूत राज्यों की स्थापना है। कन्नौज में गुर्जर-प्रतिहार तथा गहड़वारी, बुन्देलखण्ड में बन्देल, मालवा में परमार, अजमेर और दिल्ली में चौहान, बिहार और बंगाल में पाल इत्यादि राजपूतवंश उल्लेखनीय हैं। इन्होंने भूटे आत्मगौरव, पारस्परिक द्वेष तथा आपसी युद्धों के कारण भारत को शक्ति-सम्पन्न करने के बजाय कमजोर ही अधिक बनाया।

इन परिस्थितियों का रविषेण के हृदय और मस्तिष्क पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। साम्राज्य की सुव्यवस्था और अराजकता दोनों के ही चित्र 'पद्मपुराण' में मिलते हैं। यह कहना असम्भव नहीं प्रतीत होता कि हूणों की सेनाओं के वर्णन तथा उनका धर्षण आदि तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का ही परिणाम है।

रविषेणकालीन सामाजिक परिस्थिति

रविषेणकालीन सामाजिक परिस्थिति का ज्ञान हमें ह्युआन-चुआंग एवं इत्सिंग के यात्रा वृत्तान्तों से पर्याप्त मात्रा में हो जाता है।

ह्युआन-चुआंग हमें बताता है कि जाति-प्रथा ने हिन्दू-समाज को जकड़ रखा था। ब्राह्मण धर्म-कर्म करते थे। क्षत्रिय शासक-वर्ग थे। राजा प्रायः क्षत्रिय होते थे। वैश्य व्यापारी तथा शिल्पी थे। शूद्र श्रेणी तथा परिचर्या का कार्य करते थे। ह्युआन-चुआंग के शब्दों में—'क्षत्रिय और ब्राह्मण अपनी पोशाक आदि की दृष्टि से साफ हैं और वे वस्त्र और ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। धनी व्यापारी हैं जो सोने की वस्तुओं का व्यापार करते हैं। वे प्रायः नगे पाँव जाते हैं, बहुत कम लोण पादुकाएँ पहिन्ते हैं। वे अपने दाँतों पर लाल या काले निशान लगाते हैं, वे अपने बाल ऊपर बाँधते हैं और कानों में छिद्र करते हैं। शरीरिक सफाई का वे बहुत ध्यान रखते हैं। खाने से बची हुई चीज को वे कभी भी नहीं खाते। प्रयोग करने के

बाद सकड़ी तथा मिट्टी के बर्तन नष्ट कर दिये जाते हैं, धातु के बर्तनों को रगड़ कर भाँजा जाता है। खाने के बाद वे अपने मुँह को बेंत की शाखा से साफ करते हैं और हाथ तथा मुँह धो लेते हैं।^{१००}

इस्लाम (जिसने ६७२ और ६८८ के बीच भारत-यात्रा की थी) बताता है कि भारत में पुरोहित लोग खाना खाने से पहले हाथ पैर धो लिया करते थे। वे अलग-अलग छोटी-छोटी कुसियों पर बैठते थे जो बेंतों की बनी होती थीं। सच्चे तथा भूठे भोजन में भेद रखना भारत का रिवाज था। यदि एक कौर भी खा लिया जाए तो वह भूठा हो जाता था और उन बर्तनों का प्रयोग नहीं किया जाता था जिसमें वह भोजन परोसा जाता था। यह प्रथा धनी लोगों में ही नहीं, निर्धनों में भी थी। खाना खाने के बाद प्रत्येक भारतीय को मुँह साफ करना पड़ता था। इस्लाम बताता है कि जब एक बार उत्तर के मंगोलिया के लोगों ने एक दूत मण्डल भारत भेजा तो उसके सदस्यों का उपवास और अपमान किया गया क्योंकि वे अपने शरीर तथा मुँह साफ नहीं करते थे।^{१०१}

ह्यूआन-चुआंग और इस्लाम दोनों के अनुसार ही भारत की भोजन-व्यवस्था बड़ी शुद्धिपरक थी।^{१०२} व्याज और लहसुन बहुत कम प्रयुक्त होते थे। उन्हें खाने वालों को समाज से निष्कासित कर दिया जाता था।

‘भारत की समृद्धि से ह्यूआन-चुआंग अत्यधिक प्रभावित हुआ। वह हमें बताता है कि लोगों का जीवन-स्तर बहुत ऊँचा था। सोने और चाँदी दोनों के निष्के प्रचलित थे। कौड़ियो और मोती भी मुद्रा के रूप में प्रचलित थे। भूमि उर्वर थी और उत्पादन बहुत ज्यादा था। विभिन्न प्रकार की सब्जियों तथा फलों की उपज की जाती थी। लोगों का मुख्य आहार था—गेहूँ की चपातियाँ, भुने हुए दाने, चीनी, घी और दूध के पदार्थ। कुछ अवसरों पर मछली, मृग और भेड़ का मांस भी खाया जाता था। गाय तथा कुछ जंगली जानवरों का मांस पूर्णतः वर्जित था। जो व्यक्ति नियमों का उल्लंघन करता था उसे निष्कासित किया जा सकता था।^{१०३}

ह्यूआन-चुआंग ने लिखा है कि अन्तर्जातीय विवाह नहीं होते थे। एक ही जाति के विभिन्न वर्गों में भी विवाह सीमित थे। भोजन तथा विवाह की दृष्टि से विभिन्न जातियों में कुछ नियन्त्रण थे किन्तु उनमें सामाजिक आचार-व्यवहार के

१००. बी० डी० महाजन . प्रा० भारत का इति०, (एम० एच एच कं० दिल्ली,

१९६२ ई०) पृ० ४८०-४८१।

१०१. वही, पृ० ५०२-५०३।

१०२. वही, पृ० ४८१, ५०४।

१०३. वही, पृ० ४७९-४८०।

मार्थ में ये नियन्त्रण बाधक नहीं थे। विजया-पुनर्विवाह की प्रथा नहीं थी। उच्च वर्गों में तो पर्व की प्रथा रही प्रतीत नहीं होती। हमें बताया गया है कि ह्युआन-चुआंग् के उपदेश सुनते समय राज्यश्री पर्दा नहीं करती थी। सती-प्रथा प्रचलित थी। रानी यशोमती अपने पति प्रभाकरवर्धन के साथ ही जल गयी। राज्यश्री भी जलने वाली ही थी और उसकी जीवनरक्षा बड़ी कठिनाई से की गयी।^{१०४} 'हर्ष-चरित' में बाण ने शूद्रा माता और ब्राह्मण पिता से उत्पन्न अपने भाई का उल्लेख किया है जिससे ब्राह्मणों का नीच वर्णों की कन्या लेने का अधिकार घोषित होता है।

ह्युआन-चुआंग् हमें बताता है कि रेशम, ऊन और सूत के कपड़े बनाने की कला अत्यन्त परिष्कृत थी।^{१०५}

ह्युआन-चुआंग् लिखता है—“राजा तथा उच्च व्यक्तियों के आभूषण असाधारण थे। कीमती पत्थरों का 'तारा' और हार उनके मिर के आभूषण हैं और उनके शरीर अंगूठियों, कंगनों तथा मालाओं से सुसज्जित है। धनवान् व्यापारी लोग केवल कगन पहनते हैं। यद्यपि लोग सादे कपड़े पहिनते थे परन्तु वे आभूषणों के शौकीन रहे प्रतीत होते हैं”।^{१०६} इत्सिंग बताता है कि सारे भारत में लोग दो कपड़े पहिनते थे। वे चौड़ी लिनन के थे और आठ फुट लम्बे थे। उनकी कटाई या सिलाई नही की जाती थी। उन्हें केवल कमर के चारों ओर बाँध लिया जाता था जिसमें शरीर का निचला भाग ढक जाए। उत्तर-पश्चिम के लोग कपड़े प्रयुक्त ही नहीं करते थे। वे ऊन और चमड़े के वस्त्र पहिनते थे। वे कमीजें और पायजामे पहिनते थे। इत्सिंग एक अन्य प्रकार के वस्त्र का भी उल्लेख करता है जो बाएँ कंधे के ऊपर पहिना जाता था। घाघरा शरीर के निचले भाग के चारों ओर बाँध लिया जाता था। इसके लिए मुलायम सफेद कपड़ा प्रयोग किया जाता था।^{१०७}

हर्ष के बाद चालुक्यों के काल में ब्राह्मणों की दशा अत्यन्त पुष्ट हो गयी थी। वे सभी जातियों में सर्वाधिक सम्मानित थे। उन्हें ऐसे अधिकार और सुविधाएँ प्राप्त थी जो अन्य लोगों को प्राप्त नहीं थी, उदाहरणतया प्राणदण्ड ब्राह्मणों को नहीं दिया जाता था।^{१०८} इस समय स्त्रियों का सम्मान होता था।^{१०९}

१०४ बहो, पृ० ४८१।

१०५ बहो, पृ० ४८०।

१०६ बहो, पृ० ४८०।

१०७ बहो, पृ० ४०३।

१०८ बहो, पृ० ४१३।

१०९ बहो, पृ० ४१४।

भाव यह है कि रविषेण ने दो युग देखे थे एक हर्षकालीन और दूसरा हर्षोत्तर-कालीन। इन दोनों ही युगों में समाज चार वर्णों में विभक्त था। हर्ष के बाद ब्राह्मणों का अधिक बोलबाला हो गया था। वह इतिहास के स्वर्णकाल का अव्य-बहितोत्तर समय था जिसमें समाज-व्यवस्था के विद्रूप होने का प्रश्न ही नहीं उठता। अपने काल की सामाजिक परिस्थिति से वे पर्याप्त प्रभावित हुए हैं जिस का संकेत उनके ग्रंथ में अनेक स्थलों पर है।

रविषेणकालीन धार्मिक परिस्थिति

आचार्य रविषेण के समय की धार्मिक परिस्थिति पर विचार करने के लिए हमें हर्षकालीन और हर्षोत्तरकालीन धार्मिक परिस्थिति को ही लेना होगा। हर्षकालीन धार्मिक परिस्थिति का पर्याप्त ज्ञान हमें ह्युआन्-चुआंग् के यात्रा-विवरण से हो जाता है। यद्यपि ह्युआन्-चुआंग् ने भारत की हर चीज को 'बौद्धधर्म के चक्षु' से देखकर^{११०} बौद्धधर्म की ही अधिक प्रशंस्यता प्रतिपादित की है तथापि अन्य धर्मों की स्थिति भी व्यजित हो जाती है।

हर्ष ने अपनी सारी निष्ठा तीन देवताओं-बुद्ध, सूर्य और शिव में बाँट दी थी और उन तीनों की सेवा के निमित्त अमूल्य देवस्थान स्थापित किये थे। उसके समय में बौद्धधर्म, जैन धर्म तथा ब्राह्मण हिन्दूधर्म साथ-साथ फलते फूलते रहे और विविध धर्मों के अनुयायी परस्पर शान्ति-व्यवहार स्थापित रखकर जीवन-यापन करते थे।^{१११} कन्नौज की सभा और प्रयाग के पंचवर्षीय वितरण से हर्ष की धार्मिक उदारता प्रकट होती है तथापि जीवन के उत्तरकाल में प्रायः वह कट्टर बौद्ध हो गया था। इस प्रकार हर्ष की सरक्षकता में बौद्धधर्म कन्नौज में फूल-फल बना था यद्यपि अन्य प्रवेशों में उसका काफी ह्रास हो गया था।^{११२}

'ह्युआन्-चुआंग् के वृत्तान्त और हर्षचरित से स्पष्ट है कि हर्ष के साम्राज्य में बौद्ध, ब्राह्मण तथा जैन धर्मों का विशेष प्रचार था। इनमें से अन्तिम का वैशाली पीण्डुवर्धन और समनट को छोड़ देश के अन्य भागों में प्रायः अभाव हो चला था। इन स्थानों में अवश्य दिगम्बरों की बहुलता थी। इस धर्म की दूसरी शाखा श्वेताम्बरों की थी। ह्युआन्-चुआंग् को बौद्ध धर्म का प्रसार अत्यन्त बिस्मृत जान पड़ा, पर वस्तुतः कौशाम्बी, श्रावस्ती और वैशाली आदि स्थानों में उसका अत्यन्त ह्रास हो चला था। बौद्धधर्म और उसकी सक्रियता के केन्द्र मठ और विहार थे

११० दी र्वर्गमिणल एज, पृ० ११७।

१११ घोष, भा० का प्रा० इति० पृ० ३९९।

११२ सिपाठी, प्रा० भा० का इति० पृ० २३३।

जिनका अस्तित्व गृही लोगों के दान पर अवलम्बित था। बौद्धधर्म के मुख्य सम्प्रदाय महायान और हीनयान थे जिनमें से प्रथम का विशेष प्रचार हुआ था।^{१११} यामी ने उसकी १८ शाखाओं का भी वर्णन किया है जो अपने क्रियानुष्ठानों में एक दूसरे से भिन्न थे और जिनमें से प्रत्येक अपनी बौद्धिक महत्ता की घोषणा करता था।^{११४} इस प्रकार के संघर्ष बौद्ध धर्म के ह्रास के कारण हुए और उनके विरुद्ध प्रतिक्रिया से ब्राह्मण धर्म को बल मिला जो गुप्तकाल से ही पुनरुज्जीवित हो चला था। ब्राह्मण धर्म के मुख्य केन्द्र हर्ष के साम्राज्य में प्रयाग और वाराणसी थे। जैन और बौद्ध धर्मों की भाँति ही ब्राह्मण धर्म भी स्पष्टतः मूर्तिपूजक था। महायान में तो बुद्ध और बोधिसत्त्वों की पूजा सर्वमान्य थी ही। लोकप्रिय ब्राह्मण देवता आदित्य, शिव तथा विष्णु थे और उनकी मूर्तियाँ मन्दिरों में प्रतिष्ठापित की जाती थीं जहाँ उनकी सविस्तर पूजा होती थी।^{११५} ब्राह्मण यज्ञाग्नि को प्रज्वलित करते, गाय का आदर करते तथा सौभाग्य और समृद्धि के अर्थ अनेक क्रियाओं के अनुष्ठान करते थे।^{११६} ब्राह्मण धर्म की विशेषता उसकी दार्शनिक शाखाओं तथा साधुवर्गों की अनेकता में थी। बाण ने कपिल और कणाद के अनुयायियों, वेदान्तियों, आस्तिकों (ऐश्वर्यकरणिकों), लोकायतिकों (निरीश्वरवादियों) का उल्लेख किया है।^{११७} इसी प्रकार साधुओं के अनेक वर्गों का भी उसने उल्लेख किया है। इनमें से मुख्य निम्नलिखित थे—केशलुचक (सिर के बाल उखाड़ने वाले), पाशुपत, पंचरात्रिक, भागवत आदि।^{११८} 'जीवन वृत्तान्त' में भी भूतों, कापालिकों, जूतकों, सांख्यों, वैशेषिकों आदि का वर्णन है।^{११९} इन विविध वर्गों के परिचय, विश्वास तथा क्रियानुष्ठान भिन्न-भिन्न थे। ये भिक्षाटन करते थे और व्यक्तिगत आवश्यकताओं की परवाह किये बिना अपने दृष्टिकोण से सत्य की खोज में लगे रहते थे।^{१२०}

हर्ष के उपरान्त बौद्धधर्म का प्रचार क्षीण होने लगा। अराजकता के कारण विभिन्न राजकुल विभिन्न धर्मों को आश्रय देने लगे। चालुक्य-शासक कट्टर

११३ त्रिपाठी, प्रा० मा० का इति, पृ० २३३।

११४. वाट्स १, पृ० १६२।

११५. हर्षचरित, काबिल टागस अनुवित, पृ० ४४।

११६. वही, पृ० ४४-४५ और देखिये पृ० ७१, ९० १३०।

११७. वही, पृ० २३६।

११८. वही, पृ० ३३, ४९, २३६।

११९. लाइफ, पृ० १६१-६२।

१२०. वाट्स १, पृ० १६०-१६१।

हिन्दू थे। पुलकेशिन् द्वितीय के पुत्र विक्रमादित्य प्रथम के शासन काल (३५४-६०० ई०) में ब्राह्मण धर्म को प्रशय मिला। वादामि के चालुक्य-शासक कट्टर हिन्दू थे परन्तु जैन और बौद्धों के प्रति भी वे सहिष्णु थे। उनके समय में कई लोग पूर्ण स्वतन्त्रता से जैन-सिद्धान्तों को मानते थे। एहोल का प्रशस्तिकार कविकीर्ति जैन था और स्वयं पुलकेशिन् द्वितीय की संरक्षता में था। बौद्धधर्म गिरती हानत में था परन्तु ह्युआन-त्सांग् के यात्राकाल में चालुक्य राज्य में कई मठ और स्तूप विद्यमान थे जिससे चालुक्यों की धार्मिक सहिष्णुता का पता चलता है। जैन और हिन्दूधर्म बौद्धधर्म को क्रमशः दबाते चले जा रहे थे। याज्ञिक क्रियाओं की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हो रहा था और इस विषय पर कई ग्रंथ भी इस काल में लिखे गये। अकेले पुलकेशिन् प्रथम ने कई बड़े यज्ञ किये यथा—अश्वमेध, वाजपेय इत्यादि। हिन्दूधर्म के पौराणिक रूप की भी लोकप्रियता बढ़ती गयी।^{१२१}

भाव यह है कि रविघेण के काल में बौद्ध धर्म धीरे-धीरे भारत से अपमृत होता जा रहा था और ब्राह्मण तथा जैन-धर्म बल पकड़ रहे थे। यह स्वाभाविक ही था कि ऐसे समय में ये दोनों धर्म परस्पर अपनी उदात्तता प्रकट करने के लिए एक दूसरे का खण्डन करते। इसी कारण ब्राह्मण निर्ग्रन्थ लोगों का तिरस्कार और जैनधर्म का खण्डन करते होंगे तथा जैनी ब्राह्मणों और यज्ञ क्रियाओं का। इसका रविघेण पर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा और उन्होंने जैनधर्म-ग्रन्थ की रचना करके ब्राह्मणों के प्रति अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत कर दिया है।

रविघेणकालीन साहित्यिक परिस्थिति :

सप्तम शताब्दी ई० तक संस्कृत साहित्य पर्याप्त प्रौढ़ी धारण कर चुका था। कविकुल गुरु कालिदास, कवि अश्वघोष, प० विष्णु शर्मा एवं चाणक्य आदि की रचनाओं से देववाणी का आंचल भरा जा चुका था। रससिद्ध कवियों के साथ ही चमत्कारी कवियों की भी रचनाएँ पूर्ण प्रकर्ष के साथ आने लगी थीं। रविघेण के सामने एक प्रशस्त साहित्यिक परम्परा प्रेरणा स्रोत के रूप में विद्यमान थी।

सप्तम शती ई० के प्रारम्भ में भारवि ने 'किराताजुनीय' नामक प्रसिद्ध संस्कृत महाकाव्य की रचना की। चालुक्यवंशी राजा पुलकेशी के एहोल के ६३४ ई० के शिला लेख में भारवि का नाम लिया गया है।^{१२२} यद्यपि इसमें कलापक्ष

१२१ घोष, भारत का प्रा० इति०, पृ० ४३०

१२२ 'वैनायोत्रि नवैजम स्थिरमर्थविद्यौ विवेकिना जिनवैश्व।

स विजयतां रविकीर्ति। कवित्तायितकालिदासभारविकीर्तिः ॥ —ऐहोल शिलालेख।

की प्रधानता है फिर भी भारवि का यह महाकाव्य अपना अलग स्थान रखता है। इस महाग्रन्थ में काव्यशास्त्रोक्त नियमों का पूर्णतया निर्वाह हुआ है। व्याकरण-नियमों के साथ-साथ काव्य-नियमों का ऐसा सुन्दर निर्वाह कम काव्यों में दिखाई देता है। कालिदास और अश्वघोष की अपेक्षा भारवि का व्यक्तित्व दर्शन सर्वथा स्वतन्त्र प्रतीत होता है। इसका बड़ा भारी कारण यह है कि भारवि ने वीर रस का बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण और अलंकृत काव्य शैली का सफल वर्णन किया है। 'अर्थ-गौरव' भारवि की सबसे बड़ी विशेषता है।^{१२३}

'भट्टिकाव्य' या 'रावणवध' महाकाव्य भी इसी काल की देन है। महाकवि भट्टि ने इसकी रचना सौराष्ट्र की वैभवशाली नगरी वलभी के नरेश श्री धरसेन के राज्यकाल में की थी।^{१२४} उपलब्ध शिलालेखों में श्रीधरसेन के नाम से वलभी में चार राजाओं का होना पाया जाता है जिनमें एक शिलालेख ३२६ वि० सं० का लिखा हुआ मिलता है।^{१२५} इससे अवगत होता है कि वलभी-राज्यकाल का आरम्भ इसी समय हुआ। द्वितीय श्रीधरसेन के नाम से उपलब्ध एक शिलालेख में भट्टिनामक किसी विद्वान् को भूमिदान करने का वर्णन है। निश्चय ही यही श्रीधरसेन भट्टि के आश्रयदाता एवं प्रशंसक थे जिनका समय छठी शताब्दी का उत्तरार्द्ध या सातवीं शताब्दी का आरम्भ था और जिसको कि भट्टिकवि का स्थितिकाल भी माना जाना चाहिए।^{१२६} कुछ इतिहासकारों का अभिमत है कि भट्टिकवि वलभीनरेश श्रीधरसेन द्वितीय के राजकुमारों के गुरु थे और इन्हीं राजपुत्रों की शिक्षा के लिए भट्टि कवि ने काव्यमयी भाषा में अपने इस व्याकरण-परक महाकाव्य की रचना की थी।^{१२७} कवि ने इसके विषय में कहा है—

‘दीपनुल्यः प्रबन्धोज्ज्वलं शब्दलक्षणचक्षुषाम्।

हस्तादर्श इवान्धाना भवेद् व्याकरणादृते॥”

भट्टि के अनुवर्ती महाकवि कुमारदास तो अपने २५ सर्गों वाले 'जानकीहरण' नामक महाकाव्य की रचना भी इसी काल में की थी जिसके अब १५ सर्ग ही उपलब्ध होते हैं। इसमें राम कथा का बड़ा ही हृदयग्राही वर्णन है। इनका सम्भावित स्थितिकाल सातवीं-आठवीं शताब्दी माना जा सकता है।^{१२८}

१२३. वाचस्पति गैरोला, संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ८५३।

१२४. काव्यमिदं विहितं मया वलम्बा श्रीधरसेननरेन्द्रपालियातायाम्।

कीर्तिरतो भवतान्नुपम्य तस्य क्षेमकरः शिष्यो यतः प्रजानाम्॥ रावणवध २२।३५

१२५. दो कलेक्ट्रेड वर्क्स आफ् मण्डारकर, वास्सूम ३, पृ० २२८।

१२६. सेठ कन्हैयालाल गोदार, संस्कृत साहित्य का इतिहास, भाग १, पृ० १०६

१२७. डा० भोलानंकर व्यास, संस्कृत-कवि-दर्शन, पृ० १४२।

१२८. वाचस्पति गैरोला संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ८५५।

कुमारदास के अनन्तर महाकाव्यों की परम्परा को समृद्धिशाली रूप देने वालों में महाकवि माघ का नाम आता है।^{१२९} महाकवि माघ का स्थितिकाल ६५०-७०० ई० के बीच का था।^{१३०} महाकवि माघ की कवित्वकीर्ति का अमर स्मारक उनका—‘शिशुपालवध’ या ‘माघकाव्य’ है। माघ शब्दार्थवादो कवि थे।^{१३१} उनकी इस महाकाव्य कृति के अध्ययन से पूर्णतया विदित होता है कि माघ व्याकरण, राजनीति, सांख्य, योग, बौद्धन्याय, वेद, पुराण अलंकारशास्त्र, कामशास्त्र और संगीत आदि अनेक विषयों में पारंगत थे।^{१३२} माघ के कवित्व में कालिदास के मात्र, भारवि का अर्धगौरव, दण्डी की कला और भट्टि की व्याकरणपरक पाण्डित्य शैली सभी का एक साथ सामंजस्य है।

महाकाव्यों के अतिरिक्त स्फुटकाव्यों या खण्डकाव्यों के लिखने की प्रवृत्ति भी इस काल में थी। इस प्रकार के स्फुट काव्यों की परम्परा में चक्र कवि ने ७ वीं श० ई० में आठ सर्गों की ‘जानकीपरिणय’ नामक एक काव्य कृति लिखी। यह कवि मधुरा के तिरुमल नायक के आश्रित था।^{१३३} जैन महाकवि धनंजय (७वीं श०) का ‘विद्यापहारस्तोत्र’ ३६ इन्द्रवज्रा वृत्तों का एक लघुकाव्य है जिस पर अनेक टीकाएँ लिखी गयीं।^{१३४}

शृंगार-काव्यों एवं नीतिकाव्यों की रचना भी इस काल में ही रही थी। ‘अमरकशतक’, भर्तृहरिकृत ‘शृंगारशतक’, ‘नीतिशतक’, ‘वैराग्यशतक’ इसके प्रमाण हैं।

स्तोत्रकाव्यों की परम्परा भी इस काल में पर्याप्त वृद्धि रूप प्राप्त कर रही थी। राजा हर्ष (७०० ई०) ने बौद्धधर्म से सम्बद्ध ‘सुप्रभातस्तोत्र’ और ‘अष्टमहा-श्रीक्षैत्यस्तोत्र’ लिखे। इसी परम्परा में बाण ने शिवपत्नी भगवती चण्डी की स्तुति में ‘चण्डीशतक’, मानतुंग ने ‘भक्तामरस्तोत्र’ और हर्ष के आश्रित कवि बाण के श्वभुर मयूर कवि ने ‘सूर्यशतक’ लिखा। सातवीं शताब्दी में वर्तमान केरल के राजा कुलशेखर ने एक बहुत ही रुचिकर शैली में ‘छन्दमाला’ गीतिकाव्य लिखा।^{१३५}

पद्यकाव्य के साथ ही गद्यकाव्य का प्रणयन भी इस काल में जोरों से चल रहा

१२९. वही, पृ० ८१६।

१३०. पाण्डेय, संस्कृत साहित्य की रूपरेखा।

१३१. वं० ‘शिशुपालवध’ २।८६।

१३२. डॉ० व्यास, संस्कृत-कवि-दर्शन, पृ० १७५।

१३३. गैरोला, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ८१४।

१३४. नाबूराम प्रेमी जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ११०।

१३५. गैरोला, सं० साहित्य का इतिहास, पृ० ९०८।

था। संस्कृत-साहित्य के मूर्धन्य गद्यकार इसी काल की देन है। महाकवि दण्डी, गद्यसम्राट् बाण और प्रत्यक्षरत्नेष्वमयप्रपञ्चविन्यासवैदग्ध्यनिधि प्रबन्ध के रचयिता भुवम्भु ने इसी काल में 'दशकुमारचरित', 'अवगतिमुन्दरी' 'हर्षचरित' 'कादम्बरी' और 'वासवदत्ता' का प्रणयन करके गद्य को कवियों का निकष सिद्ध किया। इनके बाव ऐसे गद्य-लेखक संस्कृत साहित्य में नहीं हुए।

काव्यशास्त्र पर भी लेखनी चल ही रही थी। भामह का 'काव्यालंकार' एवं दण्डी का 'काव्यादर्श' इसके प्रमाण हैं।

संस्कृत-नाटक-साहित्य की दृष्टि से भी यह काल अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कवण-रस-मन्दकिनी के प्रालेयाचल भवभूति ने सातवीं शताब्दी में 'उत्तररामचरित' जैसी अनुपम कृति संस्कृत-साहित्य को दी। उनके 'मालतीमाधव' एवं 'महावीर-चरित' का स्थान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।^१ ये तीनों नाटक उज्जैन के कालप्रिया-नाथ के महोत्सव पर अभिनीत हुए थे। इनमें 'उत्तररामचरित' उनकी सर्वोत्कृष्ट एवं संस्कृत के शीर्षस्थानीय नाटकों की कटि में गिनी जाने वाली रचना है। राम कथा के जिस नाजुक पक्ष को लेकर भवभूति ने अपनी इस कृति को सफलता पूर्वक सम्पादित किया है, वैसा इस परम्परा में लिखे गये दूसरे ग्रन्थों में आज तक नहीं मिलता है। दूसरे रामकथा-विषयक भारतीय नाटककारों की अपेक्षा भवभूति ने अपने इस नाटक में राम और सीता के पवित्र एवं कोमल प्रेम का अविक वास्तविकता से चित्रण किया है।^२

इसके अतिरिक्त व्याकरण शास्त्र का 'काशिका' नामक ग्रंथ एवं अन्य शास्त्रों के ग्रंथ भी इस काल में संस्कृत-साहित्य में रचे जा रहे थे।

वस्तुतः यह काल साहित्यिक उन्नति के दृष्टिकोण से बड़ा महत्वपूर्ण रहा। राजकुलों के आश्रय में साहित्य रचा गया। गद्य-साहित्य में वर्णन-कौशल का प्रदर्शन एवं चमत्कारोत्पादन इस काल की महत्वपूर्ण विशेषता रही। बृहत्समी के दो महान् ग्रन्थों 'किरातार्जुनीय' और 'शिशुपालवध' की रचना से कवियों का कलापक्ष के प्रति भुकाव सिद्ध होता है।

रविवेण ने अपनी सम्मुखस्थ साहित्यिक परिस्थिति का पर्याप्त प्रभाव ग्रहण किया। बाण के 'हर्षचरित' का तो उन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है।^३ 'लक्षणा-सङ्कृती वाच्यं प्रमाणं छन्द आगमः' आदि को उपन्यस्त करके उन्होंने तत्कालीन चमत्कारी प्रवृत्ति का प्रमाण दिया है। संक्षेप में रविवेण तत्कालीन साहित्यिक परिस्थिति से अत्यधिक प्रभावित थे।

१३६. ए० ए० मैनानल, हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३६५।

१३७. दे० प्रस्तुत शोधग्रन्थ, का द्वितीय अध्याय : रविवेण का लोकशासन कान्याध्वेक्षण।

चतुर्थ अध्याय

पद्मपुराण की विषयवस्तु

विषय, कथा, कथानक, वृत्त, इतिवृत्त, कथावृत्त, प्रतिपाद्य, वस्तु, कथावस्तु एवं विषय-वस्तु—ये सभी प्रायः समानार्थक हैं। साहित्य-शास्त्र के अनुसार काव्य की विषय-वस्तु त्रिविध मानी गयी है। १—ऐतिहासिक या पौराणिक, २—काल्पनिक एवं ३—मिश्रित। व्यापकता के आधार पर विषयवस्तु अथवा इतिवृत्त के दो भेद हो जाते हैं—प्राधिकारिक एवं प्रासंगिक। प्रासंगिक के भी दो भेद होते हैं—पताका एवं प्रकरी।

‘पद्मपुराण’ की विषयवस्तु ऐतिहासिक या पौराणिक है। इनमें राम सम्बन्धी कथा आधिकारिक है, सुग्रीव की अन्त तक चलने के कारण ‘पताका’ एवं बालि-वज्रजंघ आदि की कथा बीच में ही समाप्त हो जाने के कारण ‘प्रकरी’ है।

राम काव्यों की आधिकारिक कथावस्तु विश्वविश्रुत, स्पष्ट एवं सरल है जिसे सामासिक रीति से इस प्रकार कहा जा सकता है—

“राजा दशरथ की कई पत्नियाँ थीं, परन्तु उनके कोई सन्तान नहीं थी। वृद्धावस्था में जाकर उनकी भिन्न-भिन्न पत्नियों से राम, लक्ष्मण, भरत, और शत्रुघ्न चार पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें राम सब से बड़े थे। राम अपने सद्गुणों के कारण अन्य पुत्रों में श्रेष्ठ थे। राजा दशरथ उन्हें ही अपना राज्य सौंपना चाहते थे परन्तु षड्यन्त्र के कारण ऐसा न हो सका। राज्य के बदले राम को वनवास लेना पड़ा। उनके साथ उनकी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण भी वन को गये थे। दुर्भाग्य से वहाँ राक्षसों का शक्तिशाली राजा रावण सीता को अकेली पाकर हर ले गया। राम सीता को जंगल-जंगल घूँटने लगे। इसी बीच सुग्रीव से उनकी मित्रता हो गयी। तदनन्तर राम ने सुग्रीव आदि की सहायता से लंका-नरेश रावण पर

बढ़ाई कर दी; उसे युद्ध में हराया और मार गिराया। राम सीता को वापिस ले आये और लक्ष्मण-सीता सहित अयोध्या लौटकर राज्य करने लगे।”

इसी विषयवस्तु को ‘व्यास समास स्वमति अनुरूपा’ के अनुसार प्रायः सभी राम-सम्बन्धी काव्यों में निबद्ध किया गया है किन्तु प्रत्येक रामकाव्य की विषय-वस्तु में पर्वोपलक्ष्य भी दृष्टिगत होता है—भले ही उनकी आत्मा समष्टि रूप में एक हो। यह स्वरूप-भेद आर्यरामायण, बौद्धरामायण और जैनरामायण सम्बन्धी विविध ग्रन्थों में देला जा सकता है।

पद्मपुराण में प्रथम पर्व में महावीर-वन्दना की गयी है^{११८}। तदनन्तर कुलकरोँ तथा तीर्थकरोँ की वन्दना है। इस चमत्कारप्रधान मंगलाचरण में प्रत्येक वन्दनीय के नाम को नामानुरूप विशेषण से ‘विशिष्ट’ किया गया है, यथा—

वासुपूज्यं सतामीश बसूपूज्यं जितद्विषम् ।

विमलं जन्ममूलानां भलानामतिदूरगम् ॥

अनन्तं वधतं ज्ञानमनन्तं कान्तदर्शनम् ।

धर्म धर्मध्रुवाधारं शान्तिं शान्तिजिताहितम् ॥^{११९}

‘पद्मपुराण’ में विद्याचरवंश में रावण का परिचय देने के लिए एक व्यापक भूमिका बनाई गयी है। साथ ही वानर-वंश का परिचय भी दिया गया है। राम-कथा का प्रारम्भ तो २५ वें पर्व से होता है। इससे पूर्व तो मगध देश के राजगृह नगर के राजा श्रेणिक का विपुलाचल पर्वत पर महावीर के समवशरण में जाकर धर्मोपदेश सुनना, राजा श्रेणिक के मन में शयन-पर पड़े-पड़े वानर-राक्षसों के विषय में सन्देह होना (पर्व २), गीतम गणघर से रामकथा-विषय प्रदान करना, गणघर के द्वारा क्षेत्र-काल-कुलकरो का वर्णन, ऋणभज्जम्भोत्सव तथा अभिषेक वर्णन, ऋषभ के भरत आदि सौ पुत्रों का वर्णन, नीलांजना नर्तकी की मृत्यु से ऋषभ का दीक्षा-ग्रहण, भरत-बाहुबलि की कथा, नमि-विनमि को धरणेन्द्र द्वारा विजयाद्वं की उत्तर-दक्षिण श्रेणियों के राज्यदान की कथा, विजयाद्वं-गिरि-वर्णन (पर्व ३), बाहुबलि का वैराग्य एवं ब्राह्मणों की सृष्टि आदि का वर्णन (पर्व ४) करके ‘स्थित्यधिकार’ समाप्त करना ही भूमिका रूप में निबद्ध है।

‘पद्मपुराण’ में राक्षसवंश का विस्तृत परिचय मिलता है। अयोध्या के राजा

११८. “मिद्धं सधूर्णधर्म्यार्थसिद्धेः कारणमुत्तमम् ।

प्रशस्तवर्तनज्ञानधारिण — प्रणिपादनम् ॥

सुरेन्द्र मुकुटान्वितपादपद्माशुकेश्वरम् ।

प्रणमामि महावीर लोकजिनयमगतम् ॥” (पद्य० ११३-२)

११९. पद्य ११२-१०

शरभीधर का उल्लेख करते हुए मेघबाहू राजा की वंश-परम्परा में महारक्ष
आदि अनेक राजाओं के अन्त में कीर्तिधवल का वर्णन किया गया है (पर्व ५)
'एवं लेख्यमतीतेषु धनप्रभसुतोऽभवत् । लंकायामधिपः कीर्तिधवलो नाम
विभुतः ॥' १४० कीर्तिधवल का साला श्रीकण्ठ था । उसने कीर्तिधवल से वानर-
द्वीप माँग लिया था । श्रीकण्ठ के वंश में अमरप्रभ उत्पन्न हुआ । उसका विवाह
लंका के रानी की पुत्री 'गुणवती' से होने जा रहा था । गुणवती वेदी पर बने बन्दरों
के चित्रों से भयभीत हो गयी जिसके कारण अमरप्रभ वानरों के और उनके चित्र
बनाने वालों के प्रति क्रुद्ध हो उठता है किन्तु बाद में मन्त्रियों के अनेक प्रकार से
समझाने पर उनके चित्र ध्वजाओं एवं मुकुटों पर अंकित कराता है । इसी से
'वानरवंश' प्रसिद्ध होता है । १४१ इन्हीं वानरों की वंश-परम्परा में आगे चलकर

१४०. पद्मपुराण ४।४०३ ।

१४१ "इत्युक्ते मन्त्रिभिः सान्त्वं प्रत्युवाचामरप्रभ ।

त्यजन् क्षणेन कोपोऽधिकारं वदनापितम् ॥

मंगलं सेविता पूर्वैर्यच्चस्माकममी तत ।

किमित्यानिविता भूमौ यस्या पादाविमगमः ॥

नमस्कृत्य बहाम्भेतान् शिरसा मुस्मोरवात् ।

रत्नाधिषट्ठितान् कृत्वा लज्जान्मौलिकोटिषु ॥

ध्वजेषु गृह्णुषेपु तोरणाना च मूर्ध्वसु ।

शिरस्तु चातपलाणामेतानामु प्रयच्छत ॥

ततस्तैस्तत्प्रतिज्ञाय तथा सर्वमनुष्ठितम् ।

यथा दिगीक्ष्यते या या तत्र तत्र प्लवचनाः ॥" (पद्म०, ६।१८७-१९१)

'पद्मपुराण' में वानरवंश की बौद्धिक व्याख्या की गयी है । वहाँ 'वानर' 'बन्दर' नहीं है,
अपितु 'वानरचिह्नधारी' राजा है—

"एव वानरकेतुना वशे सबयाविबजिता ।

आत्मीये, कर्मभि प्राप्ता स्वर्गं मोक्ष च मानवाः ॥

बहानुसरणच्छायामात्रमेतत्प्रकीर्त्यते ।

नामान्येषा समस्ताना शक्त कः परिकीर्तितुम् ॥

लक्षण यस्य यत्लोके स तेन परिकीर्त्यते ।

सेवकः सेवया युक्तः कर्षकः कर्षणात्तथा ॥

धानुष्को धनुषो योगात् धार्मिको धर्मसेवनात् ।

शक्तिपः शततस्त्राणात् शङ्खध्वजो बह्वचर्यतः ॥

इन्द्राकरो यथा सैते नयेच्च विनयेस्ततः ।

कुले विद्याधरा जाताः विद्याधरणयोगतः ॥

परित्यज्य मृदो राज्यं शमनो जायते महान् ।

तपसा माप्य सम्बन्धे तपो हि श्रम उच्यते ॥

बनेक राजाओं का वर्णन है। उधर सुकेशपुत्र माली लंका को जीत लेता है (पर्व ६) इन्द्र के साथ युद्ध करने पर माली के मारे जाने पर उसके भाई सुमाली और मात्स्यवान् बल्लकारपुर (पाताललंका) में भाग जाते हैं। वहाँ सुमाली का पुत्र रत्नश्रवा हुआ। इसी का पुत्र रावण था। भानुकर्ण, विभीषण और चन्द्रनखा भी रत्नश्रवा की सन्तान थे (पर्व ७)।

‘पद्मपुराण’ में रावण के मुख का हार में प्रतिबिम्ब पड़ने के कारण उसका नाम ‘दशानन’ है।^{१४२} रावण के १० मुख नहीं हैं। दशाननादि भाइयों की विद्या-सिद्धि,^{१४३} अनावृत यज्ञ के उपसर्ग एवं दशानन की सहूलों (सहूलं तस्य विद्या-

अथ तु व्यक्त एवास्ति शब्दोऽन्यत्र प्रयोगवान् ।
यष्टिहस्तो यथा यष्टिः कुन्त. कुन्तकरस्तथा ॥
मञ्जस्था पुरुषा मञ्जवा यथा च परिकीर्तिता ।
साहचर्यादिभिर्घर्मैरेवमाद्या उदाहृता ॥
तथा धामरचिह्नेन छत्रादिर्विनिर्भेदिता ।
विद्याधरा गता क्याति धामरा इति विष्टे ॥”

(पद्म०, ६।२०६-२१५)

१४२ ‘स्मृतस्वच्छेषु रत्नेषु नवान्यानि मुष्णानि यत् ।

हारे वृष्टानि यातोऽसौ तद्दशाननसंज्ञिताम् ॥” (पद्म० ७।२२२)

१४३. रविषेण ने विद्याधरकुमार दशानन पद्म उसके भाइयों की विद्याओं का नामोल्लेख इस प्रकार किया है:—

“नभःमचारिणी कामदामिनी कामयामिनी ।
दुर्गिबारा जगत्कम्पा प्रज्ञप्तिभङ्गिमानिनी ॥
अग्निमा लक्ष्मिमा क्षोभ्या मन स्तम्भनकारिणी ।
सबाहिनी सुरध्वंसी कौमारी वधकारिणी ॥
सुविधाना तपोरूपा दहनी विपुलोदरी ।
शुभप्रदा रत्नरूपा दिनरात्रिविद्यामिनी ॥
वज्रोदरी समानुष्टिर्दर्शन्यजरायरा ।
अनलस्तम्भनी तोषस्तम्भनी गिरिदारिणी ॥
अवमोक्त्यपरिम्बसी धोरा क्षीरा भुजगिनी ।
वाहणी भुवनाबध्या शरुणा मदनाशिनी ॥
भास्करी भयस्तम्भूतिरैशानी विजया जया ।
कण्ठनी मोक्षनी आग्या वराही कुटिलाकृति ॥
विस्तोद्वधकरी शान्ति. कौबेरी वधकारिनी ।

योगेश्वरी ब्रह्मोत्साही चण्डा भीति. प्रवर्धनी ॥ (पद्म ७।२२५-३३२)

उपप्लव रावण की विद्याओं के अतिरिक्त सबोहा-रतिसंबुद्धि-भूमिभी-व्योमयामिनी भानुकर्ण को तथा ‘सिद्धार्थी जलुवमनी निव्यापिता छनामिनी’ विभीषण को प्राप्ति हुई।

(पद्म० ७।३३३-३४)

नामनेकं वंशतामितम् (७।३१४) विद्याओं, भानुकर्ण की पाँच विद्याओं और विभीषण की चार विद्याओं का उल्लेख है, (पर्व ७) । रावण की मन्दोदरी के अतिरिक्त पद्मावती, अशोकलता, विद्युत्प्रभा आदि अनेक स्त्रियों का नामोल्लेख है, साथ ही भानुकर्ण की 'तडिन्माला' (८।१४२) और विभीषण की 'राजीवसरसी' (८।१४१) पत्नी के नामोल्लेख के साथ सहस्रों रानियों का संकेत है (पर्व ८) । रावण 'मेषरव' पर्वत पर छः हजार कुमारियों से क्रीड़ा करता है, वह दिम्बजय करता है, त्रिलोकमण्डन हाथी को वश में करता है, लंका को वैश्रवण से छीनता है, यम को परास्त करता है, अपनी बहन चन्द्रनखा का खरदूषण से विवाह करता है, बालि को वंशगत करना चाहता है किन्तु असफल रहता है । बालि-अधिष्ठित कैलास को उठाता है किन्तु बालि के अँगूठे से पर्वत के दब जाने पर कष्ट पाकर जिनेन्द्रस्तुति करता है तथा नागराज के द्वारा 'अमोघविजया' शक्ति को प्राप्त करता है (पर्व ८-९), सहस्ररश्मि को जीतता है, मत्स्यानु का यज्ञध्वंस करता है, नारद को बचाता है, कनकप्रभा से विवाह कर अनेक देशों में भ्रमण करता है (पर्व १०-११), अपनी कृतचित्रा कन्या का मथुरा के राजा हरिवाहन के पुत्र मधु के साथ विवाह करता है, नलकूबर को परास्त करता है, उसकी पत्नी उपरम्भा को अपने ऊपर आसक्त होने से रोकता है, इन्द्र को पराजित करता है तथा इन्द्र के पिता सहस्रार के प्रति नम्रता प्रदर्शन करके इन्द्र को छोड़ देता है (पर्व १२-१३), सुवर्णगिरि पर्वत पर अनन्तबल मुनिराज के समीप धर्म का विस्तार से वर्णन सुनकर भानुकर्ण के साथ शुभ प्रतिज्ञा करता है^{१४} (पर्व १४) वरुण को परास्त करता है और विशाल साम्राज्य स्थापित करता है (पर्व १६) । 'पद्मपुराण' के अनुसार 'खरदूषण' दो पात्र न होकर एक ही पात्र है तथा रावण का बहनोई है, रावण सुग्रीव का बहनोई है (पर्व ६) सुतारा का विवाह सुग्रीव से होता है एव अंग और अंगद-सुग्रीव के दो पुत्र हैं ।

१४४. प्रवधार्थेति भावेन प्रणम्यान्तविक्रमम् ।

देवामुरसमञ्जसं तं प्रकाशमिदमभ्यधात् ॥

मगन्न मया नारी परस्वेच्छाविर्जिता ।

गृहीतव्येति निवमो मया कृतमिच्छयः ॥

भानुकर्ण ने कतु खरण का आश्रय लेकर यह नियम लिया—

करोमि प्रातस्तथाय साम्प्रतं प्रतिवासरम् ।

स्तुत्वा पूजां जिनेन्द्राणामभियेकसमन्विताम् ॥

वरिवस्यामयस्त्राणामकृत्वा विधिनान्वितम् ।

वधप्रवृत्तिं नाहारं करोमीति ससमयः ॥" (पद्म० १४।३७०-३७४)

‘पद्मपुराण’ में हनुमान् की उत्पत्ति एवं कार्यों का विस्तृत और विलक्षण वर्णन है (पर्व १५-१६)। महेन्द्र और हृदयवेगा से अञ्जना उत्पन्न होती है एवं प्रह्लाद राजा और केतुमती से पवनञ्जय उत्पन्न होता है। दोनों का विवाह होता है। मत्तफहमी के कारण पवनञ्जय अञ्जना से रूढ़ हो जाता है तथा रावण के बुलाये जाने पर, वरुण के विरुद्ध लड़ने, चला जाता है। वियोग में अञ्जना दुःखी होती है। पवनञ्जय विरहिणी चक्रवाकी के दर्शन से प्रेरणा पाकर छिपकर अञ्जना के साथ विस्तृत सम्भोग करता है। अञ्जना गर्भवती हो जाती है और शक्ति केतुमती द्वारा सन्दिग्ध होकर घर से निकाल दी जाती है। वह पिता के घर जाती है किन्तु कञ्चुकी द्वारा उसके गर्भ का समाचार पाकर वह उसे आश्रय नहीं देता। निदान, अञ्जना अपनी सखी वसन्तमालिनी के साथ वन में जाकर एक पर्वत के समीप पहुँचती है, गुफा में मुनिराज के दर्शन करती है। मुनिराज उसके पूर्वजों का वर्णन करके उसे सान्त्वना देकर अन्यत्र चले आते हैं। अञ्जना सखी के साथ वहीं रहती है तथा हनुमान् को उत्पन्न करती है। वरुण के युद्ध से लौटकर पवनञ्जय घर आता है किन्तु वहाँ अञ्जना को न देख उसकी खोज में घर से निकल जाता है। वह भूतरव वन में मरने का निश्चय कर लेता है किन्तु बाद में विद्याधरों के प्रयत्न से उसका अञ्जना से मिलाप हो जाता है। हनुमान् बहुत पराक्रमी है। वह वरुण के विरुद्ध रावण की सहायता करता है और वरुण को परास्त करता है। हनुमान् को रावण चन्द्रनखा की पुत्री ‘अनंगपुष्पा’ देता है, किष्कुपुराधीश नल भी उसे ‘हरिमालिनी’ कन्या देता है, इसी प्रकार वह सहस्राधिक रमणियों का स्वामी हो जाता है — ‘इति क्रमेणास्य बभूव योषितां पर सहस्राद्यणनम् महात्मनः।’ (पद्म ० १६।१०५)

‘पद्मपुराण’ का ‘दशरथ-जनक-काल-निवर्तन’ का वृत्तान्त भी जैन रामकाव्य परम्परा की एक नई सूक्ति है। यह वृत्तान्त इस प्रकार है — सागरबुद्धि नामक निमित्तज्ञानी से विभीषण को पता चलता है कि रावण की मृत्यु का कारण दशरथ और जनक-दुहिता होंगे। विभीषण जनक और दशरथ को मारने जाता है। नारद द्वारा इसकी सूचना पाकर दशरथ और जनक मन्त्रियों पर राज्य छोड़कर चले जाते हैं। मन्त्री उनके पुत्रों को राज्य-सिंहासन पर आरुढ़ कर देते हैं तथा विभीषण उन्हें वास्तविक दशरथ और जनक समझकर काट डालता है। बाद में वह पद्मात्मा भी करता है। इधर दशरथ और जनक कौतुकमंगल नगर पहुँचते हैं। वहाँ शुभमति राजा की सकलकलाधारिणी पुत्री केकया स्वयम्बर में राजा दशरथ को बरती है तथा स्वयम्बरोत्तर राजाओं के साथ युद्ध में दशरथ का रथ हाँककर उससे एक बर प्राप्त करके उसे धरोहर के रूप में उसके ही पास छोड़ देती

देते हैं तथा सीता को प्राप्त करते हैं। भामण्डल निराश होता है।

‘पद्मपुराण’ में सीता-राम के विवाह के साथ केवल लक्ष्मण और भरत का विवाह दिखलाया गया है (पर्व २८)। लक्ष्मण ‘सागरावर्त’ धनुष को चढ़ाते हैं—
 “क्षुब्धाकूपारनिस्वानं सागरावर्तकार्मुकम् । तावच्च लक्ष्मणोऽधिष्यं कृत्वास्फालय-
 दुन्नतम् ॥” (२८।२४७) इस पर चन्द्रवर्द्धन विद्याधर ने उन्हें १८ (अठारह) कन्याएँ समर्पित की—‘विक्रान्ताय तथा तस्मै विद्याभूचन्द्रवर्द्धनः । अष्टादश बद्धी कन्या धियैवाप्रौढिका इति ॥’ (पद्म० २८।२५०) राम-लक्ष्मण का विवाह देखकर भरत को शोक होता है कि ‘देखो, मेरा भाग्य कैसा मन्द है !’ इस पर केकया ने भरत के अभिप्राय को जानकर दशरथ से जनक के अनुज कनक की सुप्रभा रानी से उत्पन्न ‘लोकसुन्दरी’ नामक पुत्री भरत के लिए माँगने का विचार दिया। दशरथ ने इसे स्वीकार कर कनक को सूचित किया और कनक ने अगले दिन राजाओं को बुलाकर लोकसुन्दरी का विवाह भरत से कर दिया।^{१४६}

१४६. वृत्तान्तमिममालोक्य भरतः पुर्णचिन्मय ।

प्रशोचयेवमात्मान मनसा सम्प्रवृद्धवान् ॥

कुलमेक पिताप्येक एतयोर्मम चेदुभयम् ।

प्राप्तमद्भुतमेताभ्या (रामलक्ष्मणाभ्या) न मया मन्दकर्मणा ॥

अथवा किं मनो व्यर्थ परलक्ष्म्यामित्यर्थः ।

पुरा चाकृिण कर्माणि न कृतानि ध्रुव त्वया ॥

पद्ममग्नैरलक्ष्म्या साक्षात्समीरिवोज्ज्वला ।

ईदृशी पुनरुपयस्य पुनो भवति भामिनी ॥

कलाकलापनिष्ठाता विज्ञाना केकया नत ।

बिज्ञाय तनयाक्न कर्णे प्रियमभाषत ।

भरतस्य मया नाथ ! शाकवल्गुभित्तं मन ।

तथा कुरु यथा नाथ निर्वेद परमृच्छति ॥

अस्त्यञ्ज कनका नाम जनकस्यानुजो नृप ।

सुप्रभाया ततो जाता सुकन्या लोकसुन्दरी ॥

स्वयम्भराभिध भूय समुद्रोष्य निर्योज्यताम् ।

तथाय यावदायाति नान्यं त भावनान्तरम् ॥

ततः परमार्मयुक्त्वा वार्ता दशरथेन सा ।

कर्णगोचरमानीना कनकस्य सुचेतसः ॥

यदाशापयनीत्युक्त्वा कनकेनाप्यवाप्तरे ।

समाहृता मृषा शिप्रं गता ये निलयं निजम् ॥

ततो यथोचितस्यामस्थितभूतापमध्यगम् ।

नक्षत्रगणमध्यस्थगर्भरीवरविश्रमन् ॥

उपात्तमुमनोदामा कानकी कनकप्रभा ।

सुप्रभा भरतं बधे सुमद्रा भरतं यथा ॥

(पद्मपुराण, २८।२५२-२६१)

रामायणादि में वर्णित सीता-राम-विवाह से पूर्व की घटनाएँ यथा विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का जाना, ताड़का-सुबाहु को मारना, अहक्या का उद्धार करना, मिथिला-स्वयम्बर में तमाशा देखने जाना, बाटिका में पुष्प-चयन करते हुए सीता-साक्षात्कार करना, लक्ष्मण-परशुराम-संवाद, बारात-आगमन, राम-विवाहोत्सव आदि 'पद्मपुराण' में वर्णित नहीं हैं।

बृद्ध कञ्चुकी का प्रसंग दशरथ के वैराग्य के कारण रूप में उपस्थित हुआ है। यह प्रसंग इस प्रकार है :—आषाढ़ी आष्टाह्निका को, राजा दशरथ रानियों के पास जिन-प्रतिमा का गन्धोदक भिजवाते हैं सुप्रभा रानी के पास एक बृद्ध कञ्चुकी गन्धोदक ले जाता है तथा अन्य रानियों के पास तरुण दासियाँ ले जाती है। सभी रानियों के पास गन्धोदक जल्दी पहुँच जाता है किन्तु सुप्रभा के पास वह उतनी जल्दी नहीं पहुँचता जिसे सुप्रभा अपना अपमान समझ कर आत्मघात करना चाहती है। राजा दशरथ उसके पास पहुँचते हैं तथा अन्य रानियों के साथ उसे समझाते हैं। इसी बीच बृद्ध कञ्चुकी गन्धोदक ले आता है तथा रानी सुप्रभा उसे शिर पर धारण करती है। राजा बृद्ध कञ्चुकी से विलम्ब का कारण पूछते हैं तो वह अपनी वृद्धावस्था को ही इसमें हेतु बताता है। उसकी जर्जर अवस्था देखकर राजा दशरथ विरक्त हो जाते हैं। (पर्व २६) 'पद्मपुराण' में, भामण्डल सीता के वियोग में जलकर सेना के साथ सीता को लेने के लिए अयोध्या की ओर प्रस्थान करता है किन्तु मार्ग में अपने पूर्वभब का स्मरण करके मूर्च्छित हो जाता है एवं जागने पर अत्यन्त लज्जित होता है। उसे ज्ञात होता है कि सीता उसकी सगी बहिन है। वह अपने पिता चन्द्रगति-सहित अयोध्या आता है और अपने अपराध के लिए क्षमा माँगता है।

'पद्मपुराण' में, केकया-वर-याचना-प्रसंग इस प्रकार है—बृद्ध कञ्चुकी की दशा देखकर निर्विष्णु दशरथ प्रव्रज्या का विचार करने लगे और भरत भी प्रव्रज्या की सोचने लगा। उसके इस अभिप्राय को जानकर केकया अत्यन्त चिंतित हुई। अतः राम को राज्य सौंपने को उद्यत राजा दशरथ से उसने भरत को दीक्षा से विरक्त कराने के निमित्त पूर्वोपाजित एक वर माँग लिया ('वरं सम्प्रति त यच्छ मम' पद्य ० ३१।१०५१)। इसमें उसने भरत के लिए राज्य माँगा। राम के वन-वास का वर केकया नहीं माँगती। राम वन तो स्वेच्छा से जाते हैं (पर्व ३१)। दशरथ केकया को बिना किसी विचिकित्सा के भरत के राज्य का वर दे देते हैं।

'पद्मपुराण' में दशरथ भरत को राम-वन-गमन से पूर्व ही राज्य देते हैं, राम वन जाने से पूर्व भरत से राज्य करने का अनुरोध करते हैं और उसे अपनी

ओर से निविचल कर रहे हैं। १४० राम के साथ उनकी माता भी चलने का अनुरोध करती है। लक्ष्मण, दशरथ पर पहले क्रोध करता है फिर शान्त होकर राम के साथ चल देता है। सीता से राम कहते हैं कि मैं दूसरे नगर को (वन को नहीं) जा रहा हूँ, तुम यही रहो 'प्रिये त्वं तिष्ठ चात्रैव गच्छाम्यहं पुरास्तरम्'। राम-वन-समन के समय दशरथ स्वप्ने से टिके हुए मूर्च्छित हो जाते हैं जिससे उन्हें कोई मूर्च्छित नहीं जान पाता।

'पद्मपुराण' में वन-प्रस्थान का वृत्तान्त इस प्रकार है—राम-लक्ष्मण-सीता के साथ प्रजा के अनेक लोग चले जाते हैं। राम-लक्ष्मण-सीता अनुसारियों को धोखा देने के लिए साथ समय जिन-मन्दिर में टिक जाते हैं—

“अनुप्रयातुकामस्य कर्तुं लोकस्य वञ्चनम्।

ससीतौ तावरेक्षस्य स्थानं प्राप्ता क्षपामुखे ॥' (पद्म० ३१।२२३)
दशरथ की रानियाँ दशरथ से प्रार्थना करती हैं कि वे शोकसागरमग्न कुल के रक्षार्थ राम-लक्ष्मण को लौटा लें किन्तु दशरथ अब इस प्रपञ्च में नहीं पड़ते। सीता के साथ राम-लक्ष्मण मध्यरात्रि में सबको सोता छोड़ मन्दिर के पवित्र द्वार से दक्षिण दिशा की ओर चल पड़ते हैं। प्रातः जागने पर किन्ने ही लोग उनके पीछे दौड़ते हैं तथा कुछ दूर तक साथ जाते हैं। अन्त में परिवात्रा नामक वन के बीच में पड़ने वाली शर्वरी नामक नदी को सीता को पकड़कर राम-लक्ष्मण तो पार कर जाते हैं किन्तु सामन्त एवं अन्य प्रजाजन उसे पार नहीं कर पाते।

१४७ “तत्र पद्मोऽपि तत्पाणी गृहीत्वैवमभाषत ।

प्रेमनिर्मरया वक्ष्यन् दृष्ट्वा मधुरनिस्वन ॥

नातेन धातकत यत्कोऽयस्नद्विषु क्षमः ।

नहि सागरस्तानामुत्पत्तिं सरसो भवेत् ॥

वयस्तपोऽर्धकारे ते जायतेऽद्यापि नोचिनम् ।

कुरु राज्यं पितुः कीर्तिच्छातुं शान्तिर्मेमा ॥

इयं च शोकान्ताया माता यद्याति पञ्चनाम् ।

न तद्युक्तं महाभागे नन्दने एषादुक्ते सति ॥

पितुः पालयितुं सत्यं प्यजामोऽपि वयं तनुम् ।

कथं त्वं तु कृणु प्राज्ञः श्रियं न प्रतिपद्यसे ॥

तद्या गिराधरपथे वा तत्र वास करोम्यहम् ।

यत्र कश्चिन्न जानाति कुरु राज्यं यथेस्ति तम् ॥

मायं सर्वं परित्यज्य पन्थानमपि सञ्चितः ।

न करोमि गृहिण्यां ते कश्चित्प्रीडा गुणालय ॥

मा श्वसंहीर्षेमुष्णं च मुञ्च तावद्भ्रातृभ्यम् ।

कुरु वाक्यं पितुः क्षोणीं रक्ष स्यात्पररायणः ॥

(पद्मपुराण, ३१।१४४-१५१)

फलस्वरूप कितने ही लौट जाते हैं और कितने ही दीक्षित हो जाते हैं। दशरथ भी सर्वभूतहित मुनि के पास दीक्षा ले लेते हैं (पर्व ३२)।

'पद्मपुराण' में राम-लक्ष्मण चित्रकूट वन को पार कर अवन्तिदेश में पहुँचते हैं। वहाँ एक ऊँड़ देश को देखकर तत्रागत दीन-हीन मनुष्य से उसका कारण पूछते हैं। वह इसी प्रकरण में दशांगपुर के राजा वज्रकर्ण का वृत्तान्त सुनाता है। तदनन्तर सिंहोदर की उद्दण्डता से वह राम को परिचित कराता है और सिंहोदर तथा वज्रकर्ण के पारस्परिक संघर्ष का निरूपण करके कुपित सिंहोदर के द्वारा इस देश के विध्वंसीकरण का उल्लेख करता है। राम-लक्ष्मण आहार प्राप्त करने की इच्छा से आगे बढ़ते हैं। लक्ष्मण के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर राजा वज्रकर्ण उसे उत्तमोत्तम भोज्य पदार्थ देता है। लक्ष्मण उन सबको लेकर राम के पास आते हैं। वज्रकर्ण के इस आतिथ्य-सत्कार से राम के हृदय पर भारी प्रभाव पड़ता है और वे लक्ष्मण को वज्रकर्ण की रक्षा के लिए भेजते हैं। लक्ष्मण भरत के सेवक बनकर सिंहोदर की अक्ल ठिकाने लगाते हैं और उसे परास्त कर वज्रकर्ण की रक्षा करते हैं। अन्त में वज्रकर्ण और सिंहोदर की मित्रता कराते हैं। लक्ष्मण को वज्रकर्ण की आठ एवं सिंहोदर आदि राजाओं की तीन सौ कन्याएँ प्राप्त होती हैं।^{१४८} (पर्व ३३) वनयात्रा-प्रकरण में ही कुमारवैद्यधारिणी 'कल्याणमाला' से लक्ष्मण के विवाह का वृत्तान्त है, 'कपिल ब्राह्मण' की कथा है, वनमाला-लक्ष्मण-प्रसंग है। राम-लक्ष्मण पृथ्वीधर की सभा में दूत के मुख से भरत पर राजा अनिवीर्य के भावी आक्रमण का समाचार प्राप्त कर नर्तकीवेश में उसकी सभा में जाकर अपने अनुपम संगीत और कलापूर्ण नृत्य से वशीभूत करके उसे पकड़ लेते हैं तथा भरत के प्रति आक्रमण के विचार को उससे तिलाञ्जलि दिला देते हैं। राजा अनिवीर्य दयालु सीता के द्वारा मुक्त किया जाता है एवं दीक्षा ले लेता है। आगे चलकर क्षेमाञ्जलिपुर के राजा शत्रुदमन की शक्ति को झेलकर लक्ष्मण उसकी पुत्री जितपद्मा को अपने ऊपर आसक्त करते हैं तथा राजा उसका विवाह उनके साथ कर देता है (पर्व ३४-३८)। इसके बाद राम-लक्ष्मण देशभूषण-

१४८ "वज्रकर्णस्ततः कृत्वा रामलक्ष्मणयो पराम् ।

पूजामानाययत्किमप्रमृष्टी दुहितरो वरः ॥

सजायो दृश्यते ज्यायानिति तास्तेन क्षीकृताः ।

सधमीधरं कृतोदारविभूषाविनयान्विता ॥

नृपाः सिंहोदराद्याश्च ददुः परमकन्धकाः ।

एवं सन्निहितं तस्य कुमारीणां मतव्रजम् ॥"

(पद्मपुराण, ३३।३११-३१३)

कुलदूषण मुनि का उपसर्ग दूर करते हैं (पर्व ३६), बशस्थलपुर के राजा सुरप्रभ द्वारा चरमशरीरी राम का अभिवादन होता है, राम-लक्ष्मण दण्डकवन-प्रस्थान करते हैं, सीता-सहित कर्णरवा नदी में स्नान करते हैं, जटायु का वृत्तान्त आता है एवं उसके पूर्व जन्म की कथा का उल्लेख किया जाता है (पर्व ४०-४२)।

सीताहरण का हेतु 'पद्मपुराण' में शम्बूकवध है, न कि शूर्पणखा का नाक-कान-कर्तन। शम्बूकवध का वृत्तान्त इस प्रकार है—एक दिन लक्ष्मण वन भ्रमण करते हुए दूर निकल गये। उन्हें एक ओर से अद्भुत गन्ध आयी जिससे आकृष्ट होकर वे उसी ओर बढ़ते गये। एक बाँस के भिड़े में छिपकर चन्द्रनखा-खरदूषण का पुत्र शम्बूक सूर्यहास खड्ग सिद्ध कर रहा था। देवोपनीत खड्ग आकाश में लटक रहा था। उसी की मुगन्ध सर्वत्र फैल रही थी। लक्ष्मण ने लपक कर सूर्यहास खड्ग हाथ में लेकर उसकी तीक्ष्णता की परख के लिए उसे बाँसों से भिड़े पर चना दिया जिससे वह बाँसों का मिड़ा एक दम कट गया और उसके भीतर स्थित शम्बूक भी दो टुकड़े हो गया। इधर जब चन्द्रनखा पुत्र को भोजन देने आयी तो उसको मरा हुआ देखकर परम शोकाभिभूत हुई तथा विलाप करने लगी। कुछ समय बाद राम-लक्ष्मण के सौंदर्य से उसका मन हर लिया गया और वह उनमें से एक को वरण करने की इच्छा से कन्या बन गयी—'इतिसचिन्त्य संसाधुकन्या-कल्पं समाश्रिता' (४३।६३) उसने राम लक्ष्मण के प्रति अपना अनुराग प्रकट किया किन्तु अपनी लक्ष्यप्राप्ति में असफल रही। यही यह भी वर्णन है कि चन्द्रनखा के चले जाने के बाद उसके सौन्दर्य से अभिभूतचित्त लक्ष्मण राम की नजर बचाकर उमे ढूँढने गये और मन में पश्चात्ताप करने लगे, कि मैंने उस घनस्तनी, रूपनावध्यगुणपूर्णा, मदनाविष्टनागेन्द्र-वनितासमगामिनी को आते ही स्तनोपरीडनाश्लेष को प्राप्त क्यों न करा दिया? अब न जाने वह मुलोचना कहाँ होगी? 'जाता सा विषये कस्मिन् कस्य वा दुहिता भवेत्। यूथघ्ना मृगीवेय कुतः प्राप्ता मुलोचना (४३।१२०)' अस्तु (पर्व ४३)। कामेच्छा पूर्ण न होने पर पुत्र-शोकाभिभूत चन्द्रनखा विलाप करती हुई अपने पति खरदूषण के पास गयी। खरदूषण ने स्वयं आकर पुत्र को देखा। उसका क्रोध उबल पड़ा। वह राम-लक्ष्मण के साथ युद्ध करने को उठ खड़ा हुआ तथा रावण को भी उसने इस घटना की सूचना दी। खरदूषण का इधर लक्ष्मण के साथ घमासान युद्ध होता है उधर रावण उसकी सहायता के लिये आता है। वह बीच में सीता को देखकर मोहित हो उठता है तथा छल से सिंहनाद करके राम को लक्ष्मण के पास भेजकर एकाकिनी सीता को हर ले जाता है (पर्व ४४)।

सीता को हर कर ले जाते हुए रावण के पीछे अर्कजटी का पुत्र रत्नजटी दोड़ता है किन्तु रावण उसकी आकाशगामिनी विद्या छीनकर उसे आकाश से गिरा देता है। वह समुद्र के मध्य कम्बुद्वीप में जाकर पड़ता है। इधर राम-सक्ष्मण का विराधित से परिचय होता है और वह विद्याधरों से सीता का पता लगाने को कहता है (पर्व ४५)।

उधर रावण सीता को लेकर लङ्का में पहुँचता है। वहाँ पश्चिमोत्तर दिशा में स्थित देवारण्य उद्यान में सीता को ठहराकर उससे प्रेम याचना करने लगता है किन्तु शीलवती सीता उसके प्रस्ताव को ठुकरा देती है। रावण माया द्वारा सीता को भयभीत करने का भी प्रयत्न करता है किन्तु वह अपने पथ से विचलित नहीं होती। रावण सीता के प्रेम को प्राप्त करने के लिए बहुत दुःखी है। रावण की विप्रलम्भजन्य दुर्दशा को देखकर मन्दोदरी लाचार होकर उसका दौत्य-सम्पादन करती है तथा सीता को समझाती है।^{१४९}

१४९. रावण की विप्रलम्भजन्य दुर्दशा से सन्तप्त मन्दोदरी के प्रश्न एवं रावण द्वारा उत्तर और मन्दोदरी के सीता को समझाने का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

‘ततो महोदर त्वैरं निश्चस्योवाथ रावणः ।
तस्य किञ्चित्परित्यज्य धारितोदीरिताक्षरम् ॥
‘शृणु सुन्दरि सद्भावमेक ते कथयाम्यहम् ।
स्वामिन्यमि ममासूना सर्वदा कृतवाञ्छिता ॥
यदि बाञ्छसि जीवन्त मा ततो देहि नार्हसि ।
कोप कपुं ननु प्राणा मूलं सर्वस्य वस्तुनः ॥’
ततस्त्वैवमित्युक्ते शपथैर्विनियम्य ताम् ।
जिह्वा दृढ किञ्चित्स रावणः समभाषत ॥
‘यदि मा वेदस सृष्टिगुणां दुःखवर्णना ।
सीता पति न मां वष्टि ततो मे नास्ति जीवतम् ॥’
ततो मन्दोदरी कष्टां श्रावा तस्य दत्तामिमाम् ।
बिहसन्ती जगद्देव विस्फुरद्दन्तचन्द्रिका—
‘इयं नाव महारक्षस्य वरो यत्कुलोद्भवनम् ।
अपुण्या नावता नूनं या त्वा नार्थयते स्वयम् ॥
अथवा निखिले लोके सर्वैका परमोदया ।
या त्वया मानकुटेन याच्यते परमापदा ॥
कैयूररत्नजटितैरिव करिकरोपमैः ।
आलङ्क्य बाहुभिः कस्माद् बलात्कामयसे न ताम् ?
सोज्ज्वलदेवि विज्ञाप्यमस्त्यज शृणु कारणम्—

बिटसुग्रीव साहसगति विद्याधर के द्वारा उपद्रुत होकर इधर-उधर घूमता-फिरता हुआ विराधित की पाताललंका में जाता है। विराधित उसका सम्मान करता है। वहीं उसका राम से परिचय होता है। (राम विराधित के कहने से सीताहरण के बाद पाताललंका (अलङ्कारपुर) चले आये थे।) मन्त्री राम से सुग्रीव की दुःखद दशा का वर्णन करते हैं तथा राम उसकी सहायता करने का वचन देकर साहसगति विद्याधर का वध कर सुग्रीव को निर्विघ्न करते हैं। यहाँ

यावन्नेच्छति मा नारी परकीया मनस्विनी ।
प्रसन्न सा मया तावन्नाभियम्यापि दुःखिना ॥
एतच्चाप्यभिमानेन गृहीत दयिते व्रतम् ।
का मा किल समाशेष्य साध्वी मानं करिष्यति ॥

यावन्मुञ्चामि नो प्राणान् तावन्सीता प्रसाधताम् ।
भ्रमभावङ्गते गेहे कूपखानधसो वृथा ॥
ततस्तं सादृश ज्ञात्वा सञ्जातकश्चोदया ।
बधाय रमणी गार्ध स्वल्पमेतत्समीहितम् ॥

मन्दोदरी कपालप्राप्य सीतामेवमभाषत ।
समस्तनयविज्ञानकृतमण्डमानसा ॥
'अपि सुन्दरि हर्षस्य स्थाने कस्माद्विपीदसि ?
लैलोक्येऽपि हि सा धन्या पतिवैस्या दमानन ॥
सर्वविद्याधराधीश पराजितमुराघपम् ।
लैलोक्यसुन्दरं कस्मात्पति नेच्छसि रावणम् ?
नि स्व. भ्रमागोचरः कोऽपि तस्यायै दुःखितापि किम् ?
सर्वलोकवरिष्ठस्य स्वस्य सौक्यं विधीयताम् ॥
आत्मार्यं कुर्वत कर्म मुमहासुखसाधनम् ।
दोषो न विद्यते कश्चित्सर्वं हि सुखकारणम् ॥
मयेति यदि न बाधयं यदि न प्रतिपद्यते ।
ततो यद्बधिता ततो शत्रुभिः प्रतिपद्यताम् ॥
बन्ध्यान् रावण. स्वामी प्रनिपन्नविजित ।
कामेन पीडित कोप मण्डेत्यार्थेनभञ्जनात् ॥
यो राम-तदमणी नाम तव कावपि सम्मती ।
तयोऽपि हि सन्नेहः क्रुद्धे सति दमानने ॥
प्रतिपद्यस्व तद्विघ्नं विद्याधरमहेश्वरम् ।
ऐश्वर्यं परमं प्राप्ता सौख्यं नीलां समावय ॥

बालि का स्वाम साहसगति ने प्रकारान्तर से ले लिया है (पर्व ४७) ।

पद्मपुराण में रत्नजटी पता देता है कि सीता को रावण हर कर ले गया है । रावण का नाम सुनकर विद्याधरों के होश ठण्डे पड़ जाते हैं । राम के प्रबल आग्रह-बल बानर यह कहकर सहयोग देने को तत्पर होते हैं कि रावण की मृत्यु कोटिशिला उठाने वाले के द्वारा होगी—ऐसा अनन्तवीर्य मुनीन्द्र ने कहा था । (यो निर्वाणशिलां पुण्यामनुलामचितां सुरैः । समुद्यतां स ते मृत्योः कारणत्वं यमिष्यति ॥ ४८।१८६) तो यदि आप लोग कोटिशिला उठा सकें तो हम रावण के साथ युद्ध करने के लिए उद्यत हो सकते हैं । लक्ष्मण कोटिशिला उठा देते हैं (शिलामचालयत् क्षिप्रं लक्ष्मणो विमलद्युतिः ॥ ४०।२१३) । बानर उनकी शक्ति का विश्वास कर युद्ध के लिए उद्यत हो जाते हैं । सुग्रीव हनूमान् को बुलाने के लिए कर्मभूतिनामक दूत को भेजता है । वहाँ हनूमान् अपने नगर (श्रीपुर) में अपनी अनेक रानियों के साथ रंगरेलियाँ मनाता हुआ होता है । दूर से राम-लक्ष्मण का पराक्रम सुनकर और अपने सम्बन्धी खरदूषण का बघ सुनकर क्रोध-सहस्रसर्वांग (४६।२२) हनूमान् क्षुब्ध हो जाता है तथा उसकी पत्नी 'अनंग-कुसुमा' (चन्द्रनखा की सुता) बहुत दुखी होती है । पिता के शोक नाश का समाचार सुनकर हनूमान् की दूसरी पत्नी (सुग्रीवसुता) पद्मरागा प्रसन्न होती है जिससे हनूमान् राम के प्रति सहानुभूतिपूर्ण होकर उनके पास आकर लंका जाता है (पर्व ४६) ।

'पद्मपुराण' में हनूमान् अपने विमान में बैठकर लंका जाता है । मार्ग में वह अपने नाना महेन्द्र के नगर में पहुँचता है जहाँ उसके द्वारा किये गये माता के अपमान का स्मरण होने से वह क्रुद्ध होकर उसे बलपूर्वक परास्त करता है । हनूमान् का आदेश पाकर राजा महेन्द्र अपनी पुत्री अञ्जना के साथ मिलता है (पर्व ५०) । दक्षिमुखद्वीप में स्थित मुनियों के ऊपर दावानल के उपसर्ग को हनूमान् दूर करता है । समीपस्थिन गन्धर्वकन्याएँ विद्या सिद्ध हो जाने के कारण हनूमान् के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हैं । राम को गन्धर्वकन्या की प्राप्ति होती है (पर्व ५१) । आगे चलकर अबानक अपनी सेना की गति रुक जाने से हनूमान् आश्चर्य में पड़ जाता है । मामले का पता लग जाने पर वह आगे बढ़कर मायामय कोट को ध्वस्त करता है और सीधे ही वज्रायुध को निष्काश कर देता है । इस वज्रायुध की पुत्री लंका सुन्दरी हनूमान् से विकट युद्ध करती है किन्तु युद्ध करते हुए ही दोनों परस्पर अनुरक्त हो जाते हैं । लंका सुन्दरी का हनूमान् से विवाह होता है (पर्व ५२) ।

लंका में पहुँचकर हनूमान् सर्वप्रथम विभीषण से मिलता है और रावण के

युष्मत् का उसे उपालम्भ देता है। तदनन्तर विभीषण की विवशता को जानकर वह प्रमदोद्यान में जाता है। वहाँ सीता की गोद में राम द्वारा दी गयी अँगूठी छोड़ता है। सीता को राम का सन्देश सुनता है। राम का सन्देश पाकर सीता ग्यारहवें दिन आहार ग्रहण करती है। सीता को हनूमान् जब अँगूठी देता है तब मन्दोदरी भी उपस्थित है। वह मन्दोदरी को भी फटकार लगाता है। वह उद्यान तथा लंका को क्षतिग्रस्त करता है। लौटकर सीताप्रदत्त चूड़ामणि-राम को देता है तथा सीता की दयनीय दशा का वर्णन करता है। चन्द्रमरीचि विद्याधर की प्रेरणा से उत्तेजित होकर सभी विद्याधर राम को साथ लेकर लंका की ओर प्रयाण करते हैं (पर्व ५३)। राम के लंका के निकट पहुँचने पर राक्षसों में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। विभीषण रावण को समझाता है। जब विभीषण रावण को समझाता है तब बीच में ही इन्द्रजित् उसका विरोध करता है और कहता है—

“साधो ! केनासि पृष्टस्त्वं कोऽधिकारोऽपि वा तव ।

येनैवं भाषसे वाक्यमुन्मत्तगदितोपमम् ॥ (५५।१५)

इस पर विभीषण इन्द्रजित् को फटकारता है। रावण उसे सड़ग से मारने को तत्पर हो जाता है और विभीषण भी एक लम्बा उलझकर युद्धसम्पन्न हो जाता है।^{१५०} जैसे-तैसे मन्त्रियों के द्वारा बीच-बचाव किया जाता है। विभीषण तीस अशौहिणी सेना लेकर राम के पास जा मिलता है (पर्व ५५)।

रावण की सेना युद्ध करने के लिए लंका से बाहर निकलती है। नल और नील के द्वारा हस्त और प्रहस्त मारे जाते हैं, अनेक राक्षस मारे जाते हैं। पद्मपुराण में ‘समुद्र-बन्धन’ का प्रसंग और रूप में आया है। लंका जाते समय नल विसन्धरपुर के स्वामी ‘समुद्र’ को परास्त करता है।^{१५१}

१५०. एव प्रवदमान तं क्रोधप्रेरितमानस ।
उत्क्राय रावणः खड्गमुद्गतो हनुमुद्यन ॥
तेनापि कोपबन्धेन दृष्टान्तेनोपदेशने ।
उन्मुलितः प्रचण्डेन स्तम्भो बन्धमयो महान् ॥
युद्धार्थमुद्गतावेतौ प्रातराबुधतेजसौ ।
सचिवैर्वारितौ कृष्णद्वयौ स्व-स्वं निवेदानम् ॥”

(पद्मपुराण, ५५।३१-३३)

१५१. वेनन्धरपुरस्वामी समुद्रो माम तत्त ज ।
नमस्य परमं युद्धमालिष्यं समुपानयम् ॥
ततो नलेन सस्पृहं जित्वा निहतसैनिकः ।
बद्धो बाहुबलाद्येन समुद्रः क्षेत्रः परः ॥

(पद्मपुराण, ५५।१५-१६)

‘पद्मपुराण’ में, युद्ध के समय, अंगद भानुकर्ण का अधोवस्त्र खोल देता है, जिससे वह अपना वस्त्र सँभालने में लग जाता है। (पर्व ६०)।

राम-लक्ष्मण को सिंहबाहिनी-गरुड़बाहिनी विद्याओं की प्राप्ति होती है तथा अनेक युद्ध होते हैं। रावण द्वारा लक्ष्मण को शक्ति लगती है। शक्तिनिहित लक्ष्मण को देखने के लिये रावण राम को अनुमति दे देता है।^{१५२} भानुकर्ण, मेघबाहन और इन्द्रजित् राम-सेना द्वारा बन्दी बना लिये जाते हैं, जिनके छुड़ाने की चिन्ता रावण करता है। (पर्व ६२)

शक्तिनिहित लक्ष्मण जहाँ पड़े थे वहाँ किकर एक शिविर बना देते हैं।^{१५३} और वहाँ सात गोपुरों में कमलः नील-नल-विभीषण-कुमुद-सुवर्ण-सुग्रीव-भामण्डल और पूर्व-पश्चिम-उत्तर दिशाओं के द्वारों पर शरभ-जाम्बवकुमार-चन्द्ररश्मि पहरा देते हैं (पर्व ६३)। सीता लक्ष्मण-विषयक समाचार सुनकर बिलाप करती है। इक्ष्वर चन्द्रप्रतिम विद्याधर राम से लक्ष्मण के उपचार के लिये विशल्या के गन्धोदक का प्रस्ताव रखता है। विशल्या द्रोणमेष की कन्या है (रामायण के अनुसार विशल्या द्रोणगिरि पर एक औषधि है)। राम हनुमान्, भामण्डल तथा अंगद को अविलम्ब अयोध्या भेजते हैं।^{१५४} उनसे लक्ष्मण-सम्बन्धी समाचार पाकर भरत राजासों के साथ युद्ध करने के लिये तैयार हो जाते हैं और अयोध्या में हलचल मच जाती है।^{१५५} भामण्डलादि से विशल्या का समाचार सुनकर भरत द्रोणमेष के

१५२ राम की रावण से प्रार्थना और उसका अनुमति इस प्रकार है—

‘समामेऽभिमुखो भ्राता यो मे शक्त्या त्वयाहृत’।

प्रेतस्याभिमुख तस्य वीक्ष्ये यद्यनुमन्ये ॥’

—एवमास्तवति सम्भाष्य प्रार्थनाभगवदुविधः।

ययौ दधानो लंकामुद्रयाऽखण्डलसन्निभः ॥ (पद्य० ६२।१४-१५)

१५३. अबोल्लार्य कबधारीर्निर्माणांस्त स महो।

किंकरैर्विहितोत्तुगद्वयप्राकारमण्डपा ॥’

सप्तकन्यादृढसम्पन्ना कृतविषययनिर्भमा।

बहिः कबचित् योऽपि गुप्ता कानुं कथारिभिः ॥ (पद्य० ६३।२०-२१)

१५४. अञ्जनाजविदेहाजसुताराजास्ततः कृतः।

अयोध्या गमिन कृत्वा सम्पन्नं निश्चितं द्रुतम् ॥ (पद्य० ६५।२)

१५५. ‘साकेतः एक जल्पयन’ नामक ग्रन्थ में डा० नरेन्द्र ने हनुमान् के मुख से लक्ष्मण-शक्ति का समाचार सुन अयोध्या की रण-सज्जा को पुष्टि की सी मौलिक उद्भावना बताया है किन्तु यह उद्भावना तो ७ वीं स० ई० से पूर्व ही हो चुकी थी। ‘पद्मपुराण’ की कृष्ण पत्तियाँ तुलनाभं प्रस्तुत हैं—

अथ शीकरसाधुद्वान् क्षणमात्रपुनः परम्।

राजा कीदृशं भजे परम भरतश्रुतिः।

पास आवसी भेजता है कि वह विशाल्या को लंका भेज दे। इस पर द्रोणमेष और उसके पुत्र क्रुद्ध हो जाते हैं तथा भरत के मन्त्रियों के साथ युद्ध करने को तैयार हो जाते हैं। अन्त में केकया के समझाने पर द्रोणमेष विशाल्या को लंका भेज देता है—सहस्रमधिकं चान्यत्कन्यानां सुमनोहरम् । राजगोत्रप्रसूतानां कृतं गामि समं तथा ॥ (६५।३३) भामण्डन उसे अपने विमान में बैठाकर सूर्योदय से पूर्व ही लंका से जाता है जहाँ वह गन्धोदक के प्रभाव से 'अमोघविजया' नामक शक्ति को निकाल देती है और लक्ष्मण से विवाह कर लेती है (पर्व ६४-६५)।

महाभैरीश्वरि चामु रणप्रोतिमकारयत् ।
 सकला येन साकेता सम्प्राप्ताऽङ्गुलतां परम् ॥
 लोको जगद् किं श्वेतद्वर्तते राजमन्मनि ।
 महान् कलकलः शब्दः श्रुयतेऽत्यन्तभीषणः ॥
 किन्तु राज्ञो निशीथेऽस्मिन् काले दुष्टि मतिः परः ।
 अतिवीर्यं भुतः प्राप्तो भवेत्पातपण्डितः ॥
 कश्चिदकयता कान्ता त्यक्त्वा सन्धुधुमुद्यतः ।
 सन्नाह्निर्त्येथोऽयं सायके करमर्पयत् ॥
 मुग्धबालकमादाय काचिदकं मृगेशणा ।
 हस्तं स्तनतटे न्यम्य चक्रे दिगबलोकनम् ॥
 काचिदोप्यङ्कितं त्यक्त्वा निद्रारहितवीचना ।
 सुप्तामाश्रयते कान्तं शयनीयं कपास्वंगम् ॥
 पापिषप्रतिभः कश्चिद्वती कान्तामुवाहरत् ।
 कान्ते ! श्रुयस्व किं शेषे किमपीदमशोभनम् ॥
 राजानये समुद्योगो लक्षणे जात्वपशितः ।
 सन्नद्धा रथिनो मत्ता करिणोऽमी च सहिना ॥
 नीतिर्ज्ञां सततं भाव्यमग्रमत्तैः सुपण्डितैः ।
 उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोपाय स्वापतेयं प्रयत्नतः ॥
 ज्ञातव्यैर्भानिमान् कुम्भान् कलघ्नैलमपास्तया ।
 मणिरत्नकरण्डाश्च कुक्कु भूमिगृहान्तरे ॥
 पट्टवस्त्रादिमम्पूजांनिमान् गर्भानिमान् हुतम् ।
 सालयान्यर्थापि श्रव्यं दुःस्वितं सुस्वितं कुक्कु ॥
 शकुन्धोऽपि सुसंभ्रान्तो निद्रासजितलोचनः ।
 आरुह्य द्विरव शीघ्रं पष्ठादकार्तावितम् ॥
 सचिवैः परमैर्युक्तैः सम्प्राधिष्ठितपाणिभिः ।
 विमुच्यन् बहुतामोहं चलबम्बरपल्लवः ॥
 भरतस्यालयं प्राप्तस्तवाज्ये नरपुंगवाः ।
 शस्त्रहस्ताः सुसन्नद्धा नरेन्द्रहिततत्पराः ॥

मृगाङ्क आदि मन्त्री रावण को समझाते हैं कि सीता राम को देकर उनके साथ सन्धि कर लेना ही उचित है। रावण मन्त्रियों के समक्ष तो यह कह देता है कि जैसा आप कहते हैं वैसा ही करूँगा किन्तु दूत-प्रेषण के समय इशारे से दूत को कुछ और ही बात समझा देता है। दूत राम के दरबार में पहुँच कर रावण की प्रशंसा करता हुआ उसके भाई और पुत्रों को छोड़ देने की प्रेरणा देता है। राम उत्तर देते हैं कि मुझे राज्य की आवश्यकता नहीं है।^{१५६} दूत पुनः रावण का पक्ष का समर्थन करता है जिस पर भ्रमण्डल क्रुद्ध होकर उसे मारने को उद्यत हो जाता है किन्तु लक्ष्मण उसे शान्त कर देते हैं (पर्व ६६)। दूत से इस समाचार को सुनकर रावण पहले तो किकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है किन्तु बात में बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करने का निश्चय करता है। उसकी आज्ञा से शान्ति-जिनालय सजते हैं तथा स्थान-स्थान पर जिनेन्द्र-पूजा होती है। फाल्गुन शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा तक 'नन्दीश्वर पर्व' में दोनों सेनाओं से शान्ति रहती है और रावण शान्ति-जिनालय में बैठकर विद्या सिद्ध करता है। मण्दोदरी भी यम-दण्ड मन्त्री को आज्ञा देती है कि जब तक पतिदेव विद्या-साधना में निमग्न हैं तब तक सभी लोग शान्ति से रहें और उनकी हितसाधना के लिए नाना नियम ग्रहण करें^{१५७} (पर्व ६७-६८)। बहुरूपिणी-साधक रावण का समाचार पाकर राम-पक्ष के योद्धा खबरते हैं तथा उसकी विद्या-सिद्धि में उपद्रव करके विघ्न उपस्थित करते हैं यद्यपि राम ने कह दिया था कि नियमस्थित प्राणी से युद्ध नहीं करना चाहिए। किन्तु बात की उपेक्षा करके विद्याधरकुमार लका में भेजे जाते हैं और वे वहाँ उपद्रव करते हैं। अंगद अनेक प्रकार के उपद्रव करता है। वह रावण की माला तोड़ देता है, उसकी स्त्रियों की दुर्दशा करता है ^{१५८} एवं

१५६ एष प्रेष्यामि ते पुत्री भ्रातर च दधानम् ।

सम्प्राप्य परमां पूजां सीता प्रेष्यसि मे यदि ॥

एतया सहितोऽरण्ये मृगसामान्यगोचरे ।

यथामुख भ्रमिष्यामि मही त्व भुङ्क्ष्व पुष्कलाम् ॥^{१५६}

(पद्म० ६६।१४-१५)

१५७. "दाप्यता घोषणा स्थाने यथा लोक समन्तत ।

नियमेषु नियुक्तात्मा जायता सुवयापरः ॥

यावत्समाप्यते योगो नायं भुवनभोगिनः ।

तावत् अद्यापरो भूत्वा जनस्तिष्ठतु संयमी ॥^{१५७}

(पद्म० ६९।१२-१४)

१५८. कृतप्रत्येकमाद्याय कण्ठे कस्यान्निबन्धुकम् ।

गुर्वारोपयति द्रव्यं किञ्चित्स्मितपरायणः ॥

उत्तरीयेण कण्ठेऽन्यां संयम्यान्मन्त्रयत्पुनः ।

स्तम्भेषु चत्पुनः शीघ्रं कृतदुःखनिषेधिताम् ॥

मन्दोदरी को हर ले जाने को तैयार हो जाता है। रावण विद्यासिद्धि में मग्न होने के कारण सब कुछ सहन कर लेता है। अन्त में उसकी 'बहुरूपिणी' विद्या सिद्ध होने पर अंगदादि भाग जाते हैं (पर्व ७०-७१)।

'पद्मपुराण' का रावण अपने किये को बुरा समझता है तथा पद्मास्ताप करता है।^{१५९} वह अपने हृदय को भिक्कारता भी है। वह राम-लक्ष्मण को जीवित पकड़ कर अपने सम्मान को बनाये हुए सीता को लौटा देने की भी सोचता है।^{१६०} किन्तु भाग्य का किसको पता है ! लक्ष्मण से युद्ध करता हुआ वह उन पर 'चक्ररत्न' चला देता है और उनके द्वारा समझाया जाने पर भी मानवश ऐंठता रहता है और अन्ततोगत्वा उन्हीं के हाथ से मारा जाता है (पर्व ७२-७६)।

दीनारैः पद्मभिः काचित् काञ्चीगुणसमन्विताम् ।

हृत्से निजमनुष्यस्य व्यग्रीणात्कीदृनोद्यतः ॥

१५९. मन्दोदरी से कहा गया कथन इसका प्रमाण है—

ततः किञ्चिदधोपक्षो रावणोऽर्द्धाक्षकीक्षणः ।

सत्रीडः स्वीरयूषेऽहं परस्त्रीहृत्स्वयोदितः ॥

किं मयोपचितं पद्म परमाकीर्तिवामिना ।

आत्मा लघुकृतो मूढः परत्रीसक्तचेतसा ॥

विषयानिषसक्तारामन् पापभाजनं चञ्चल ।

धिनस्तु हृदयत्वं ते हृदयं सुदुर्बेष्टिता ॥

(पद्मपुराण, ७३।८२-८४)

१६०. सीता की दपनीय दत्ता देखकर रावण का अन्तर्द्वन्द्व बढ़ा ही मार्मिक है—

तववस्थामिमां दृष्ट्वा रावणो मृदुमानसः ।

बभूव परमं दुःखी चिन्ता चैतामुपागतः ॥

अहो निकाचितस्नेहः कर्मबन्धोदयादयम् ।

अवसानविनिर्मुक्तः कोऽपि समारणङ्करे ॥

धिक् धिक् किमिदमस्ताभ्य कृतं सुविकृतं मया ।

यदन्योन्यरतं श्रीरामिभुनं सद्योयोजितम् ॥

पापादुरो बिना कामं पुण्यजनसमी महत् ।

अयमोमलमाप्नोऽस्मि सद्भिर्लवन्तनिश्चितम् ॥

शुद्धाम्भोजसमं शोभं विपुलं मणिनीकृतम् ।

दुरात्मना मया कष्टं कथमेनदनुष्ठितम् ॥

आसीदयानुकूलो मे विद्वान् भ्राता विश्वीषणः ।

उपवेष्टा तथा नैव ज्ञमं दधं मनी शतम् ॥

प्रमादाद्विकृतिं प्राप्य मनः समुपवेशतः ।

प्रायः पुण्यवतां पुंसां यशीसाधेऽवतिष्ठति ॥

‘पद्मपुराण’ में इन्द्रजित्, मेघवाहन और कुम्भकर्ण छोड़ दिये जाते हैं और वे दीक्षा ले लेते हैं, साथ ही मन्दोदरी-चन्द्रनखा आदि भी आर्यिका बन जाती हैं (पर्व ७८)। राम और लक्ष्मण महावीर्य के साथ लंका में प्रवेश करते हैं। राम के मनोमुग्धकारी रूप को देखकर स्त्रियाँ उनकी परस्पर प्रशंसा करती हैं और सीता के सौभाग्य को सराहती हैं। राम सीता के पास जाकर उसका आलिंगन करते हैं (पर्व ७९)। सीता को साथ लेकर वे हाथी पर आरुढ़ होकर रावण के महल जाते हैं। वहाँ शान्तिनाथ-जिनालय में शान्तिनाथ भगवान् की भक्तिभाव से स्तुति करते हैं तथा विभीषण एवं रावण-परिवार को सान्त्वना देते हैं। विभीषण अपने घर जाकर अपनी विदग्धा रानी के द्वारा श्रीराम को निमन्त्रित करता है। श्रीराम सपरिवार उसके घर जाते हैं। विभीषण उनका स्वागत कर भोजन कराता है और उनका अभिषेक करना चाहता है किन्तु वे कहते हैं—‘पिता के द्वारा जिसे राज्य प्राप्त हुआ हो ऐसा भरत अभी अयोध्या में विद्यमान है, उसका अभिषेक होना चाहिए।’ राम-लक्ष्मण वनवास के समय विवाहित स्त्रियों को बुला लेते हैं तथा आनन्द से रहते हुए ६ वर्ष बिता देते हैं। एक दिन नारद के मुख से अपनी माता की दयनीय दशा को सुनकर वे अयोध्या की ओर चलने के लिए उद्यत होते हैं किन्तु विभीषण के विनम्र निवेदन करने पर १६ दिन और रुक जाते हैं। इस बीच में विभीषण विद्याधर कारीगरों को भेजकर अयोध्यापुरी का नव-निर्माण कराता है, भरपूर रत्नों की वर्षा करता है और विद्याधर दूत भेजकर राम-लक्ष्मण की

श्व. सख्यामकृती साहं सचिदैर्मन्त्रणं कृतम् ।
अधुना कीदृशी मैत्री वीरजोकविगहिता ॥
योद्धव्यं करुणा चेति द्वयमेतद्विरुध्यते ।
अहो सकटमापन्नं प्रकृतोऽहमिदं महत् ॥
यद्यप्यमामि पद्माय जानकी कृपाधुना ।
लोकं दुर्बलवित्तोऽयं ततो मा वेत्यशक्तकम् ॥
यत्किञ्चित्करणीयमुक्तः सुखं जीवति निर्धनः ।
जीवत्यन्मद्विधो दुःखं करुणामुदुमानसः ॥
हरिताक्यंसमुन्मदी ती कृत्वाऽऽजी निरस्तकी ।
जीवन्नाहं गृहीती च पद्मलक्ष्मणसंज्ञकी ॥
पश्चाद्विभवसमुत्पत्तौ पद्मनाभाय मैथिलीम् ।
अप्यमामि न मे पापं तथा सख्युपजायते ॥
महास्लोकापवादश्च भयान्पापममुद्भवः ।
न जायते करोम्येषं ततो निश्चिन्तमानसः ॥

कुशल-वार्ता भरत के पास भेजता है। १६ दिन बाद राम-लक्ष्मण-सीता अयोध्या आते हैं (पर्व ८०-८२)।

अयोध्या प्रत्यावर्तन के बाद का कथानक इस प्रकार है :—राम-लक्ष्मण अपार वैभव का उपभोग करते हैं। इधर भरत यद्यपि १५० स्त्रियों के स्वामी हैं और भोगोपभोग से परिपूर्ण हैं तथापि वे संसार से विरक्त रहते हैं। वे राम वनवास से पूर्व ही दीक्षा-जिघृक्षु थे किन्तु दीक्षा न ले सके, अब वे संसार की प्रत्येक वस्तु के प्रति निर्वेद धारण कर लेते हैं और सब के निषेध करने पर भी दीक्षा के लिये सन्नद्ध हैं। केकया के रुदन और राम-लक्ष्मण-भरत की स्त्रियों के विविध आकर्षण-मय कृत्य उन्हें नहीं रोक पाते। इसी बीच त्रिलोकमण्डन हाथी बिगड़कर नगर में उपद्रव करता है, प्रयत्न करने पर भी वह शान्त नहीं होता किन्तु भरत के दर्शन कर वह शान्त हो जाता है (पर्व ८३)। त्रिलोकमण्डन हाथी को राम वश में कर लेते हैं। सीता और विशल्या के साथ उस हाथी पर आरुढ़ हो भरत राजमहल में प्रवेश करते हैं उसके क्षुब्ध होने से नगर में जो क्षोभ फैल गया था वह दूर हो जाता है। चार दिन बाद महावत आकर राम-लक्ष्मण के सामने त्रिलोकमण्डन की दुःखमय दशा का वर्णन करते हैं और कहते हैं कि हाथी चार दिन से कुछ खा-पी नहीं रहा है (पर्व ८४)।

अयोध्या में देशभूषण-कुलभूषण केवली का आगमन होता है। सर्वत्र आनन्द छा जाता है। सब लोग वन्दना के लिये आते हैं। केवली घर्मोपदेश देते हैं। लक्ष्मण प्रसंग पाकर त्रिलोकमण्डन हाथी के क्षुब्ध होने, शान्त होने तथा आहार-पानी छोड़ने के विषय में प्रश्न करते हैं जिसके उत्तर में केवली विस्तार से हाथी और भरत के पूर्व भवों का वर्णन करते हैं, जिन्हें सुनकर भरत का वैराग्य और उमड़ पड़ता है और वे उन्हीं केवली के पास दीक्षा ले लेते हैं। भरत के अनुराग से प्रेरित होकर एक हजार से अधिक राजा दिगम्बर दीक्षा धारण कर लेते हैं। भरत के निष्क्रान्त होने पर माता केकया भी तीन सौ स्त्रियों के साथ आर्यिका की दीक्षा ले लेती है। त्रिलोकमण्डन हाथी समाधि धारण कर ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में देव होता है और भरत मुनि अष्ट कर्मों का क्षय करके निर्वाण प्राप्त करते हैं (पर्व ८५-८७)। सब लोग भरत की स्तुति करते हैं। समस्त राजा लोग राम-लक्ष्मण का राज्याभिषेक करते हैं। राज्याभिषेक के अनन्तर राम-लक्ष्मण अन्य राजाओं के लिए देशों का विभाग करते हैं (पर्व ८८)।

राम और लक्ष्मण शत्रुघ्न से अभीष्ट देश के ग्रहण के विषय में कहते हैं। शत्रुघ्न मधुरा लेने की इच्छा प्रकट करता है। इस पर राम-लक्ष्मण वहाँ के राजा मधुसुन्दर की बलवत्ता का वर्णन कर उसे और कोई देश लेने की प्रेरणा देते हैं।

परन्तु वह नहीं मानता। राम-लक्ष्मण बड़ी सेना के साथ उसे मधुरा की ओर रवाना करते हैं। वहाँ जाने पर उसका मधु से भीषण युद्ध होता है। अन्त में हाथी पर बैठ-बैठा मधु बायल अवस्था में ही विरक्त होकर केश उखाड़ कर दीक्षा ले लेता है। शत्रुघ्न यह दृश्य देखकर उसके चरणों में गिर कर क्षमा माँगता है। बाद में शत्रुघ्न राजा बनता है (पर्व ८६)। शूलरत्न से मधु के वध के समाचार से क्रुपित होकर चमरेन्द्र मधुरा नगरी में महामारी फैलाता है। कुलदेवता की प्रेरणा पाकर शत्रुघ्न अयोध्या चला जाता है (पर्व ६०)। उसके मधुरानुराग के सम्बन्ध में पूर्वभ्रम की कथा कही जाती है (पर्व ६१)।

इसके बाद सेठ अर्हदत्त की कथा एवं सप्तर्षि मुनियों के सीता के घर आहार होने का वृत्तान्त (पर्व ६२), राम-लक्ष्मण के लिए क्रमशः श्रीदामा-मनोरमा कन्याओं की प्राप्ति का वृत्तान्त (पर्व ६३), राम-लक्ष्मण का अनेक राजाओं को वश में करने का वर्णन तथा लक्ष्मण की अनेक स्त्रियों और पुरुषों का वर्णन होता है (पर्व ६४)।

एक दिन सीता स्वप्न में देखती है कि दो अष्टापद उसके मुख में प्रविष्ट हुए हैं और वह पुष्पक विमान से नीचे गिर रही है। राम स्वप्नों का फल सुनाकर उसे सन्तुष्ट करते हैं तथा द्वितीय स्वप्न को कुछ अनिष्ट जान उसकी शान्ति के लिये मन्दिरों में जिनैन्द्र भगवान् का पूजन कराते हैं। सीता को जिन-मन्दिरों की वन्दना का दोहद उत्पन्न होता है और राम उसी पूति के लिए सजे हुए मन्दिरों में जिन-वन्दन करते हैं। वसन्तोत्सव मनाये जाते हैं (पर्व ६५)।

श्री राम महेन्द्रोदय उद्यान में स्थित हैं। प्रजा के कुछ चुने हुए लोग उनसे कुछ प्रार्थना करने के लिये आते हैं किन्तु उन्हें कुछ कहने का साहस नहीं होता। दाहिनी आँख फड़फड़ने से सीता मन ही मन दुःखी होती है। सखियों के कहने से वह किसी तरह शान्त हो मन्दिर में शान्तिकर्म करती है। इधर साहस इकट्ठा करके प्रजा के प्रमुख लोग श्री राम से सीता-विषयक-लोक-निन्दा का वर्णन करते हैं।^{१११} खिन्न राम लक्ष्मण को बुलाकर सीता के अपवाद का समाचार सुनाते हैं।

१६१ विज्ञाय ध्रुयता नाथ ! पद्मनाभ नरोत्तम ।

प्रजाश्रुताश्रिता जाता मर्यादारहिताधिका ॥

स्वभावादिव लोकोऽयं महाकुटिलमानसः ।

प्रकट प्राप्य दुष्टान्तं न किञ्चित्तस्य दुष्करम् ॥

परम चापलं धृते निसर्गेण प्लवङ्गमम् ।

किमग पुनराश्नुष्य क्षपलं यन्त्रपञ्जरम् ॥

तदृष्यो रूपसम्पन्ना पुषामल्पबलात्मवाम् ।

हिंसन्ते बलिभिर्विग्रहैः पापचितैः प्रसङ्गः च ॥

लक्ष्मण सुनते ही आग-बबूला हो जाते हैं और दुष्टों को नष्ट करने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं। वे सीता के शील की प्रशंसा कर राम के चित्त को प्रसन्न करना चाहते हैं परन्तु राम लोकापवाद के भय से सीता को कृतान्तवक्त्र सेनापति के द्वारा जिन-मन्दिरों के दर्शन के बहाने से वन में भेज देते हैं। गंगा के उस पार जाकर दुःखी कृतान्तवक्त्र सीता को राम का आदेश सुनाता है। सीता बध्नाडित-सी मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ती है और सचेत होने पर राम को सन्देश भिजवाती है कि जैसे आपने मुझे छोड़ दिया है वैसे जैन धर्म को मत छोड़ देना।^{१६२} वह मूर्च्छित हो जाती है। सेनापति लौट जाता है। उसी समय पुण्डरीकपुर का स्वामी राजा वज्रजंघ सेना सहित उधर से सीता का विलाप सुनकर उसे धर्म-बहिन मान कर पुण्डरीकपुर ले जाता है और बड़ी विनय और श्रद्धा के साथ सीता को अपने यहाँ रखता है। इधर कृतान्तवक्त्र लौटकर श्री राम को सीता का सन्देश सुनाता है। वन की भीषणता और सीता की गर्भदशा का विचार कर राम बहुत दुःखी होते हैं। लक्ष्मण उन्हें समझाते हैं (पर्व ६६-६६)।

वज्रजंघ के राजमहल में सीता अंगलवण और मदनकुश नामक दो पुत्रों को उत्पन्न करती है। इन पुण्यशाली पुत्रों की पुण्यमहिमा से राजा वज्रजंघ का वैभव निरन्तर बढ़ता रहता है। सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक दोनों को विद्या प्रहण कराता है (पर्व १००)। विवाह के योग्य अवस्था होने पर राजा वज्रजंघ अपनी

प्राप्तदुःखा प्रियां साध्वी विरहात्यन्तदुःखिन ।
 कश्चित्सहृद्यमासाद्य पुनरानयते गृहम् ॥
 प्रलीनधर्ममर्यादा यावन्तथ्यति नास्ति ।
 उपायश्चिन्त्यता तावत्प्रजाना हितकाम्यया ॥
 राजा मनुष्यलोकेऽस्मिन्नाधुना त्व मदा प्रजा ।
 न पाति विधिना नाशमिमा यान्ति तदा ध्रुवम् ॥
 नष्टुद्यानसभाशामप्रपाद्वपुर्वैरमस्तु ।
 अवर्णवादयेक ते भुक्त्वा नान्यास्ति सखाया ॥
 स तु दाशरथी रामः सर्वेसास्त्रविहारदः ।
 हुता विद्याधरेणेन ज्ञानकी पुतरानयत् ॥
 तत्र नूनं न दोषोऽस्ति कश्चिदप्येवमाश्रिते ।
 व्यवहारेऽपि विद्वान् प्रमाण जगतः परम् ॥
 तं च शादूक्षसुवीर्यः कर्मयोग निवेदते ।
 स एव सहतेऽस्माकमपि माथानुवर्तिनाम् ॥
 एव प्रदुष्टचित्तस्य बधमानस्य भूतले ।

निरकुलस्य लोकस्य काकुलस्य ! कुरु निष्ठहम् ॥" (पद्य० १६।४०-५१)

१६२. सीता के इस मानिक सन्देश के लिए देखिए—(पद्मपुराण १७।११६-१३१)

लक्ष्मी रानी से उत्पन्न शशिचूला आदि ३२ पुत्रियाँ लवण को देने का निश्चय करता है और अंकुश के लिए योग्य पत्नी की खोज में लग जाता है। बहुत विचार करने के पश्चात् वह पृथ्वीपूर के राजा पृथु की अमृतवती रानी के गर्भ से उत्पन्न कनकमाला नाम की पुत्री के लिए अपना दूत भेजता है परन्तु पृथु इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर उसका अपमान करता है जिससे क्रुद्ध होकर बज्रजंघ उसका देश उजाड़ने लगता है। जब तक पृथु अपनी सहायता के लिए पोंदन देश के राजा को बुलाता है तब तक बज्रजंघ अपने पुत्रों को बुला लेता है। दोनों ओर से घनघोर युद्ध होता है जिसमें बज्रजंघ विजयी होता है। राजा पृथु अपनी पुत्री कनकमाला अंकुश के लिए देता है। विवाह के बाद दोनों वीर कुमार विनिबन्ध कर अनेक राजाओं को अपने अधीन करते हैं (पर्व १०१)।

एक दिन प्रसंगवश नारद लवण-अंकुश को राम-लक्ष्मण का परिचय देता है तथा उनके पत्नी-त्याग तक की कथा सुनाता है। गर्भिणी स्त्री का त्याग कुमारों को ठीक नहीं जँचता और वे राम से युद्ध करने का सकल्प कर लेते हैं। इसी बीच सीता अपनी सब कथा पुत्रों को सुनाती है तथा उनसे कहती है कि तुम लोग अपने पिता-चाचा से मन्त्रतापूर्वक मिलो परन्तु कुमारों को यह दीनता रुचिकर नहीं होती और वे सेनासहित जाकर अयोध्या को घेर लेते हैं। राम लक्ष्मण से उनका घनघोर युद्ध होता है।^{१६३} राम-लक्ष्मण अमोघ शस्त्रों का प्रयोग करके भी जब दोनों कुमारों को नहीं जीत पाते तब नारद की सम्मति से सिद्धार्थ क्षुल्लक उनके सम्मुख कुमारों का रहस्य प्रकट करता हुआ कहता है कि ये आपके ही युगल पुत्र हैं जो सीता के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं जिसे सुनते ही राम-लक्ष्मण शस्त्र फेंक देते हैं तथा पिता-पुत्रों का मिलन होता है (पर्व १०२-१०३)।

हनूमान्, सुग्रीव तथा विभीषण की प्रार्थना पर राम सीता को इस शर्त पर बुलाना स्वीकृत कर लेते हैं कि वह देश-विदेश के समस्त लोगों के समक्ष अपनी निर्दोषता शपथ द्वारा सिद्ध करे। सीता की अग्नि-परीक्षा होती है, उसमें वह सफल होती है, अग्निकुण्ड जलपूर्ण वापिका हो जाता है। महेश्वरोदय उद्यान में सर्वभूषण मुनिराज के ध्यान और उपसर्ग का वृत्तान्त आता है। सीता की अग्नि-परीक्षा की सफलता पर राम अपने अपराध की क्षमा माँगकर घर चलने के लिए कहते हैं किन्तु सीता संसार से विरक्त हो चुकी है, इसलिए वह घर न जाकर पृथिवीमती आगिका के पास दीक्षा ले लेती है। राम सर्वभूषण केवली के पास जाकर धर्मश्रवण करके पूछते हैं कि क्या मैं भ्रम्य हूँ? इसके उत्तर में केवली ने

१६३. इस युद्ध में हनुमान् 'लामूल' नामक अस्त्र लेकर सबवांकुश के पक्ष में लड़ते हैं।

कहा कि तुम भग्य हो और इसी भव से मोक्ष प्राप्त करोगे (पर्व १०४-१०५) । विभीषण के द्वारा पूछने पर केवली द्वारा राम-लक्ष्मण और सीता के भवान्तरों का वर्णन होता है (पर्व १०६) ।

संसार-भ्रमण से विरक्त होकर कृतान्तवक्त्र सेनापति राम से दीक्षा लेने की आज्ञा माँगता है । राम उसे दीक्षा की कठिनता बताते हैं तथा कहते हैं कि यदि तुम निर्वाण प्राप्त कर सको और देव होओ तो मोह में पड़े हुए मुझको सम्बोधना न भूलना । सेनापति राम का आदेश पाकर दीक्षा ले लेता है । सर्वभूषण केवली का जब विहार हो गया तब राम सीता के पास जाकर कठिन तपश्चर्या पर आश्चर्य प्रकट करते हैं (पर्व १०७) । श्रेणिक के प्रश्न करने पर इन्द्रभूति गणधर सीता के दोनों पुत्रों लवण और अंकुश के चरित्र का कथन करते हैं । (पर्व १०८) । सीता बासठ वर्ष तपकर अन्त में तैतीस दिन की सस्लेखना धारण कर अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र हो जाती है । अच्युत स्वर्ग के तत्कालीन इन्द्र राजा मधु का वर्णन होता है (पर्व १०९) ।

काञ्चनस्थान नगर के राजा काञ्चनरथ की दो पुत्रियों—मन्दाकिनी और चन्द्रमाया ने जब स्वयंवर में क्रमशः अनंगलवण और मदनान्कुश को बर लिया तब लक्ष्मण के पुत्र उत्तेजित होते हैं पशुनु लक्ष्मण की आठ पट्टरानियों के आठ प्रमुख पुत्र उन्हें समझाकर शान्त कर देते हैं और स्वयं संसार से विरक्त होकर दीक्षा धारण कर लेते हैं (पर्व ११०) । वज्रपात से भामण्डल की मृत्यु हो जाती है (पर्व १११) । हनूमान् आकाश में विलीन होती हुई उल्का को देखकर विरक्त हो जाता है और धर्मरत्न मुनिराज के पास दीक्षा धारण कर लेता है । अन्त में वह निर्वाणगिरि पर्वत पर मोक्ष प्राप्त करता है (पर्व ११२-११३) । लक्ष्मण के आठ कुमारों और हनूमान् की दीक्षा का समाचार सुनकर यह कहते हुए श्रीराम हँसते हैं कि अरे इन लोगों ने क्या भोग भोगा ? सीधमन्द्र अपनी सभा में स्थित देवों को धर्म का उपदेश देता हुआ कहता है कि सब बन्धनों में स्नेह का बन्धन है, इसका टूटना सरल नहीं (पर्व ११४) । राम और लक्ष्मण के स्नेह बन्धन की परीक्षा करने के लिए स्वर्ग से दो देव अयोध्या जाते हैं और विक्रिया से झूठा रुदन दिखाकर लक्ष्मण से कहते हैं कि 'राम की मृत्यु हो गयी है' यह सुनते ही लक्ष्मण का शरीर निष्प्राण हो जाता है । अन्तपुर में हाहाकार छा जाता है । राम दौड़े हुए आते हैं किन्तु लक्ष्मण के निर्गत प्राण नहीं लौटते । देव अपनी करतूत पर पछताते हैं और वापिस चले जाते हैं । इस घटना से लवणान्कुश भी विरक्त होकर दीक्षा ले लेते हैं (पर्व ११५) । लक्ष्मण के निष्प्राण शरीर को राम गोदी में लिये फिरते हैं और पायल की भाँति कण बिलाप करते हैं (पर्व ११६) । लक्ष्मण के मरण का समा-

चार सुनकर सुग्रीव तथा विभीषणादि अयोध्या आते हैं और संसार की स्थिति का वर्णन करते हुए राम को समझाते हैं (पर्व ११७)। वे लक्ष्मण का दाहसंस्कार करने की प्रेरणा देते हैं परन्तु राम उनसे कुपित हो लक्ष्मण के शव को लेकर अन्यत्र चले जाते हैं तथा उसे नहलाते हैं, भोजन कराने का प्रयत्न करते हैं और चन्दनादि के लेप से अलंकृत करते हैं। इसी वृथा में दक्षिण के कुछ विरोधी राजा अयोध्या पर आक्रमण की सलाह कर भारी सेना लेकर आ पहुँचते हैं परन्तु राम के पूर्वभव के स्नेही कृतान्तवक्त्र सेनापति और जटायु के जीव, जो स्वर्ग में देव हुए थे आकर इस उपद्रव को नष्ट कर देते हैं, वे शत्रुबन्ध उपद्रव को दूर कर नाना उपायों से राम को सम्बोधित हैं जिससे राम छः मास बाद लक्ष्मण का दाह-संस्कार करते हैं (पर्व ११८)। राम संसार से विरक्त होकर शत्रुघ्न को राज्य देना चाहते हैं किन्तु वह लेने से निषेध कर देता है। तब सीता के पुत्र अंगलवण को राज्यभार सौंपकर वे निश्रन्ध-दीक्षा धारण कर लेते हैं। इसी समय विभीषण आदि भी अपने पुत्रों को राज्य देकर दीक्षा धारण कर लेते हैं (पर्व ११९)।

महामुनि राम चर्या के लिये नगरी में आते हैं किन्तु वहाँ अद्भुत प्रकार का क्षोभ हो जाने से वे बिना आहार किये ही वन को लौट जाते हैं (पर्व १२०)। वे पाँच दिन का उपवास लेकर यह नियम लेते हैं कि यदि वन में आहार मिलेगा तो लेंगे अन्यथा नहीं। राजा प्रतिनन्दी और रानी प्रभवा वन में ही उन्हें आहार देकर अपना गृहस्थ जीवन सफल करते हैं (पर्व १२१)।

राम तपश्चर्या में लीन हैं। सीता का जीव अच्युत स्वर्ग का प्रतीन्द्र जब अवधिज्ञान से यह जानता है कि ये इसी भव से मोक्ष को जाने वाले हैं तो उन्हें विचलित करने का प्रयत्न करता है परन्तु उसका सब प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है। महामुनि राम क्षणिक श्रेणी प्राप्त कर केवली हो जाते हैं (पर्व १२२)।

सीता का जीव नरक में ज.कर लक्ष्मण के जीवको सम्बोधित है, धर्मोपदेश देता है, उसके दुःख से दुःखी होता है तथा उसे नरक से निकालने का प्रयत्न करता है परन्तु सब प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है। नरक से निकलकर सीतेन्द्र राम केवली की क्षरण में जाता है और उनसे दशरथ का जीव कहाँ उत्पन्न हुआ है? भामण्डल का क्या हाल है? लक्ष्मण तथा रावणादि का आगे क्या हाल होगा?—इत्यादि प्रश्न पूछता है। राम केवली अपनी दिव्य ध्वनि के द्वारा उसका समाधान करते हैं। १९४ अंश में राम केवली निर्वाण प्राप्त करते हैं (पर्व १२३)।

१९४. रावणादि के भावी जन्मों का कथन इस प्रकार है—

भविष्यतः स्वकर्माभ्युदयो रावणलक्ष्मणौ ।

तृतीयनरकादित्य अनुपूर्वाज्ज मन्वरात् ॥

इस प्रकार पद्मपुराण की विषयवस्तु का उपसंहार करते हुए अन्त में रवि-
वेणु ब्रम्हमाहृतस्य बीर अपनी प्रशस्ति देते हैं ।

शृणु सीतेऽत्र विजित्य दुःखं तरकसम्भवम् ।
मगधौ विजयावत्यां मनुष्यत्वेन चाप्स्यते ॥
गृहिण्यां रोहिणीनाम्न्यां मुनन्दस्य कुटुम्बिनः ।
साम्यदृष्टेः पियौ पुत्री क्रमेणैतौ भविष्यतः ॥
अहंदासपितासाध्वी केवितयौ च सद्गुणैः ।
प्ररपन्तमहत्केतकी प्रसाधनीयक्रियापरी ॥
गृहस्थविधिनाभ्यर्च्य देवदेव जिनेश्वरम् ।
अनुव्रतधारी काले सुधीवाणौ भविष्यतः ॥
पञ्चेन्द्रियमुखं तत्र चिरं प्राप्य मनोहरम् ।
च्युत्वा धूमश्च तत्रैव जनिष्येते महाकुले ॥
सद्दानेन हरिर्लोकं प्राप्य च विदिषं गतौ ।
प्रच्युतौ पुरि तत्रैव नृपपुत्रौ भविष्यतः ॥
तान् कुमारकीर्त्यालयो मधमीस्तु जगनी तयोः ।
वीरो कुमारकावैतौ जयकान्तजयप्रभी ॥
ततः परं तपः कुरवा सान्त्वय कल्पमाश्रितौ ।
विबुधोत्तमना गत्वा भोक्ष्येते तद्धव्यं मुखम् ॥
त्वमत्र भरतक्षेत्रे च्युतः सन्नारणाच्युतान् ।
सर्वरत्नपति श्रीमान् चक्रवर्ती भविष्यति ॥
तौ च स्वर्गच्युतौ देवी पुण्यनिस्स्यन्दतेजसा ।
इन्द्राश्वोदरयाभिदधौ तत्र पुत्रौ भविष्यतः ॥
आसीत्प्रीतिरिपुर्धौऽसौ दक्षवक्त्रो महाबलः ।
येनेमे भ्रात्रे भ्रात्रे जय खण्डा वशीकृता ॥
न कामयेत्परस्य स्त्रीमकामाभिनि निरुधयः ।
अपि जीवितमत्याशीतस्त्वमनुपासयन् ॥
सोऽग्रिमिन्द्ररथाभिदधौ भूत्वा धनेपरायणः ।
प्राप्य श्रेष्ठान् भवान् काश्चित्तिर्यैरुत्तरकञ्जितान् ॥
स मानुष्य मासासाद्य दुर्जनं सर्ववेहिनाम् ।
तीर्थकृतकर्मसङ्घातमर्जयिष्यति पुण्यवान् ॥
ततोऽनुकमतं पूजामवाप्य भुवनत्रयात् ।
मोहादिभलमुन्नाशनं निहृत्वाहृतमाप्स्यति ॥
रत्नस्थमपुरे कृत्वा राज्यं चक्रयस्त्वसौ ।
वैजयन्तेऽहमिन्द्रत्वमवाप्स्यति तपोबलात् ॥
स त्वं तस्य जिनेन्द्रस्य प्रच्युतः स्वर्गलोकतः ।
वाचो गणधरः श्रीमान्निद्राप्रप्तो भविष्यति ॥

आलोचना :

उपर्युक्त विवेचन से 'पद्मपुराण' की विषयवस्तु का स्वरूप स्पष्ट हो चुका है। अष्टम बलभद्र-राम के चरित्र को वर्णित करके रचिषेण जैनधर्म की भावनाओं को पाठकों तक पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये कवि ने विषयवस्तु की अपनी प्रतिभानुसार योजना की है।

अब हम पद्मपुराण की प्रबन्धात्मकता पर किञ्चित् विचार करेंगे। प्रबन्धात्मकता परब्रह्म के लिए (१) कथानक के प्रारम्भ, (२) कथानक-गति के हेतु मार्मिक स्थल, चलते वर्णन, अरोचक वर्णनों के त्याग, अप्रिय प्रसंगों की स्थिति, निरर्थक आवृत्ति से बचाव, प्रासंगिक कथाओं की संगति एवं उपाख्यानों तथा (३) उपसंहार पर विचार करना होता है। हम इसी निकषभावा पर 'पद्मपुराण' की परीक्षा करने का प्रयत्न करेंगे।

'पद्मपुराण' की विषयवस्तु का प्रारम्भ पौराणिक ढंग के आख्यानों को लेकर हुआ है। आधिकारिक कथा-राम की कथा—तो बहुत वाव में आती है। १ से २० पर्व तक तो ऐसा प्रतीत होता है कि 'पद्मपुराण' न पढ़कर हम 'रावण-पुराण' ही पढ़ रहे हों। बानर-राक्षस वश के परिचय के समय चौंसठ-चौंसठ राजाओं की नामावलियाँ मुख्य कथा तक पहुँचने में एक अड़चन सी डालती हैं।

कथानक की गति का जहाँ तक प्रश्न है, 'पद्मपुराण' का कथानक अधिक गतिशील नहीं है। मार्मिक प्रसंगों की पहिचान कवि को है। उसने अपनी कथा के अनुसार धनुषोत्सव, अनेक स्थलों पर तरुणों को देख कर नारियों के भावालाप, वन-गमन करते राम-लक्ष्मण को देखकर तरुणियों की विह्वलता, सीता-हरण पर राम विलाप, अञ्जना-पवनञ्जय-वियोग, राम-लक्ष्मण-प्रेम, लवणांकुश-युद्ध, सीता का राम को संदेश एवं सीता की तपस्या आदि अनेक मार्मिक प्रसंगों को ध्यान में रखा

तत परमनिर्वाणं यास्यसीत्यमरेश्वर ।
भूत्वा ययौ परा तुष्टिं भाषितेनान्तरात्मना ॥
अथ तु लाभ्यमाणं भावः सर्वज्ञेन निवेदितः ।
अभ्योदयधनामासी भूत्वा शक्यगत्तमज ॥
वाङ्मन् कारिषद्भुक्तान् स्नात्वा धर्ममगलबेष्टित ।
विवेहे पुष्करद्वीपे शत्रुपलाह्वये पुरे ॥
लक्ष्मणः स्तब्धिते कान्ते प्राप्य जन्माभिषेचनम् ।
शक्रमाणित्वमर्हत्त्वं लब्ध्वा निर्वाणमेप्स्यति ॥
सम्पूर्णः सप्तभिरबाह्वैरहन्पुनर्भवम् ।
ममिष्यामि यता यत्न साधयो भरतादयः ॥"

(पद्मपुराण, १२३।११५-१३४)

है। वहाँ उनके उदाहरण देना स्थान स्थगन मात्र होगा।

चलते वर्णनों की दृष्टि से भी पद्मपुराण की समीक्षा कर ली जाये। 'पद्म-पुराण' एक विशालकाय ग्रन्थ होने के कारण प्रत्येक बात का सांगोपांग वर्णन देता है, राम से मिलने के बाद भरत के लौटने आदि के वर्णन में यद्यपि रविवेण ने दो-पंक्तियों से ही काम चला लिया है यथा—

“तौ विधाय यथायोग्यमुपचारं ससीतयोः।

रामलक्ष्मणयोर्यातौ मातापुत्री यथागतम्॥”

तथापि अधिकांश वर्णन उसने लम्बे ही किये हैं। रविवेण को तो जरा कोई बात कहने का अवसर मिलना चाहिए, बस फिर लीजिये सांगोपांग वर्णन।

अरोचक वर्णनों के त्याग में भी प्रायः कवि जागरूक है। उन वर्णनों को प्रायः उसने नहीं किया है, जिनमें पाठक की उत्प्रेरकता नष्ट हो। इसीलिये वर्णनों के आरोह विस्तृत हैं और अवरोह अत्यन्त संक्षिप्त यथा—रावण की अनेक राजाओं पर विस्तृत चढ़ाई एवं संक्षिप्त प्रत्यावर्तन आदि।

निरर्थक आवृत्ति से आत्यन्तिक अचाव 'पद्मपुराण' में नहीं हो सका है। दो-तीन बार तो 'रामकथा' का विवरणात्मक परिचय है, यथा—हनूमान् द्वारा सीता के समक्ष एवं नारद द्वारा लवकुश के समक्ष।

प्रासंगिक कथाओं की संगति का कवि ने पूर्ण प्रयत्न किया है। 'पद्मपुराण' में सुग्रीव और हनूमान् की कथा प्रासांगिक मानी जा सकती है। यह कथा आधिकारिक कथा के साथ अन्त तक चलती है। सुग्रीव और हनूमान् अन्त तक राम के मित्र, सेवक और सहायक बने रहने हैं। सुग्रीव को राज्यप्राप्ति और स्त्री-प्राप्ति होती है एवं हनूमान् को पत्नी-राज्य-सम्मान-प्राप्ति।

पौराणिक काव्यों में उपाख्यान पर्याप्त मात्रा में समाविष्ट रहते हैं। इनका कही कथा से सीधा सम्बन्ध होता है और कही परम्परा से। इनका अभिप्राय कुछ न कुछ अवश्य होता है। हमारे आलोच्य ग्रंथ में अनेक उपाख्यान आये हैं। उपाख्यान, योजना का उत्कर्षापकर्षत्व उसकी रोचकता और कथासम्बद्धता से ही जाँका जाता है। 'पद्मपुराण' में अनेक उपाख्यान आये हैं। जैन-धर्म-पम्बन्धी जितने भी प्रसिद्ध आख्यान-उपाख्यान हैं—प्रायः उन सभी का उल्लेख इसमें हुआ है। इसे धार्मिक जैन उपाख्यानों का भण्डार कहा जा सकता है। 'स्थिति,' 'वंशसमुत्पत्ति,' 'प्रबोधि' और 'परनिर्वृति' नामक प्रधिकारों में ये उपाख्यान अधिकतः आते हैं। पात्रों के पूर्वभवाँ के वर्णन के समय तो एक में से एक उपाख्यान उसी प्रकार निकलता चला जाता है जिस प्रकार कदली के छिलके के अन्दर दूसरा छिलका। अधिकांश उपाख्यान या तो गौतम गणधर ने कहे हैं या फिर किसी जैन मुनि ने। इन

उपाख्यानों को रविषेण ने अपने 'पद्मपुराण' की एक विशेषता समझा है।^{१५५} यहाँ उन सब उपाख्यानों का परिचय देना अनावश्यक विस्तार ही सिद्ध होगा, अतः नामोल्लेखमत्र किया जाता है—राजाश्रेणिक-आख्यान, ऋषभजन्म-कथा, मेघवा-हनकथा, सगरपाख्यान, भरत-बाहुबलि-आख्यान, ब्राह्मणोत्पत्ति-कथा, हितकरादि-उपाख्यान, हरिदास-भावनोपाख्यान, चन्द्रावलि-उपाख्यान, श्रीकण्ठ-वज्रकण्ठ-कथा, अमरप्रभ-कथा, मुपशोदत्त-कथा, किष्किन्ध-अश्व-कथा, सुकेश-पुत्रों की जन्म-कथा, मालि-इन्द्र-युद्ध-कथा, रत्नश्रवा-केरुसी कथा, वैश्रवण-रावण-कथा, हरिषेणो-पाख्यान, रावण-बालि-युद्ध-कथा, सहस्ररश्मि-रावण-कथा, उपरम्भा-कथा, इन्द्र-रावण-युद्ध-कथा, अनन्तवल-रावणोपाख्यान, मरुत्वान्-यज्ञ-कथा, पवनजय-अंजना-कथा, प्रतिमूर्य-अंजना-प्रसंग, हनूमान्-वरुण-युद्ध-कथा विभीषण-सागरवृद्धि-उपा-ख्यान विभीषण नारद-सीतोपाख्यान, वशरथ-केकयोपाख्यान, भामण्डलीपाख्यान, वज्रकर्ण-सिंहोदर-कथा, कूबरनरेश (कल्याणमाला)-कथा, रौद्रभूति-कथा, कपिल-ब्राह्मणोपाख्यान, वनमालोपाख्यान, अतिवीर्योपाख्यान, देश-भूषण-कुलभूषण-कथा, वण्डक-व्रटायु-कथा, रत्नजटी-कथा, विराधित-कथा, जितपथोपाख्यान, शम्भूक-कथा, साहसगति-मुषीव-कथा, महेन्द्र-हनूमान्-कथा, दधिमुखद्वीपस्थ-मुनि-उपसर्ग-कथा, लंका-मुन्दरी-कथा, गिरि-गोभूति-उपाख्यान, हस्तप्रहस्त-नल-नील-कथा (इश्वक-पल्लवकोपाख्यान), चन्द्रप्रतिमोपाख्यान, द्रोणमेघ-विशस्योपाख्यान, चन्द्र-वद्ध-नविषधरकस्योपाख्यान, अरिदमोपाख्यान, अनन्तवीर्योपाख्यान, प्रथम-पश्चि-मोपाख्यान, नोदन-अभिमानोपाख्यान, अमल-भद्राचार्योपाख्यान, भरतोपाख्यान, त्रिलोकमण्डनशमोपाख्यान, मरीचि-उपाख्यान, सूर्योदय-चन्द्रोदयोपाख्यान, मुबु-मति-उपाख्यान, मधु-मुन्दरोपाख्यान, यमुनदेव-चन्द्रभद्राद्युपाख्यान, अर्हद्तो-पाख्यान, मनोरमोपाख्यान, सिद्धार्थक्षुल्लकोपाख्यान, सकलभूषणोपाख्यान, गुणवती-धनदत्तोपाख्यान, पद्मरुचि-श्रीचन्द्र-हेमवती-वेदवती-वसुदत्ताद्युपाख्यान, प्रियंकर-हितकरोपाख्यान, अग्निभूति-वायुभूति-उपाख्यान, कृतान्तवक्रोपाख्यान एवं बज्रांकाद्युपाख्यान आदि। ये उपाख्यान कहीं-कहीं तो इतने अधिक हैं कि मुख्य-कथा को संभालना कठिन सा लगता है।

'पद्मपुराण' की विषयवस्तु का निर्वाह 'भवोक्ति' और 'परिनिर्वृति' नामक

१६५. "एतत्सुसमाहितं सुनिपुणं दिव्यं पवित्राक्षरम्

मानाजन्मसहस्रसंचितचनकलेषौपनिर्णयनम् ।

आख्यानेविधिर्निश्चितं सुपुरुषस्यापारसंकीर्तनम्

भव्याम्भोजपरप्रह्वंजननं सकीर्तितं भक्तिम् ॥

(पद्मपुराण, १२३/१६५)

अधिकारों में मिलता है। कवि राम-राज्य, राम-लक्ष्मण-श्रेम, सीता-वनवास, लव-वाङ्कुक्ष-उत्पत्ति, सीता की अग्नि-परीक्षा, लक्ष्मणमृत्यु, सीता का आश्रय बनकर तपस्या द्वारा श्वीश्वीनिच्छेद करने और प्रतीन्द्र बनने, लवणाङ्कुक्षराज्याभिषेक और राम की जिन-दीक्षा आदि का वर्णन करता हुआ उनके केवली होने की सूचना देता है। यद्यपि जैन दृष्टिकोण के अनुसार ही कथा का उपसंहार दिखाया गया है तथापि उपसंहार है अवश्य। प्रतीन्द्र सीता तो केवली राम से सभी पार्श्वों का भावी जन्म भी जान लेता है। साथ ही अनेक मुनियों के द्वारा प्रायः सभी या प्रमुख पार्श्वों के पूर्वभव का हमें परिचय मिल जाता है। इस प्रकार 'पद्मपुराण' के कथा-वक्ता का पूर्ण उपसंहार हुआ है।

●

पञ्चम अध्याय

पद्मपुराण के पाल तथा चरित्र-चित्रण

पीछे हम महाकाव्य और पौराणिक काव्य की विशेषताएँ बताते हुए लिख चुके हैं कि महाकाव्य में एक नायक होता है तथा अन्य अनेक पात्र होते हैं। इसी प्रकार पौराणिक काव्यों में अनेक उपाख्यान होते हैं जिनमें अनेक पात्रों का होना स्वाभाविक ही है। किसी कथा के नायक मात्र से ही कथा को पूर्णता प्राप्त नहीं होती। उसके लिए उसे अन्य पात्रों से भी सम्पर्क रखना पड़ता है। यह सम्पर्क कहीं विरोधात्मक होता है और कहीं सहायता प्रदान करने वाला। इस प्रकार तीन क्षेत्र हो जाते हैं—नायक-क्षेत्र, विरोधी-क्षेत्र, एवं सहायक-क्षेत्र। इन तीनों क्षेत्रों के प्रधान पात्रों को नायक, प्रतिनायक तथा पीठमर्द कहा जाता है। इनके ही अन्य साथी भी होते हैं। इस प्रकार अनेक पात्रों का किसी बड़े प्रबन्धकाव्य में होना नैसर्गिक ही है। इन पात्रों का अपना-अपना चरित्र होता है जिसका चित्रण कवि तीन प्रणालियों से करता है —

१—पात्रों के कार्यों द्वारा,

२—उनके वार्तालाप के द्वारा और

३—लेखक के कथन या व्याख्या द्वारा।

इनमें पहली और दूसरी प्रणाली नाटकीय या परोक्ष एवं तीसरी प्रत्यक्ष होती है।

‘पद्मपुराण’ के कथानक में भी हमारे सम्मुख अनेक पात्र आते हैं जिनका चित्रण कवि ने यथासमय तीनों पद्धतियों से किया है उन्हीं पात्रों का विवेचन हमें यहाँ करना है।

‘पद्मपुराण’ में लम्बा कथानक एवं अनेक उपाख्यान होने के कारण पात्रों की संख्या बहुत बड़ी-चड़ी है।

इन पात्रों की नामावली इस प्रकार दी जा सकती है : १९९

अकम्पन (१५), अग्नि (८०), अग्निशिख (१०, १०२), अग्निकुण्ड (८५), अग्निकेतु (३६, ४१), अग्निरथ (१२), अग्निप्रभ (३६), अग्निला (१०६), अग्निभूति (१०६), अचल (२०, ४१, ७४, ६१), अच्युत (६४), अजितनाथ (१, २०, ४३), अतिवीर्य (१, ५, ३७), अतिबल (५, २०), अतिध्वंस (५), अतिभीम (६), अतिभूति (३०), अतिविजय (५८), अदिति (७), अनन्तनाथ (१, ६, २०), अनन्तवीर्य (१, २२, ४१, ७६), अनावृत (१, १४), अनुराधा (१, ६), अनुत्तर (५), अनुमति (५, १०), अनिल (५), अनन्तबल (१४), अर्नगवीचि (१८), अर्नगपुष्पा अर्नगकुमुमा (१६, ४६, ४८, ५७), अर्नरथ्य (१, २२, २८, ३०, ३१), अर्नन्तरथ (२२), अर्नुकोशा (३०), अर्नुद्धरा (३६), अर्नुधर (३६), अर्नुद्धर (५८), अर्नघ (६०), अर्नगसेना (६३, ६४), अर्नग-शिखा (६४), अर्नगसुन्दरी (८७), अर्नुमति (६६), अर्नगलवण (१००, ११०) अर्परजित (२०), अर्परजिता (२५), अर्परमुख (६१), अर्परग (६१), अर्प्रतीपात (५८), अर्न्विदेव (६१), अर्नगशरा (६३), अर्भिमाना (८०), अर्भिनन्धन (१, ६, २०), अर्भयकुमार (२), अर्भयानन्द (२०), अर्भयसेन (२२), अर्भयनिनाद (१०५), अर्भिगम (८५), अर्मूल (५), अर्मल (५), अर्भरविक्रम (५), अर्भररक्ष (५), अर्भरप्रभ (६), अर्भभोथरध्वनि (६), अर्भिरस (८), अर्भजा (१, १५, १६, १७), अर्भरसागर (१५), अर्भरावती (१०६), अर्भितांग (२०), अर्भिका (२०), अर्भूतवती (२२), अर्भूतवेग (५), अर्भूत-स्वर (३६) अर्भूतार (५०), अर्भग (५१), अर्भगरक (५१), अर्भलचन्द्र (५५), अर्भूट (५८), अर्भद (१०, ८७, ५६, ५८, ६०, ७१, ७६), अर्भुर (६०), अर्भ (६० १०८), अर्भ (६१), अर्भिका (६१), अर्भोषशर (८०), अर्भुश (मदनाकुश) (१००), अर्भ्रक (६), अर्भग (४८), अर्भनाथ (१, ६, २०, ६८, १०६), अर्भरुटेनेमि (१), अर्भ्रजय (५), अर्भ (५), अर्भिमर्दन (५) अर्भ-सन्नास (५), अर्भिसज्वर (१२), अर्भिम (१५, २०, ८७), अर्भिसूदन (३१), अर्भविन्दा (३८), अर्भकीर्ति (६), अर्भचूड (५), अर्भच्छ्री (५), अर्भदुर्भक्ति

१६६. कोष्ठक में पर्वों की संख्या है। कोष्ठिकादि पर्व संख्या के प्रतिरिक्त भी पात्रों के नाम आये हैं किन्तु छपने प्रयोजन की निधि एक ही पर्व की संख्या लिख देने से भी हो जाती है, अतः सभी स्थलों का उल्लेख नहीं किया है।

(५), अर्हन्त (१०, ६७, ११४), अर्णव (२०, ५४), अर्कमाली (४६), अर्घचन्द्र (५८), अजित (६०), अर्क (६०), अर्जुनवृक्ष (६४), अर्कमुल (६१) अर्हदास (११६), अर्हदत्त (६२), अलक (८८), अवद्वार (६३), अशनिवेश (१, ६), अश्वधर्मा (५), अश्वामु (५), अश्वध्वज (५), अश्विनीकुमार (७), अशोकलता (८), अष्टचन्द्र विद्याधर (६), अष्टापद (१७), अश्वसेन (२०), अश्वप्रीव (२०), अशोकदत्त (८५), अशोक (१२३), अश्विनी (५६),

आकाशगामी मुनिराज (६), आकाशध्वज (१२), आक्रोश (६०), आतकी (५), आत्मश्रेय (४८), आदित्यगति (५), आदित्ययथा (५), आदिनाथ (८५), आनन्द (६, २०, ७३), आनन्दमाल (१३), आनन्दवती (२०), आनन्दा (७७), आन्तरंगतम (२७), आर्यगुप्त (२६), आवलि (५), आवली (६), आहूत्या (१३),

इन्द्र (५, ७, ६, ६६, ७८, १२३), इन्द्रकेतु (२८), इन्द्रगिरि (२१), इन्द्रजित् (५, ८, ४५, ७८, ११८), इन्द्राणी (६, ८, ३६), इन्द्रदत्त (६१), इन्द्रदत्ता (६१), इन्द्रध्वज (८८), इन्द्रद्युम्न (५), इन्दुलता (८), इन्द्रप्रभ (५), इन्द्रप्रचण्ड (५५), इन्द्रमत (६), इन्द्रमुख (६१), इन्द्रमालिनी (११), इन्द्रायुध (वज्र) प्रभ (६), इन्द्रद्युति (१), इन्द्रायुध (५८), इन्द्रेखा (५), इन्द्रवज्र (६७, ७०), इन्धक (५६), इमर्ण (३५), इमवज्र (५५), इमवाहन (२१), इलावर्धन (२१), ईशान (७३), ईषु (२५),

उग्र (१२, ६०, ७३), उग्रनक्र (८ क्रूरनक्र), उग्रनाद (५७), उग्रश्री (६५), उग्रमुख (६१), उडुपालन (५), उत्तर (५), उत्तरवामी (१), उत्पलमती (५), उत्तम (५७), उद्भव (१२), उदयसुन्दर (२१), उदयाचल (५), उदित (५, ३६), उदितपराक्रम (५), उद्धामा (५७), उद्धाम (६०) उपरम्भा (१, २), उग्रमनु (३१), उपयोगा (३६), उपासित (३१), उर्व- (७८), उर्वशी (७, २६, ७७), उल्का (५६) ऊजिन (५८, ११४), ऊर्मित-रंग (७४), ऊरी (३०),

एकचूड (५), ऐन्द्री (८३), ऐर (२५), ऐराणी (२०), ऐरादेवी (२०), ऋक्षरज (७, ८, ६), ऋषभ (२०), ऋषिदास (१२३), ककुत्थ (२२), कठोर (३२), कंटक (३२), कदम्ब (५७), कनक (२८, ५७, ८, १२, ४८), कनक-माला (१०१), कनकप्रभ (१०६), कनकद्युति (१५), कनकाम (२०), कनका-वली (६), कनकाभा (२२, ७७), कनकोदरी (१७), कमलकान्ता (३०), कमलवर्ध (५४), कमलबन्धु (२२), कमला (५४) कमलामेला (२६), कमलो-त्सव (३६), कमलानना (७७), कयान (३०), कलभ (३७) कलावती (८३),

कलिय (१०२); कल्याण (१३), कल्याणमाला (८३), कल्याणमाला (६४, ३४) कलिपु (१०८), कर्षक (३६), कांचनरथ (११०), कांचनाभा (३६), कर्तवीर्य (२०), कान्त (५८), कान्ता (५), कान्ता (८३), कान्ति (७७), काम (५७, ६२), कामलता (३३), कामराशि (५७), कामान्ति (५७), कामावर्त (५७), काल (५५), काल (५८), कालि (५८), कालचक्र (७४), कालाग्नि (७), किपुरुष (१३), किष्किन्व (६, ७, ६३), किष्किन्वाधिपति (१०), किसूर्य (७), कीर्ति (३, ६४), कीर्तिघर (१), कीर्तिघवल (५, ६) कीर्तिसभा (२१), कीर्तिघर (२२) कीर्तिमान् (२२) कील (५८), कुणिम (२१), कुण्ड (५४, ५७), कुण्डलमण्डित (२६, ३०), कुन्दनाथ (१, ५, २०, ६), कुन्धुभक्ति (२२), कुबेर (७, ७३), कुंदर (८८), कुबेरकांत (१४), कुबेरदत्त (२२), कुम्भ (२०, ५७), कुमुद (५४), कुमुदावर्त (५८), कुमारसिंह (७०), कुम्भकर्ण (७८), कुमारकीर्ति (१२३), कुसविन्वा (५५), कुलवास्ता (१३), कुलन्धर (५), कुल-भूषण (३६, ६१, ८५), कुलंकर (८५), कुशासेन (२०), कूट (५), कूम्भि (११), केकसी (१, ६) केकयी (७), केकया (२४), केतुमती (१५, १७), केलीकिल (५४), केवली (५, ३६, ४०, १०५), केणरी (१२), केसरी (३७), कैकयी (२, २०, २२) कैटभ (१०६), कैन्नरगीत (१६), केशिनी (२०), कोण (५८), क्रूरकर्म (४५), क्रूर (५४), क्रूरामर (५), क्रोधनध्वनि (५७), कोल (१०), कोलकम्प (८), कोलाहल (५८, ६०) कोबेरी (८३), कौमुदीनदन (५८), कृतचित्रा (११), कृतवर्मा (२०), कृतान्त (६२), कृतान्तवक्त्र (८६), कृति (११४), कृष्ण (२०),

खेचरभानु (६), खरदूषण (१, ८, ४४), खरनाद (५७),

गगदेव (२०), गगनानन्द (६), गगनचन्द्र (६), गगनोज्ज्वल (१२), गज (५७) गजस्वन (५४), गगाघर (८), गतभ्रम (५), गतवास (५८), गणभूत् (६), गणमाला (५४), गन्धर्वी (५), गन्धर्व (५१) गम्भीर (६०), गम्भीरनाद (५७), गहडांक (५), गम्हेन्द्र (६६), गान्धारी (५), गिरि (५५), गिरिनन्दन (६), गुहभर (७०), गुणवान् (१०६), गुप्ति (४१), गुणपूर्व (४८) गुणमाला (६६), गुणवती (६, १२, १०६), गुणसागर (२१) गुणसागरा (८३) गुणघर (२०), गुणनिधि (८५), गुप्तिमान् (२०), गौतम (३, ४३), गोमुख (१३) गोभूति (५५), गोरनि (५०), गृहक्षेम (५), गृहपाल (४८), गृहलक्ष्मी (५८),

धनप्रभ (५), धनरथ (२०), धनरथ (२०), धोर (१२), धोषसेन (२०),

धन्वप्रभ (१, ६, २०, ४७), धन्वोदर (१, ६, ५६, ७६, ८२),

चन्द्ररथ (५) चन्द्र (५, ७, ५०, ६०, ६४), चन्द्रशेखर (५), चक्रधर्मा (५), चक्रायुध (५), चक्रज्ज (५, २६, ३०), चन्द्रचूड (५) चंद्रिणी (५, ८३), चन्द्रप्रभ (१, ५) चण्ड (५, ५७), चन्द्रावर्त (५, १३), चन्द्रकुण्डल (६) चन्द्रानन (६, ७७), चन्द्रवती (६), चलज्योति (७), चन्द्रमालिनी (६), चन्द्रनला (६, १०, १६, ४५) चक्रांक (१०), चतुर्मुख (२०), चन्द्रमति (२८), चपलवेग (२८), चन्द्रवर्धन (२८, ७५, ८०), चन्द्रलेखा (५१), चन्द्रमरीचि (५४), चन्द्रज्योति (५४), चपल (५५, ५७), चलांग (५७), चल (५७), चंचल (५७), चन्द्राम (५८, ६०, ७०, ७६), चन्द्रनपादप (५८), चण्डांशु (५८), चण्डोर्मि (५८), चन्द्ररश्मि (६०, ७०, ७४), चन्द्रमण्डल (६०, ६३), चन्द्र तरंग (६०), चन्द्रप्रतिम (६३), चन्द्रवर्धन (७५), चन्द्रमण्डला (७७), चन्द्रांकचूड (८१), चन्द्रकांता (८३), चन्द्रोदय (८५), चंद्रकिरण (८८), चमरेंद्र (६०), चंद्रभद्र (६१), चंद्रानना (६३), चंद्राभा (१०६), चंद्रभाग्या (११०), चंद्रनक्ष (११६), चंकरथ (१२३), चामुण्ड (५), चाक्षणी (६), चाक्षदान (७), चाक्षरत्न (११८), चिन्त (२०), चितारस (२०), चितोत्सवा (२६) चित्ररथ (२८), चित्राम्बर (६), चूला (२०), चूडामणि (२१), चेतना (३, २०), चोम (५७),

छत्रच्छाया (१०६),

जनक (१, २६, २८), जयवती (५, ६०), जया (५, १०), जय-कीर्तन (५), जह्नु (५), जनमेजय (८), जयकुमार (६, ३८), ज्वलिताक्ष (१२), जयन्त (१२), जरासन्ध (१०), जय (२८, ६०), जटायु (४४), जयमित्र (५८, ६२), जगद्बीभत्स (६०), ज्वर (६०), जम्बूमाती (६०), जयस्कन्ध (६०), जगद्युति (८५) जनवल्लभ (८८), जयवान् (६२), जक-कान्त (१२३) जयप्रभ (१२३), जानकी (२७), जाम्बव (५८, ६३, ७०, ७४), जाम्बूनद (६०, ८८) जितशत्रु (५, २०, ८०), जितनाथ (५), जित-भास्कर (५), जिनेन्द्रदेव (१७), जितारि (२), जिनेन्द्र (३२, ११४), जितपथा (३८), जिनप्रेमा (५८), जिनसंध (५८) जिनमत (५८), जीमूत (७६), जूम्भक (१०, ११),

टक (१०), डमर (५७), डम्बर (५७), डमरमंडल (६२) डामर (१०), डिम्ब (६०), डिण्डि (५७), डिण्डिम (५७),

तडिर्दगद (५), तडिन्माला (८), तनूदरी (६, ७७), तडिर्दिय (१२), तरंगमाला ५१, तडिर्दवक्त्र (५४), तरंग (५८), तरल (५८), तरंगवेग (१०६), तारा (१६, २०), तारक (२८), तिलकसुन्दरी (५०) तिलकसुन्दर

(३१), तिलक (५८), त्रिबूह (५), त्रिदशमय (५), त्रिजट (५, १०), त्रिलोकमण्डन (८), त्रिपुर (१०), त्रिलोकीय (२०), त्रिपृष्ठ (२०, २५), त्रिशिरा (४५), तीव्र (५४), तीर (५५), तुम्बुह (७, २१, ७५), तेजस्वी (५),

वद्यारथ (१, २०, २२, २३, २५, २८, ३२), वशानन (६, ४६, २०), वृद्धरथ (५, १०, ५८), दण्ड (१२), दमयन्त (१२), दत्त (२०), दमवर (२०), वक्ष (२१), वण्डक (४१), दामदेव (१०८), दिगम्बर (२२), द्विपृष्ठ (२०), द्विरदरथ (२२), द्विरदवाह (६८), दिवाकर (१२३), द्विचूड (५), दीपिनी (३१), दुग्धुभि (१६), हुमसेन (२०, ६३, ६४), दुर्मूल (२८), दुर्मर्षण (५८), दुर्बुद्धि (५८), दुष्पक्ष (५८), दुष्ट (५८, ७०), दुष्ण (५८), दुरित (६०), दुर्मति (६२), दुर्मर्ष (६२), दुर्वृत्त (६६), दुर्मीव (७२), द्युति (८०), द्युतिभट्टारक (६२), देवी (६, ७७), देवकी (२०), देशमूषण (३६, ६१, ८५) देवदेव (११४), द्रोगमेघ (२४, ६३, ६४), द्रव्यलिङ्गि (१२),

धर्मनाथ (१, २०), धरणेश्वर (१) धारिणी (१, ३६), धरणीधर (५), धनश्रुति (५), धरा (५, ६१), धर्म (६, २०, ५८), धरणी (१३, ६२), धर्म-रुचि (२०), धनरथ (२०), धनरत्न (२०), धनमित्र (२०), धरण (२०, ६६) धर (३२), धनपाल (४८), धनगति (५६), धन (५८), धनलांग (६६) धनद धर्ममित्राय (८८), धनदत्त (१०६), धारण (६४), धी (८, ६६), धीर (२०, ३२), धीर मंदिर (३७), धूर (४८), धुम्ब (५७), धूम्राक्ष (५७) धूमकेस (२६) धृति (३), ध्रुवा (६),

नन्दा (३, ५), नमि, (३, ७, ६२), नमि (५), नक्षत्रधमन (५), नन्द-वती (७), नभस्तडिन् (८), नन्दनमाला (८), नन (६, १६, ५४, ५८, ७०, ७६), नलकूबर (१२, २६), नन्दिषेण (२०), नन्दिमित्र (२०), नयुष (२२), नन्दनिकानाथ (२८), नयनमुन्दरी (३१), नन्दिघोष (३१). नन्दिबर्धन (३१, ८५, १०६), नमंदा (४६), नक्र (५७, ६०), नक्षत्रलुब्ध (५८), निनद (६०), नन्दन (६०, ७०, ८८), नन्द (७३, ६७), नन्दि (७८), नरेन्द्र (१०६), नक्षत्रमालक (५८), नागकुमार (७८), नाद (५८), नागदत्ता (३६), नारायण (१, ५, २५, ७२, ८५), नागराज-धरणेश्वर (६), नागवती (८), नाभिराज (३, ८५), नारद (१, ७, २१, २८, ७५), निवम-दत्त (५), निर्वाणमक्ति (५), निषात (६), नित्यगति (७), निशुम्भ (२०), निद्रम्य (४१), निकुम्भ (५७), निबिनष्ट (५८), निःस्वन (५८, ६०), निष्ठुर (६०), निनद (६०), नील (६, ५४, ५८, ६०, ७०, ७४), नेमि (२०),

परमेष्ठी (१६), पल्लवन (५६), पवनवेग (१७), पद्ममुनि (११६), परशुराम (१६, २०, ८०), पद्मप्रभ (१६, २०, ८०), पद्म (२०, २५), पद्म-रथ (२०, ५), पद्मरुचि (१०६), पद्मोत्तर (६, २०), पंकजगुल्म (२०), परि-ब्राह्म (८५), पद्मासन (२०), पद्मावती (२७, ३६, ७७, ८३), पर्वत (२०), पद्मनाभ (८१), पराम्भोधि (२०), पश्चिम (७, ८), पवनजय (१, १७), पद्म-निभ (५), पद्माली (५), पयोबल (५), पति (५), पद्मा (५, ७७), पद्माभा (६), पद्मश्री (६), पवनगति (१५), पद्मपाल (४८), पृथु (५७), पाताल पुण्डरीक (१६), पाप (५८), पादर्व (२०), पाटनमण्डल (५८), पादर्वनाथ (२०, १), पाकशासन (६), परिह्लाद (१०), प्रियंगुलक्ष्मी (१७), प्रियरूप (५८), प्रियकारिणी (२०), प्रियविग्रह (५८), पिहिताश्रव (२०), प्रियधर्म (८८), प्रियमित्र (२०), प्रियचन्दी (१७), प्रियानन्दा (८३), पिहितमोह मुनि-राज (६), पिंगल (२६, ३०, ६६), प्रियवर्धन (३२), प्रियव्रत (३६), पीठ (२०), प्रीतिकण्ठ (५८), प्रीतिकर (६०, ७७), प्रीतिकर (७०, ६२, १०८), प्रीति (२०), प्रीति (५, ६, ७७), प्रीतिकान्त (६), प्रीतिमती (७), पुनर्वसु (२०, ६३, ६४), पुरुषोत्तम (२०), पुरुषसिंह (२०), पुण्डरीक (२०), पुरुषधर्म (२०), पुलोमा (२१), पुरन्दर (२१, ८), पुंजस्थल (२२), पुष्पनला (५), पुष्पभूति (५), पुष्पास्त्र (६०), पुष्पोत्तर (६), पुष्पवती (३०, ८२), पुष्पचन्द्र (५७), पुष्पवेचर (५७), पुष्पदन्त (१, ६, २०, ६८), पुंनचन्द्र (५), पुंनचन्द्र (५, ५८, ७०, ८८), पुंनघन (५), पूजार्ह (५), प्रहसित (१६), प्रसन्नकीर्ति (१७, ५४), प्रह्लाद (१७, १५, १६, २०), प्रतिमूर्त्य (१८), प्रस्तर (५८), प्रजापति (२०), प्रमल (५८), प्रख्यात (२०), प्रचण्डालि (५८), प्रभवा (२०, १२१), प्रस्थित (६०), प्रभावती (२०, ३०, ७७), प्रज्ञप्ति (६५), प्रवरा (७७), प्रजापाल (२०), प्रनिमन्यु (२२), प्रतियाराधण (१, ५, २०), प्रभूतसेन (५), प्रसापीतपन (५), प्रह्लादना (८५), प्रभाकर (८८), प्रभासकुन्द (१०६), प्रथम (७८), प्रभु (५), प्रतिबल (६), प्रमोद (५), प्रतिचन्द्र (६) प्रहस्त (८, १०, ५५, ५७), प्रवर (६, १२, ४१), प्रभव (१२, ८८), प्रकाश-सिंह (२६), प्रवरावली (२६), पृथ्वीवर (८०), पृथु (१०१), पृथ्वी (३४), प्रतिसन्ध्या (३४), प्रचण्ड (५७), प्रशन्न (५७), पृथिवीवर (३६), पृथिवीमती (२१, २२), पृथ्वी (२०), पृथ्वी (२४), प्रोष्ठित (२०), पौण्डरीक (१६), प्रीष्ठित (३७), पौण्ड्र (१०२),

बलभद्र (१, ५, २१, २५, ७२), बलांक (५) बलि (६, २० ५८, ६०, ६८, १०६), वसन्ततिलका (१५), वसन्त माला (१७), बल (२०, ५८, ७०,

२५, ५८, ६०), वसन्तलता (२२), वन्धु २८, ४८), वसन्तध्वज (३६),
वन्धुपाल (४८), वर्वरक (५८), वसन्त (५८), बली (६०), बालिमुनि (६५),
बलभद्र (७६, १०३, ११६), वन्धुमती (११३), बाहुबली (१, ४, ५), बालेन्दु
(५), बाली (६), बालचन्द्र (२६), बाललित्य (१३४, ७२), बुध (२८),
ब्रह्मवत् (५, २०), व्रतकीर्तन (५), ब्रह्मरुचि (११), ब्रह्मरथ (२०, २२), ब्रह्म-
मूर्ति (२०), बृहस्पति (७), बृषभ (२०), वेलाक्षेपी (५८, ६०),

भरत (१, २८, २२, ३७, २५, ८४), भद्र (५, ३१, २०), भद्रवती (२०),
मुरिदन्त (३७), भद्राम्भोजा (२०), भगवती (२०), भवनभुन (२०),
भगीरथ (५, १०३), भद्रवल (२८), भट्टारक (२८), भृत्विड (५),
भयानक (५७), भर (५८), भंग (५८), भद्रा (७७), भरतमुनि (८७), भवा-
न्तक (११४), भानुमती (८३), भावित (५८), भानुमंडल (५८) भास्कर
(५५) भामंडल (५३), भानुराजा (२०), भानुकर्ण (१, ८, १४, ४५, ६०),
भानु (५, २८) भानुप्रभ (५), भानुवर्मा (५), भानुगति (५), भास्कर (५),
भावन (५), भीम (५, ६, ४५, ५४, ५७, १०३), भिन्नाजनप्रभ (५७), भीम-
प्रभ (५), भीष्म (५), भीमनाद (५७), भीषण (५८), भीमरथ (५८, भुजबली
(५), भूति (३१), भूतनाद (५४), भूरी (५८), भूधर (७४), भूतस्वन (७४),
भूषण (८५), भोगवती (६), भोज (२८), भद्राचार्य (८०), भव्यक (५),

महावीर (१, २०), मल्लिनाथ (१, २०, १०६), मन्दोदरी (१, ८, ६,
४६, ५३, ७४), महेन्द्र (१, १५, १७, ५०, ५३, ५५, ५८, ६३), मरुदेवी
(३), मतिसमुद्र (४), महाबल (५, २०, ५८, ६०, ११०), महेन्द्रविक्रम (५),
महेन्द्रजित् (५) मणिधीव (५), मणिभामुर (५), मण्यक (५), मणिस्य दन
(५), मण्यस्य (५), महाघोष (५), महारक्ष (५) मघवा (५, २०), महापद्म
(५, २०, २८), मदनपद्मा (५), मयूरवान् (५), महाबाहु (५), मनोरम्य (५),
महारव (५), मन्दर (६, २८, ५४, ५८), महोदधि (६), महोदधि के १०२ पुत्र
(६), मयविद्याधर (६), मनोजव (६), मघोनी (६), मजुस्वनी (७), मकर-
ध्वज (७, ७०, ७४, ६४), मरुद्वय (८), मनोवेगा (८, ७७), महावक्ष्मी
(८), महीधर (८), मदनावली (८), मलय (२०, ५५, ६३), महाजठर (१२)
मणि (१३), मणिचूल (१७), मल्लि (२०), महामेघरथ (२०), मयूर (२०),
महेन्द्रदत्त (२०), महातेज (२०), महासेन (२०), मनोहारा (२०), महामुव्रत
(२०) मधुकैटभ (२०) महागिरि (२१), महारथ (२१, ५७, ७०) मनोदम
(२१), मयूरकुमार (२८), मधु, (३०, ८६, १०६), मवना (३६), मतिवर्धन
(३६), महालोचन (३६), महोदर (४५, ६०), महाकाल (५५), मतिकान्त

(५५), मतिसागर (५५), मतिप्रिया (५५), महिदेव (५५) मकर (५७, ६०) महामाली (५७), महाद्युति (५७), महाभैरव (५७), मनोहरमुख (५८), मर्दक (५८) मत (५८), महाधर (५८), मरुदाह (५८), मनोज्ञ (५८), मदन (६६, ६४), महेन्द्रकेतु (५४) मनोवती (७७), महादेवी (७७), मयमुनि (८०), मनोरमा (८३, ६३), मानसोत्सवा (८३), मरुदेवी (८५), महाबुद्धि (८८), मधुसुन्दर (८६), मनोवेग (६३), मगल (६४), मधुयान (६६), मल्लि-जिनेश्वर (६८), मदनकुल (१००), मधुमुनि (१०६), महादेव (११४), महेश्वर (११४), मकरी (१२३), मालिनी (१२३), मागध (१०२), मारिदत्त (१०२), माल्यवान् (५७१, ८०), मान्धाता (२२, ८६) मानसमुन्दरी (७), मारीच (८, १२, १४, ६, ५५, ५७, ६०, ७४) माली महाराज (६), मानवी (७७), माकोट (२०), मानसचिष्टित (२०), मारुतवेग (२०), माघवी (५, २०, ८५), मारण (५), माली (६, ७, ६०), मिश्रकेशी (१५), मित्रा (२०, २२), मित्रवती (४८), मित्रयज्ञा (८०), मुनिमुव्रतनाथ (६), ६, १७, ३३, ६७, १०५), मुनिराज (२०), मुनिचन्द्र (२०), मुदित (३६, ५७), मुखान्त (६१), मुनीन्द्र (१०६), मृगांक (५, २०), मृगोद्धरण (५), मृगाधिपध्वज (८), मृदुकान्ता (१२), मृगचिह्न (१२), मृगावती (२०), ७७), मृगध्वज (३७) मृत्यु (५७, ६०), मृगेन्द्रदमन (६०), मृगेन्द्रबाहुन (१०२), मेघनाद (१), मेघकुमार (२), मेघ (५), मेघध्वान (५), मेघ (६, ३२, १०६), मेरु-कान्त (६), मेनका (७), मेघरथ (७, २०, २५, ८६, १२३), मेघावी (८), मेघवाहन (८, १७, ४३, ५८, ७८), मेघप्रभ (६), मेघमाली (१२), मेरक (२०), मेघेश्वर (८६), मेघकेतु (१०४), मोहन (५), महीधर (५),

यम (३, ७, ८, ७३), यशोधर (५, २०, ३१), यक्षरज (६), ययाति (११), यशोवती (२०), यशोमित्र (३), यमुना (३३, ४८), यज्ञदत्त (४८), यक्ष, (४८), यमदण्ड (६६), यमुनादेव (६१), युगन्धर (२०), युद्धावर्त (५८), योजनगन्धा (३१),

रवितेज (५), रथोष्ठ (५), रम्यक (५), रतिमयूख (५), रत्नश्रवा (१, ७), रत्नजटी (१), रत्नमाला (५), रत्नवज्र (५), रत्नावली (६), रत्नचूला (१७, ५४) रत्नमाल (२१), रत्नमाला (३८, ७७), रत्नरथ (३६, ६३) रत्नकेशी (४८), रत्नवती (८३), रत्ना (८५), रत्नांक (१०२), रति-वर्धन (५८, ६०, ७८), रतिकान्ता (७७) रतिमाला (६४), रत्नवती (३, ६), रति (५, ६४), रवि (५), रविप्रभ (६), रविमन्यु (२२), रवियान (५८) रणस्त्रनि (५८), रघोर्नि (३७), रणदक्षक (८), रघुनूपुरक (१६), रक्षिता

(२०) रघु (२२), रघ (५८), राम, (१, २२, २६ आदि) रावण (१, १६, १६ आदि), राजीवसरस्ती (८), राजीव (१६), रामा (२०), रामचन्द्र (२०, २८ आदि) राजीला (४८), राग (५७), रिपुदम (२०), रघुभूति (१), रुक्मिणी (२०, ७७), रुचिरा (४१), रूपानन्द (५), रूपवती (१२, ८०, ६४, ११०), रूपिणी (२०, ७७), रोहिणी (१०, १२३), रौद्रनाथ (२०), रौद्रभूति (३४, १०२),

लक्ष्मण (१, २०, २२, २५, २८ आदि), लवण (१, ११०), लवणाकुश (१, १०२ आदि), लम्बिताघर (५), लक्ष्मी (६, २०, ३५, ६४), लंकाशोक (५) लतादत्त (४८), लांगल (५४), लोल (५८), लोकाक्ष (७३), लोकान्तिक (८५), लोकमुन्दरी (२८), लंकामुन्दरी (५२),

वज्रजंघ (५), वज्रसेन (५), वज्रध्वज (५), वज्रायुध (५), वज्र (५), वज्रमृत् (५), वज्राभ (५), वज्रबाहु (५), वज्रास्थ (५), वज्रपाणि (५) वज्रजात (५), वज्रवान (५), वज्रचूड (५), वज्रमध्य (५), वज्रकण्ठ (५), वज्रदंष्ट्र (५) वेगिनी (६), वरुणा (७, १६), वज्रमध्य (८), वज्रनेत्र (८), वप्रा (८, २०) व्याघ्रविलम्बी (६), वसुन्धर (२०), वसु (११), वनमाला (१२, २१, ३६, ३८, ८०, ६४), वज्रवेग (१३), वज्रनाभि (२०), वमदेवी (२०), वज्रजंघ (१, ६७, १०१), वरुण (३, ७, ७२), व्योमबिन्दु (७), वल्लिशिख (५), व्योमेन्दु (५), वल्लिजटी (५), वसुधा (३१), वज्रलोचन (३१), वज्रकर्ण (३३, ८२), वरधर्मा (३७) वसुभूति (३६, २०), वज्रमुख (५२), वज्रोदरी (५३), वज्रदंष्ट्र (५३) वज्राक्ष (५७, ७४), वज्रनाद (५७), वज्रोदर (५७), वसुदर्शन (२०), वसुदेव (२०, १०८), वसन्तनिलक (२२), वसुगिरि (२१), वल्लिकुमार (५६, वज्राक्ष (६०), वसन्त (६०) व्यावर्त (६३, ६४), वसुन्धरा (७७), वर्वर (१०२) वसुदत्त (१०६, ११६), वज्रांग (१२३), बाबालकार (८), वामुपूज्य (१, ६, ६, २०, ६७), वारिवेण (२), वायुगति (३७), वासवकेतु (२१), वातायन (७०) वायुकुमार (७८), वायुभूति (१०६), विद्यामन्दिर (६), विमला (६, ३६), विद्यारू (६), विद्यासमुद्घात (६), विद्युद्वाहन (६), वसन्तडमरा (८५), विद्युद्बिन्दु (७), विद्युत्प्रभा (८, ५१), विद्युत्प्रकमन (८), विराधित (६), विमल ५, ६, २०, २२), विष्णुकुमार महामुनि (६), विकट (२०), विचित्रमाला (१२, २२) विद्युत्प्रभ (१५), विमलवाहन (२०), विपुलरूपाति (२०), विश्वसेन (२०) विजय (२०, २१, २५, ३२, ५८, ११६), विराधिका (१), विभीषण (१, ८, १५, २३, ५३, ७४), विशल्या (१, ८०, ८३, ६४, ६६), विजयाबह (२), विनमि (३), विमु (५) विद्युन्मुख,

(५), विद्युदंष्ट्र (५), विद्युत्त्वान् (५), विद्युदाम (५), विद्युद्वेग (५), विद्युद्-
दृढ (५), विद्या (५), विद्युत्केश (६), विजयसिंह (६), विशाल (२८),
विशाल (२९), विमुचि (३०), विद्युत्लता (३१), विदग्ध (३२), विनोद (३२),
विद्युदंग (३३), विदवानल (३४), विजयसार्ङ्गल (३७), विजयरथ (३८),
विजयसुन्दरी (३८), विजित्ररथ (३९), विजयपर्वत (३९), विद्युरा (४१),
विराधित (४५, ५८, ५०, ५६, ६०, ६३), विनयदत्त (४८), विद्युदघन (५५),
विभ्रम (५७), विद्यटोदर (५७), विद्युज्जिह्व (५७), विद्याकीशिक (५७), विटप
(५७) विद्युदम्बुक (५७), विश्वमेन (२०), विष्णु (२०), विजित्रगुप्त (२०),
विजया (२०), विश्वनन्दी (२०) विकट (२०), विष्णुराज (२०), विष्णुश्री
(२०), विमलसुन्दरी (२०), विद्रुम (२०), विदवावसु (७, २१, ७५),
विजयस्यन्दन (२१), विद्युद्विलसित (२३), विदेहा (२६, २९),
विघ्नसूदन (५७), विधि (५८, ६०), विद्युत्कर्ण (५८), विचल (५८)
विषट (५८), विद्युद्वाह (५८) विघ्न (६०, ६२), विशालद्युति
(६०), विन्व्या (६३, ६४), विमलचन्द्र (७३), विमलमेघ (७३),
विक्रम (७४), विदग्धा (८०) विरस (८८), विदवांक (८५), विनय-
लालस (९२), विमलप्रभ (९४), विनयवती (१०६), विहीत (१०६),
विजयावली (१०८), विद्युद्गति (११३), वीर्यदंष्ट्र (१३), वीतमी (५),
वीभत्स (५७), वीरक (२१), वीरसेन (२२, १०९), वीर (३८), बृहद्गति
(५), बृहत्केल (३०), बृहद्घन (५५), वृषभ (९४), वृषभध्वज (१०६),
वेणुदारी (९०), वेदवती (१०६), वेलाप्यक्ष (६३), वेगवती (८, १३),
वैवश्रण (३, ७, ८, २०), वैद्युत (५), वैवस्वत (२५), वैश्वानर (७),
वैजयन्ती (२०), वज्रशीला (६),

वशि (५), शम्भवनाथ (१, ९८), शत्रुघ्न (१, २२, २५, २८), शम्भुक
(५, ११८), शशांकमुख (५), शतमन्यु (८), शक्रघनु (८), शरमरथ (२२),
शतबाहु (१०), शशिप्रभ (१०), शतरथ (२२), शर्मा (१०), शतार (३१),
शत्रुदम (३२), शठ (३२), शल्य (५४, ८८), शम्भु (५७, ६०, १०६, ११४),
शक्राभ (५७), शशिकान्ता (७८), शरभ (६३, ९४), शंख (६६), शम्बर
(६६), शशिशूला (१०१), शतह्रदा (११०), शान्तिनाथ (१, ५, ९,
२०, २३, ८०, ८८), शाखावली (८), शान्ता (२२), शारण (७४), शम्भ
(१०९), शार्ङ्गलविहीनित (५७), शिवमति (१०६), शिखी (१२, २५, २८),
शिवा (२०), शिवाकर (२०), शिखीवीर (५७), शिलीमुख (५७), शिव (५८,
११४), शीतलनाथ (१, २०), शीतल (९, २०), शील (५८), शीला (७७),

शुभा (७७), शुक्र (८, १२, १३), शुभमति (२४), शुक्र (५७, ६०, ७३, ७४)
 श्रीवर्धन (५, २१), श्रीदेवी (५, ६, २६), श्रीप्रभा (५, ६, ७, ८, ३६),
 श्रीघर (५, २८, ६४), श्रीवीर (१), श्रीकण्ठ (५, ६२), श्रीचंद्रा (६), श्रीमाला
 (६, ७७), श्रीरम्भा (१२), श्रीमाली (१५), श्रीषेण (१८), श्रीशैल (२०),
 श्रीधर्म (२०), श्रीवृक्ष (२८), श्रीसंजय (२८), श्रीनागदमन (३२), श्रीघर
 (३२), श्रीमति (३३), श्रीवर्षित (७७), श्रीदामा (८०), श्रीमुख (८५),
 श्रीमन्धु (६१), श्रीकान्त (६२), श्रीधर्मनाथ (१०६), श्रीनन्दन (६८), श्रीदक्षा
 (६२), श्रीभूति (१०६), श्रीतिलक (१०६), श्रीकृष्ण (१०८), श्रीचन्द्र
 (१०६), श्रीकान्ता (२०, ३७, १०६), श्रीपर्वत (७७, ८३), श्रुतकीर्ति (२०),
 श्रुतबुद्धि (३७), श्रुतिरत (८५), श्रुतिधर (८८) श्रेयांसनाथ (१), श्रेणिक
 (१, ४३),

सर्वभूतशरण्य (१), सगर (१, ५, स्वनितकुमार (२), संजयन्त (५),
 सहस्रनयन (५), सहस्रशीर्ष (५), सनत्कुमार (५, २०, ३५, १०६), सपरि-
 कीर्ति (५), समीरणगति (६), सहस्रार (६), समय (७), सर्वश्री (८),
 संध्या (८), संभव (६, २०), संध्याकार (२०), सहस्ररश्मि (१०), स्वस्तिमती
 (११), संध्याभ्र (१२), सहस्रभाग (१३), सर्वज्ञदेव (१४), सन्देशपारण
 (१५), सत्यवती (१६), समुद्रविजय (२०), स्वयंप्रभ (२०, ११४, १२२),
 सीमन्धर (२०), सर्वगुप्ति (२०), सम्भूत (२०, २१), स्वतन्त्रसिंह
 (२०), स्वयंभू (२०, ५७, ६०, ११६), सर्वयशा (२०), सखि (२०),
 सहदेवी (२२), स्वाहा (२६), सत्यकेतु (३०), समुद्रहृदय (२३), सत्य
 (३२), समुद्रसंग्राम (३३), सहायानन्द (३५), सत्यव्रत (३८), सम्मिन्न-
 मति (४६), सर्वहवि (४८), सत्यश्री (५४), समुद्र (५६) स्पन्दन (५५, १०२),
 स्मरायण (५७), सर्वभूतहित (३०), सम्मान (५८), सम्मुन्नतवल (५८, ७०),
 सर्वप्रिय (५८, ७०) सर्वसार (५८), संग्रामचपल (५८) संबंद (५८, ७०),
 सरभ (५८), समाधिबहुल (५८, ७०), स्वपक्षरत्न (५८), सम्भेद (५८, ६०,
 ७४), स्कन्ध (६२) सहस्रविजय (६३), सत्त्वहित (६३, ६४), समुद्रघोष
 (७०), सुभूषण (७०), स्कन्द (७०), सन्ध्यावली (७७), सर्वकल्याण
 माला (८०), नमिधा (८५), सत्यवान् (८८), सन्मुख (६१), सर्वसुन्दर
 (६२), सुरमन्धु (६२), सत्यकीर्ति (६४), सर्वभूषण (१०४), सकल-
 भूषणमुनि (१०४), सरस्वती (१०६), सुरेन्द्र (१०६), सर्वगुप्त (१०८),
 स्वाणु (११४), सद्दर्शन (११४), स्वर्णकुम्भ (११८) सात्मिक (१०६), सागर-
 देव (६१), साल (५८), सार (५८, ६०), सानु (५८), साधुवत्सल (५८),

सावरोपम (५८), सागरसेन (३६), साधुदत्त (३६), सागरदत्त (२०, १०६), सागरबुद्धि (२३), सामन्तवर्धन (१३), सारण (८, १२, ५७, ६०, ७३), साटोप (८), सागरबुद्धि (६), साहसगति (२०), सागर (५, २८), सितयथा (५), सिंहपाल (५), सिंहप्रभु (५) सिंहकेतु (५) सिंहविक्रम (५, १०२), सिन्धु (८, १०२), सिंहचन्द्र (१७), सिंहवाहन (१७), सिंहस्थ (२०, २२), सिद्धार्थ (२०, ८८) सिंहसेन (२०), सिंहिका (२२), सिंहदमन (२२), सिंहोदर (३३, १०२), सिंहवीर्य (३७) सिंहजवन (५७, ७०), सिंहकटी (५८), सिंहजवन (६०), सिंहेश्वर (८०), सिंहपाद (१०६), सीता (१, २०, २८ आदि), सीरगुप्ति (३३), सील (६५), सुमतिनाथ (१), सुपाशर्वनाथ (१), सुव्रतनाथ (१, १७ २०, ८२, ६८), सुधर्माचार्य (१), सुकेशी (१), सुमाली (१, ८, ६, ७, ६३, ८७), सुग्रीव (१, ५, ६, १६, २०, ४५, ४७, ७४ आदि), सुतारा (१, ४७), सुनन्दा (३, २०, ७६), सुभद्रा (८, २०, २८), सुबल (५), सुभद्र (५), सुवीर्य (५, २०, ५७), सुषण्ण (५), सुनयना (५), सुमंगला (५, २०), सुलोचन (५), सुरूप (५), सुमीम (५, २०, २२, २५, २८, ६३ ८६), सुमुक्त (५, २१, २६, ३६, ६१), सुव्यक्त (५), सुरारि (५), सुयशोदत्त (६), सुकेश (६, ७, ३७), सुमंगला (६, २८), सुरसुन्दर (८), सुरपाक्षी (८), सुचाप (८), सुश्रोणी (८), सुमति (६, १२, २०, २८), सुपाशर्व (६, २०, ६८) सुबल (१०), सुयोधन (१०), सुजट (१०), सुरकान्ता (११), सुमित्र (१२, २०, २१, ८८), सुमना (१५), सुदती (१६), सुविधि (२०), सुरश्रेष्ठ (२०), सुदर्शन (२०, २८, ८५) सुनन्द (२०, ७३, ८८, १२३) सुभूति (२०), सुसीमा (२०), सुप्रतिष्ठ (२०), सुविधिनाथ (२०), सुनेत्रा (२०), सुव्रत (११६), सुवेगा (२०), सुवर्णा (२०, १०६), सुवर्णकुम्भ (२०), सुसिद्धार्थ (२०), सुरेश्वरमन्यु (२१), सुकोसल (२१, २२), सुबन्धुतिलक (२२), सुमित्रा (२२, २५), सुसर्मा (३५), सुलोचना (३८), सुरूप (३६), सुवर्णकुमार (३६, ७८), सुरप्रभ (३०) सुगुप्ति (४१), सुकेत (४१), सुन्द (४५, ५७, ११८), सुमानु (४८, १०८), सुषेण (५४, ५८, ६०, ७४), सुख (५८), सुन्दर (६५), सुखा, (७७), सुन्दरी (७७, ८३), सुकान्त (८०), सुरवती (८३), सुधी (८८), सुपाशर्वकीर्ति (६४), सुचन्द्र (८८), सुप्रजा (६०) सुबन्धु (६८), सुहृ (१०२), सुमेरु (१०२), सुवीर (१०३), सुदेव (१०८), सूरि (११४), सूरारि (७४), सूर्योदय (८५), सूर्यज्योति (५८, ६०, ७०), सूर्यदेव (५५, ६१), सुभूम (५, ११, २०), सूरसन्निभ (५) सूर्यरज (१, ६, ७, ८६), सूर्यजय (३१), सेना (२०), सोमदेव (१०६), सौम्यवक्त्र (५७),

सोम (३, ८, २०, ४१, ७३), सोमयशा (३, ८५), सीधमैन्द्र (३, ८५), सीदास (२०, ८३), संसारसूदन (११४), संत्रास (५८), संत्रासक (६०) संताप (६०), संकटप्रहार (५८), संकोषन (६२), संजयन्त (२१), संवृत (११), संवर (२०) संभ्रमदेव (५),

हरिचन्द्र (५, १०), हरिदास (५), हरि (५, २१, २२, २५, ८८), हरि-
वेण (५, ८, २०), हरिप्रीव (५), हरिणकेशी (७, ७०), हरिकान्त (६), हय (२०), हरिबाहन (१२, २८), हस्त (१२, ५५, ५०), हनुमान् (१५, १८),
हरिमासिनी (१६), हरिकेतु (२०), ह्लादन (५७), हल (५८), हरिकटि (६०), हरिपति (८५), हरिवेग (६३), हरिनाग (६४), हा-हा (२१), हित-
कर (५), हित (५), हिडिम्ब (२६), हिरण्याम (१५), हिरण्यकशिपु (२२, ७६), हिमवान् (५८), हू-हू (२१), हृदयसुन्दरी (१३), हृदयवेगा (१५),
हेमरथ (५, २२), हेमपूर्ण (२०), हेमपाल (२०), हेमबाहु (२०), हेमचूला (२१), हेमप्रभ (२४), हेमगौर (५७), हेड (५८) हेमांक (८०), हेमनाभ (१०६), हेमवती (८), हेमविद्याधर (६), हैहड (२०), हंसद्वीप (२०),

क्षितिबर (५८) क्षपितारि (६०), क्षीरकदम्बक (११), क्षीरधारा (१३),
क्षुलक (१२), क्षुद्र (४८), क्षुब्ध (६२), क्षेमकर (२१, ३६), क्षेपपात्र (४८), क्षेम (५८, ६६), क्षोद (५८), क्षोभन (४५, ५७, ६०), त्रिपूर्व (१०२), ज्ञानचक्षु (११८) । इनमें बहुत से पात्रों की तो सूचना मात्र ही दी गयी है और बहुत से अत्यन्त लघु प्रदेश पर अधिकार रखते हैं। कुछ प्रसिद्ध जैन देवता हैं और कुछ उपमादि अलंकारों में समागत पौराणिक नाम हैं। अस्तु, इनमें से पात्र थोड़े ही हैं जिनका मुख्य कथा में कोई महत्त्वपूर्ण योगदान हो।

यहाँ हम मुख्य पात्रों के चरित्र-चित्रण पर चर्चा करेंगे। 'पद्मपुराण' के मुख्य पात्र इन भ.गो में विवक्षित किये जा सकते हैं—

१. रामपक्ष के पुरुष पात्र—दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, अनेंगलवण और मदनकुश।

२. राम-पक्ष के स्त्री पात्र—अपराजिता (कौशल्या) सुमित्रा (केकयी), केकया, सुभभा, सीता, विशल्या, कल्याणमाला और वनमाला।

३. रावण-पक्ष के पुरुष पात्र—रावण, भानुकर्ण, विभीषण, दम्भजित्, और मेघबाहुन।

४. रावण-पक्ष के स्त्री पात्र—मन्दोदरी, चन्द्रमाला और लंका-सुन्दरी।

५. प्रासंगिक कथाओं के पुरुष पात्र—बालि, सुग्रीव, पवनजय, अगद, हनु-

मान्, जाम्बवान् जनक, भामण्डल, कृतान्तक, जटायु, वज्रबन्ध, रत्नजटी, द्रोण-मेघ, स्ररक्ष्ण और चन्द्रप्रतिम ।

६. प्रासंगिक कथाओं के स्त्री-पात्र—केतुमती, अंजना और मुतारा ।

७. पौराणिक महापुरुष पात्र—भरत, बाहुबलि, हरिषेण, नारद, देशभूषण, कुलभूषण, मुन्नतनाथ आदि ।

उपयुक्त पात्रों को संक्षेप की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—१. राम-पक्ष के पात्र, २. रावण-पक्ष के पात्र तथा ३. प्रासंगिक कथाओं के पात्र ।

राम-पक्ष के पुरुष पात्र

दशरथ : अयोध्यापति राजा अनरण्य की पृथिवीमती रानी में उत्पन्न छोटे पुत्र दशरथ हैं ।^{१९७} रविषेण ने उन्हें 'निखिलविज्ञानपारदृष्टाः', 'गुणगणज्ञानपाण्डित्ययुक्त', 'दानविख्यातकीर्ति', 'रविसमतेजाः' और 'सकलकुभावाभिन्नाषदोषविमुक्त' आदि विशेषणों से विभूषित किया है ।^{१९८} नारद जैसे मुनि भी उन्हें 'सम्यग्दर्शनयुक्त' तथा 'गुरुपूजनकारी' कहते हैं ।^{१९९} इसके अतिरिक्त उनके कार्य भी उन्हें एक उदात्त स्थान प्रदान करते हैं ।

राजा दशरथ का व्यक्तित्व आकर्षक है । उनका शरीर ऊँचा है—'वपुर्दशरथो लेभे नवयौवनभूषितम् । शैलकूटमिवात्तुग नानाकुसुमभूषितम् ॥'^{२००} उनके भव्य व्यक्तित्व के कारण उन्हें अपराजिता, केकयी (सुमित्रा), सुप्रभा तथा केकया जैसी कुमारियाँ पत्नी-रूप में प्राप्त होती हैं । नरलक्षण-पण्डिता केकया राजसमूहस्थ दशरथ को उसी प्रकार पहचान लेती है जिस प्रकार कोई वक्ता समूहस्थ हंम को पहचान लेता है । सागरबुद्धि निमित्तज्ञानी से यह जानकर—'भविता दशधन्वस्य मृत्युर्दाशरथिः किल' विभीषण उन्हें मारने का उपक्रम करता है किन्तु वे नारद की सलाह से बच जाते हैं ।

दशरथ कुशल शासक तथा वीर योद्धा है । इसीलिए जनक ने म्लेच्छों का उच्छेद करने के लिए उन्हें स्मरण किया है । वे केकया के स्वयम्बर में अकेले ही अनेक राजाओं के छक्के छुड़ा देते हैं ।

राजा दशरथ परम जिनभक्त हैं । वे मुनियों का सम्मान करते हैं; प्राचीन

१९७. पद्मपुराण, २२।१६१-१६२

१९८. पद्मपुराण, २५।७, ४८, ३१।२४२

१९९. पद्मपुराण, २३।३२

१७०. पद्मपुराण, २२।१७०

जिनमन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाते हैं; तीर्थंकरों की पूजा करते हैं; आषाढचव-
साष्टमी को वे जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक करते हैं तथा रानियों के पास गन्धो-
दक भिजवाते हैं। बूढ़कंचुकी की बूढ़ावस्था को देखकर वे वैराग्य धारण कर
लेते हैं तथा केकया को दिये गये वरदान के अनुसार भरत को ही राज्य करने के
लिए उपदेश देते हैं। वे राम को बन जाते हुए देखकर भी नहीं विचलित होते।
वे अकीर्तिभीरु हैं। वे स्थिरमति हैं तथा सर्वभूतहित मुनिराज के पास जिन दीक्षा
धारण कर लेते हैं।

राम : राम 'पद्मपुराण' के नायक हैं। इन्ही पद्म (राम) का चरित इसमें
निबद्ध है—'पद्मस्य चरितं वक्ष्ये पद्मालिङ्गितवक्षसः।' इसलिए स्वभावतः कवि ने
राम के चरित्र की स्वतः प्रशंसा की है तथा पात्रों के मुख से भी उनकी पर्याप्त
प्रशंसा कराई है। अपराजिता रानी में दशरथ से उत्पन्न अष्टम बलभद्र श्रीराम
के चरित्र के एक अंश को भी पढ़ने या सुनने वाले के पाप नष्ट हो जाते हैं—ऐसा
रविवेण का मत है।

राम का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक है। बचपन से ही वे 'तरुणादित्यवर्ण', 'मनो-
ज्झरूप', 'विद्रुमाभरदच्छद', 'रक्तोत्पलसमच्छायापाणिपाद', 'सुविभ्रम', 'नवनीत-
सुखस्पर्श', 'जातिसौरभधारी' तथा अपनी क्रीडा से सभी का चित्त हरण करने
वाले हैं।^{१७१} वे सबौंसुन्दर हैं। वे 'नीलकुचिनसूक्ष्मातिस्निग्धकेश', 'लक्ष्मीलता-
विषकनांग', 'कुमारभास्करतुल्य', 'नयनो के समानन्द', 'मनोहरणकोविद', 'अपूर्व
कर्मों के सर्ग', 'उबलद्विचिह्नरुक्माम्बुरुहगर्भसमप्रभ', 'मनोजागतनासाग्र' 'सगत-
श्रवणद्वय', 'मूर्तिमान् अनंग', 'पुण्डरीकनिभेक्षण', 'चापानतभ्रू', 'पूर्णशारदेन्दुनि-
भानन', 'बिम्बप्रवालरक्तीष्ठ', 'कुन्दश्वेतद्विजावलि', 'कम्बुकण्ठ', 'मृगेन्द्राभक्षो-
भाक्', 'महाभुज', 'श्रीवत्सकाग्निसम्पूर्णमहाशोभस्तनान्तर', 'गम्भीरनाभिवत्क्षा-
ममध्यदेशविराजिन', 'प्रशान्तगुणसम्पूर्ण', 'नानालक्षणभूषित', 'सुकुमारकर',
'वृत्तपीवरोद्धयस्तुत', 'कूर्मपृष्ठमहातेजःसुकुमाररुमद्वय', 'चन्द्राकुरारुणच्छाया-
नल्लपकितसमुज्ज्वल', 'अक्षोभ्यमस्त्वगम्भीर', 'वज्रसपातविग्रह', तथा 'सभी
सुन्दर वस्तुओं के एकत्रित सार' हैं।^{१७२} इस आकर्षक व्यक्तित्व के कारण ही उन्हें
अनेक कन्याओं की प्राप्ति होती है।

राम की शक्ति और वैभव भी भव्य है।^{१७३} वे शीशव में ही म्लेच्छों को
परास्त करते हैं तथा 'वज्रावतं', धनुष को चढ़ाकर सीता की प्राप्ति करते हैं।

१७१ पद्मपुराण, २५।२७-२८

१७२ पद्मपुराण, ४९।५१-६०

१७३ बही, ८१।२-१३

अनेक युद्धों में उनकी शक्ति के प्रमाण मिलते हैं।^{१४४}

राम का शील भी दर्शनीय है। वे पिता के आज्ञापालक हैं। वे भरत को राज्य दिलाने के लिए दशरथ से कहते हैं—

“तात रक्षात्मनः सत्यं स्वजास्मत्परिचिन्तनम्।

शक्रस्यापि श्रिया किं मे स्वय्यकीर्तिमुपागते ॥”^{१४५}

साथ ही वे भरत से भी राज्य करने को कहते हैं। वे कुछ लक्ष्मण को समझाकर अपनी समर्पितता का प्रमाण देते हैं। वे भरत की रक्षा के लिए राजा अतिवीर्य की सभा में अपने नृत्यकीशल और वीरता से सभी को स्तब्ध कर देते हैं। वे क्षमा के सागर हैं, इसीलिए कपिल जैसे परवभाषी को भी क्षमा कर देते हैं। वे अपार सज्जन तथा शरणागतवत्सन हैं, विभीषण पर रावण के द्वारा छोड़ी गयी शक्ति को अपनी छाती पर झेल लेते हैं। उनका भ्रातृप्रेम अनुपम है, शक्ति-निहत लक्ष्मण को देखने के लिए वे रावण से आज्ञा माँगते हैं। इसी प्रकार मृत लक्ष्मण को लिये हुए वे छ. मास तक घूमते फिरते हैं। वे अपार विचारवान् तथा दयावान् हैं, अतः रावण-भानुकर्ण-मेघबाहुन आदि को मुक्त करा देते हैं। वे रावण का दाहसंस्कार भी करते हैं क्योंकि उनके मत से “मरणान्तानि वैराणि जायन्ते ह्यविपश्चिताम्।” वे सीता को अपार प्रेम करते हैं तथा लोकापवाद के कारण उसे छोड़ते हुए उन्हें अपार अन्तर्द्वन्द्व का सामना करना पड़ता है। राम परम जैन हैं; वे जिनेन्द्र की स्तुति करते हैं, मुनि देशभूषण-कुलभूषण का उपसर्ग दूर करते हैं, मुनि से श्रद्धा सहित उपदेश सुनते हैं, जिन मन्दिरों का निर्माण कराते हैं, दीक्षा लेते हैं तथा किसी भी प्रलोभन से विचलित नहीं होते।

लक्ष्मण : ‘अष्टम नारायण’ लक्ष्मण राजा दशरथ और रानी सुमित्रा के पुत्र हैं तथा राम के अनुज हैं। कवि ने इनकी पर्याप्त कीर्ति गायी है। उसने इन्हें ‘सर्वशास्त्रविशारद’, ‘सर्वलक्षणसम्पूर्ण’ आदि अनेक सुन्दर विशेषणों से विशेषित किया है तथा अनेक पात्रों के कथन इनकी महत्ता का पर्याप्त अभिव्यञ्जन करते हैं। साथ ही इनके कार्यकलाप भी भव्य तथा उदात्त हैं।

लक्ष्मण का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक है। वे ‘प्रीडेन्डीवरगर्भाभ’ ‘कान्तिवारि-कृतप्लव’, ‘सुलक्ष्मा’, ‘लक्ष्मीनिलयवक्षस्क’ तथा अपनी साँवली सलोनी कान्ति से दर्शकों के चित्त को आकर्षित करने वाले हैं। वे ‘इन्दीवरप्रभ’, ‘नीलोत्पलवय-धराम’ हैं जिन्हें देखकर स्त्रियाँ उन्मत्त सी होकर कहने लगती हैं—

१४४. पद्मपुराण पर्व २८, ७८, १०२

१४५. वही ८१/१२५

“भिन्नाजनदलच्छाया कान्तिरस्य बलविधा ।

भिन्ना प्रयागतीर्थस्य घत्ते शोभां विलासिनीम् ॥” १७९

तथा—

“अयि मूढे न पुण्येन नितान्तं भूरिणा विना ।

लभ्यते सुचिर द्रष्टुमेवंविधनराकृतिः ॥” १८०

उनके सौन्दर्य से वशीभूत कल्याणमाला-वनमाला-जितपद्मा-विशल्या आदि अनेक कन्याएँ उन्हें प्राप्त होती हैं। सिंहोदर आदि राजाओं की ३०० कन्याओं, विद्याधर की आठ कन्याओं तथा अन्य अनेक राजकुमारियों से विवाह करके अपने प्रेम का निर्वाह करते हैं। उनकी कुल मिलाकर १७००० रानियाँ हैं। १८०

लक्ष्मण की शक्ति और प्रताप अद्भुत है। वे छोटी अवस्था में ही राम के साथ म्लेच्छों को परास्त करते हैं, सागरावर्त धनुष को चड़ा देते हैं, चकरन की प्राप्ति करते हैं तथा रावण जैसे पराक्रमी को युद्ध में परास्त करते हैं। तब फिर खरदूषण जैसे अनेक योद्धाओं को विजित करने का तो कहना ही क्या !

लक्ष्मण का शीघ्र भी प्रशमनीय है। वे महाविनयसंपन्न हैं। उनका भातृ-प्रेम अनुपम है। वे स्वभाव से तेजस्वी हैं। वन जाते हुए राम को देखकर उनका खून खौलने लगता है और वे एक बारगी सोचने लगते हैं:—

“किमद्यैव करोम्यन्या सृष्टिमुत्सृज्य दुर्जनान् ।

भरतरय बलादाहो करोमि विमुखा श्रियम् ॥

विधानुरद्य सामर्थ्यं भनग्मि विरमूजितम् ।

निरुद्ध्य पादयोज्येष्ठ करोमि श्रीसमुत्सुकम् ॥” १८१

किन्तु वे अपने बड़े भाई का ध्यान करके शान्त हो जाते हैं—“ज्येष्ठस्तातश्च जानामि साम्प्रतासाम्प्रत बहु ।’ वे परम नीतिज्ञ हैं। वे सीता में मातृवृद्धि रखते हैं। वे हृदय के कुछ भावुक भी हैं, इमोलिये गूर्यहास खड्ग से शम्बूक वध करने के बाद जब वे पाम आयी चन्द्रनला को राम के द्वारा लौटाया हुआ पाते हैं तो उसे देखने की उत्सुकता उनके चित्त में रह जाती है और उसे दूँडते फिरते हैं तथा सोचते हैं:—

“आयान्त्यथ सती कम्पाद् दृष्टमात्रा न सा मया ।

स्तनोपपीडनादलेप परिरेब्धा हृतात्मना ॥” (पद्य० ३४।११८)

१७६. पद्य०, २५।७६, और भी बड़ी, २४।५, २८।८३, ३०।८५

१७७. वही, ४८।५३

१७८. वही, ९४।१७

१७९. वही, ३१।१९५-१९८

वे परम विलासी हैं।

साथ ही लक्ष्मण परम जिन-भक्त हैं। वे मुनियों का उपदेश सुनते हैं, उनके उपसर्ग दूर करने में राम को सहायता देते हैं। अन्त में भ्रातृप्रेम का परिचय देकर प्राण छोड़ देते हैं तथा नरक में जाते हैं।

भरत : भरत की प्रारम्भ से ही एक विवेकी पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है। वे पिता दशरथ के दीक्षा के विचार से प्रभावित होकर स्वयं भी दीक्षा लेना चाहते हैं। उनके वैराग्य को दूर करने के लिए बेंकया उनके लिए दशरथ से राज्य मांगती है किन्तु वे उसे स्वीकार नहीं करते। वे 'नवेन वयसा कान्तः' होकर भी प्रव्रज्या लेना चाहते हैं और अपने विवेक का परिचय राजा को देते हैं जिस पर राजा कहते हैं—'वरस, धन्योऽसि विबुद्धो भव्यकेसरी'। वे 'विनीताना शिरसि स्थितः' हैं।^{१८०}

भरत का भ्रातृप्रेम बड़ा प्रबल है; वे राम को लौटाने के लिए जाते हैं और कहते हैं:—

“उत्तिष्ठ स्वपुरीं यामः प्रसादं क्रुह मे प्रभो।

राज्यं पालय निःशेष यच्छ मेऽतिमुखासिकाम्॥

भवामि छत्रधारस्ते शत्रुघ्नदक्षमराश्रितः।

लक्ष्मणः परमो मन्त्री सर्वं सुविहितं ननु॥”^{१८१}

किन्तु राम के चले जाने पर उन्हीं के अनुरोध से इस शर्त पर राज्य चलाते हैं कि उनके लौटते ही वे दीक्षा ले लेंगे।

भरत प्रतापी है। वे राजा अतिवीर्य को परास्त करते हैं। जब भामण्डल आदि में लक्ष्मण-शक्ति का समाचार सुनते हैं तो वे एकदम सेना को तैयार करते हैं।

वे परम जैनी हैं। उनके दशन कर त्रिलोकमण्डन हाथी भी शान्त हो जाता है। अन्त में वे राम के प्रत्यावर्तन पर अपनी १५० रानियों और अनेक पुत्रों को विलक्षता छोड़कर दीक्षा धारण कर लेते हैं। वे अष्ट कर्मों का क्षय करके निर्वाण प्राप्त करते हैं।

शत्रुघ्न : 'पद्मपुराण' में शत्रुघ्न का कोई अधिक विशिष्ट स्थान नहीं है। वे दशरथ की सुप्रभा रानी से उत्पन्न हैं और दशरथ के सब से छोटे पुत्र हैं।^{१८२} उनका मुख्य कथा में कोई विशिष्ट योगदान नहीं है। ८९ वें पर्व में उनकी वीरता

१८०. वे० 'पद्मपुराण', ३१।१३२, १४७, १४८

१८१. वही, ३२।१२२, १२३

१८२. वही, २५।३६, ३९

और जैन-धर्मपरायणता के एक साथ दर्शन होते हैं जब कि वे मधुसुन्दर से और मुझ करते हुए शूलरत्न से उसे घायल कर देते हैं और घायल अवस्था में उसे केशसूत्रन करके दीक्षा लेता हुआ देख उसके चरणों में गिर कर क्षमा मांगते हैं। पूर्वजन्मों के संस्कार के कारण मथुरा के प्रति उनका विशेष आकर्षण है। वे अन्त में संसार के आकर्षणों से विमुक्त होकर श्रमणत्व प्राप्त कर लेते हैं:—

“छित्वा रागमय पाशं निहृत्य द्वेषवैरिणम्।

सर्वसंगविनिर्मुक्तः शत्रुघ्नः श्रमणोऽभवत् ॥” १८१

लवणांकुशः अनंगलवण और मदनांकुश का संयुक्त नाम लवणांकुश है। ये दोनों राम द्वारा निर्वासित सीता के पराक्रमी पुत्र हैं जो पुण्डरीकपुर नगर में, राजा बज्रजंघ के महल में उत्पन्न हुए हैं। बचपन से ही वे भव्य व्यक्तित्व वाले हैं, सिद्धार्थ क्षुल्लक से समस्त विद्याओं को अधिगत करते हैं, दिग्विजय करके अपना प्रताप दिखावाते हैं, अन्याय के विरोधी हैं और अयोध्या के राजा सीतानिर्वासनकर्त्ता राम पर चढ़ाई कर देते हैं। वे जैन हैं।

राम-पक्ष के स्त्री पात्र

अपराजिता : दशरथपुराणीय सुकोशल की अमृतप्रभावा रानी से उत्पन्न अपराजिता दशरथ की प्रधान महिषी और राम की माता है। रामवन-गमन के अवसर पर वह राम के साथ जाना चाहती है और अपने अयोध्या-निवास पर चिन्ता व्यक्त करती है। पति के दीक्षा लेने पर उसकी दशा बढ़ी दयनीय हो जाती है (शोक भोजेऽपराजिता। पद्म० ३२।१०२)। वह पुत्र के वियोग में बिलखती है तथा राम के प्रत्यावर्तन पर उनसे बड़े आनन्द से मिलती है। इस प्रकार वह एक पुत्रवत्सला माता के रूप में आती है।

सुमित्रा : ‘पद्मपुराण’ की सुमित्रा ‘कमलसंकुल’-नगराधीश सुबन्धुतिलक की मित्रा रानी से उत्पन्न पुत्री और दशरथ की रानी है। इसका नाम ‘कैकयी’ है और वेष्टाओं के कारण ‘सुमित्रा’ भी।^{१८४} लक्ष्मण इसके पुत्र हैं। इसका कोई विशिष्ट चरित्र-चित्रण नहीं हुआ है।

केकया : कीतुकमगलनगराधिपति शुभमति की पृथ्वी नामक स्त्री से उत्पन्न केकया दशरथ की तीसरी रानी हैं। वह समस्त कलाओं में पारंगत है।^{१८५} वह वीरांगना, बुद्धिमती एवं मनोविज्ञान की पारंगत है। दशरथ का रथ चलाना,

१८३. पद्मपुराण १११।३८

१८४. पद्मपुराण २२।१७५

१८५. पद्मपुराण के २४ वें पर्व में उसकी कलाओं का विस्तृत परिचय दिया गया है।

भरत के विवाह का अनुरोध करना तथा राम को मनाना आदि इसके प्रमाण हैं। वह अपने घर को अक्सर के लिए सुरक्षित रखकर अपने धैर्य का परिचय देती है। भरत को दीक्षा से विरक्त कराने के लिए राजा से उसके लिए राज्य मांगती है, उसका राम को बन भेजने का इरादा नहीं है। बाद में वह राम को लौटाने भी जाती है 'साकेत' की कीकैयी की तरह वह भी राम को बहुत मनाती है। लक्ष्मण-शक्ति पर वह अपने भाई द्रोणमेष की कन्या को लक्ष्मण के पास भिजवाकर अपने कर्तव्य एवं वात्सल्य का परिचय देती है। वह जिन-भक्ता है और अन्त में भरत के दीक्षा लेने पर स्वयं भी आर्यिका बन जाती हैं।

सीता : सीता 'पद्मपुराण' की नायिका है। उसके अनेक विशेषण कवि ने स्वयं भी प्रयुक्त किये हैं और अनेक पात्रों से भी कराए हैं। उसका व्यवहार तो उसे अत्यन्त ऊँचा उठा देता है।

सीता जनक की पुत्री है। जन्म लेने के कुछ समय बाद से ही उसके शरीर का विकास होने लगता है। वह शैशव में ही अत्यन्त भव्याकृति दिखाई देती है।^{१८१}

१८६ सीता-वर्णन की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

प्रमदमुपगताया योषिताभगदेशे
 पृथुननुभवकान्त्या लिप्सती विस्समूहम् ।
 विपुलकमलयाता श्रीरिवामी सुकण्ठा
 शुचिहृमितामितास्वाऽर्पिताभोजनेवः ॥
 प्रभवति गुणसरय येन तस्या समृद्ध
 भजदक्षिलजनाना सौख्यमम्भारदानम् ।
 नदनिशयमनोना चारुमन्त्रिताया
 जगति नियदिनासौ भूमिमाभ्येन सीता ॥
 वदनजितशशाका पल्लवच्छायापाणि.
 श्रितिमणिममते त्र —केशसपातरम्या ।
 जिनसमदनहसस्त्रीगति. सुन्दरधू—
 मङ्कुलसुगन्धिवक्त्रादीदवद्वानिवृन्दा ॥
 अग्निसुभुजमाला शरकरत्रानुमय्या
 प्रवरमरमरम्भास्तम्भाम्भारितोः ।
 स्थनकमलसमानोत्पुष्टोऽञ्जलीऽङ्ग
 प्रभवदतिविशालच्छायावशोजयुग्मा ॥
 प्रवरधवनकुक्षिष्वस्तुदारेषु कान्त्या
 विविधविहितमार्गा लब्धवर्णा परं सा ।
 सततमुपपतन्ताः सप्तकन्यासताना—
 मतिशायरमणीयं शास्त्रमार्गेण रेये ॥

उसका राम से विवाह होता है। राम के समीप खड़ी हुई सीता की शोभा अनुपम प्रतीत होती है १८७ तथापि लोग उसके लिए 'बंदेही' रामदेवस्य श्रीसभा बनिता-
ऽभवत्' कहकर उपमा देने का प्रयत्न करते हैं।

वह भ्रातृस्नेहिनी एवं पतिव्रता है। राज्य छोड़कर जाते हुए राम के साथ 'यत्र त्वं तत्र चाप्यहम्' (३१।१८५) कहकर वह चल देती है, उसी प्रकार जिस प्रकार इन्द्र के पीछे इन्द्राणी। वन में अनेक घटनाओं से भयभीत होती है; इससे उसकी कोमलता सिद्ध होती है। वह परम दयालु है और राजा अतिवीर्य को

अपि दिनकर-शान्ति कोमदी चन्द्रकान्ति
मुरपानिमहिषी वा कापि वा मा सुचक्षा ।
यदि भवति तदीयासवशो वा कश्चि-
न्ति यत्नमपि मदीयां स्नातना वेदनीया ॥
विशिष्टिष रतिदेवी कामदेवस्य बुद्धया
दशरथसमयस्याकल्पयत्पूर्वजन्म ।
जन्मकरपानिमा सर्वविज्ञानयुक्ता
ननु रविकरमगरयोचितता पद्मलक्ष्मी ॥"

(पद्मपुराण २६।१६५-१७१)

अन्यत्र युवती सीता का वर्णन इस प्रकार है—

"अपमयञ्च महामोहमप्रवेशनकान्क्षीम् ।
रत्यरव्यो समुद्रवर्ती माधाललक्ष्मीमिव स्थिताम् ॥
चन्द्रम कान्तवदना वन्धूकाभवराधनाम् ।
तनुदरी च लक्ष्मी च जलजञ्जदलोचनाम् ॥
महामनुष्माणश्चरन्तान्गविपुलस्तनीम् ।
धीवतीदयमम्लाना गर्भः श्रीगुणगङ्गताम् ॥
सहितमिव कामेन कान्तिञ्चा दृष्टिमायकाम् ।
निजा चापलता हन्तुं सुखेनैव यथीगमनम् ॥
सर्वस्मृतिमहाचारी रुपातिशयवर्तिनीम् ।
सीता मनामवोदारजवरप्रहणकारिणीम् ॥"

(पद्म०, ४६।६०-६४)

१८७. "पार्श्वस्थया तया रेजे स गता मुन्वरी यथा ।
यथार्यामिति दृष्टान्त यो गदेत् स गतवत् ॥"

(पद्म०, २८।२४४)

छुड़वा देती है। वह नृत्यादिकलावेदिनी है तथा जिनेन्द्र की वन्दना करती है।^{१८८} राम उसे 'साध्वि, पण्डिते, चारुदर्शने, गुणमण्डने' आदि विशेषणों से सम्बोधित करते हैं। मुनियों के लिए वह शुक्ल्यंगी 'महाश्रद्धापरीता' है। वह वन में अणुव्रत पालन करती है।

सीता-रूपी स्वर्ण की परीक्षा रावण के द्वारा हरण-रूपी-अग्नि में होती है। वह तेजस्विनी निर्भय पतिव्रता है। वह विमान में तण की ओट रखकर रावण को भस्मिंत करती है।^{१८९} जब मन्दोदरी सीता को फुसलाने के लिए जाती है तब सीता ने उसे जो सताड़-पिलाई है वह देखने के योग्य है। उसके उत्तर में उसकी रामविषयक एक-निष्ठता दमकती-बमकती-सी निकलती है।^{१९०} इसके बाद वह रावण के

१८८. "ततो विधननिष्प्रेषयास्तननप्रज्ञा ।

मनोज्ञाकल्पसम्पन्ना हारमाल्यादिभूषिता ॥

लीलया परया युक्ता दक्षिणाभिनया स्फुटम् ।

चायमादृतलाभारा हावभावादिकोविदा ॥

नयान्तरवशोत्कम्पिमनोज्ञस्तनमण्डला ।

निष्प्रेष्यचरणारम्भोजविनयामा चलिनामका ॥

गीतानुसमसम्पन्नसमस्तागविचेष्टिता ।

मन्दरे श्रीरिवानृत्यज्जगती भक्तिचोदिता ॥"

(पद्म० ३९, ५३-५३)

१८९. सीता की रावण को फटकार इस प्रकार है—

"क्षयमपे भमागानि मा स्पृश' पुत्रपाधनम् ।

निन्दाभरामिमा बाणीमीदृशी भाषसे कथम् ॥

पापात्मकमनायुष्यमम्भयैमयशस्करम् ।

असदीहितमेतमे विश्वा भयकारि च ॥

परदारान् समाकाशनं महादुःखमवाप्स्यसि ।

पञ्चानागपरोनामो भस्मच्छन्तानलोपमम् ॥

महता मोहकम्पेन गवोपचिन्धितम् ।

मुग्धा धर्मविदेशी ऽयमग्रे नृन्पतित्वात् ॥

इच्छामात्रादपि क्षुद्र बद्धा पापमतुलमम् ।

नरके वासमासाद्य कष्टं वर्तनमाप्स्यसि ॥"

(पद्म० ४६, १२-१६)

१९०. "वनिते ! सर्वमेतन्ने विश्वा वचन परम् ।

सतीनामीदृश वक्त्रात्कथं निर्गन्तुमर्हेत् ॥

इदमेव शरीर मे क्षिप्तं चिन्तापथा ह ।

भर्तुः पुरुषमन्य तु न करोमि मनस्यैव ॥

मनस्कृमारूपो ऽपि यदि बाष्पण्डलोपमः ।

नरस्तथापि त भर्तुरन्य मेच्छामि सर्वथा ॥

युष्मान् बबौमि सजेपाहारान् सर्वसिन्हायतान् ।

मया हृतं तथा नैतत्करोमि कुरतेषितम् ॥"

प्रेमप्रस्ताव पर ठोकर मार देती है जिसके कारण उसे अनेक प्रास भेजने पड़ते हैं किन्तु वह अपने पथ से रंचमात्र भी विचलित नहीं होती। रावण की माया उसे म्याम्य पथ पथ से टस से मस भी नहीं कर सकी।^{१९१} 'सीता दशाननं मेने तुणादपि जघम्यकम्'।^{१९२} वह बिचारी राम के विरह में 'स्निग्धज्वलनसंकाशा, बाष्पपूरित-लोचना, करविग्नस्तवकनेन्दुमुक्तकेशी और कुशोदरी' हो जाती है; श्रीराम के लिए बूढामणि भेजती है; लक्ष्मण के शक्ति लगने के समाचार से वह परम व्याकुल होती है। युद्ध से पूर्व जब वह दशानन ने कह कहुती है कि 'हे दशानन बाण चलाने पूर्व राम से मेरा यह सन्देश कह देना कि आपके बिना घामण्डल की बहिन घुट-घुटकर मर गई है' और मूर्च्छित हो जाती है तो रावण भी विचल जाता है।

अस्तु, विकट विरह के अनन्तर रावण-वध के बाद राम उससे मिलते हैं और लंका में ६ वर्ष उसके साथ बिताते हैं। पर हाय रे भाग्य ! जनापवाद के कारण सीता अयोध्या से निकाल दी जाती है, वह भी अपने पति के द्वारा। वह फिर भी इसे झेल जाती है। वन से उसने राम के लिए सन्देश भिजवाया कि 'जिस प्रकार मुझे आपने छोड़ दिया इस प्रकार जैन-धर्म को मत छोड़ देना आदि' जिसे पढ़कर पाठकों की आँखों में आँसू आ जाते हैं।

लवणांकुश के जन्म लेने पर वह एक वात्सल्यमयी माता हो जाती है। मातृत्व और पत्नीत्व का वह आदर्श उदाहरण है।

वह अग्नि-परीक्षा में सफल होती है, साथ ही ससार से विरक्त होकर दीक्षा ले लेती है। कठोर तप करके प्रतीन्द्र बनती है। फिर भी लक्ष्मण की उसे चिन्ता है और उसे प्रबोधनी है। अंत में राम केवली से पूछकर स्वर्ग चली जाती है।

सीता के चरित्र में कुछ स्थान उसकी उदात्तता के व्याघातक से हैं। यथा— भरत के साथ झीड़ा करना, राम की तपस्या में विघ्न डालना आदि। फिर भी समग्रतः सीता का चरित्र महान् है।

१९१ 'अचण्डैर्विगनदग्धैः करिभिर्धनवृ हितैः ।

श्रीषिताप्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥

इष्टाकरालदधनैर्व्याधं वृं महवि.स्वनैः । श्रीषिता ॥

चलत्केसरसपानैः सहैकप्रसङ्गाच्चकुक्षौ । श्रीषिता ॥

ज्वलस्फुरात्तगभीमाक्षौर्भगजिह्वालुं मेहोदरैः । श्रीषिता ॥

व्यालाननैः कृतोत्पातगतनैः क्रूरवानरैः । श्रीषिता ॥

तमःपिण्डासिर्दंस्तुगैर्बैतार्जः । कृतहुङ्कृतैः । श्रीषिता ॥

एवं नानाविधैरुपैरुपसर्गं सजोद्धतैः । श्रीषिता ॥

(पद्य ४६/५८-१०४)

रावणपक्ष के पुरुष-पात्र

रावण : 'पद्मपुराण' की पात्र-सृष्टि में रावण का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। रविषेण ने साक्षात् तथा परम्परा से रावण के चरित्र को पर्याप्त उल्लिखित किया है। श्रेष्ठिक एवं गौतम गणधर के मुख से स्पष्टतः रविषेण ही बोलते हुए उसकी राक्षसता का खण्डन करते हैं :—

“अहो कुक्विभिर्मूलैर्विद्याधरकुमारकः ।

अभ्याख्यानमिदं नीतो दुःकृतग्रन्थकरयकैः ॥”

“रावणो राक्षसो वैव न चापि मनुजाशनः ।

अलीकमेव तत्सर्वं यद्वदन्ति कुवादिनः ॥”^{१९१}

सम्भवतः इन्द्र विद्याधर से पराजित अलंकारपुर (पाताललंका)—निवासी सुमाली की प्रीतिमती रानी में उत्पन्न रत्नश्रवा एवं व्योमबिन्दु की कनीयसी सुता केकसी से समुत्पन्न अष्टम प्रतिनारायण रावण के लिए जितने विशेषण आचार्य रविषेण ने स्वतः प्रयुक्त किये हैं अथवा पात्रों के मुख से कहलाये हैं उतने अन्य किसी पात्र के लिए नहीं। आचार्य ने स्वयं उसे स्थान-स्थान पर 'आदित्यमण्डलोपमदर्शन', 'परमाद्भुत', 'कोऽपि महान् नर', 'कृतसिद्धनमस्कृतिः', 'पूर्णन्दुसौम्य-वदन', 'विसर्पैकान्तितेजा', 'प्रवणचेता', 'ध्यानस्तम्भसमासक्तनिश्चलत्वान्त-धारण', 'स्वेच्छाकल्पितसम्पद्', 'रणमहोत्सव', 'स्वपराक्रमगवित', 'कैलासकम्पन', 'साधूनां प्रणतः', 'वशी', 'पृथुशासन', 'विनयानतविग्रह', 'प्रणतेषु दयाशीलः', 'सान्त्वयप्रवृत्तपरमोदय', 'श्रीवत्सप्रभृतिस्तुत्यद्वात्रिणलक्षणचित्त', 'मनश्चौर', 'प्राणधारिणां महोत्सवः', 'इन्दीवरचयस्यामः स्त्रीणामौत्सुक्यमाहरन्', 'नयशास्त्र-विशारदः', 'सदाचारपरायण', 'कालवस्तुयोजनकोविद', 'यमविमर्द', 'मत्स्वमख-विद्धि', 'स्फुरन्मौलिमहारत्नकेयूरधरसद्भुजः', 'बन्धुभृत्यवर्गाभिनन्दितः', 'नाकाधिपप्रख्य', 'यथाभिमतनिवृत्त', 'परदुर्ललितप्रिय', 'देवाधिपग्रह', 'संगतः परया लक्ष्म्या', 'सम्यग्दर्शनभावित', 'महाद्युतिः', 'द्वितीय इव देवेन्द्र', 'पृथुविक्रमः', 'खगेशी', 'प्रीतिस्मिताननः', 'प्रमदान्वितमानसः', 'रणकोविदः', 'बहुमानधारी', 'क्षतसर्वगन्तुः', 'विशालकान्तिः', 'महानुभावः', एवम् 'महाप्रभावः खण्डत्रयस्यानुपमानकान्तिः राजा'—प्रभृति विविध विशेषणों से विशेषित किया है^{१९२} तथा

१९३. पद्मपुराण २।२३७, ३।२७ और भी वही ११।१३८ ।

१९४. दे० 'पद्मपुराण' ७।२१८, २५५, २६३, २७१, २८०, २९०, ३७०; ८।२००, १।१११, २१५, २२२, १०।८०, १५३; ११।३०७, ३२७, ३३७, ३७१, ३७२; १२।५, ३३०, ३३२, ३४९, ३७०, ३७४; १४।१, २, ४, ११, १२, ३७७; १८।२; १९।२४, २६, ६१, १२८, १२९, १३०, १३२ आदि अनेक स्थल ।

श्रेणिक, गौतम गणधर, रत्नश्रवा, विभीषण, अनेक देवियों, अनावृत यक्ष, सुमाली, अनेक मदनपुर नारियों, कृषकों, सहस्रार, यहाँ तक कि राम-लक्ष्मण आदि अनेक पात्रों ने उसे विविध स्थानों पर 'विद्याधरकुमारक', 'त्रिजगद्गतकीर्ति', 'महासरव', 'कुलवृद्धिविधायी', 'भवान्तर्यनिबद्ध मुकृत से उत्तमक्रिय', 'सुरों का भी बल्लभ', 'सुरोपम', 'काश्यानुत्सारिततारेश', 'दीन्युत्सारितभास्कर', 'गाम्भीर्य-जिततोयेश', 'स्वैर्योत्सारितभूधर', 'मृगों से भी अपराजित', 'दान से मनोरथ को पूर्ण करने वाले जलद के समान', 'चक्रवर्तिसमृद्धिवान्', 'वरसीमन्तिनीचेतोलोच-नालीमल्लुच्', 'श्रीवत्सलक्षणोत्तराजितोत्तुंगवक्षा', 'नाममात्रश्रुतिध्वस्तमहा-साधनगन्धु', 'साहसैकरसासक्त', 'शत्रुपद्मक्षपाकर', 'श्रीवत्समण्डितोरक', 'व्यामताततविग्रह', 'अद्भुतैकरसासक्तनित्यचेष्ट', 'महाबल', 'अखिल जगत् को भस्मच्छन्नाग्निवत् भस्म करने में शक्त', 'विरुद्धसमप्रयोगस्रष्टा', 'महामन', 'महामति', 'उदारमन्त्र-दिवाकरजित्वरीर्यात-समुद्रोत्सारी गाम्भीर्य-पराक्रम-धारी', 'रक्ष-कुलविशेषक', 'लोकमहाश्चर्यकारिचेष्ट', 'उत्साहपरायण', 'बलविक्रम', 'सत्त्वप्रतापविनयश्रीकीर्ति-रुचिसमाश्रय', 'महात्सव', 'कुल का शुभलक्षण', 'उपमानविमुक्तन रूपेण हृतचोचन', 'सिद्धविद्य', 'जगत् का कोई महान् अद्भुत-कारी', 'नराणामुत्तम', 'सुरेन्द्रसुन्दर', 'साक्षात् वीररस से ही निर्मित शरीर वाना', 'अनन्यसदृशप्रतापवान्', 'महातेजा', 'नयशास्त्रविद्यारद', 'महासाधनसम्पन्न', 'उग्रदण्ड', 'महोदय', 'शत्रुमर्द', 'घन्य', 'स्थापी', 'महाविनयसंगत', 'वीर्यवान्', 'उत्तमैश्वर्य', 'गुणविभूषण', 'सज्जन' 'वराकृति', 'इन्द्रानिकामकपराक्रमधारी', 'दर्शनीय वस्तुओं का एकमात्र भाजन', 'महाविभवपात्र', 'उत्तम', 'धन्य', 'कल्याणसम्भार', 'मर्वेण प्राणिनाम् महाबन्धु', 'लोकावगामिगुणोपेत', 'मनोहर', 'परोपकृतिकारणमूर्तिधारी', 'रक्ष-प्रभु', 'बाहुओं एवं पुण्य की उदार महिमा दिखाने वाला', 'क्षमावान्', 'समर्थ', 'कुन्दनिर्मलकीर्ति', 'गुणालय', 'देवाना प्रिय', 'श्रीमान् विद्याधराधीश', 'विशालपुण्य', 'वीरमूर्द्धस्य', 'उदारकीर्ति', 'शक्रेणाप्य-पराजित', 'सर्वविद्याधराधीश', 'पराजितसुराधिप' 'त्रैलोक्यसुन्दर', 'स्फीतबल', 'दीप्तमहाविद्याविद्यारद', 'स्वामी भरतव्यषटाना यस्त्रयाणा निरंकुशः', 'विदुषा श्रेष्ठ', 'धर्मार्थमिविवेकी, एवं अन्य अनेक उत्तम विशेषणों से स्मरण किया है, १५५ साथ ही उसकी महनीयता के चोतक ऐसे-ऐसे भाव अभिव्यक्त किये हैं—

१५५. वे० पद्मपुराण २।२३७, ७।१८६-१९७, २४६-२४९, २७३, ३२३, ३४१, ३७८-३९१; ५।१६, १५, ४५, ११६, ४८६, १।५२, ५३, १९८, २०८, २११, १०।१६१; ११।२७५, ३०६, ३३४, ३५३, ३५४, ३५८, १२।१०१, १०७, ११७, १५६, १३४, २६, ३०, ३१; १६।३६; ११।१२, १५, १६; ४४।२२; ४६।७५, २०६, ४७।१३, ४८।१३-१५ आदि अनेक स्थल ।

“योषित् पुष्यवती सोऽयं धृतो गर्भे यथोत्तमः ।
पिताप्यसौ कृतार्थत्व प्राप्तः कृत्वास्य सम्भवम् ॥
श्लाघ्यः स बन्धुलोकोऽपि यस्यायं प्रेमगोचरः ।
अनेनोपगता यास्तु तासां स्त्रीणां किमुच्यते ॥” १९६

तथा—

“नूनं भद्र समुत्पत्तिः मज्जनानां भवादृशाम् ।
सममेव गुणैः सर्वलोकाह्लादनकारिभिः ॥
आयुष्मन्नस्य शौर्यस्य विनयोऽयं तबोत्तमः ।
अलंकारसमस्तेऽस्मिन् भुवने श्लाघ्यतां गतः ॥
भवतो दर्शनेनेदं जन्म मे साधकं कृतम् ।
पितरौ पुष्यवन्तौ तौ त्वया यौ कारणौकृतौ ॥
धर्मावता समर्थेन कुम्भनिर्मलकीर्तिना ।
दोषाणां सम्भवाशका त्वया दूरमपाकृता ॥
एवमेतद्यथा वक्षि सर्वं सम्पद्यते त्वयि ।
ककुप्करिकराकारौ कुतः किं न ते भुजौ ?” आदि १९७

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि एक-आध पात्र के अतिरिक्त रावण को सभी अच्छी दृष्टि से देखते हैं तथा उनके चरित्र की विशेषताओं से प्रभावित हैं ।

किसी भी पात्र का चरित्र-चित्रण करने के लिए उसकी तीन विशेषताओं को देखना औपयिक होता है—(१) सौन्दर्य, (२) शक्ति तथा (३) शील । रावण के चरित्र में आचार्य रविवेण ने तीनो का ही भव्य सन्निवेश किया है ।

जहाँ तक रावण के शारीरिक सौन्दर्य एवम् आकर्षक-वेशभूषा का प्रश्न है, वह अत्यन्त चेतोहर है । वह निहोतसायकश्याम, पक्वविम्बफलाधर, मुकुटन्यस्त-मुक्तांशुसलिलक्षालितालक, इन्द्रनीलप्रभोदारस्फुरत्कुन्तलभारक, सहस्रपत्रनयन, शर्वरीतिलकानन, सज्जवापनतस्निग्धनीलभ्रूयुगराजित, कम्बुघ्नीव, हरिस्कन्ध, पीन-विस्तीर्णवक्षा, दिङ्मनागनासिकाबहु, वज्रवमन्ध्यदुर्विध, नागभोगसमाकारप्रसृत, भग्नजानुक, सरोजचरण, न्याय्यप्रमाणस्थितविग्रह, श्रीवत्सप्रभृतिस्तुत्यद्वात्रिशल्ल-क्षणाचित्त, रत्नरश्मिज्ज्वलन्मौलि, हारराजितवक्षा, प्रत्यर्द्धचक्रभृद्भोग^{१९८}, लक्ष्मी-धरसमाकारदिव्यरूपसमन्वित तथा नागीमनःकर्षणविभ्रम है^{१९९} । उसके इस

१९६. पद्मपुराण ११।३३४-३३५ ।

१९७. पद्म० १३।२३-२७ ।

१९८. वे० पद्म०, ११।३२२-३२८ ।

१९९. वही, ६७।२४ और ६७।२५ ।

लौकोत्तर सौन्दर्य से नारियाँ बशीभूत हो जाती हैं, इसी के कारण उसकी बठारहू हजार स्त्रियाँ प्रसन्न हो उससे रमण करती हैं; मन्दोदरी सदृश उदात्त पत्नी उसे इसी सौन्दर्य के कारण प्राप्त हुई है^{२००} ।

रावण अपरिमित शक्ति का निकाय है। जब वह गर्भ में जाता है तभी उसकी माता की चेष्टाएँ क्रूर होने लगती हैं जिनसे रावण के अपार शक्तिशाली होने का अनुमान होने लगता है।^{२०१} नागेन्द्र-प्रदत्त हार से क्रीड़ा करना तथा उसमें उसके मुखों का प्रतिबिम्ब पड़ना—जिसमें उसे 'दशाननत्व' प्राप्त हुआ—उसकी शक्ति के ही द्योतक है। बचपन की क्रीड़ा भी उसकी भयंकर ही होती है।^{२०२} वह 'त्रिलोक-मण्डन,' हाथी को बश में कर लेता है।^{२०३} वह कैलाससंक्षोभ, भस्त्वमखसूदन, यमविमर्द, महाप्रभाव, स्वपराक्रमगर्वित, बलवान्, महासत्त्व, नाममात्रश्रुतिध्वस्त-महासाधनशत्रु, साहसैकरसामयत, शत्रुपद्मक्षपाकर तथा इन्द्र जैसे पराक्रमशाली को भी विजित करने वाला है। वह विकट योद्धा और दिग्विजयी है। वह चतुरंगिणियों का अधिपति है।

जहाँ तक रावण के शील का प्रश्न है—वह आदर्श वीर है। वह शरणागत राजाओं को उनके राज्य लौटा देता है—'जित्वा विद्याधराधीगान् द्वीपान्तरगतान् वशी । भूयो न्ययोजयत् स्वेष्ट राष्ट्रेषु पृथुशासनः ।'^{२०४} उसकी सच्ची वीरता का पता तब चलता है जबकि राम के साथ युद्ध करता हुआ वह शक्तिनिहत लक्ष्मण को देखने के लिये लालायित राम को अनुमति प्रदान करके युद्ध से लौट जाता है। वह सच्चा सावक विद्याधर है। अनावृत यक्ष के द्वारा प्रत्यूह उपस्थित किये जाने पर भी वह विद्यासाधन से पराङ्मुख नहीं होता। वह सर्वशास्त्रविद्यारद है। वह नीति का पण्डित है जिसका परिचय हनुमान्, विभीषण तथा मन्त्रियों आदि अनेक पात्रों से वार्तालाप करते समय वह देता है। वह मातृभक्त है—जिसका प्रमाण वैश्रवण को जीतना है। अपने वश का वह उन्नतिकर्ता है; प्रजा का पालक है। जिस मार्ग से वह निकल जाता है, कृपक उसकी प्रशंसा करते हैं। अनेक पात्रों के हृदय की श्रद्धा उसे प्राप्त है। धर्मधर्म का वह विवेकी है। नलकूबर की स्त्री उपरम्भा को उसने जो उपदेश दिया है वह वस्तुतः उसे एक उदात्तचरित्र पुरुष की उपाधि देता है। अनन्त-बल केवली के समस्त उसकी यह प्रतिज्ञा—'भगवन्म मया नारी परस्येच्छावि-

२००. वही, ११।३२९।

२०१. वही ७।२०४-२१०

२०२. वही, ७।२११-२२८

२०३. वही, ८।४१०-४३२

२०४. वही, १०।२०

बहिता । गृहीतव्येति निषमो ममायं कृतनिश्चयः ।^{१२०५} उसकी चारित्रिक वृद्धता की छोटक है । उसकी दिनचर्या से उसके सम्तुलित जीवन का पता चलता है । वह स्वाभिमान और अन्याय का विरोधी है । अपने सगे भाई भानुकर्ण के द्वारा बहण के नगर की स्त्रियों के पकड़े जाने पर उसने उसे जो फटकार पिलाई है उससे उसकी सज्जनता टपकती है:—

‘अहोऽयन्तमिदं बालं स्वयां दुश्चरितं कृतम् ।

कुलनार्यो यदानीता बन्दीग्रहणपञ्जरम् ॥

दोषः कोऽत्र वराकीनां नारीणां मुग्धचेतसाम् ।

स्वलीकारमिमां येन स्वयका प्रापिता मुखा ॥^{१२०६}

वह औरों का सम्मानकर्ता है, हनूमान् आदि को दिया गया सम्मान इसी का प्रतीक है । वह किसी से किसी वस्तु की याचना नहीं करना चाहता । यहाँ तक कि ‘अमोघविजया’ विद्या को भी उस ‘ग्रहणदुर्विधी’ ने कठिन्ता से ग्रहण किया ।^{१२०७} वह बड़ों के प्रति परम विनयावत है, इन्द्र विद्याधर के पिता सहस्रार के प्रति उसकी यह उक्ति—

‘यथा तात प्रतीक्ष्यस्त्व नासवस्य तथा मम ।

अधिकं वा ततः कुर्यां कथमाज्ञाविलंघनम् ॥

गुरवः परमार्थेन यदि न स्युर्भवाद्दृशाः ।

अधस्ततो धरित्रीयं ब्रजेन्मुक्ता धरैरिव ॥

पुण्यवानरिम यत्पूज्यो ददाति मम शासनम् ।

भवद्विघ्नयोगानां न पदं पुण्यवर्जितः ॥^{१२०८}

उसकी विनीतता का उवलन्त उदाहरण है । वह परम जैन है । जैन मुनियों का वह सम्मान करता है, जैन मन्दिरों का निर्माण करता है, जिनेन्द्र भगवान् की पूजा-स्तुति करता है एवं जैन धर्मविरोधी ब्राह्मणों का दमन करता है ।^{१२०९}

‘भक्तिव्यता बलीयसी’ के अनुसार वह राम की स्त्री सीता पर मोहित हो जाता है । वह स्वयं पद्मचान्पाप-मुक्त होकर एवम् सबके समझने पर भी दैववश हरी हुई सीता को राम के पास नहीं लौटाता । इसी कारण धर्माधर्मविवेकज्ञ, सर्वशास्त्रविशारद तथा विद्वानों में श्रेष्ठ होने पर भी उसकी अप्रतिष्ठा होती है

१२०५. बही, १४।३७१

१२०६. बही, ११।८४-८५

१२०७. बही, ६५।४६

१२०८. बही, ११।१४-१६

१२०९. बही, ११वाँ पर्व

और राम के भाई लक्ष्मण के हाथ से उसका वध होता है। श्रीराम के ही शब्दों में—'वह अल्पायुक्त नहीं है तथा जन्मान्तरसमाजित पुण्यों से मरणपर्यन्त रक्षित रहा' ११० । अन्त में मरकर वह नरक जाता है।

संक्षेप में, रावण अत्यन्त उदात्त कोटि का पात्र है तथा उसका जन्मया विषण करना वस्तुस्थिति से भूँह मोड़ना है। वह राक्षस नहीं अपितु राक्षसवंशी था। रविवेण के शब्दों में—

‘अन्यन्तमूढकविभि परमार्थदूरे-
नोकिऽन्यथैव कथितः पुरुषः पुराणः ॥’ १११

कुम्भकर्ण : ‘पद्मपुराण’ में रावण का अनुज ‘भानुकर्ण’ ही ‘कुम्भकर्ण’ है। सुन्दर कपोलों के कारण इसका नाम ‘भानुकर्ण’ रखा गया—

‘भानुकर्णस्ततो जातः कालेऽनीते कियत्यपि ।
यस्य भानुरिव न्यस्तः कर्णयोर्मण्डशोभया ॥’ ११२

वह कुम्भपुर नगर के राजा महोदर की मुरूपक्षी नामक स्त्री से उत्पन्न तडिन्माला नामक कन्या को प्राप्त करता है और इस कुम्भपुर के सम्बन्ध से ही उसका नाम ‘कुम्भकर्ण’ हो जाता है—

‘तत्र कुम्भपुरे तस्य केनचित् कृतशब्देन ।
श्वसुरस्नेहनः कर्णौ सततं पेपतुर्यतः ॥
कुम्भकर्ण इति क्वाति ततोऽसौ भुवने गतः ।
धर्ममक्तमतिर्वीरः कलागुणविशारदः ॥’ ११३

रविवेण के अनुसार वह भद्रपुरुष है, मासादि का भक्षक नहीं है—

‘अयं न प्रखलैः ख्यातिमन्यथा गमितो जनैः ।
मांमासुःजीवनत्येन तथा पण्मासनिद्रया ॥
आहारोऽस्य दूर्गात् स्वादुर्यथाकामप्रकल्पितः ।
मुरभिर्येभ्युक्तस्य प्रथमं तृप्तितातिथिः ॥
सन्ध्यासवेशनोत्थानमव्यकालप्रवर्तिनी ।
निद्रास्य शेषकालस्तु धर्मव्यासक्तचेतसः ॥

२१०. गली, ६२।९१-९३

२११. वही, ११।१३८, और भी ११।१२८-१३८

२१२. वही, ६।२३३

२१३. वही, ८।१४४-१४५

परमार्थविबोधेन विमुक्ताः पापचेतसः ।

कल्पयन्त्यन्यथा साधून् धिक् तान् दुर्मतिगामिनः ॥^{१२१४}

वह विद्या सिद्ध करता है। वह वीर है और अनेक युद्धों में रावण की ओर से लड़ता है किन्तु वरुण के नगर में लूट करते समय स्त्रियों का अपहरण करके उसने अच्छा नहीं किया जिसके लिए उसे रावण से फटकार खानी पड़ती है। वह अनन्त-बल केवली की शरण में नित्यप्रति जिनेन्द्र-वन्दना की प्रतिज्ञा लेता है। अन्त में राम से युद्ध करते हुए बन्दी हो जाता है एवं छूटने पर दीक्षा ले लेता है।

विभीषण : 'पद्मपुराण' का विभीषण विद्याधरकुमार एवं रावणानुज है। वह रावण का अत्यन्त सम्मान करता है। अपनी माता को वह रावण का प्रताप बताता है। वह विद्या-सिद्धि करता है। वह निमित्तज्ञानी से रावण की मृत्यु को जनक-दशरथापत्यजन्य जानकर दशरथ-जनक की हत्या का प्रयास करता है किन्तु बाद में पश्चान्नाप करता है। वह रावणापहृत सीता के दुःख से सन्तप्त है। वह रावण को सीता को लौटाने के लिए नीतिपूर्ण सलाह भी देता है। वह अतिथि-सत्कार-कर्ता है, हनुमान् और राम का सत्कार इसका परिचायक है। उसकी नीतिज्ञता तब भी सिद्ध होती है जब वह नलकूबर की पत्नी उपरम्भा का मन न मारने के लिए रावण को परामर्श देता है।

किन्तु जब उसके समझाने पर भी रावण सीता को लौटाने के लिए सहमत नहीं होता और उसे तलवार से मारने को उद्यत हो जाता है तो वह भी खम्भा उखाड़कर युद्ध के लिए समन्य हो जाता है। मन्त्रियों के बीच-बचाव करने पर वह तीव्र अक्षौहिणी सेना के साथ राम से जा मिलता है और राम को अनेक प्रकार के परामर्श एवं साहाय्य देता है। वह उन्हीं के पक्ष से रावण से लड़ता भी है। इस प्रकार वह एक अन्यायी भाई के विरोधी के रूप में आता है किन्तु रावण की मृत्यु पर उसका भ्रातृप्रेम फिर जागृत हो जाता है और वह मूर्च्छित होकर फूट-फूटकर राने लग जाता है; यहाँ तक कि आत्मघात की इच्छा करता है—

‘सोदरं पतितं दृष्ट्वा महादुःखसमन्वितः ।

क्षुरिकायां करचक्रे स्वबधाय विभीषण ॥^{१२१५}

वह राम के प्रति परम कृतज्ञ है। उन्हें लंका का राज्य भी देना चाहता है, उनका परमातिथ्य करता है, चलने से पूर्व उनकी नगरी अयोध्या को कारीगरों से सज्जता है (पर्व ८१), लक्ष्मण-मृत्यु पर सवेवना प्रकट करने के लिए अयोध्या आता है। वह परम जिन भक्त है और अन्त में दीक्षा से लेता है (पर्व ११६)।

मेघवाहन और इन्द्रजित् : मेघवाहन और इन्द्रजित् रावण के पुत्र हैं। इन्द्रजित् हनुमान् को बांधकर रावण के सामने लाता है। वह विभीषण को खरी-खोटी सुनाता है किन्तु युद्ध में उसका लिहाज भी करता है।^{२१६} 'पद्मपुराण' में इन्द्रजित् मारा नहीं जाता बन्दी बनाया जाता है तथा अन्त में मुक्त होने पर क्षीका ले लेता है।

खर-दूषण : यह एक छोटा सा चरित्र है। वह रावण का बहूनों है। वह चन्द्र-नखा का हरण करता है तथा लक्ष्मण से युद्ध करता हुआ मारा जाता है।

रावण-पक्ष के स्त्री-पात्र

मन्दोदरी : जिस प्रकार रावण के चरित्र को अत्युदात्त दिखाने की चेष्टा रविषेण ने की है, उसी प्रकार उसकी पटरानी मन्दोदरी की भी भव्यता सिद्ध करने की पूर्ण चेष्टा की है। उसने उसके स्वतः भी अनेक विशेषण दिये हैं, पात्रों से भी उत्तकी प्रशंसा कराई है और उसके कार्यों से भी उसे उदार एवं उदात्त महिला सिद्ध करना चाहा है।

वह नितान्त मुन्दरी है।^{२१७} वह वनितोत्तमा 'ह्रीः श्रीलक्ष्मीर्धृतिः कीर्तिः प्राप्तमूर्तिः सरस्वती' सी लगती है और 'निखिलयोषिताम् मूर्ध्नि स्थिता सृष्टि' है।^{२१८} उसको प्राप्त करके रावण को लगता है मानो उसने समस्त भुवनाश्रित श्री ही या सी हों।^{२१९} उसके विभ्रम अनुपम है।

वह पति की हितैषिणी है और शान्त मस्तिष्क की विचारवती स्त्री है। चन्द्र-नखा के खर-दूषण द्वारा हरण किये जाने पर रावण खड्ग लेकर लड़ने जाना चाहता है किन्तु 'अयनज्ञानलौकिकमस्थिति'^{२२०} मन्दोदरी उसे समझाती है—

'कन्या नाम प्रभो देया परस्मादेव निश्चयान्।

उत्पत्तिरेव तासां हि तादृशी सार्वलौकिकी॥

खेचराणां महस्राणि सन्ति तस्य चतुर्दश।

ये वीर्याकृतसन्नाह्वा ममरादनिवर्तिनः॥

बहून्यस्य सहस्राणि विद्यानां दर्पशालिनः।

२१६. यानर सेना का भ्रम करके इन्द्रजित् ने विभीषण को सामने धावा देकर इस प्रकार विचार किया है—

'तातस्यास्मै च को भेदा भ्यायो यदि निरोक्ष्यते।

ततोऽभिमुखमेतस्य नावस्थातु प्रशस्यते॥' (पद्म० ६०।१२३)

२१७. मन्दोदरी के 'मन्त्रशिख-वर्णन' लिए देखें 'कसापण' के अन्वर्गत 'वर्णन'-विवेचन में उद्धृत 'पद्मपुराण' के ५ ब सर्ग के ५७-७२ श्लोक।

२१८. पद्म०, ८।७६

२१९. वही ८।८१

२२०. वही, ९।३१

सिद्धानीति न किं लोकाद् भवता श्रवणे कृतम् ॥
 प्रवृत्ते दारुणे युद्धे भवतोः समशीर्ययोः ।
 सन्देह एव जायेत जयस्याग्न्यतरं प्रति ॥
 कथंविच्य हतेऽप्यस्मिन् कन्याहरणदूषिता ।
 अन्यस्मै नैव विधाप्या केवलं विधवीमवेत् ॥
 किंच सूर्यरजोमुक्ते त्वत्पुत्रे प्रत्यवस्थितम् ।
 अलकारोदये नाम्ना चन्द्रोदरनभश्चरम् ॥
 निर्वास्यासौ स्थितः सार्धं तव स्वप्ना महाबलः ।

उपकारित्वमेतस्मात्सम्प्राप्तः स्वजनः स ते ॥' २२१

और रावण उसकी सलाह से प्रभावित होता हुआ अपना इरादा छोड़ देता है। वह पति को सर्वस्व समझती है और उसकी प्रसन्नता के लिए एकबारगी सीता के पास दूती बनकर भी जाती है, पति के आराम के लिए वह सापत्य भी भोजने को सहर्ष प्रस्तुत है।

वह अपने पति की प्राणस्वामिनी बल्लभा है और उसका पति पर प्रभाव है। जब रावण की उग्रता का वर्णन कर समस्त मन्त्री उसे समझाने में अपनी अक्षमता प्रकट करते हैं तो मन्दोदरी स्वयं रावण को धिक्कारती हुई 'कान्तासम्मित उपदेश' देती है जिसे रावण भी स्वीकार करता है, भले ही बाद में उसका मस्तिष्क और ही हो जाता है। उसे अपने रूप का अभिमान भी है। २२१

रावण की मृत्यु पर वह अत्यन्त दयनीय हो जाती है तथा मेषवाहन, इन्द्र-जित् एवं मय की दीक्षा पर कुररी के समान विनाप करने लगती है किन्तु शशिकान्ता आर्यिका के समझाने पर आर्यिका हो जाती है।

२२१. वही, १।३२-३८

२२२. सीता के अभिवापुः रावण का मन्दादरी की इस फटकार का वर्णन बड़ा मनो-वैज्ञानिक है।

'ऊचे मन्दोदरी साङ्गे तथा (सीता) रत्नमुख भवान् ।
 बाह्यपर्यय मे तामित्येव च यदतेऽप्य ॥
 हरयुक्तवैष्याभव आर्घं वहती विपुलेषणा ।
 कर्णोत्पलेन सोभाय्यमतिरेनमताडयत् ॥
 पुतरीप्या नियम्नान्तरेणाद 'बद मुन्दर ।
 कि माहात्म्यं त्वया तस्या दुष्टं तां मदभीक्ष्णसि ॥
 न सा युषवती ज्ञाता ललामा न च रूपतः ।
 कलात् न न निष्पाता न च चित्तापुर्ववती ॥

अम्बुनखा : चन्द्रनखा रावण की बहिन और खरदूषण की पत्नी है। सूर्यहास-लङ्घ-साधक अपने पुत्र शम्भूक को देखने की लालसा से वह उसके सिद्धिस्थल पर जाती है किन्तु उसे कटा हुआ देखकर स्तब्ध रह जाती है एवं विलाप करती है। अस्तु। इधर-उधर घूमती हुई वह राम लक्ष्मण में से अन्यतर को सम्भोग के लिए चाहती है किन्तु उसकी उपेक्षा हो जाती है। तब वह 'त्रियाचरित्र' दिखाती हुई स्वयं विरूपित होकर खर-दूषण से 'क्वाबला क्व बली पुमान् ?' कहकर लक्ष्मण की शिकायत करती है तथा युद्ध करवाती है। इस प्रकार वही सीताहरण की भी सूत्रधारिणी है। अस्त में वह भी दीक्षा लेती है। इस प्रकार वह एक पुंश्चली कुटिल एवं अन्त में जैनधर्मावलम्बिनी आधिका के रूप में हमारे समक्ष आती है।

लंका . पद्मपुराण में 'लकासुन्दरी' बज्जायुष की पुत्री है जो हनुमान् के द्वारा पिता की मृत्यु कर दिये पर उससे युद्ध करती है तथा बाद में उस पर आसक्त हो जाती है और विवाह कर लेती है। इस प्रकार वह वीरांगना और भावुक सिद्ध होती है।

ईदृश्यापि तया साक कान्त का ते रती मान् ।
 आत्मनो लाघव शुद्ध भवत्त नानुद्वयते ॥
 न कश्चित्सवयमात्मानं मसन्नाप्नोति शीरवम् ।
 गुणा हि गुणता यान्ति गुण्यमाना पगाननै ॥
 तदहं नो वशाम्भेव किं नु वेत्ति त्वमेव हि ।
 वराभ्या मीनया किं वा न धीरपि समेति मे ॥
 विजहीहि विभाज्यन्त सीतामगेमितान्ममम् ।
 माऽनुषमानं नोद्रे प्राप्तां नि परिहारके ॥
 मदेवशाकरां वाभन्त धूमगोचरिणीममाम् ।
 शिशुवैकुण्ठमुत्सृज्य काचमिच्छामि मन्दकम् ॥
 न दिव्य रूपमस्तस्या ज्ञायते मनसि स्थितम् ।
 इमां श्राप्यकाकारां नाथ कामयने कथम् ॥
 यथाममीक्षिताकल्पकल्पनाविबिधया ।
 भवामि कीदृशी कृहि जाये त्वाम्बलहारिणी ॥
 पद्यामया रतिः सद्य धीर्भवामि किमीश्वर ।
 शक्तोचनविश्रान्तभूमिः किं वा शची प्रभो ॥
 मकरध्वजचितस्थ बन्धनी रतिरेव वा ।
 साक्षाद्भवामि किं देव भवदिच्छानुचिन्ति ॥”

(पद्मपुराण ७३/६९-८०)

और भी देखिये—‘पद्मपुराण’ के ७३ वें पर्व के संख्या ८४ से ११६ तक के श्लोक ।

प्रासंगिक कथाओं के प्रधान पुरुष-पात्र

हनूमान् : हनूमान् पवनजय और अंजना के पुत्र हैं, जिनके गिरने से चट्टान चूर-चूर हो जाती है। उनका नाम श्रीशैल भी है। वे परम पराक्रमी, तरुण, वीर तथा न्याय के पक्षपाती हैं। रावण जैसा योद्धा उनका सम्मान करता है। वे बिलासी हैं और १८ हजार कुम रियो से विवाह करते हैं। वे बानरवंशी-विद्याधर हैं, बानर नहीं। वे मातृभक्त हैं और अपनी माता के अपमानकर्ता अपने नाना को धषित करते हैं। वे सफल दूत हैं, सीता की सुधि लाने में उनका प्रमुख हाथ है। वे निर्भीक हैं एवं रावण-मन्दोदरी को फटकारते हैं। वे राम की अनेक प्रकार की सहायता करते हैं तथा विशल्या को लाने के लिए तुरन्त लवणाकुश की तरफ से लाङ्गूलास्त्र लेकर राम की सेना से युद्ध करते हैं। वे बिबेकी जैन हैं और ज्योति-बिम्ब को अन्धकार में बिलीन होता हुआ देखकर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं।

बालि : बालि सुग्रीव का बड़ा भाई है। वह रावण से युद्ध करने को निधप्रयोजन जानकर दीक्षा लेकर तपस्या करता है। जब रावण कैलास उठाता है तो बालिमुनि अपने अँगूठे से पर्वत को दबाकर अपने बल की झलक और साथ ही क्षमाशीलता भी दिखाता है। उसने सुग्रीव को स्वेच्छा से राज्य दिया है।

सुग्रीव : सुग्रीव बालि का अनुज है। वह बालि के दीक्षा लेने पर उसी की इच्छा से सिंहासन पर बैठता है, साहसगति विद्याधर के द्वारा उपद्रुत होकर वह राम की सहायता लेता है और राम द्वारा उसके बध कर दिये जाने पर वह बिलासी बन जाता है किन्तु लक्ष्मण की प्रताड़ना पर पूरी शक्ति से वह राम की सहायता करता है। वह योद्धा है तथा अन्त में किष्किण्या पर्वत का राज्य करके अंगद को युवराज बना कर जिनदीक्षा ले लेता है।

अंगद : अंगद का कार्य राम की सेवा करना और रावण को अपमानित करना है। वह सुग्रीव का पुत्र है। वह योद्धा, साहसी, मुन्दर, प्रभावक और रसिक है। वह रावण की स्त्रियों की दुर्दशा करना है किन्तु रावण के विद्या सिद्ध कर लेने पर भाग खड़ा होता है, जिससे उसकी चतुरता भी सिद्ध होती है। सुग्रीव के दीक्षा लेने पर वह राजा होता है।

जनक : जनक सीता के पिता और राम के दसुर हैं। वे विभीषण से आतंकित होकर दशरथ के साथ कौतुल-मंगल नगर में भाग जाते हैं। उनके भामण्डल और सीता नामक दो सन्तान हैं। दशरथ जैसे प्रतापी राजा से उनका अच्छा परिचय है। स्नेच्छ सेना के विध्वंस पर राम के साथ सीता का वाग्दान करके वे अपनी कृतज्ञता का परिचय देते हैं। वे परम स्वाभिमानी एवं निर्भय वक्ता हैं; चन्द्रगति

विद्याधर से भूमिगोचरियों की निन्दा सुनकर वे करारा उत्तर देते हैं। वे अपने बन्धन के पक्के हैं और सीता-राम के विवाह पर शांति की साँस लेते हैं। कथा के अन्त में राम केवली सीतेन्द्र को बताते हैं कि जनक स्वर्ग प्राप्त कर चुके हैं।

जाम्बवान् : 'पद्मपुराण' में जाम्बवान् हनूमान् को लंका भेजने की राय देकर एक परामर्शदाता के रूप में चित्रित हुआ है।

जटायु : जटायु पूर्व जन्म में दण्डक राजा था। गुप्ति-सुगुप्ति नामक मुनियों से अपनी पूर्वजन्म-कथा सुनकर एवं धर्मोपदेश सुनकर वह सुन्दर रूप धारण कर लेता है। वह एक गिद्ध पक्षी ही है जो कि अब सीता-राम के साथ खेलता हुआ समय बिताता है। रावण द्वारा सीता हरण किये जाने पर वह अपनी चोंच से उसे धायल करके सीता-मुक्ति का असफल प्रयास करता है। अन्त में श्रीराम के द्वारा कर्ण-जाप किये जाने पर वह देव-पर्याय को प्राप्त हो जाता है। बाद में वह देव-शरीर से राम की सहायता करता है।

प्रासंगिक कथाओं के स्त्री-पात्र

सुतारा : 'पद्मपुराण' में सुतारा सुग्रीव की पत्नी है। जब विटसुग्रीव और असली सुग्रीव में युद्ध होता है तब बाली का पुनः चन्द्रशेखर उसकी रक्षा करता है। कपटी सुग्रीव जब उसे छीनने का प्रयत्न करता है तब बिचारी का कातरस्व सिद्ध होता है। उसे अपने पति के समस्त लक्षणों की पहचान है। राम द्वारा कपटी सुग्रीव के वध पर वह असली सुग्रीव के साथ मिहामन पर प्रविष्ट होती है।

पौराणिक महापुरुष-पात्र

नारद : 'पद्मपुराण' का नारद 'जल्पाकपथ-पंडित', 'सर्वशास्त्रार्थ-कोविद' और 'अनेकान्त-दिवाकर' है। वह ब्राह्मणों को शास्त्रार्थ में पराजित करता है और यज्ञ का विरोध करके जैन धर्म की उच्चता प्रतिपादित करता है। उसमें इधर-उधर लगाने की भी आवृत्ति है। राजा जनक और दशरथ को वह विभीषण के दूरादों से परिचिन कराता है और राज्य छान्ड़कर जाने के लिए कहता है। यद्यपि रावण के द्वारा वह उपकृत है तथापि उसकी निष्कण्टकता को सदेह में डाल देता है। सीता का विष भ्रामण्डल को दिखाकर उसे सीता के प्रति उत्सुक बनाता है और अपनी प्रतिशोध प्रवृत्ति का परिचय प्रस्तुत करता है। अपराजिता से मिलकर आकाश गति से लंका-वासी राम के पास जाकर उन्हें अयोध्या बुलवाता है। लवणांकुश के समक्ष राम की कथा सुनाकर उसका राम-लक्ष्मण से युद्ध करवा देता है। बेंबारे की दुर्गति के भी कुछ स्थल हैं यथा मरुत्वान् के यज्ञ में ब्राह्मणों

द्वारा उसे पीटा जाना एवम् सीता के महल में द्वारपालों द्वारा उसके पीछे हल्ला-मच्धाना एवम् हाथ-धोकर पड़ जाना आदि ।

‘पद्मपुराण’ के अन्य विशेष पात्र

‘पद्मपुराण’ में और भी कुछ विशेष चरित्र हैं—जिनमें ऋषभदेव के प्रतापी पुत्र भरत और बाहुबली, दशरथ की चौथी रानी सुमभा, लक्ष्मण की विशल्या, बनमाला, कल्याणमाला और जितपद्मा आदि अनेक पत्नियाँ, हनुमान् के माता-पिता अजना-पवनजय, सीता का भाई भामण्डल, राम का सेनापति कुतान्तबस्त्र, पुण्डरीकनगराधिपति वज्रजय और रत्नजटी आदि आते हैं। इनका मुख्य कथानक में कोई विशेष महत्त्व नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रविवर्षेण ने चरित्र-चित्रण में अपनी विचार-धारानुसार कौशल प्रदर्शित किया है। चरित्र-चित्रण के मूल-मन्त्र मनोविज्ञान का ज्ञान उसे है। अपने दृष्टिकोण के अनुसार उसने कुछ पात्रों को अधिक सुन्दरता के साथ चित्रित किया है। उसने लक्ष्मण, रावण, सीता, लवणांकुश, मन्दोदरी, लका-सुन्दरी और हनुमान् आदि का चरित्र बड़े मनोयोग और विस्तार के साथ चित्रित किया है। रावण की तो उसने काया-पण्ट ही कर दी है जिसका परिचय हम पीछे दे चुके हैं।

षष्ठ अध्याय

‘पद्मपुराण’ का भावपक्ष-निरूपण

काव्यानुशीलन के मौविध्य की दृष्टि से आलोचकों ने काव्य के दो पक्ष किये हैं—भावपक्ष और कलापक्ष। काव्य का यह पक्ष-विभाजन उपचार से ही स्वीकार किया जाना चाहिए। भावपक्ष के अन्तर्गत भावना, कल्पना और विचार पर विचार किया जाता है। भावना या रागतत्त्व के अन्तर्गत रसादि (हृदय-पक्ष) पर विचार होता है, कल्पना के अन्तर्गत प्रतिभा पर और विचार के अन्तर्गत—कवि की विचारधारा (मस्तिष्क-पक्ष) पर। यहाँ हम ‘पद्मपुराण’ की इसी दृष्टि से समीक्षा करेंगे।

‘पद्मपुराण’ में रस-व्यंजना

‘पद्मपुराण’ का अंगी-रस शास्त्र है जिसके प्रधान अंग हैं—शृंगार, वीर, रौद्र और करुण। अतः एव यहाँ इन रसों की अभिव्यक्ति सर्वाधिक हुई है जब कि अन्य रसों की अपेक्षाकृत कम। इन रसों की अभिव्यक्ति करते समय कवि ने बड़े स्वाभाविक और मनोहारी वर्णन किये हैं जिनकी विषय सूची हम सप्तम अध्याय में ‘वर्णन’ जीर्णक के अन्तर्गत देंगे। यहाँ हम ‘पद्मपुराण’ में रसाभिव्यक्ति पर विचार करेंगे।

सम्भोग-शृङ्गार : सम्भोग शृङ्गार की कोई इयत्ता नहीं है, अतः एव इस का एक भेद कहा गया है। जितनी बार प्रेमी मिलते हैं, एक नया रूप होता है, क्षण-क्षण में संयोगी को नवीनता की उपलब्धि होती रहती है, फिर भलो उसका वर्णन-करण कैसे किया जाय ? इसलिए आचार्य विश्वनाथ ने कहा है—

“संख्यातुमशक्यतया भुम्बनपरिरम्भणादिबहुभेदात् ।

अयमेक एव धीरः कथितः सम्भोगशृङ्गारः ॥

तत्र स्यादुत्पट्कं चन्द्रादित्यौ तथोदयास्तमयः ।

जलकेलिवनविहारप्रभातमधुपानयामिनीप्रभृतिः ।

अनुलेपनभूषाद्या वाक्यं शुचि मेध्यमन्यच्च ॥^{२२३}

और इसीलिए भरत मुनि ने भी कहा है—“यत्किञ्चित्लोके शुचि मेध्यमुज्ज्वल दर्शनीयं वा तत्सर्वं शृंगारेणोपमीयते ।” फिर भी पूर्वरागादि विरहभेदों के अनन्तर होने के कारण इसे ‘पूर्वरागानन्तर सम्भोग’ आदि नाम दिये जा सकते हैं ।

‘पद्मपुराण’ में उपर्युक्त सभी और ‘अन्यच्च’ के भी यथास्थान प्रभूत उदाहरण उपलब्ध होते हैं, यथा—(१) महारक्ष की उद्यान केलि, (२) तडित्केश का सुन्दरियों के साथ विलास, (३) मन्दोदरी के साथ रावण की केलि, (४) छ. सहस्र कुमारियों के साथ रावण की जलकेलि, (५) सहस्ररश्मि की जलकेलि, (६) पवनञ्जय-अञ्जना-सम्भोग, (७) सीता-राम की वनक्रीड़ा, (८) अनेक स्त्रियों के नखशिख-सौन्दर्य तथा (९) सुन्दर युवा के दर्शन की दीवानी नारियों के वर्णन आदि^{२२४} । यहाँ एक उदाहरण प्रस्तुत है—

गलतफहमी के बाद दिल साफ होने पर पवनजय-अञ्जना के प्रथम रात्रि-मिलन का वर्णन करना हुआ कवि कह रहा है—

“आश्लिष्टा दयितास्यासौ तथा गात्रेष्वलीयत ।

पुनर्वियोगभीतेव गतान्तविग्रह यथा ॥

आलिंगनविमुक्तायास्तस्याः स्तिमितलोचनम् ।

मुख मुक्तनिमेषाभ्यां लोचनाभ्या पपौ प्रियः ॥

पादयोः करयोन्यां स्तनयोश्चिबबुकेऽलिके ।

गण्डयोर्नेत्रयोश्चास्याश्चुम्बन मदनातुरः ॥

पुनः पुनश्चकारासौ स्वेदिना पाणिना स्पृशन् ।

आप्तसेवा हि सा नून क्रियते वक्त्रचुम्बने ॥

ततः प्रबुद्धराजीवगर्भच्छदसमप्रभम् ।

न पपावन्नरं तस्या विमुञ्चन्तमिवामृतम् ॥

२२३. ‘साहित्य-वर्णन’ ३।२११-२१२ ।

२२४. वे० ‘पद्मपुराण’ ५।२९७-३०४, ६।२२७-२३५, ८।८४-८९, ८।९५-११०, १।०१ ६५-८६; १६।१७९-२१३, ३९।३३-३५, ७३।१५८-१७७, ३।३३१-३३५; ८।५७-७२; ८।३२१-३२३, ८।५२३-५२७; १२।९७ १११, १४।१३७-१४६; १५।१६-२१, १५।१४०-१४६; १९।१०८-१०९, १९।१२२-१४४, २१।३२-३५; २४।५-२३, ३४।३-७; ३४।४८-५६; २६।१६५-१७१; ३९।५४-५६ आदि अन्य अनेक स्थान ।

नीवीविमोचनव्यग्रपाणिमस्य प्रपावती ।
रोद्धुमैच्छन् सा शक्ता पाणिना वेपथुञ्जिता ॥

अथ केनापि वेगेन परायत्तीकृतात्मना ।
गृहीता दयिना गाढ पवनेनाञ्जकोमला ॥
यथा ब्रवीति वैदग्ध्यं यथाज्ञापयति स्मरः ।
अनुरागो यथा शिक्षां प्रयच्छति महोदयः ॥
तथा तयो रतिः प्राप्ता दम्पत्योर्बुद्धिमुत्तमाम् ।
काले तत्र हि यो भावो नैवाख्यातुं स पायंते ॥

तिष्ठ मुञ्च गृह्णाणेति नानाशब्दसमाकुलम् ।
तयोर्युद्धमिवोदार रतमासीत्सविभ्रमम् ॥
अधरग्रहणे तस्याः पुरसीत्कारपूर्वकम् ।
प्रविधूतः करो रेजे लताया इव पल्लवः ॥
प्रियवत्ता नखास्तम्या नखाद्धा जघने बभूव ।
वैडूर्यजगतीभागे पद्मगायोद्गमा इव ॥

प्रियमुक्ता तनुस्तस्या ऊहे कान्तिमनुत्तमाम् ।
कनकाद्रितटाक्षिलष्टघनपक्तिकृतोपमाम् ॥^{१२२५}

इसी प्रकार आगे भी 'सुरतोत्सव' का पूरा व्यौरा दिया गया है जिसे स्थानानुरोध से पूर्ण रूप से प्रस्तुत नहीं किया जा सकता ।

वियोग-शृङ्गार

'वियोग-शृङ्गार' के चार भेद माने गये हैं—(१) पूर्वराग, (२) मान, (३) प्रवास तथा (४) करुण । इनमें 'करुण-विप्रलम्भ' को छोड़कर शेष सभी वियोग के भेदों के 'पद्मपुराण' में उदाहरण आये हैं यथा—(१) हरिषेण की बिरहावस्था, (२) पवनञ्ज-अञ्जना-विरह, (३) रावण-विरह, (४) राम-विरह, (५) सीता-विरह तथा (६) वनमाला कल्याणमाला आदि के वियोग^{२२६} ।

२२५. पद्मपुराण १६।१८६-२०२ ।

२२६. देखिए—पद्मपुराण ८।३०८-३१५, १५।९५-१००, १०२-११०; १८।३३-४७; २८।२२-६७; ४६।१०७-११२, ४८।२-२२, ५२।४२-५५; १६।२-२४; ८४-८६, १६६-१७२; ५४।१७-२२ आदि ।

उदाहरण के लिए ‘राम-वियोग’ का कुछ अंश प्रस्तुत है—

जिस प्रकार मुनि मुक्ति का ध्यान करते हैं, उसी प्रकार विरही राम-सीता का अनन्य ध्यान करते रहते हैं, पक्षियों से उसी के विषय में प्रश्न करते हैं तथा समस्त जगत् का प्रियामय ही देखते हैं—

“अनन्यमानसोऽसौ हि मुक्तनिःशेषचेष्टितः ।
 सीतां मुनिरिव ध्यायन् सिद्धिमास्थान्महादरः ॥
 न शृणोति ध्वनिं किञ्चिद् रूपं पश्यति नावरम् ।
 जानकीमयमेवास्य सर्वं प्रत्यवभासते ॥
 न करोति कथामग्यां कुरते जानकीकथाम् ।
 अयामपि च पार्श्वस्थां जानकीत्यभिभाषते ॥
 वायस पृच्छति प्रीत्या गिरिव कलनादया ।
 ‘स्नाभ्यता विपुल देवं दृष्ट्वा स्यान्मैथिली क्वचित्’ ॥
 सरस्युन्निरुपद्रमादिकिञ्जल्कालङ्कृताम्भसि ।
 चक्राह्वमिधुनं दृष्ट्वा किञ्चित्सञ्चिन्त्य कुप्यति ॥
 सीताशरीरसम्पर्कशङ्कया बहुमानवत् ।
 निमील्य लोचने किञ्चित्समालिङ्गति मारुतम् ॥
 एतस्यां सा निषण्णेति वसुधां बहु मन्यते ।
 जुगुप्सितस्तया नूनमिति चन्द्रमुदीक्षते ॥
 अचिन्तयच्च ‘किं सीता मद्वियोगाग्निदीपिता ।
 तामवस्थां भवेत्प्राप्ता स्यादस्या यापदैपिणाम् ॥
 किमिय जानकी नैषा सता मन्दानिलरता ।
 किमशुकमिदं नैतच्चलपत्रकदम्बकम् ॥
 एते किं लोचने तस्या नैते पुष्पे सपट्पदे ।
 करोज्यं किं चलस्तस्या नायं प्रत्यग्रपत्नवः ॥” २२७

इसी प्रकार आगे वे सीता के अग-प्रत्यगो का प्रकृति में कथञ्चित् पृथक्-पृथक् साक्षात्कार कर लेते हैं किन्तु एक साथ सामुदायिक रूप में उसकी शोभा नहीं पाते—

“शोभा तु समुदायस्य तस्याः पश्यामि न क्वचित् ॥” २२८

हास्य : यद्यपि ‘पद्मपुराण’ में ‘हास्य’-रस की अधिक अभिव्यक्ति नहीं है

तथापि म्यारहवें पर्व में नारद की ब्राह्मणों द्वारा पिटाई के अवसर पर 'हास्य' की झलक मिल आती है।

करुण : 'पद्मपुराण' में 'करुण' रस के अनेक उदाहरण मिलते हैं। क्योंकि कवि संसार की असारता दिखाकर दीक्षा का पक्षधर है, अतः वैभव और उसका नाश दिखाकर बहु भान्त-रस के प्रति पाठक को प्रेरित करता है। इसी कारण वैभव और इष्ट के नाश पर यह 'करुण'-रस स्थान-स्थान पर अभिव्यक्त हुआ है। 'पद्मपुराण' में अनेक व्यक्तियों के नाश पर कारुणिक विलाप आये हैं जिनमें मुख्य ये हैं—(१) चन्द्रनखा-विलाप, (२) लक्ष्मण की शक्ति तथा मृत्यु पर राम के विलाप, (३) रावण की मृत्यु पर विभीषण का विलाप, (४) सीता त्याग पर राम का विलाप, (५) भाई अन्धक के लिए किष्किन्ध का विलाप आदि^{२२९}। इसी प्रकार राजाओं के दीक्षा लेते समय अन्त-पुर तथा परिजनों के दृश्य भी परम कारुणिक हैं। इन सभी से रविवेण की करुण-रस-व्यंजना का वैभव प्रमाणित होता है।

उदाहरणार्थ—“रावणवध पर उसके सम्बन्धियों का दृश्य तथा 'लक्ष्मणवध पर राम की दशा' के कुछ अंश प्रस्तुत हैं—

“सोदरं पतितं दृष्ट्वा महादुःखसमन्वितः ।
क्षुरिकायां करं जके स्ववधाय विभीषणः ॥
वारयन्ती वधं तस्य निश्चेष्टीकृतविग्रहा ।
मूर्च्छां कालं कियन्तचिच्चकारोपकृतिं पराम् ॥
लब्धमंशो जिघांशुः स्व तापं दुःसहमुद्वहन् ।
रामेण विधुतः कृच्छ्रदुःस्तीर्य निजतो रथात् ॥
त्यक्तास्त्रकयचो भूम्या पुनर्मूर्च्छामुपागतः ।
प्रतिबुद्धः पुनश्चक्रे विलापं करुणाकरम् ॥

• • •
एतस्मिन्नन्तरे ज्ञातदशानननिपातनम् ।
क्षुब्धमन्तःपुरं शोकमहाकल्लोलसकुलम् ॥
सर्वाश्च वनिता बाष्पधारासिक्तमहीतलाः ।
रणक्षोणी समाजग्मुर्मुहुः प्रस्खलितक्रमाः ॥

^{२२९} 'पद्मपुराण' ६।४७१-४७८, ४०।७६-८७, ६३।३-२०, ७७।४-२, ९९।५९-८१; ११।८८-१०३; १०३।४८-५४; ११६।१२-४४, ४९।१४-१६, ६४।७-१३; ७७।२२-४३ आदि।

तं ब्रूडामणिसंकाशं क्षितेरालोक्य सुन्दरम् ।
निश्चेतनं पतिं नार्यो निपेतुरतिवेगतः ॥

० ० ०
काश्चिन्मोहं गताः सत्यः सिकताश्चन्दनवारिणा ।
समुत्प्लुतमृणालानां पविमनीनां श्रियं दधुः ।
आश्लिष्टदमिताः काश्चिद् गाढं मूर्च्छामुपागताः ।

० ० ०
निर्व्यूढमूर्च्छनाः काश्चिदुरस्ताडनचञ्चलाः ॥^{१२१०}

इसी प्रकार मृत लक्ष्मण को लिए हुए, राम की चेष्टाएँ भी मार्मिक हैं—

“स्वरूपमदुः सदगन्धं स्वभावेन हरेर्बन्धु ।
जीवेनापि परित्यक्तं न पद्माभस्तदाऽत्यजत् ॥
आलिंगति निधायके माण्डि जिघ्रति निक्षति ।
निषीदति समाधाय सस्पृहं भुजपञ्जरे ॥
अवाप्नोति न विश्वासं क्षणमप्यस्य मोचने ।
बालोऽमृतफलं यद्वत् स तं मेने महाप्रियम् ॥
विललाप च हा म्यातः किमिदं युक्तमीदृशम् ?
यत्परित्यज्य मां गन्तुं मतिरेकाकिना कृता ॥

० ० ०
शय्या व्यरचयत् क्षिप्रं कृत्वा विष्णु भुजातरे ।

व्यापारान्तरनिर्मुक्तः स्वप्नुं रामः प्रचक्रमे ॥^{१२११}

यहाँ केवल सकेत ही दिये गये हैं, करुण-रस की पुष्कल सामग्री तो ग्रन्थ को देखने पर ही, वास्तविक रूप में, हृदयगोचर होती है ।

रौद्र : ‘पद्मपुराण’ में अनेक यूद्धों का वर्णन है जहाँ ‘वीर’-रस के साथ ही प्रायः ‘रौद्र’-रस की भी अभिव्यञ्जना हुई हैं । इसके अतिरिक्त कर्णकुण्डननगर में हुए मुनि के क्रोध तथा अन्य कुछ स्थलों पर ‘रौद्र’ के उदाहरण मिलते हैं ।^{१२१२} यहाँ राम के क्रोध का एक चित्र प्रस्तुत है :

“अवेक्षाञ्चक्रिरे तस्य वदनेऽव्यक्तसौम्यके ।

अकुटीजालकं भीमं मृत्योरिव लतागृहम् ॥

१२१०. पद्मपुराण ७७।१-१९, और भी आगे देखिए ।

१२११. पद्मपुराण ११६।२-२० और भी आगे देखिए ।

१२१२. पद्मपुराण ४१।८४-९१; ६।२४५-२४८ ।

लङ्कायां तेन विन्यस्तां दृष्टिं शोणस्फुरत्स्वपम् ।
 केतुरेस्तामिबोद्यातां राक्षसक्षयसञ्चिनीम् ॥
 तामेव च पुनर्यस्तां चिरमध्यस्थतां गते ।
 दृष्टस्यास्मि निजे चापे कृतान्तभ्रूततोपमे ॥
 कोपकम्पदलप चास्य केशभारं स्फुरद्युतिम् ।
 निधानमिव कालस्य निरोद्धुं तमसा जगत् ॥
 तथाविध च तद्वक्त्र ज्योतिर्वलयमध्यगम् ।
 जरटीभवदुत्पानप्रभाभस्करसन्निभम् ॥
 गृहीतगमनक्षयेड रक्षसां नाशनायतम् ।
 दृष्ट्वा ते गमने सज्जा जाता सम्भ्रान्तमानसाः ॥''२३३

वीर : 'पद्मपुराण' में वीर के १. दानवीर, २. धर्मवीर, ३. दयावीर एवं ४. युद्ध-वीर—चारों के रूप मिलते हैं। दानवीर दशरथ, धर्मवीर राम-लक्ष्मण (जिन्होंने मुनियों के अनेक उपसर्ग दूर किये), दयावीर रावण (जब कि लक्ष्मण को देखने के लिए वह राम को अनुमत करता है) तथा युद्धवीर अनेक राजा और राजकुमार इनके उदाहरण हैं। सर्वाधिक 'युद्धवीर' की अभिव्यक्ति है क्योंकि 'पद्मपुराण' में युद्ध के पर्याप्त चित्रण है यथा—१. भरत-बाहुबलियुद्ध, २. किष्किन्ध-अन्धक की क्षुब्ध बानर सेना, ३. बानर-विद्याधर-युद्ध, ४. इन्द्र विद्याधर और मानी का युद्ध ५. वैश्रवण-रावण-युद्ध ६. सहस्ररश्मि-रावण-युद्ध, ७. इन्द्र-रावण युद्ध, ८. रावण और वरुण की सेना का युद्ध, ९. दशरथ का केकया के स्वयंवर में राजाओं से युद्ध, १०. राम-लक्ष्मण का म्लेच्छों से युद्ध, ११. रावण-राम-युद्धभूमि में अनेक राजाओं के युद्ध, १२. महेन्द्र-हनुमान्-युद्ध १३. लक्ष्मण-रावण-युद्ध, १४. शत्रुघ्न-मधु युद्ध, १५. लवणाकुश-पृथु युद्ध, १६. लवणाकुश रावण-युद्ध आदि।

इन युद्धों के वर्णन में कवि ने रणशीण्ड वीरो की चेष्टाओं से वीर रस की अजस्र धाराएँ प्रवाहित की हैं। लवणाकुश राम-युद्ध का एक अंश प्रस्तुत है जिसमें युद्धवीर मर जाना अच्छा समझते हैं किन्तु पीठ दिखाना नहीं—

“आपातमात्रकेर्णव रामदेवस्य सद्भवजम् ।
 अर्नगलवणश्चाय निचकत्तं कृतायुधः ॥

महाह्वो यथा जातः पद्मस्य लवणस्य च ।
 अनुक्रमेण तेनैव लक्ष्मणस्याकुशस्य च ॥

एवं द्वन्द्वमभूद् युद्धं स्वामिरागमुपेयुषाम् ।
 सामन्तानामपि स्व-स्व-वीर-शोभाभिलाषिणाम् ॥
 अश्ववृन्दं क्वचित्तुङ्गं तरङ्गकृततरङ्गणम् ।
 निरुद्धपरचक्रेण घनं चक्रे रणाङ्गणम् ॥
 क्वचिद्विच्छिन्नसन्नाहं प्रतिपक्षं पुरःस्थितम् ।
 निरीक्ष्य रणकण्डूलो निदधे मुक्तामन्यतः ॥
 केचिन्नाथं समुत्सृज्य प्रविष्टाः परवाहिनीम् ।
 स्वामिनाम समुच्चार्य निजघ्नुरभिलक्षितम् ॥
 अनादुतनराः केचिद् गर्वशौण्डा महाभटाः ।
 प्रक्षरद्गन्धाराणां करिणामरितामिताः ॥
 दन्तशय्यां समाश्रित्य कश्चित्समददन्तिनः ।
 रणनिद्रामुखं लेभे परम भटसत्तमः ॥
 कश्चिदभ्यायतोऽश्वस्य भग्नशस्त्रो महाभटः ।
 अदत्त्वा पदवी प्राणान् ददौ सकरताडनम् ॥
 प्रच्युत प्रथमाघाताद् भट कश्चित्त्वपान्वितः ।
 भणन्तमपि नो भूयः प्रजहार महामनाः ॥
 च्युतशस्त्रं क्वचिद् वीक्ष्य भटमच्युतमानसः ।
 शस्त्रं दूरं परित्यज्य बाहुभ्यां योद्धुमुद्यतः ॥
 दातारोऽपि प्रविख्याताः सदा समरवर्तिनः ।
 प्राणानपि ददुर्वीरा न पुन पृष्ठदर्शनम् ॥”^{२४४}

यहाँ एक नहीं—सभी समरक्षीब वीरता के पुतले दिखाई देते हैं। युद्धों के वर्णन में उभयपक्ष की वीरता के अनुपम नमूने रचिषेण ने प्रस्तुत किये हैं।

भयानक : ‘पद्मपुराण’ में भयानक रस की भी अभिव्यक्ति अनेक स्थलों पर हुई है यथा—१. तपस्या करने हुए रावणादि का उपसर्ग, २. देसभूषण-कुलभूषण-मुनि-उपसर्ग, ३. अञ्जना के वन-भ्रमण के समय सिंह का वर्णन, ४. सहदेवी-व्याघ्री-वर्णन, ५. रमेशान-वर्णन, ६. डाकिनी-वर्णन तथा ७. नरक-वर्णन आदि ।^{२४५} रावण का ‘कैलासकम्पन’ भी भयानक रस का सञ्चार करता है, यथा—

“ततो विषकणक्षेपिलम्बमानोरगाधरः ।
 केसरिक्रमसम्प्राप्तभ्रश्यन्मतमतगजः ॥

२३४. पद्मपुराण १०२।१७७-१९३

२३५. पद्मपुराण ६।३०६-३११, २२।६७-७१, २२।८५-९०, १७।२३४-२३८; ३३।९५-९९; १०६।११६-१३८; १०९।९३-९५; १२३।१-११ आदि स्थल देखिए।

सम्भ्रातृनिश्चलौत्कर्णसारंगककदम्बकः ।
 स्फुटितोद्देशनिष्पीतश्रुटिताखिलनिर्भरः ॥
 पर्यस्यदुद्धतारावमहानोकहसंहतिः ।
 स्फुटीकृतशिलाजालसन्धिषाब्दैः सुदुःस्वरः ॥
 पतद्विकटपाषाणरषापूरितविष्टपः ।
 चलितश्चालयन् शोणी भृशं कैलासपर्वतः ॥
 स्फुटितावनिपीताम्बुः प्राप शोषं नदीपतिः ।
 ऊहुः स्वच्छतया मुक्ता विपरीतं समुद्रगाः ॥
 अस्ता व्यलोकयन्नाशाः प्रमथाः पृथुविस्मयाः ।
 किं किमेतदद्गो-हा-हा-हुं-हीति प्रसृतस्वराः ॥
 जह्नु रसरमो भीता लताप्रवरमण्डपम् ।
 वयसां निवहा प्राप्ताः कृतकीनाह्वला नभः ॥
 पातालादुत्थितैः क्रूरैरदृढहासैरनन्तरैः ।
 दशवक्त्रैः समं दिग्भिः पुस्फोटैश्च नभस्तलम् ॥''^{२३६}

यहाँ 'हा-हा-हुं-ही' से ऐसा लगता है मानों भय के कारण 'हाय-हाय' मची हुई हो। इसी प्रकार अन्य वर्णन भी लिये जा सकते हैं यथा कविल ब्राह्मण के आगे सर्पादि का वर्णन ।^{२३७}

बीभत्स : 'पद्मपुराण' में 'बीभत्स' रस के स्थल हैं—युद्ध के बाद युद्धस्थल की बीभत्सता के वर्णन, नरक तथा दमनान आदि के वर्णन । एक उदाहरण प्रस्तुत है—
 खरदूषण-लक्ष्मण-युद्ध के अनन्तर युद्धस्थल की बीभत्सता का दृश्य प्रस्तुत करता हुआ कवि कहता है—

"तत्राद्राक्षीदस्थान् भस्मान् गजावक् गजजीवितान् ।
 सामन्तानश्चमयुक्तान् निभिन्नच्छिन्नविग्रहान् ॥
 दह्यमानान्पुण्ड्रान् काश्चिन् काश्चिन्निश्चसितास्तथा ।
 क्रियमाणानुमरणान् कान्ताभिरपरान् भटान् ॥
 बिच्छिन्नाध्वंभुजान् काश्चिन् काश्चिदधोर्वजितान् ।
 निम्नतान्त्रयान् काश्चित्काश्चिद्दलितमस्तकान् ॥
 गोमायुप्रावृत्तान् काश्चित् खगैः काश्चिन्निषेवितान् ।
 एतान् परिवर्णेन काश्चिच्छादितविग्रहान् ॥''^{२३८}

^{२३६} पद्मपुराण ९।१३७-१४४

^{२३७} पद्मपुराण ३५।१३०

^{२३८} वही ४७।२-५

अद्भुत : ‘पद्मपुराण’ में ‘अद्भुत’ रस के लिए भी पर्याप्त अवकाश है। अनेक विद्याधरों की आकाशमार्ग से की गयी यात्राओं में, मायायुद्धों में, माया से उत्पादित दुर्ग आदि के वर्णनों में, जैन धर्म के अंगीकरण से समुपलब्ध सम्पदाओं के वर्णनों में तथा जिनेन्द्र के अभिषेकादि के वर्णनों में—‘अद्भुत-रस’ की अभिव्यक्ति हुई है। इसी प्रकार सीता की अग्नि-परीक्षा के समय अग्नि का जल-रूप में परिवर्तित हो जाना ‘अद्भुत’ रस का सञ्चार करता है, यथा—

“अभिघातेति सा देवि प्रविवेशानलं च तम् ।
जातं च स्फटिकस्वच्छं सलिलं सुखशीतलम् ॥
भित्त्वेव सहसा क्षोणीं तरसा पयसोद्यता ।
परमं पूरिता वापी रंगद्भृंगकुलाऽभवत् ॥

उत्तस्थावथ मध्येऽस्या विपुल विमलं शुभम् ।
सहस्रच्छदनं पद्मविकचं विकटं मृदु ॥”^{२३९}

इसी प्रकार बालि के प्रभाव से रावण का विमान टकना आदि अनेक ‘अद्भुत-रस’ के निदर्शन उपलब्ध होते हैं।

शान्त : यह हमने प्रारम्भ में ही कह दिया है कि ‘पद्मपुराण’ का अंगी रस ‘शान्त’ है। सभी पात्रों ने अन्ततोगत्वा दीक्षा धारण कर ली है। अनेक मुनियों के उपदेशों में शान्त रस की अभिव्यक्ति हुई है। इसी प्रकार जब कोई पात्र नर्तकी की मृत्यु अथवा कलम-वन-संकोच अथवा गरदमेघ-विलय अथवा राहुग्रस्तसूर्य अथवा पलिनाकुर अथवा वृद्धावस्था अथवा बिजली का विनय आदि^{२४०} देखकर संसार की असारता पर विचार करता है तथा उसके मन में वैराग्य की भावना आती है तो शान्त रस की अभिव्यक्ति हुई है। एक उदाहरण प्रस्तुत है :—

“अथोपरि विमानस्य निषण्णः शिखरान्तिके ।
प्राग्भारचन्द्रशालायाः कैलासाधित्यकोपमे ॥
ज्योतिष्पथात्समुत्तुंगारूपतत्प्रस्फुरितप्रभम् ।
ज्योतिर्बिम्बं मरुत्सूनुरालोकत तमोऽभवत् ॥
अचिन्तयच्च हा कष्टं संसारे नास्ति तत्पदम् ।
यत्र न क्रीडति स्वेच्छं मृत्युः सुरगणेष्वपि ॥

^{२३९} पद्मपुराण १०।५।२९-४८

^{२४०} पद्मपुराण ३।२६७; ५।३०५; ६।५०२; २१।३०; २१।१४६; २१।१४६;

२२।१०६; २१।७२; ११।७६-७७ आदि ।

तडिदुस्कातरंगातिभंगुरं जन्म सर्वतः ।
 देवानामपि यत्र स्यात् प्राणिनां तत्र का कथा ॥
 अनन्तशो न भुक्तं यत्संसारे चेतनावता ।
 न तदास्ति सुखं नाम दुःखं वा भुवनत्रये ॥
 अहो मोहस्य माहात्म्यं परमेतद्बलान्वितम् ।
 एतावन्तं यतः कालं दुःखपर्यटितं भवेत् ॥

तदल निन्दितैरेभिर्भोगैः परमदाहणैः ।
 विप्रयोगः सहामीभिरवश्यं येन जायते ॥

आसीन्निरर्थकतमो घिगतीतकालो
 वीर्यं सुखार्णवजले पतितस्य निन्द्ये ।

आत्मानमद्य भवपञ्जरसन्निरुद्धं
 मोक्षामि नन्धशुभमार्गमतिप्रकाशः ॥^{२४१}

भक्ति : रविषेण जैन थे । 'जिनभक्ति' उनकी दृष्टि में सर्वोच्च की । फिर भला 'भक्ति रस' के अवसर वे अपने 'पद्मपुराण' क्यों न निकालते ? इसीलिए उन्होंने स्थान-स्थान पर जिनेन्द्र पूजा कराई है । इन्द्र, राम, सुग्रीव तथा रावण आदि अनेक पात्रों के द्वारा जिन-पूजा एवं अनेक पात्रों द्वारा जिनेन्द्र देव की स्तुति के समय 'भक्ति रस' के उदाहरण मिलते हैं ।^{२४२} एक उदाहरण प्रस्तुत है । जिसमें रावण अपनी नस की बीणा बजाकर भगवान् जिनेन्द्र देव की स्तुति करता है :—

"निष्कृष्य च स्नसातग्रीं भुजे बीणामवीवदत् ।
 भक्तिनिर्भरभावश्च जगौ स्तुतिशतैर्जिनम् ॥
 नमस्ते देवदेवाय लोकालोकावलोकिते ।
 तेजसातीतलोकाय कृतार्थाय महात्मने ॥
 त्रिलोककृतपूजाय नष्टमोहमहारये ।
 वाणीशोचरनमृक्तगुणसघातधारिणे ॥
 महेश्वर्यसमेताय विमुक्तिपथदेशिने ।
 सुखकाण्डासमृद्धाय दूरीभूतकुबस्तवे ॥"^{२४३}

२४१. पद्मपुराण ११२।३६-९८ ।

२४२. वे० पद्म० २।१२७; ३।२०२; ३।२३७; ३।२४९; ५।१४३; ९।१७-१९।
 १७।२८१-२८२; २८।१११-११२; ३२।१३६; ४८।२००-२१३; ८०।१४-२४ ।

२४३. वही, ९।१७७-१७९ और भी आगे वक्षिण ।

वात्सल्यः वात्सल्य रस के स्थान—रामलक्ष्मण की बाल-लीला, लवणा-कुल-क्रीडा, पवनजय-प्रसंग तथा विदेहा-प्रसंग आदि हैं जिनमें इसके संयोग और वियोग दोनों रूप अभिव्यक्त हुए हैं। उदाहरणार्थ लवणाकुल की बाललीला का प्रसंग लिया जा सकता है :—

(संयोग) “ततः क्रमेण तौ वृद्धिं बालकौ व्रजतस्तदा ।
जननीहृदयानन्दौ प्रवीरपुरुषाङ्कुरौ ।
रक्षार्थं सधंपकणा बिन्यस्ता मस्तके तयोः ।
समुन्मिषत्प्रतापान्नि-स्फुलिया इव रेजिरे ॥
बपुर्गोरोचनापङ्कजिजरे परिवारितम् ।
समभिव्यज्यमानेन सहजेनेव तेजसा ॥
विकटा हाटकावद्धवैयाघ्रनखपक्तिका ।
रेजे दर्पाङ्कुरालीव समुद्भेदमिता हृदि ॥
अद्य जल्पितमव्यक्तं सर्वलोकमनोहरम् ।
बभूव जन्मपुण्याहः सत्यग्रहणसन्निभम् ॥
मुग्धस्मितानि रम्याणि कुसुमानीव सर्वतः ।
हृदयानि समाकर्पन् कुलानीव मधुघृतान् ॥
जननीक्षीरसेकोत्थविलासहसितैरिव ।
जातं दशनकैर्वक्त्रपद्मक लब्धमण्डनम् ॥
धानीकरागुलीनगनी पञ्चषाणि पदानि तौ ।
एवंभूतौ प्रयच्छन्तौ मनः कस्य न जहत्तु ॥
पुत्रकौ तादृशौ वीक्ष्य चारुकीडनकारिणौ ।
शोकहेतु विमरुमार समस्तं जनकात्मजा ॥” २४४

(वियोग) केतुमती अपने दूरगत पुत्र के विषय में बिनाप कर रही है :—

“हा वत्स, विनयाघार, गुरुपूजनतत्पर ।
जगत्सुन्दर, विरुधातमुण, बवासि गतो मम ॥
भवदुःखान्निसन्तप्तां मातर भ्रातृवत्सल ।
प्रतिवाक्यप्रदानेन कुरु शोकविवर्जिताम् ॥” २४५

‘रस्यते आस्वाद्यते’ इस व्युत्पत्ति के अनुसार भाव, रसाभास, भावाभास, भावोदय, भावसन्धि, भावशबलता तथा भावशान्ति भी रसादि में परिगणित होते हैं। ‘भाव’ के तो उदाहरण ‘भक्ति भावना’ के अन्तर्गत देखे जा सकते हैं, शेष के

उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

रसाभास : नलकुंवर की पत्नी उपरम्भा के रावण के प्रति अनुराग, सीता के विरह में रावण की दशा, सीता-विरह में भामण्डल की अवस्था तथा अन्य अनेक छोटे-मोटे प्रसंगों में रसाभास के दर्शन होते हैं; यथा चित्तोत्सवा आदि के प्रसङ्ग । यहाँ 'परवनिता सीता में आसक्त' रावण की विरहावस्था का प्रसंग प्रस्तुत है—

“ततो मदनदीप्ताग्निज्वालालीढः समन्ततः ।

आर्तो व्यचिन्तयद् भूरि मग्नोऽसौ व्यसनार्णवे ॥

शोचत्युग्मुक्तदीर्घोष्णनिःश्वासानिलसन्ततिः ।

शुष्यः मुखः पुनः किञ्चिद्गायत्यविदिताक्षरम् ॥

स्मरप्रानेय-निर्दग्धं धुनाति मुखपंकजम् ।

मुहुः किमपि सञ्चिन्त्य स्मरते क्षणनिश्चलः ॥

अनुबन्धमहादाहान् समस्तावयवानलम् ।

क्षिपत्यविरतं भूमी कुट्टिमयां विवर्तकः ॥

उत्तिष्ठति पुनः शून्यः सेवते निजमासनम् ।

निःकामति पुनर्दृष्ट्वा जन प्रति निवर्तते ॥

नागेन्द्र इव हस्तेन सर्वदिग्मुखगामिना ।

आस्फालयति निःशरः कुट्टिम कम्पमानयन् ॥

स्मरन् सीता मनोयातामात्मान पौरुष विधिम् ।

निरपेक्षमुपालब्धुं साश्रुनेत्रः प्रवर्तते ॥

किञ्चिदाह्वयते दत्तद्वन्द्वारश्चातिकर्जनीः ।

तूष्णीमास्ते पुनः किं किमिति शून्य प्रभाषते ॥

सीता सीनेति कुरवास्यमुत्तान भाषते मुहुः ।

निष्ठत्यवाद्रमुखं भूयो नखेन विलिखन् महोम् ॥

करेण हृदयं माष्टिं बाहुमूर्धनमीक्षते ।

पुनर्मुञ्चति हृङ्कारं तल्प मुञ्चति सेवते ॥

दधाति हृदये पद्म पुनर्दूरं निरस्यति ।

मुहुः पठति शृगार गगनागणमीक्षते ॥

हस्तं हस्तेन सस्पृश्य हन्ति पादेन मेदिनीम् ।

निषवासदहनश्याममाकृष्याधरमीक्षते ॥

धत्ते कहकहं स्वानं केशान् वर्तयति क्षणम् ।

कोपेन दुस्सह्यं दृष्टिं क्वचिदेव विमुञ्चति ॥

जम्भोतानीकृतोरस्को बाष्पाच्छादितलोचनः ।

बाहुतोरणमुच्चम्य भिनत्ति स्फुटदंगुलि ॥
अंशुकान्तेन हृदयं बीजयत्याहितेक्षणम् ।
कुसुमैः कुरुते रूपं पुनर्नाशयति द्रुतम् ॥
चित्रयत्यादरी सीतां द्रवयत्यश्रुभिः पुनः ।
बीमः क्षिपति हाकारान् न न मा मेति जल्पति ॥”२४९

भावाभास : राजा दण्डक के द्वारा मुनियों के ऊपर किये गये अत्याचार को सुनकर निर्ग्रन्थ मुनि के भड़कने में ‘भावाभास’ देखा जा सकता है :—

“अथास्य शतदुःखेन प्रेरितः शमगह्वरात् ।
निरम्बरमहीध्रस्य निरगात्कोषकेसरी ॥
रक्ताशोकप्रकाशेन निखिल तस्य चक्षुषः ।
तेजसा विहितं व्योम सन्ध्यामयमिवाभवत् ॥”२५०

भावोदय तथा भावशान्ति : लंकामुन्दरी-हनूमान्-प्रसंग को ‘भावोदय’ तथा ‘भावशान्ति’ के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है जब कि लंका मुन्दरी के चित्त में युद्धोत्साह शान्त होकर प्रेम उदित हो जाता है.—

‘चिन्तयत्येवमेतस्मिन् साप्यनगेन चोदिता ।
त्रिकूटमुन्दरीकन्या करुणासक्तमानसा ॥
विकस्वरमनोदेह त पद्मच्छदलोचनम् ।
अबालेन्दुमुख बाल किरीटन्यस्तवानरम् ॥
मूर्तियुक्तमिवानंग सुन्दर वायुनन्दनम् ।
हन्तुं समुद्यतां शक्ति सञ्जहार त्वरावती ॥
दधौ च मारयाम्येतं कथं दोषमपि श्रितम् ।
रूपेणानुपमानेन छिन्ते मर्माणि यो मम ॥
यद्यनेन सम सक्ता कामभोगोदयद्युतिम् ।
न निषेवे च लोकेऽस्मिन् ततो मे जन्म निष्फलम् ॥”२५८

भावसन्धि : ‘पद्मपुराण’ में भावसन्धि के अनेको स्थान हैं; यथा वैराग्योदय के समय संसार के प्रति रति, युद्ध के समय उत्साह तथा रति आदि का अनुभव आदि । उदाहरणार्थ—

“एकतो दयितादृष्टिरन्यतः तूर्यनिस्वनम् ।

इति हेतुद्वयादोलामारुढ भटमानसम् ॥”

अथवा

“ततो जगाद वैदेही प्रभ्रष्टहृदया सती ।

कृतान्तवक्त्र ! कस्मात्त्व विरोधीद सुदुःखिवत् ॥

प्रस्तावेऽत्यन्तहर्षस्य विषादयसि मामपि ।” २४९

भावशबलता : ‘भावशबलता’ के ‘पद्मपुराण’ में अनेक उदाहरण हैं, यथा—

“श्रुत्वा स्वसुर्यया वृत्त वात्सल्यगुणयोगतः ।

बभूव परमं दुःखी प्रभामण्डलपण्डितः ॥

विषादं विस्मयं हर्षं विभ्राणश्च त्वराग्वितः ।

आरुह्य मनसा तुल्य विमान पितृसगतः ॥

पौण्डरीक पुरचैव प्रस्थितः स्नेहनिर्भरः ॥” २५०

इसी प्रकार राम जब सीता का त्याग करने का विचार करते हैं तब उनके मन में निर्वेद-चिन्ता-मोह-तर्क-विबोध-स्मृति-मति-विषाद भाव एक साथ उठते हैं—

“अचिन्तयच्च हा कण्टमिदमभ्यत्ममागतम् ।

यद्यशोऽम्बुजलण्डं मे दग्धुं लज्जो यशोऽभज । ॥

यत्कृतं दुःसहं सोढं विरहव्यसन मया ।

सा क्रिया कुलचन्द्र म प्रकर्षोति मन्मीमसम् ॥

विनीता या समुद्दिश्य प्रवीरा, कपिकेतयः ।

करोति मनिनां सीता सा मे गोत्रकुमुदतीम् ॥

यदर्थमन्विमुत्तीर्य रिपुर्ध्वंस रण कृतम् ।

करोति कलुषं सा मे जानकी कुलवर्पणम् ॥

युक्त जनपदो वसित दुष्टपुति परालये ।

अवस्थिता कथं सीता लोकनिन्द्या मयाहृता ॥

अपश्यन् क्षणमात्रं यां भवामि विरहाकुलः ।

अनुरक्तां त्यजाम्येता दयितामधुना कथम् ॥

चक्षुर्मानसयोर्बाह्वं कृत्वा याश्चिस्थिता मम ।

गुणधानीमदोषां तां कथं मुञ्चामि जानकीम् ॥

अथवा वेत्ति नारीणां चेतसः को विचेष्टितम् ।

दोषाणां प्रभवां यासु साक्षाद्भवति भग्नमथः ॥

दृङ्मात्रमणीयां तां निरुक्तमिव पन्नगः ।
 तस्मात्त्यजामि वैदेहीं महादुःखजिहासया ।
 अशून्यं सर्वदा तीव्रस्नेहवन्धवशीकृतम् ॥
 यया मे हृदयं मुक्था विरहामि कथं तकाम् ।
 यद्यप्यहं स्थिरस्वान्तस्तथाप्यासन्नवर्तिनी ।
 अर्चिर्वन्मम वैदेही मनोविलयनक्षमा ॥
 मन्मे दूरस्थिताऽप्येषा चन्द्ररेखा कुमुदतीम् ।
 यथा चालयितुं शक्नोति धृतिं मम मनोहरा ॥
 इतो जनपरीवादश्चेतः स्नेहः सुदुस्तयजः ।
 अहोभस्मि भयरागाभ्यां प्रक्षिप्तो गहनान्तरे ॥
 श्रेष्ठा सर्वप्रकारेण दिवोकोयोपितामपि ।
 कथं त्यजामि तां साध्वी प्रीत्या यातामिवैकताम् ॥
 एता यदि न मुञ्चामि साक्षाद्दुःकीतिमुद्यताम् ।
 कृपणो मत्समो मह्यं तदैतस्या न विद्यते ॥” ३५१

इनके अतिरिक्त निर्वेद, आवेद, दैन्य, श्रम, मद, जड़ता, उग्रता, मोह, विबोध, स्वप्न, अपस्मार, गर्व, मूर्च्छा, आलस्य, अमर्ष, निद्रा, अवहित्था, औत्सुक्य, उन्माद, शंका, स्मृति, मति, ग्लानि, सन्नास, लज्जा, हर्ष, अमूया, विषाद आदि सभी संचारी भावों के उदाहरण पद्मपुराण में मिलते हैं जिनको हम स्थानाभाव के कारण यहाँ प्रस्तुत नहीं कर पा रहे हैं ।

‘पद्मपुराण’ में कल्पनातत्त्व :

कवि के लिए कल्पना अनिवार्य होती है । यही वह तत्त्व है जिसके आधार पर कवि वहाँ पहुँच सकता है जहाँ कि रवि भी नहीं पहुँच पाता । आलोचना की दृष्टि से ‘कल्पना’ का विचार भावपक्ष के विवेचन के अन्तर्गत हुआ करता है ।

रविषेण कल्पना के धनी है । उनकी कल्पना का पूर्ण वैभव तो ग्रन्थावलोकन से ही शक्य है तथापि स्थालीपुत्राकन्याय से इनके काव्य के कल्पनातत्त्व पर दिङ्मात्र विचार किया जा रहा है ।

‘पद्मपुराण’ में कल्पना इन दशाओं में सहायता प्रदान करती हुई दृष्टिगोचर होती है:—

- (१) गुण तथा स्वभाव-चित्रण में,
- (२) भाव-चित्रण में,

- (३) कार्य-व्यापार-चित्रण में,
- (४) घटना-चित्रण में,
- (५) वस्तु-चित्रण में तथा
- (६) कल्पना-वैभव के प्रदर्शन में ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के सप्तम अध्याय में हम सैकड़ों ऐसे संकेत देंगे जिनमें इन रूपों को साक्षात्कृत किया जा सकेगा । उपमा-उत्प्रेक्षा-रूपकों में, विविध वर्णनों में एवं अपने अनुसार घटनाचक्र को मोड़ने में कल्पना का सुन्दर प्रयोग किया है जिसका व्याख्यान हम प्रस्तुत-शोध प्रबन्ध के अंतर्गत् और पञ्चम अध्याय में घटनाओं और पात्रों का विचार करते समय कर आये हैं एवं सप्तम अध्याय में अलंकारों, वर्णनों और भाषा आदि के विचार के समय करेंगे । यहाँ व्यर्थ विस्तार की आवश्यकता नहीं है ।

‘पद्मपुराण’ में विचार या बुद्धितत्त्व

काव्य के भावपक्ष में कल्पना, भावना और विचार समन्वित रूप में उपस्थित हुआ करते हैं—यह हम पहले ही बता चुके हैं । ‘शक्तिव्युत्पत्तिरभ्यासः’ को समष्टिरूप में काव्यहेतुता प्रदान करने का भी यही आशय ज्ञात होता है । कवि अपने काव्य के माध्यम से अपने ज्ञान, अपने दर्शन एवं अपनी विचारधारा को पाठकों तक सम्प्रेषित करना चाहता है किन्तु उसे सहृदयत्व को अधुण बनाये रखने के निमित्त यह ध्यान रखना चाहिए कि अधिक बौद्धिकता से काव्य दर्शन न बन जाये, कहीं हृदय को भस्तिष्क दबोच न बैठे, कहीं सहृदय सरस भावधारा से निकल कर विचारों की विकट-विन्ध्याटवी में न उलझ जाये और कहीं कविता ‘प्रोपेगन्डा’ न बन जाये । प्रत्येक भाषा के प्रत्येक कवि ने किसी न किसी विचार (चाहे यह धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक अथवा कैसा ही हो) को—दर्शन को—मान्यता को—अपनी कृतियों में प्रकाशित किया है; यथा—हिन्दी के जायसी ने सूफी विचारधारा को, तुलसी ने समन्वयात्मक वैष्णव-विचारधारा को तथा प्रसाद आदि ने समरमनावाद आदि को । कवियों के इन विचारों का मूल्यांकन करते समय हमें यह देखना होता है कि ये विचार ‘कान्तासम्मित’ रीति से प्रस्तुत हैं अथवा ‘कटुकौषध’ रूप में ? क्या कवि ने व्यंजना का अधिक आश्रय लिया है अथवा कोरी अभिधा का ? यहाँ हम ‘पद्मपुराण’ विचारतत्त्व पर संक्षिप्त विचार करेंगे ।

‘पद्मपुराण’ की रचना के मूल में एक ‘विचार’ निहित है, वह है आर्य रामायण की दोषपूर्णता दिखाना तथा उसका परिष्कार । यह परिष्कार रविवेण के मत

से उसे जैनी बाना देकर ही किया जा सकता है। राजा श्रेणिक ने जो आर्य राम-कथा-विषयक चिन्ता प्रकट की है एवं उसके रचयिता वाल्मीकि को परोक्ष रीति से ‘कुक्बि’ की उपाधि से विभूषित किया है^{२५२} वह आचार्य रविरेण का जैन मस्तिष्क ही बोल रहा है जिसका समाधान गौतम गणधर के मुख से उन्होंने प्रस्तुत कराया है। उनका ‘कविनिघट्टवक्तृभणितिसिद्ध’ विचार स्पष्टतः देखा जा सकता है—

‘कथं जिनेन्द्रधर्मेण जाताः सन्तो नरोत्तमाः ।
महाकुलीना विद्वांसो विद्यद्योतितमानसाः ॥
श्रूयन्ते लौकिके ग्रन्थे राक्षसा रावणादयः ।
वसाशोणितमांसादिपानभक्षणकारिणः ॥

○ ○ ○
एवंविध किं ग्रन्थ रामायणमुदाहृतम् ।
शृण्वन्तं सकलं पाप क्षयमायाति तत्क्षणात् ॥
तापत्यजनचिन्तस्य सोऽयमग्निसमागमः ।
धीतापनोदकामस्य तुषारानिलसगमः ॥
ह्रैयङ्गवीनकाङ्क्षस्य तदिदं जलमन्यनम् ।
सिकतापीडनं तैलमवाप्नुमभिवाञ्छतः ॥
महापुरुषचारित्रकूटदोषविभाविषु ।
पापैरधर्मशास्त्रेषु धर्मशास्त्रमतिः कृता ॥

○ ○ ○
अथद्वेयमिदं सर्वं विद्युक्तमुपपत्तिभिः ।^{२५३}

अभिप्राय यह है कि राक्षसों, वानरों, कुम्भकर्ण के षण्मासिक निद्रात्याग, रावण की इन्द्रादि-विजय, राम द्वारा सुवर्ण-मृग-हृत्न तथा छिपकर बाली-हृत्न आदि के विषय में शकाएँ उठाकर उनका ‘जिनेन्द्रोक्त तत्त्वशंसन पर वाक्य’^{२५४} से समाधान करना ही ‘पद्मपुराण’ का मूल विचार है। इस समाधान के लिए भूमिका बनायी गयी जिसके अनुसार क्षेत्र-काल-कुलकर-नीर्यकर-वानरवश राक्षसवश आदि की उत्पत्ति तथा स्थल-स्थल पर अनेक जैन-सिद्धान्तों का प्रस्तुतीकरण किया गया है क्योंकि—

२५२. दे० पद्मपुराण २।२२९-२४९ ।

२५३. दे० पद्म २।२३०, २३१, २३८, २३९, २४०, २४१, २४९ ।

२५४. वही, ३।२६ ।

“न बिना पीठबन्धेन विधातु सद्यः शक्यते ।

कथाप्रस्तावहीनं च वचन छिन्नमूलकम् ॥”^{२५५}

ये जैन-सिद्धान्त कही साक्षात् रूप में और ऊहीं परम्परया पात्रों के वचन और कर्मों से आचार्य रविषेण ने प्रकाशित किये हैं। इनको तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) यथावस्थित-जैनधर्म निरूपण तथा उपदेश, (२) कुटुम्ब प्रसंगों में जैनधर्म की उदात्तता एवं कुतीथियों की निन्दा एवं (३) विविध पात्रों के आचरण से जैन-मान्यताओं का सौरव तथा उनके आचरण पर बल का प्रतिपादन।

जहाँ तक यथावस्थित जैन धर्म के सिद्धान्तों के निरूपण एवं उसके उपदेशों का प्रश्न है—वे एक हजार तीन सौ बहत्तर (१३७२) पद्यों में फैले हुए हैं जिनमें महाव्रत, अणुव्रत, कषाय तीर्थकर, कुलकर, अहिंसा, दिनभोजन, दैगम्बरी दीक्षा, जिनेन्द्रबिम्बनमस्कार आदि के माहात्म्य, जैनेतर मतों का खण्डन, वैदिक यज्ञानुष्ठान-खण्डन आदि विस्तृत रूप से वर्णित हैं। समस्त जैन-धर्म का निष्कर्ष इन पद्यों में देखा जा सकता है। इस आधार पर यदि ‘पद्मपुराण’ को जैनधर्म का ‘ज्ञान-काण्ड’ कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं है। गणभूत के द्वारा जिनेन्द्रोक्त-धर्म-कथन, क्षेत्र-काल-कुलकर-आदि-वर्णन, ऋषभ के सासारिक-क्षणिकता-प्रति-पादक विचार, वृषभदेव द्वारा अणुव्रतादि का धर्मोपदेश, अजित द्वारा तीर्थकर-चक्रवर्ती-वन्दभद्र-नारायण-प्रान्तनारायण-वर्णन, विशुन्वेश-महोदधि का मुनिराज का उपदेश, ब्रह्मर्षि ब्राह्मण का मुनिराज का उपदेश, मरुत्मान् के यश में नारद का शास्त्रार्थ, अनन्तबल केवली का रावण को उपदेश, गणधर द्वारा चीवीस तीर्थकरो एवं अन्य गलाका-पुरुषों का वर्णन, गुरु का कुण्डलमण्डित को उपदेश, सर्वभूतहित का दशरथ को उपदेश, द्युतिभट्टारक का भरत को उपदेश, भरत की वैराग्य-चिन्ता, देशभूषण मुनि का उपदेश, सर्वभूषण केवली का राम को उपदेश, लक्ष्मण से पुत्रों का कथन, हनूमान् की सासारिक-क्षणिकता-विषयक-चिन्ता, इन्द्र का भाषण तथा मोहग्रस्त राम को विमोक्षण का समझाना—ये ऐसे उपदेश हैं जिन्हें पढ़कर आचार्य रविषेण के ‘पद्मपुराण’ के कथा-नैपथ्य में स्थित विचार-सघात का परिचय मिल जाता है।^{२५६} इन सभी का सार यह है जो बारम्बार घूम फिर

२५५ पद्मपुराण ३।२८

२५६ देखिए—पद्मपुराण २।१५४-१९८, ३।३०-८८, ३।२६४-२६७, ४।३५-५१, ५।१८५-२८३, ५।३२४-३४२, ६।२७६-३१२, ११।३०-५१, ११।१२४-१२९, ११।१५९-२४१; १३।९३-९७, १४।१८-३५८, २०।१-२४०, २६।६४-९४, २६।९६-१०३, ३१।८-२१; ३२।१४१-१८३, ३३।४७-६४, ३५।१८-२४, १०५।१०९-२६१, ११०।७२-८९, ११२।७७-९९, ११५।१७-४४, ११७।४-४४।

कर हमारे समक्ष आता है—

“जैनमेवोत्तमं वाक्यं जैनमेवोत्तमं तपः ।

जैन एव परो धर्मो जैनमेव महामतम् ॥”^{२५७}

यदि इन उपदेशों पर ही बारीकी से विचार किया जाय तो पत्र नामा ‘शोध-ग्रन्थ’ लिखा जा सकता है किन्तु यहाँ उनके पूर्ण व्याख्यान का अवकाश नहीं है, अतः दिङ्मात्र संकेत कर दिया गया है ।

विचारों के अभिव्यञ्जन का दूसरा रूप है फुटकल प्रसंगागत ‘द्य जिनमें जैन धर्म की सर्वोच्चता सिद्ध की गयी है; कुतिषियों, सूत्रकण्ठों, यज्ञीक्षाव्यपातक-कारियों एवं दुष्टात्मा निर्धय वेदाभ्यासियों की निन्दा की गयी है; सभ्यदर्शन-भावित मुनियों तथा अहंद्विम्ब-नमस्कारकारियों की पावनता सिद्ध की गयी है, चैत्यनिर्माण की महिमा गायी गयी है; सांसादि-स्याग पर बल दिया गया है; निर्ग्रन्थ मुनियों की सेवा को भाग्य ठहराया गया है तथा वेदमन्त्रक कुग्रन्थ की गहरी की गयी है । दो शब्दों में—स्वमतमण्डन एवं परमतगर्हणा की गयी है । प्रायः पर्व के अन्तिम पद्य एवं अन्य सैकड़ों पद्य इसी प्रकार के निदर्शन हैं^{२५८} जिनमें ऐसे-ऐसे भाव हमारे समक्ष आते हैं :—

“इति प्रबुद्धोत्तमानसा जना
जिनश्रुती सज्जत भो पुनः पुनः ॥”

तथा

“ततो भजत भो जनाः सततभूरिमौख्यावहं
भवामुत्तमतमिच्छिद जिनवरोक्तधर्मं रविम् ॥”^{२५९}

विचारों की अभिव्यक्ति का तीसरा रूप है—अनेक पात्रों के आचरण द्वारा जैन धर्म-सम्मत विचारों का प्रचार । प्रायः सभी पात्रों को आरम्भ में या अन्त में

२५७ पद्मपुराण ६।३००

२५८ हे० पद्मपुराण १।३२; ३।२४४-२४६, २४६-२४३ २८३-२८९, ३००, ३३०, ६।९०-१३१; ५।३३, ३८, ३९, ४२, ६७, ७०, १७७, ६०५-३१६, ३१७-२-०, ६।५५, १४५-१४७, १५०, २०७, २१४, २४१, २८०-२८६, ३३०, ३३४, ४७७-४८६; ७।१०-१२४, १-५, १९० १९७, १९९, २०३; ८।३३, १४९, २२०, २४४-२४८, २४९, २८५, २८६, ३९८; ९।७६, ९०-९९, १२६, १६७, १६९ १७७-१९२, १९८, २०६-२०७, २१२-२२३; १०।१००, १६३-१६६; ११।४, ५, ६, ९, ७२, ७९, ८०, ८१, ८२, ८४-१०५, २८१, २९३; १३।६३-६६, १०६; १५। ७४; १७।१७५, १७६, १९८, २०५, २०६, २९६, १९।५५, १३८, १३९, १४०; २१।२१-२४, ३७, ५८-७१; २२।८३, १००, १३५, १७९-१८१; २३।६, ७, १०, ११, १९; २४।६६ २५।१० तथा और भी अनेक स्थल ।

२५९ पद्य० १६।२४३

देगम्बरी दीक्षा दिलाकर अथवा श्रमणधर्म का अंगीकार कराकर अथवा जिनस्तुति कराकर रविषेण ने जैनधर्म-परायणता का स्पष्ट प्रचार किया है। कपिल ब्राह्मण की कथा से यह सिद्ध कर दिया गया है कि बिना जैन-दीक्षा के प्राणी का कल्याण हो ही नहीं सकता। इसीलिए ऐसे उपाख्यानो को पढ़ने का भी अपार माहात्म्य बताया गया है, यथा—

“य इदं कपिलानुकीर्तनं पठति प्रह्वमतिः शृणोति वा ।

उपवाससहस्रसम्भवं लभतेऽसौ रविभामुरः फलम् ॥”^{२६०}

इस प्रकार के प्रभूत उपाख्यान ‘पद्मपुराण’ में भरे पड़े हैं जिनमें पात्रों के पूर्वभवों के वृत्तान्त तथा इस जन्म में जलबुद्बुद-समाकार, शरद्वनसंकाश, विषु-दुघीतप्राय निःसार जीवन का ध्यान करके उनकी निर्ग्रन्थ-दीक्षा-देगम्बरीदीक्षा-जिनदीक्षा का वर्णन है जिसकी ध्वनि यही है कि ‘हे पद्मपुराण के पाठको, तुम भी जिनदीक्षा से मुँह मत मोड़ना; जैनी गुणगणकथा करते रहना।’ प्रायः पात्रों के सम्यग्दर्शनयुक्त आचरण दिखाकर बाद में यह उपदेश दे दिया जाता है—

“धन्याः सद्युति कारयन्ति परम लोके जिनानां गृहम्”^{२६१}

अथवा

“वित्तस्य जातस्य फल विनाशं

वदन्ति मुञ्जाः सुकृतोपलम्भम् ।

धर्मश्च जैनः परमोऽखिलेऽस्मिन्

जगत्प्रीतिस्तस्य रविप्रकाशे ॥”^{२६२}

विचारतत्त्व के अध्ययन की एक दिशा और हो सकती है—वह है सूक्तियों का अध्ययन। इन सूक्तियों से ऋषि के विचारों से परिचित हुआ जा सकता है। रविषेण ने सहस्राधिक सूक्तियों ‘पद्मपुराण’ में दी है जिनकी एक सक्षिप्त सूची हम परिशिष्ट में देंगे। इन सूक्तियों में रविषेण ने अपने अनुभूत विचारों का प्रकाशन किया है।

०

२६०. वही, ३५।१९५

२६१. वही, ६७।२७

२६२. वही ६७।२८

सप्तम अध्याय

‘पद्मपुराण’ का कलापक्ष-निरूपण

यों तो काव्य के भावपक्ष और कलापक्ष अविभाज्य है किन्तु अध्ययन के सौकर्य के लिए उन्हें उपचार मे द्विधा विभक्त करके परीक्षित किया जाता है। काव्य के भावपक्ष मे रसादि का विवेचन हुआ करता है और कलापक्ष मे भाषा-छन्द-अलंकार-गुण-दोष-रीति-शब्दशक्ति-वक्रोक्ति-वर्णनकौशल आदि का। कहने का आशय यह है कि काव्य के कलापक्ष मे हम काव्य के उत्कर्षापकर्षाघायक तत्वों का विवेचन किया करते हैं। कलापक्ष के अध्ययन से ही हम किसी कवि की शैली से परिचित होते हैं। यहाँ हमें ‘पद्मपुराण’ का उपर्युक्त दृष्टिकोण से अध्ययन करना है।

शैली : अनुभूति की अभिव्यक्ति के प्रकार को शैली कहा जाता है। इसके अनेक गुणों मे—अनेकता मे एकता और थोड़े में बहुत की व्यञ्जना करना आदि आते हैं। इनके अतिरिक्त शैली में सरलता, मुबोधता, चारु-अलंकार-योजना, रमणीयता और प्रवाह आदि गुण भी बँसने होते हैं। इन्हीं के आधार पर आलोच्य ग्रन्थ का परीक्षण हमें करना है।

‘पद्मपुराण’ एक पौराणिक शैली का काव्य है जैसा कि पहले में बताया जा चुका है। इसमें कविता और घामिकता का साथ-साथ निर्वाह हुआ है। साहित्यिक संस्कृत भाषा के मात्रावृत्त और वर्णवृत्तों में कथा चलती है। आलंकारिक वर्णनों का प्राचुर्य है। कथा सात अधिकारों एवं १२३ पर्वों में विभक्त है। इसमे कवि की शैली बौद्धिकताप्रधान है। किसी भी चीज को स्पष्ट और तर्कसंगत रूप में उपस्थित करना कवि का लक्ष्य रहा है। इसीलिए प्रथम पर्व में ‘सूत्रविधान’

किया गया है तथा अनेक स्थलों पर प्रचलित मान्यताओं की बौद्धिक व्याख्याएँ प्रस्तुत की गयी हैं। यही कवि की अपने समस्त लोकशास्त्र-काव्याध्यवेषण को प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति का स्पष्ट आभास मिलता है। गद्य और पद्य—दोनों शैलियों में उसने अपने काव्य को संवारा है। कवि ने स्थान-स्थान पर अभिषा या व्यंजना से जैन धर्म का प्रचार किया है। किसी भी वस्तु या प्रसंग का सांगोपांग वर्णन करने में कवि का मन बहुत रमा है। भाव यह कि 'पद्मपुराण' की शैली पौराणिक काव्य की अलंकृत शैली है।

भाषा : शब्द और अर्थ का नित्य सम्बन्ध है। अनुभूति की अभिव्यक्ति का प्रधान साधन भाषा ही है। काव्य की भाषा में उसके नादसौंदर्य तथा अवसरानुकूलता आदि का होना आवश्यक होता है। यहाँ हम अपने आलोच्य ग्रन्थ की भाषा पर विचार करेंगे।

'पद्मपुराण' की भाषा सरल है जिसे देखकर रविवेण के भाषाधिकार का सहज ही ज्ञान हो जाता है। उनकी भाषा की भावानुकूल समस्तता-व्यस्तता, नाद-सौन्दर्य, चित्रात्मकता, तिङन्त-सुबन्त-पदों के मञ्जुल प्रयोग, गतिशीलता, आलंकारिकता तथा प्रासादिकता को देखकर प्रतीत होता है जैसे वाणी वक्ष्य होकर ही उनके पीछे चल रही हो। उनकी रचना में शब्दों का 'अहमहमिकया परापतन' आदि से अन्त तक देखने की मिलता है। उनकी भाषा के गुणालंकार तो हम पृथक् निदिष्ट करेंगे, यहाँ केवल उनकी भाषा की कतिपय विशेषताओं का संक्षिप्त संकेत करते हैं।

आचार्य रविवेण ने भाषा को भावानुसार चलाया है। विकटविन्ध्याटवी, घण्टकवन एवं युद्ध आदि के वर्णन में वह समस्त है तथा विरह-विगाप-उपदेश आदि के समय व्यस्त। कहीं-कहीं तो श्लोक के पूरे-के-पूरे पाद एक शब्द ही बन गये हैं और कहीं अवसरानुसार एक-एक पाद में कई-कई वाक्य हो गये हैं। आलंकारिक वर्णन के समय भाषा रत्नहार के सदृश ग्रथित है तो साधारण स्थलों पर मुक्ताकणों के तुल्य। उदाहरणार्थ युद्ध का वर्णन नीजिए जहाँ एक-एक चरण एक-एक शब्द हो गया है—

“एव महति सङ्ग्रामे प्रवृत्ते भीतिभीरणे ।

भटानामुत्तमानन्दसम्पादनपरायणे ॥

गजनामाममाकुष्टवीरकल्पिततत्करे ।

जबनाश्चक्षुराघातपनसत्कर्त्तनोद्यते ॥

सारथिप्रेरणाकुष्टरथविशतवाजिनि ।

जङ्घावष्टम्भसङ्क्रान्तक्षतकुम्भमहागजे ॥

परस्परजवाघातदलत्पादातविग्रहे ।
भटोसमकराकृष्टपुच्छनिष्पन्दबाजिनि ॥
कराघातदलत्कुम्भिकुम्भनिष्ठयूतमौक्तिके ।
पतन्मातङ्गनिर्भग्नरथाहतपतद्भूटे ॥
कीलालपटलच्छन्नगलन्नामाकदम्बके ।
गजकर्णसमुद्भूततीव्राकुलसमीरणे ॥”२६३

इसी प्रकार लवणाङ्कुश और राम के युद्ध का एक अंश लिया जा सकता है—

“क्वणदश्वसमुद्युतस्यन्दनोन्मुक्तचीत्कृतम् ।
तुरङ्गजविक्षिप्तभटसीमन्तिताविलम् ॥
निःकामदुश्चिरोद्गारसहितोरुभटस्वनम् ।
वेगवच्छस्त्रसम्पातजातवह्निक्वणोत्करम् ॥
करिशूकृतसम्भूतसीकरासारजालकम् ।
करिदारितवक्षस्कभटसंकटभूतलम् ॥
पर्यस्तकरिसंरुद्धरणमार्गाकुलायतम् ।
नागमेघपरिश्च्योतन्मुक्ताफलमहोपलम् ॥
मुक्तासारसमाघातविकटं कर्मरङ्गकम् ।
नागोच्छालितपुन्नागकृतखेचरसङ्गमम् ॥
गिरःक्रीतयशोरत्न मूच्छजिनितविश्रमम् ।
मरणप्राप्तनिर्वाण बभूव रणमाकुलम् ॥”२६४

‘महावन’ के वर्णन में कवि की लेखनी से ऐसे ही समस्त पद धाराप्रवाह से निकलते जा रहे हैं—

“तनस्ते भूमहीध्राग्रग्रावन्नातसुकर्कशम् ।
महातरुसमारूढबलनीजालसमाकुलम् ॥
क्षुदतिक्रुद्धशार्ङ्गलनखविक्षतपादपम् ।
मिहाहतद्विपोद्गीर्णङ्गतमौक्तिकपिच्छलम् ॥
उन्मत्तवारणस्कन्धतटस्कन्धमहातरुम् ।
केसरिध्वनिविप्रस्तसमुत्कीर्णकुरङ्गकम् ।
सुप्ताजगरनिःश्वासवायुपूरितगह्वरम् ।
वराहयूथपोताग्रविपरीकृतपल्लवम् ॥

महामहिषशृङ्गाग्रभग्नबाल्मीकसानुकम् ।
 ऊर्ध्वोक्तमहाभोगमञ्जरद्भोगिभीषणम् ॥
 तरशुक्षतसारङ्गरुश्रिरभ्रान्तमक्षिकम् ।
 कण्टकासक्नपुच्छाग्रप्रताम्यच्चमरीगणम् ॥
 दर्पसम्पूरितश्रवाविन्मुक्लसूचीविचित्रितम् ।
 विषपुष्परजोघ्राणधूर्णिनानेकजन्तुकम् ॥
 खड्गिखड्गसमुल्लीढतम्हकन्धच्युतद्रवम् ।
 उद्भ्रान्तगवयघ्रातभग्नपल्लवजालकम् ॥
 नानापक्षिकुलकूकूजितप्रतिनादितम् ।
 शास्त्रामृगकुलकान्मन्त्रप्रारभारपादपम् ॥
 तीक्ष्णवेगारिखोतःशतनिर्दाग्निक्षमम् ।
 वृक्षाग्रविस्फुरत्स्फीतदिवाकरकरोत्करम् ॥
 नानापुष्पफलाकीर्णं विचित्रामोदवामितम् ।
 विविधोपधिमम्पूर्णं वनसस्यसमाकुलम् ॥
 क्वचिन्नीलं क्वचिरपीनं क्वचिन्नवतं हृग्निक्वचित् ।
 पिञ्जरच्छायामभ्यत्र विविधविपिनं महत् ॥ २६५

एक नहीं, सैकड़ों ऐसे स्थल हैं जहाँ कवि ने इस समास-शैली का अवलम्बन किया है। प्रायः आलंकारिक और मस्मिष्ट वर्णनों में यही समास-बहुल भाषा प्रयुक्त हुई है। ऐसी भाषा को देखकर दण्डी-वाण-मुक्ल याद आने लगते हैं। मुनि सुव्रत जिनेन्द्र का पञ्चकल्याणक-वर्णन तो एक ही वाक्य में समाप्त हुआ है जिसमें रवि-प्रेम की गद्यमयी भाषा की स्फीति दर्शनीय है। इस 'वृत्तगन्धिरा' में 'महीरत्न-प्रभाशर्कंगबालुकापङ्कधमप्रभाध्वान्तभानिप्रकृष्टान्धकाराभिधा'—जैसे समासों की छटा देखने ही बनती है।^{२६६}

यदि एक ओर ऐसे कलापक-कुलको तथा महावाक्यों का कवि को मोह है तो दूसरी ओर उसके चित्त में छोटे-छोटे वाक्यों की भी प्रीति समाई हुई है। वस्तुतः 'रसमिद्ध कवीश्वरों' की भाषा ऐसी ही होती है। बियांगी राम की उक्ति की भाषा ऐसी ही रही है—

"भो भो महीधराधीश धानुभिबिबिधैश्चित्त ।
 मूनुर्दशरथस्य त्वां पद्मालयः परिपृच्छते ॥

२६५. पद्मपुराण ३३।२०-३३ ।

२६६. दे० बही, ७८।६२-६३ के बीच का गद्यभाग ।

विपुलस्तनम्राङ्गा बिम्बोष्ठी हृमगामिनी ।
सन्नितम्बा भवेद् दृष्टा सीता मे मनसः प्रिया ॥
दृष्टा दृष्टेति किं वक्षि ब्रूहि ब्रूहि क्व मा क्व सा ।
केवल निगदस्यैवं प्रतिगदोऽयमीदृश ॥” २६७

इसी प्रकार सूक्तियों में अथवा उपदेश-दान के समय भाषा परम सरल तथा व्यस्त हो गयी है, यथा—

“प्राप्यते येन निर्वाण किमन्यत्तस्य दुष्करम् ।” २६८

रविषेण ने अवमरानुकूल ऐसे शब्दों से अपनी भाषा को सजाया है जो भावों के चित्र-से उपस्थित कर देते हैं। वाद्यों की ध्वनि एवं पक्षियों के शब्दों के साक्षात् चित्र से उपस्थित कर दिये गये हैं, यथा—

“सघारलम्बिताम्भोदवृन्दनिर्घोषभैरवाः ।
शङ्खकोटिस्वनोन्मिथ्याम्नूर्याणामुद्ययु. स्वना” ॥
भम्भाभैर्यो मृदङ्गाञ्च लम्पाका धुम्धुमण्डका. ।
भम्भाम्लानकहृक्काञ्च हुङ्कारा दुन्दुकाणका” ॥
भर्भरहृक्गुञ्जाञ्च काहला ददुर्गादय. ।
समाहता महानाद मुमुचु पणैर्पूर्णकम् ॥” २६९

इसी प्रकार—

“प्रलम्बजलभृत्तुल्यास्तूर्यधोपा ममुद्ययु ।
शङ्खकोटिरवोन्मिथ्या भम्भाभैरी-महारवा ॥
पटहाना पटीयामो मन्द्राणा मन्द्रता ययु ।
लम्पाना कम्पणम्पाना धुम्धना मधुरा भृगम् ॥
भल्लाम्लानकहृक्काना हृक्हुङ्कारसङ्गिन.म् ।
गुञ्जारटितनाम्नाञ्च वादित्राणा महस्वना. ॥
मुकला. काहला नादा घना हलहलारवा ।
अट्टहासास्तुरङ्गेभमिहव्याघादिनिस्वना. ॥” २७०

इन पद्यों को पढ़ते-पढ़ते बिना अर्थ समझे भी—प्रतीत होने लगता है जैसे कही बाजे बज रहे हों, हल्ला-कोलाहल मच रहा हो। इसी प्रकार की चित्रविधायिनी भाषा युद्धस्थलों में योद्धाओं की उक्तियों में तथा नारियों के भावालाप-वर्णनों में

२६७. रघुपुराण ४/१३६-१३८ ।

२६८. रघुपुराण ५/६५५

२६९. वही, ५/१२६-२८

२७०. वही, ८/२२९-२३२

देखी जा सकती है ।

‘पद्मपुराण’ की भाषा में नाद-सौन्दर्य तो बहुलता से व्याप्त है, पढ़ते-पढ़ते तरंग आने लगती है, पंक्तों को पढ़कर कण्ठ कर लेने को जी चाहता है, यथा—

“जुगुञ्जुर्मञ्जवो गुञ्जा विनेदुः पटहा पटु ।
नान्द्यो ननन्दुरायातं चक्वणुः काहुलाः कलम् ॥
अशब्दायन्त शङ्खौघाः धीर तूर्याणि दध्वनुः ।
ववणुविशदं वंशाः कांसनालानि चक्वणुः ॥” २७१

‘पद्मपुराण’ की भाषा को अनुरणनात्मक शब्दों के प्रयोग (ऑनॉमोटोपोइया) ने एक विशिष्ट विच्छित्ति प्रदान कर रखी है। युद्ध की छमछमाहट तथा घमघमाहट एवं जल की गुलगुल-कलकल का ऐसे ही शब्दों से क्या ही अच्छा चित्र खींचा गया है—

“क्वचिद्द्रसदिति ध्वानो भवत्यन्यत्र श्रुति ।
क्वचिद्गणरणारावः क्वचित्किणकिणित्वनः ॥
त्रपत्रपायतेऽन्यत्र तथा दमदमायते ।
छमाछमायतेऽन्यत्र तथा पटपटायते ॥
छलछलायतेऽन्यत्र टट्टहायते तथा ।
तटतटायतेऽन्यत्र तथा चटचटायते ॥
घग्घग्घपायतेऽन्यत्र रण शस्त्रोत्थितैः स्वरैः ।
शब्दात्मकमिवोद्भूतं तदा त्वजिरमण्डलम् ॥” २७२

इसी प्रकार सीता के अग्नि-प्रवेश के समय अग्नि-कुण्ड का वापी में परिवर्तित हो जाना निबद्ध करते समय कवि ने वापी के जल की इन अनुरणनात्मक शब्दों के सहारे अभिव्यक्त की है—

“भवभूङ्गनिस्वानात् क्वचिद् गुलकुलायते ।
भुभुद्भुभायतेऽन्यत्र क्वचित् पटपटायते ॥
क्वचिन्मुञ्चति हुङ्कारान् धूकारान्क्वचिदायतान् ।
क्वचिद्दिमिदिमिस्वानान् जुगुधुद्भूदिति क्वचित् ॥
क्वचित्कलकलारावाच्छसद्मसदिति क्वचित् ।
टुटुषण्टासमुद्बुष्टमिति क्वचिद्वितीति च ॥” २७३

‘पद्मपुराण’ में रविवेण ने सुवस्त-तिरुन्त-पदों के बड़े सुन्दर-सुन्दर प्रयोग

२७१. पद्मपुराण १०५।१२-१३ ।

२७२. वही, १२।२६०-२६३ ।

२७३. वही, १०५।३३-३५ ।

किये हैं। ऐसे स्थलों पर दीपक अलंकार माना जाता है। यहाँ ऐसे एक क्रिया-पद-प्रयोग को प्रस्तुत किया जा रहा है—

“चक्रवत्परिवर्तन्ते व्यसनानि महोत्सवैः ।
 शनैर्मायादयो दोषाः प्रयान्ति परिवर्द्धनम् ॥
 क्लिश्यन्ते द्रव्यनिर्मुक्ता ग्नियन्ते बालतासु च ।
 पूर्वोपात्तायुधि क्षीणे हेतुना चोपसंहृते ॥
 नाना भवन्ति तिष्ठन्ति निघ्नन्ते शोचयन्ति च ।
 रुदन्त्यदन्ति बाधन्ते विवदन्ति पठन्ति च ॥
 ध्यायन्ति यान्ति वल्गन्ति प्रभवन्ति वहन्ति च ।
 गायन्त्युपासतेऽश्नन्ति दरिद्रति नदन्ति च ॥
 जयन्ति रान्ति मुञ्चन्ति राजन्ते विलसन्ति च ।
 तुष्यन्ति शासति क्षान्ति स्पृहयन्ति हरन्ति च ॥
 व्रपन्ते दान्ति सम्जन्ति दूयन्ते कूटयन्ति च ।
 मार्गयन्तेऽभिधावन्ते कुहयन्ते सृजन्ति च ॥
 क्रीडन्ति स्यन्ति यच्छन्ति शीलयन्ति वमन्ति च ।
 लुच्यन्ति मान्ति सीदन्ति क्रुध्यन्ति विलपन्ति च ॥
 तुष्यन्त्यर्चन्ति वञ्चन्ति सान्त्वयन्ति विदन्ति च ।
 मुह्यन्त्यर्वन्ति नृत्यन्ति स्निह्यन्ति विनयन्ति च ॥
 नुदन्त्युच्छन्ति कर्षन्ति भूज्यन्ति विनमन्ति च ।
 दीव्यन्ति दान्ति शृण्वन्ति जुह्वत्यङ्गन्ति जाग्रति ॥
 स्वपन्ति विभ्यतीङ्गन्ति श्यन्ति दन्ति तुदन्ति च ।
 प्रान्ति सुम्बन्ति सिम्बन्ति रुन्धन्ति विरुवन्ति च ॥
 सोव्यन्त्यटान्ति जीर्यन्ति पिबन्ति रचयन्ति च ।
 वृणते परिमुदन्ति विस्तृणन्ति पृणन्ति च ॥
 मीमांसन्ते जुगुप्सन्ते कामयन्ते तरन्ति च ।
 चिकित्स्यन्त्यनुमन्यन्ते वारयन्ति गुणन्ति च ॥
 एवमादिक्रियाजालसन्ततव्याप्तमानसाः ।
 शुभाशुभसमासवता व्यतिक्रामन्ति मानवाः ॥” १७४

‘पद्मपुराण’ की भाषा अनेक स्थलों पर समयानुसार आलंकारिक होती गयी है जिसका सकेत हम, पृथक् से, अलंकारों के विवेचन में करेंगे।

रविषेण का शब्दकोष अत्यन्त स्फीत है। एक-एक वस्तु अथवा प्राणी के लिए उन्होंने नये-नये शब्द प्रयोग किये हैं यथा—भानुकर्ण के लिए 'भास्करश्रवण', 'भास्करश्रुति' आदि, 'दशानन' के लिए 'विशत्यर्थमुख', 'दशास्थ' आदि। इसी प्रकार उन्होंने प्रत्येक नाम की व्युत्पत्ति देकर अपनी शब्दशासकता का परिचय दिया है, यथा—

“अजितं विजिनाशेषबाह्यशारीरशानवम् ।
 शम्भवं शं भवत्यस्मादित्यभिख्यामुपागतम् ॥
 अभिनन्दितनिशेषभुवन चाभिनन्दनम् ।
 सुमति सुमति नाथ मतान्तरनिरासिनम् ॥
 उद्यदकंकरानीडपद्माकरसमप्रभम् ।
 पद्मप्रभ मुपाश्वं च मुपाश्वं सर्ववेदिनम् ॥
 शरत्सकलचन्द्राभं पर चन्द्रप्रभं प्रभुम् ।
 पुष्पदन्त च सम्पुल्लकुन्दपुष्पप्रभञ्जितम् ॥
 शीतल शीतलध्यानदायिनं परमेष्ठिनम् ।
 श्रेयास भव्यमत्त्वाना श्रेयास धर्मदेगिनम् ॥
 वामुपूज्य सनामीश वसुपूज्य जितद्विपम् ।
 विमल जन्ममूलाना मलानामतिदूरगम् ॥” २७५

इस प्रकार 'पद्मपुराण' की भाषा अत्यन्त प्राञ्जल है। हाँ, जहाँ उसमें जैन-धर्मगत परिभाषिक शब्दों की बाड़ आती है—यथा अनुप्रेक्षा, अणुव्रत, महाव्रत उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी आदि—वहाँ अवश्य हृदय धबरा उठता है।

छन्द . काव्य के कलापक्ष में छन्द का अपना महत्त्व है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने औचित्य-विचार-चर्चा नामक ग्रन्थ में छन्दों के औचित्य पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। विविध रसों का अभिव्यञ्जन करने की क्षमता आशिक रूप में छन्दों में भी

२७५. पद्य० १।४-९ एने शब्दों के लिए देखिए श्री भी बड़ी १।८-१६; ३।२५६, २५९, २८१; ६।४९, १६२, १२३, ५।४, १३, ६४, २१२-२१६; ५।३७८, ३८६; ६।३, ८४, २०८-२१४ ३८५, ३९०, ३९८, ४०१, ४०२, ४०६, ४०७; ७।२.१८, २२१, २२५, ३०१, ३०२; ८।१०३ १०५, १४६-१४८, १४२, ६३२, ३५४; १।४४, १५३, ११।३००, ३१०, १२।५६, ९७; १५।१२-१४ ८०, २०६; १६।१५४-५६; १८।२, २८, १२२, १२४; १९।५१, १०२, १०६-१०८; २०।१५, १८, २०, २७, १७२, २१०; २१।७, २४, ५३, ७७, ८२, २२।१०२, ११३, १३१, १४७, १४५, १६०, १६९, १७४; २६।३, ११३; २५।२२, २६, २८।१६२, १६३, २११, २१२; ३०।७०; ३३।१४३, ३९।११, १५३, ४०।४५; ४७।१३६-१४१; ५३।६५; ८८।३; ८९।११; ९४।१९-२४, २८-३५; ११०।१८-१९ आदि

होती है। यही कारण है कि काव्य में एक प्रधान छन्द के अतिरिक्त अन्य सहायक छन्दों का भी अवसरानुकूल प्रयोग हुआ करता है।

‘पद्मपुराण’ में छन्दों का अपना महत्त्व है। नाना वर्णनों में रुचिरता लाने के निमित्त औचित्यावह् छन्दों का रविपेण न प्रयोग किया है। प्रसिद्ध ‘मात्रिक’ तथा वर्णवृत्तो का तो उन्होंने प्रयोग किया ही है, साथ ही कुछ छन्दों की स्वतः भी कल्पना की है। पवों के अन्त में प्रायः छन्द-परिवर्तन हुआ है। ‘नानावृत्तमय क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते’ के अनुसार बयालीसवाँ पर्व तो अनेक छन्दों से सँजोया गया है जिसमें दण्डकवन को विविधता का साक्षात्कार सा होन लगता है। यहाँ ‘पद्मपुराण’ में प्रयुक्त छन्दों पर हमें विचार करना है।

१. प्रधानतः ‘पद्मपुराण’ ‘अनुष्टुभ्’ छन्द में ही लिखा गया है जिसका लक्षण है—

“श्लोके पष्ट गुरु जेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।

द्विचतुष्पादयोर्हं स्व सप्तमम् दीर्घमन्धयोः ॥”

उदाहरणार्थ—

“पद्मस्य चरित वक्ष्ये पद्मालिङ्गितवक्षसः ।

प्रकुलपद्मवक्त्रस्य पुरुषुष्यस्य धीमतः ॥”

इसके अतिरिक्त उन्होंने ४४ ‘मात्रावृत्त’ तथा ‘वर्णवृत्त’ प्रयुक्त किये हैं जिनका एक-एक उदाहरण प्रस्तुत है—

२. आर्या :

“स्थित्यधिकारांश्च ते श्रेणिक गदित समामतस्त्वेनम् ।

वशाधिकारमधुना पुरुषरथे, विद्धि सादर वच्मि ॥”^{२७६}

३. आर्यागीति :

“त्रिभुवनकुशलमतिजययूत (नित्य) नमामि भक्त्या परया ।

मुनिसुव्रतचरणयुग सुरपतिमुकुटप्रवृत्तनल्लभणिकिरणम् ॥”^{२७७}

२७६. पद्य ० ४१३२, आर्या के लिए देखिए और भी—पद्मी, १५१२२३; २११०६२; ४२१३९, ४३; ४३१९६८; ४८१०५०; ६११२२-३४, ७०११००-१०१; ७८८८१-९२; ८०१००८-२०९; ८२१६५-६६; ८५११७५; ९०१२७-२९; ९११५०-५१, ९१६०; ९५६८५-८७; ९८११०३-१०५; ९९११६६-११७; १००१८३; १०११०४-१०६; १०२१२०१-२०२; १०५१२६३-२६८; ११०१९३; ११२१०९, ११३१४६-४५; ११६१४३-४४; ११७१४३-४५ ।

२७७. वही, १७१२२ और भी—८७११६-१८, ९२१११-१२ १०३११२९ (आद्या), ११११२१, ११५१६३-६४; ११९१६१-६२; १२२१७५-७६, १२३११४६-१६५ ।

४. धार्वाकाति :

“एवं प्रशस्यमानौ नमस्यमानौ च पौरलोकसमूहैः ।

स्वभवनमनुप्रविष्टौ स्वयम्प्रभं वरविमानमिव देवेन्द्रौ ॥” १७८

५. शार्ङ्गलबिकीडित : (सूर्यादिवर्मसजस्तताः सगुरवः शार्ङ्गलबिकीडितम्)

“पद्मादीन्मुनिसत्तमान् स्मृतिपथे तावन्नुणां कुर्वतां,

दूरं भावधरानतेन मनसा मोदं परं बिभ्रताम् ।

पापं याति भिदां सहस्रगणनैः क्षणैश्चिरं सञ्चितं,

निःशेषं चरितं तु चन्द्रधवलं किं क्षृण्वतामुच्यते ॥” १७९

६. मालिनी : (ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः)

“अथ कुसुमपटान्तःसुप्तनिष्क्रान्तभृङ्ग-

प्रहितमधुरवादात्यन्तरम्यैकदेशात् ।

जडपवनविधूताकम्पितापाण्डुदीपा-

न्निरगमदवनीशः श्रीमतो वासगेहात् ॥” १८०

७. शालिनी : (शालिन्मुक्ता म्तौ तगौ गोष्ठिलोकैः)

“श्रेष्ठोरेवं रम्ययोस्तस्मितान्त

विद्याजायासम्परिष्वक्तचित्ताः ।

इष्टान् भोगान्भुञ्जते भूमिदेवा

धर्मासक्तानन्तरायेण मुक्ताः ॥” १८१

८. वसन्ततिलका : (उक्ता वसन्ततिलका तमजा जगौ गः)

“एवं भवान्तरकृतेन तपोबलेन

सम्प्राप्नुवन्ति पुरुषा मनुजेषु भोगान् ।

देवेषु चोत्तमगुणा गुणभूषितागा

निर्दग्धकर्मपटलाश्च भवन्ति सिद्धाः ॥” १८२

२७८. वही, १०७।६७ ।

२७९. वही, १।१०२ और भी वही—५।१०३; ७।३९, ६-३९५; ८।५३०-५३२; १८।१३३-१३६; ३८।१४२-१४३; ६२।४०; ६१।२३; ६३।२६-२७; ७७।७१-७२, ७८।९३-९५; ८५।१७४, १००।८२ १०६।२४७-२४८; १२३।१६६-१६९ ।

२८०. वही, २।२५४ और भी वही, २।२५५-२५६; ११।१३९-१४०; २६।१६५-१७१; ६२।८४, १०१, १०२; ४३।१२५-१२६; ५३।२७३-२७४; ५६।३५-३६; ६२।९९-१००; ६५।८०-८१; ९७।१८९-१९२, १०३।९३; ११५।५६ ।

२८१. वही ३।३३८ और भी वही, ३।३९; ४५।४५, १०४-१०५; ५७।७३-७४ ।

२८२. वही ५।४०५ और भी वही, ५।४०६; ४२।४१; ६६।७२; ११२।९७-९८ ।

६. मन्दाक्रान्ता : (मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैम्भीरं नती तादृगुरु वेत्)

“भुक्त्वा भुक्त्वा विषयजनितं सौख्यमेवं महान्ती
लब्ध्वा जैनं भवशतमलध्वंसनं मुक्तिमार्गम् ।

याताः प्रायः प्रियजनगुणस्नेहपाशादपेताः
सिद्धिस्थानां निरुपमसुखं राक्षसा वानराश्च ॥”२८४

१०. रघोद्वता : (रान्नराविह रघोद्वता लगी)

“बालिचेष्टितमिदं क्षुणोति यो
भावतत्परमतिः शुभो जनः ।
नैष याति परतः पराभवं
प्राप्नुते च रविभासुरं पदम् ॥”२८५

११. शिखरिणी : (रसे खर्द्वं दिछन्ना यमनसभलागः शिखरिणी)

“सुसम्नद्धान् जित्वा तृणमिव समस्तानरिगणान्
पुरोपात्तात्पुण्यात् समधिगतसुप्राज्यविभवः ।
क्षयं प्राप्ते तस्मिन् विगलित-रुचिर्भष्टविभवो
बभूवासी शक्रो धिगतचपल मानुषसुखम् ॥”२८६

१२. दोषक : (दोषकवृत्तमिदं भभभाद्गौ)

“पश्यत चित्रमिदं पुरुषाणां
चेष्टितमूर्जितवीर्यसमृद्धम् ।
यच्चिरकालमुपाजितभोगा
यान्ति पुनः पदमुत्तममौख्यम् ॥”२८७

१३. वंशस्थ : (जती तु वंशस्थमुदीरितं जरी)

“भवन्ति कर्माणि यदा शरीरिणां
प्रशान्तियुक्तानि विमुक्तनाविनाम् ।
तदोपदेशं परमं गुरोर्मुखा-
दवाप्नुवन्ति प्रभवं शुभस्य ते ॥”२८८

२८३. पद्य० ६।५७१ और भी वही, ६।५७२; १।१३८२-३८३; २।११५-११६;
३।२३१-२३२; ४।४२; ४६।२३१-२३२; ५।७१-८०; ६।१४२-१४३ ।

२८४. वही ९।२२४ और भी वही १०।१७७-१७९ ।

२८५. वही, १२।३७५ और भी वही, १२।३७६; ४२।६८ ।

२८६. वही, १३।११० और भी वही, १३।१११-११३; ४२।४५; ५२।८४-८५;
५९।३२-३४ ।

२८७. वही, १४।३८० और भी वही, १४।३८१; २।११४५-४६, १५२, १६१, १६५;
४२।४४, ४५, ९९; ५०।५४-५५; ५८।४७, ६१।२०-२२, २४; ६६।८७; ६९।१८-१९; ८१।१२५-
१२६; ९६।७३; १०१।१७०, १७२ ।

१४. पृथ्वी : (जसी जसयला बसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः)

“कदाचिदिह जायते स्वकृतकर्मपाकोदयात्

मुख जगति सगमादभिमतस्य सद्बस्तुनः ।

कदाचिदपि सम्भवत्यमुभूतामसौख्य पर

भवे भवति न स्थितिः समगुणा यतः सर्वदा ॥”२८८

१५. विद्युन्माला : (सो मो गो गोविद्युन्माला)

“देवादेवैर्भक्तिप्रह्वैः पुष्पैरर्घ्यनागन्धैः ।

अर्चामुच्चैर्नीलं वन्द्य देवं भक्त्या त्वामर्हन्तम् ॥”२८९

१६. उपजाति : (इसके अनेक भेद होते हैं। यह ‘इन्द्रवज्रा’ तथा ‘उपेन्द्रवज्रा’

छन्दों के पाद जोड़कर बनता है—

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजानयस्ताः।)

“अथैवमुक्तो बरुणः स वीरः कृत्वाऽर्जुनं प्रावददेतमेव ।

विधालपुण्यस्य तवात्र लोके मूढो जनो निष्ठति वैरभावे ॥”२९०

१७. उपेन्द्रवज्रा : (उपेन्द्रवज्रा जनजास्तनो गौ)

“अहो महद्द्वैर्यमिदं त्वदीयं मुनेरिव स्तोत्रमहत्सयोरयम् ।

विहाय रत्नानि पराजितोऽहं त्वया यदभ्युन्नतमासनेन ॥”२९१

१८. इन्द्रवज्रा : (स्यादिन्द्रवज्रा यदि नौ जगौ गः)

“तन्निश्चितं मन्त्रिजनोऽवगत्य विभ्यातमगारचय महान्तम् ।

आनाय्य मध्येन्य मरीचिरभ्यं वैदूर्यमस्थापयदन्त्युदारम् ॥”२९२

१९. खग्धरा : (अभ्यैर्याणा त्रयेण त्रिमुनियत्रियुता खग्धरा कीर्तितेयम्)

२८८. पद्मपुराण १६।८२ और भा वही, १६।८३, ४२।३८ ।

२८९. वही, १७।२८, २८।१ और भी वही, ४२।५६ ।

२९०. वही, १७।२८ और भी वही, १९।९६-१००, १०६-१०८, ११०-११५, ११७-१३२; २१।१६७, १४८, १५०, १५१, १५५-१५८, १६०, १६२-१६४; २३।६०, ६१, ६४-६५, ३०।१७१; ३०।१८९, १९१, १९३-१९६, ३१।१०४-१०६, ३२।१६४-१६६; ४०।४८-४५; ४१।१६८-१६९; ४२।३८, ४०; ४३।११३, ११८, ५५।१६-१७; ४७।२९-४०; ४८।११५, ६५।६७-७९; ६६।८८-९३; ६७।२८, ७१।२-१२, ७२।९६-९७, ७४।११५-११६; ७५।६९-६९; ७६।६३-८८, ७९।६९-७०; ८३।१३६; ८४।३५, ८६।७७-८७, ८८।६३-६४; ८९।११५-११७, ९०।३९; ९७।१८८; १०८।५१-५२, १०९।१३१; ११०।९६-९५; ११८।१०५-१२३; १२१।२७-२८ ।

२९१. वही, १९।९८ और भा वही १९।१०३-१०५, १०९, १३३-१३८, २१।१४९, १५४, १५९, २३।६६, ३०।१७०, ५८।४८-४९, ६४।११६, ८३।१३३ ।

२९२. वही, २१।१५३ और भी वही, २३।६२-६३, ३०।१७०; ३२।१९०-१९२; ८४।३४, ९३।५५-५६ ।

“दग्ध्वा कर्मोष्कक्षं क्षुभितबहुविधव्याधिसम्भ्रान्तसत्त्व
मृत्युव्याघ्रातिभीमं भवविपुलसमुत्तुङ्गवृक्षोन्मूलण्डम् ।
माता निर्वाणमष्टौ हलधरविधव प्राप्य सविग्नभावाः
सम्प्राप ब्रह्मलोक चरमहलधरः कर्मबन्धावशेषात् ॥” २११

२०. भुजंगप्रयासः (भुजङ्गप्रयासं भवेद्यैश्चतुर्भिः)

“इति प्रोक्तमाने जगौ भूमिनाथः समघ्नेन्दुनाथप्रतिस्पर्द्धिवक्त्रः ।
भवत्वेव युद्धे पृथुश्रीणिश्रीम्य त्रिवर्णातिक्रान्तप्रसन्नोरुनेत्रे ॥” २१४

२१. द्रुतविलम्बितः (द्रुतविलम्बितमाह नभो भरो)

‘सकलविष्टपनिर्गतकीर्तयः परमरूपयोनिधिवर्धितः ।
पितृजनापितसंमदसम्पदः परमरत्नविभूषितविग्रहाः ॥” २१५

२२. वियोगिनीः

“विजहार महातपास्ततः कपिलश्चारुचरित्रवीर्यधः ।
परमार्थनिविष्टमानसः श्रमणश्रीपरिवीतविग्रहः ॥” २१६

२३. पुष्पिताग्राः (अयुजि नयुगरेकतो यकारो युजि च नजी जरगाश्च
पुष्पिताग्रा)

“इति वरगहनान्यपि प्रयाताः सुकृतसुसंस्कृतचेतसो मनुष्याः ।
अतिपरमगुणानुपाश्रयन्ते रविरुचयः सहसा पदाथलाभान् ॥” २१७

२४. इन्दुवदनाः (इन्दुवदना भजसतैः सगुण्युर्मै)

“देशकुलभूषणमुनी नु जगदक्यौ
सर्वभवदु स्वमनसङ्गमविमुक्तौ ॥
ग्रामपुरपर्वतमटम्बपरिरम्यान्

बभ्रतुरुत्तमगुणैरुपचिन्तागान् ॥” २१८

२५. लक्ष्मण्डः (ननननस-न्यगिति भवति रमनवकयतिरियम्)

क्वचिदिदमतिघनवरनगकलित
क्वचिदणुबहुविधतृणपरिनिचितम् ।

२६३. वही, २०।२४८ और भी वही, २०।२४९-२५०, २५।५८-५९; ४२।६०।

२९४. वही, २४।१३१ और भी वही, २४।१३२-१३५।

२९५. वही, २८।२७१ और भी वही, २८।२७२-२७५; ४२।६६, १०३।९७।

२९६. वही, ३५।१९४ और भी वही, ३८।१९५, ४२।७५-७९।

२९७. वही, ३६।१०३ और भी वही, ४२।६५, ८२, ६६।९६, ९५।

२९८. वही, ३९।२३५ और भी वही, ३९।२३६।

क्वचिवपगतभयमृगपुरुषटलम्

क्वचिदनिभययुतरुहितगहनम् ॥”२९९

२६ : शब्दीकच्छन्दः (ननससग)

“क्वचिदुहमदगजपातितवृक्षम्

क्वचिदभिनवतरुजालकयुक्तम् ।

क्वचिदलिकुलकलभङ्गकृतिरभ्यं

क्वचिदतिस्वररवसम्भूतकक्षम् ॥”३००

१७. प्रमाणिका : (प्रमाणिका जरी लगी)

‘अमी समीरणेरिते बरोष्ठि वृक्षमस्तके ।

विभान्ति गह्वरे लवा रथेः करा’ क्वचित् क्वचित् ॥”३०१

२८. तोटक : (बद तोटकमम्बुधिसैः प्रथितम्)

“अरुणं धवल कपिलं हरितं

वसित निभृतं सरवम् विरवम् ।

विरलं गहन सुभग विरस

तरुण पृथुक विषम सुसमम् ॥”३०२

२९. रुचिरा : (यह अतिरुचिरा ही है—जभसजग-चतुर्ग्रहैरतिरुचिरा जभसजगाः)

“अथ क्वचित् फलभरनगपादपः

क्वचित् स्थितैः कुसुमपटलैरलंकृतः ।

क्वचित् लग्नैः कलरवकारिभिश्चितो

विभात्यन्य वरमुन्वि दण्डको गिरिः ॥”३०३

३०. कोकिलकच्छन्दः (नजमजजलग-हयदशभिर्नजौ भजजला गुरु नकुटकम्
मुनिगुहकार्णवैः कृणयति वद कोकिलकम्)

“इह चमरीगणोऽयमतिदुष्टमृगोपगतः

प्रियतरबालिभिः प्रियतमैरनुयातपथः ।

अनतिविसृष्टमन्दगतिरिन्दुरुचिः पुरुष

प्रविशति गह्वरं न पृथुकाहितचञ्चलदृक् ॥”३०४

२९९. वही, ४२।४७

३००. वही, ४२।४८ ।

३०१. वही ४२।४७ और भी वही, ४२।४९ ।

३०२. वही ४२।४८ ।

३०३. वही ४२।४८ और भी वही, ४२।७२, ७३।१७८-१८०; ७६।४२-४३ ।

३०४. वही ४२।४९ ।

३१. अश्वत्थलसिखच्छन्दः (नजभजमजभलग—यदिह नजो भजो भजभलगास्त-
दश्वत्थलसितं हरार्कयतिमत् । इसके चार चरण होने चाहिये जब कि ‘पद्म-
पुराण’ में दो ही प्राप्त हैं । अतः यह पद्य चिन्त्य है ।)

“मृदुमरुवीर्यङ्गुरमल तटस्थतरुपुष्पसहितधरम् ।

भवशयनीय-रूप-सुभगं मुकेशि जलमत्र राजतितराम् ॥”^{१०५}

३२. भद्रकच्छन्दः (भरनरनरनग—श्री नरना रनावध गुरुदिगर्कविरमं हि
भद्रकमिति । इसके भी चार चरण होने चाहिये किन्तु दो ही प्राप्त हैं ।
अतः यह पद्य भी चिन्त्य है ।)

“हंसकुलामपेनपटलप्रभिन्नबहुपुष्पपुञ्जकलितम् ।

भृङ्गनिनादपूरितवना क्वचिद् विकटसंकटोपलब्धयैः ॥”^{१०६}

३३. वंशपत्रपतितच्छन्दः (दिङ्मुनिवंशपत्रपतितं भरनभनलगीः)

“रक्तशिलीघरदिमनिचिता क्वचिदियममला

भाति समुद्यदकंसमये दिगिव सुरपतेः ।

भिन्नजला क्वचिन्व हरितैरुपलकरचयैः

शैवलशङ्खयागमकृतो विरसयति खगान् ॥”^{१०७}

३४. हरिणी : (रसयुगहयैन्सो) श्री स्त्री गौ यदा हरिणी तदा)

“कमलनिकरेष्वत्र स्वेच्छाकृतातिकलस्वनं

निभृतपवनानांङ्गात् कम्पेष्वभीष्टकृतभ्रमम् ।

परमसुरभेगन्धाद् वक्त्रात्तवेव समुद्गतान्

मधुकपटल कान्ते क्षीबं विभाति रजोऽरुणम् ॥”^{१०८}

३५. जतुष्पटिका : (१६ मात्रा । यह मात्रिक छन्द है, इसे ‘अट्टिला’ या ‘पादा-
कुलक’ छन्द मान सकते हैं ।)

‘अत्र विभाति व्योमगवन्दम्

बहुविधजलभववनकृतचरणम् ।

प्रेमनिबद्ध तारविरावं

क्वचिदतिमदवशपरिचितकलहम् ॥”^{१०९}

३६. मत्तमयूर : (वेदैः रन्ध्रं मूर्तो यसंगा मत्तमयूरम्)

३०५, पद्मपुराण ४२।६२

३०६, वही, ४२।६५

३०७, वही, ४२।६६ और भी वही, १७।४०५-४०६

३०८, वही, ४२।६७

३०९, वही, ४२।६९ और भी वही ४२।७०

“एषा यातानेकविलासाकुलिताम्बु—

स्तंयाधीशं दीर्घचरभूरतिकान्ता ।

तद्वच्चारुस्फीतगुणीषं शुभचेष्ट

विष्टपसुन्दरमुत्तमशीला भरतेशम् ॥”^{३१०}

३७. प्रहृषिणी : (मनो जी गस्त्रिदशयतिः प्रहृषिणीयम्)

“नद्येषा विमलजला तरङ्गरम्या

हंसाद्यैः खगनिवहैः कृताश्रिताया ।

एतस्या प्रियतम ते मनोगत चे—

तोयेऽस्या किमिति रतिक्षणं न कुर्मः ॥”^{३११}

३८. अतिरुचिराछन्दः (अभमजग—चतुर्थैरतिरुचिरा अभस्जगाः । रुचिरा एवं अतिरुचिरा एक ही है, केवल नाम-भेद है ।)

“महानरानिति पुरुषुःखलङ्घितान्

पुराकृतादमुकृतकर्मजृम्भणात् ।

अहो जना भृगमवलोक्य दीयता

मतिः मदा जिनवर्धर्मकर्मणि ॥”^{३१२}

३९. अनुकूला : (भतनगग)

“यं भरताद्यैर्नृपतिभिर्दुः कारितपूर्वा जिनवरवासा ।

भङ्गमुपेतान् क्वचिदपि रम्यान् सोऽनयदेतानभिनवभावान् ॥”^{३१३}

४०. यह विषम वर्णक छन्द है जिसका प्रथम एवं द्वितीय चरण ‘प्रमाणिका’ (जरलग) का, तृतीय चरण ‘रुचिरगति’ (नननलग) तथा चतुर्थ चरण ‘कमलदलाक्षरी’ (नयनलग) छन्द का है । विषम छन्दों के नाम प्राप्त नहीं होते हैं, गेच्छक है ।

‘अयं मदानमेक्षणं करी करेणुचोदितः ।

मधुकर्गविषटितदर्शनचयः प्रविशति सीते कमलवनम् ॥”^{३१४}

४१. यह भी विषम छन्द है । इसका प्रथम चरण अज्ञातनाम (भरलग) है द्वितीय एवं चतुर्थ चरण ‘जलोद्धतगति’ (जसजस) के हैं, तृतीय चरण ‘निषध’ (भरस) छन्द का है ।

३१०. वही ४२।७१

३११. वही ४-१३४

३१२. वही, ४४।१५० और भी वही, ४४।१५१, ५१।५०-५१

३१३. वही २२।१७०-१८१

३१४. वही, ४२।३७

“ग्राहसहस्रचारविषमा बवचिच्च पुरुवेदसङ्गतजला ।

घोरतपस्विचेष्टितसमा बवचिच्च बहति प्रशान्तगुरियम् ॥” ३१५

४२. यह ‘प्रकीर्णक’ छन्द है। इसका नाम प्राप्त नहीं है (ममतनननननजधर) ।

“पूर्व चक्रे लक्ष्मीनाथः स्तनपनमभिनवघृतगजपतिवनपथपरिचितश्च मप्रतिनोदनम् ।

तस्मादूर्ध्वं नानास्वादप्रवरकिमन्यकुमुमसमुच्चयमुचिता च परिक्रियाम् ॥” ३१६

४३. स्कन्धकच्छन्दः (यह मात्रिक छन्द है। इसमें प्रथम एवं तृतीय चरण में १२ मात्राएँ और द्वितीय तथा चतुर्थ में २० मात्राएँ होती हैं।)

“दीर्घं कालं रत्नबा नाके गुणयुवतीभिः मुविभूतिभिः ।

मर्त्यक्षेत्रेऽप्यसम भूयः प्रमदवरललितवनिताजैः परिललितः ॥” ३१७

४४. यह भी विषम छन्द है। प्रथम एवं तृतीय चरण ‘अच्युत’ छन्द (रससलग)

का, द्वितीय ‘द्वनविनम्बित’ और ‘रथोद्धता’ का मिश्रण सा तथाचतुर्थ ‘रथोद्धता’ (रत्नलग) का है। यह कल्पित छन्द ही है।

“कर्मणांमदमीदृशमीहितं बुद्धिमानपि यदेति विमूढताम् ।

अन्यथा श्रुतमर्बेतिजायति कः करोति न हितं सचेतनः ॥” ३१८

४५. मालभारिणी : (यह अर्धसमवर्णिक छन्द है। प्रथम एवं तृतीय चरण में मसजग और द्वितीय तथाचतुर्थ चरण में—मभरय होते हैं।)

‘हलचक्रभूतोद्दिपोऽनयोच्च प्रथित वृत्तमिदं समस्तलोके ।

कुशल कलुष च तत्र बुद्ध्या शिवमात्मीकुस्तेऽशिवं विहाय ॥” ३१९

अलंकार अलंकार काव्य के उत्कर्षावायक होते हैं। यदि ये ‘अपृथग्यल-निर्धत्य’ हों तो कहना ही क्या ? इनके मुख्य तीन प्रकार हैं—शब्दालंकार, ‘अर्थालंकार’ और उभयालंकार। फिर इनके अनेक भेदोपभेद चलते हैं। रविप्रेम ने अपने काव्य में उत्कर्ष लाने के निमित्त यथावसर अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है। ३२०

रविप्रेम अपने ‘पद्मपुराण’ में सबकुछ समाविष्ट करना चाहते थे। उन पर

३१५. वही, ४२।६४

३१६. वही, ४२।७६ और भी वही ४२।७७, ८०, ८१ ।

३१७. वही, ११२।९५ और भी वही ११२।९६ ।

३१८. वही, ११४।५४ और भी वही ११४।५५

३१९. वही, १२३।१०० और भी वही, ११३।१७१-१७९, १८१-१८८

३२०. रविप्रेम ‘पद्मपुराण’ के अन्त में लिखते हैं—‘लक्षणालङ्करी वाच्यं प्रमाणं छन्द आगमः । सर्वं चात्मचित्तेन ज्ञेययज्ञमुखागतम् ॥’

कालिदास और बाण का अत्यन्त प्रभाव था जैसा कि हम द्वितीय अध्याय में दिखा चुके हैं। कालिदास की 'उपमा' और बाण के 'रूपक-उत्प्रेक्षा-परिसंख्या' आदि अलंकारों ने उन्हें पर्याप्त प्रभावित किया है। इनके अतिरिक्त अर्धान्तरन्यास भी बहुत प्रयुक्त हुआ है। अतः सर्वाधिक इन्हीं अलंकारों का प्रयोग उन्होंने किया है, शेष अलंकार इनकी अपेक्षा कम प्रयुक्त हुए हैं जिनमें कुछ के उदाहरण प्रस्तुत हैं।

'अनुप्रास' के उदाहरण तो प्रायः सभी पदों में प्राप्त हैं। अन्त्यानुप्रास के लिए 'पद्मपुराण' के नवम पर्व के १७७-१८४ पद विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। अनुप्रासों के अन्य भेदों के उदाहरण सहस्रो स्थलों पर मिलते हैं जिनका पूर्ण परिचय देना स्थान-कदर्थन ही होगा।

यमक : ततः पाणिग्रहस्तेन कृतः कौतुकमंगले।

कन्यायाः परलोकेन कृतकौतुकमंगले ॥ (पद्म० २४।१२१)

श्लेष : 'आसीतत्र पुरे राजा श्रेणिको नाम विश्रुतः।

देवेन्द्र इव विभ्राणः सर्ववर्णधरं घनुः ॥' १२१ (पद्म० २।३०)

उपमा : 'गुणदोषमाहारे गुणान् गूहन्ति साधवः।

क्षीरवारिसमाहारे हसाः क्षीरमिवास्त्रिलम् ॥' १२२

(पद्मपुराण, १।३५)

३२१. श्लेष के लिए देखें और भी—पद्म०, २।५।५२; ६।७।१, ५५५, ५५०; ९।११३; ११।३८०; ६।१९=८३।५७; १०।१।११; १०।७।६४ आदि

३२२. रविशेष ने 'पद्मपुराण' में एक-से-एक बढकर उपमाएँ दी हैं जिनके अनेक उदाहरण दिये जा सकने हैं किन्तु स्थानाभाव से उनके कुछ मकेन ही दिये जा रहे हैं। महद्दय-जन उपमाओं का आनन्द 'पद्मपुराण' के इन स्थलों पर ले सकते हैं—१।२६२।८४; ३।१५।१, १५४, १८७, १९७, २१६; ४।१३, ५।२४, ८५, १६८, १७३, २५३, २६०, ३०४, ३५९; ६।१७, १८, २३, १३४, ३३२, ३४५, ३५४, ४०६, ४०७, ४१४, ४२३, ४३३, ४५३, ४०९, ४४२; ७।६९, ८७, ९३, ९४, १३८, १७०, २२८, २५०, २७७, ३६१; ८।२५, ८६, १७७, १८२, १८४, २३४, ४३०, ४४९, ५१८; १०।११८, ११९, १४०; ११।७, २२, ८२, ९५, १०१, १२१, १४३, २५५, २६२, ३४७, ३७५, ३८०; १२।९०, ९८, २१०, २१७, २१९, २४६, ३१०, ३१२, ३१६, ३२४, ३३१, ३३५, ३६५, ३६९, ३७१; १३।२८, ३३, ७७; १४।२३, ६१, ७७, ११५, १५०; १५।४६, ५४, ९५, १५०, २००, २०८; १६।१५, ८७, ८९, १३३, १६७; १७।६४, ५०, २९६; १८।५३, ८३; १९।१६, २५, ३१, ३५, ४१, ५५, ४६, ५०, ५२, ५५, ५७, १०३, १२०, १३४; २०।१००, १५५, १६०, १६१, १७४, १७७, १७७, १८०; २३।६६; २४।९१, १०२, १०४; २६।११, १२, १७, १८, ५९, ६०, ६१, ६२, ८४, ८८; २८।१२, ६१, ६५, ११०, १३२, १३३, १६०, १९३, १९६, २३५, २६३; २९।०५, १९, १०२, १०४, ११६; ३०।२, १२, १७, ४९, १६५; ३१।१६२, १७५, १९१, २०४, २१७, २२६; ३२।२४, ५३, ६२; ३३।१४, ४८, १४७, १५९, २१२, २३२, २४०, २४३, २५१, २५२, २६३; ३४।३५, ६२, ८६, १०६; ३५।२२, १५७; ३६।२७, ५५, ७४; ३७।२६, ३७, ४०, ४७, ७६, ७७, १०२, १६, ११९, १५६; ३८।२६, ५८, ९१, १०३, १०९, ११४; ३९।२७, ३०, ४८, ५६, ५९, १५६,

प्रतीपः “पुष्पैः परमरूपेण हृष्यन् कान्तितो विभुम् ।
तिरस्कृत्यैव रवि दीप्त्या ज्यैस्त्वैर्येण मन्दरम् ॥” १२१
(पद्य० ५।३।६६)

अनन्वयः “रावणेन समं युद्धं लक्ष्मणस्य बभूव तत् ।
लक्ष्मेणेन समं युद्धं रावणस्य बभूव तत् ॥” १२४ (पद्य० ७।५।६)

कृष्णकः “स्तवकस्तमनग्राभिश्चलत्पल्लवपाणिभिः ।
समालिङ्गयन्त बल्लीभिर्भ्रमराक्षीभिरक्षिप्याः ॥” १२५
(पद्य० १।५।६५)

२०७: ४०।१४, ४९; ४१।१५१; ४२।७, ६१, ६२, ६५, ७१, ९७, १००; ४३।७६, ८८, ९१, १००; ४४।१,
२, ३९; ४५।४५, ७४, ८३, १२२, १४०; ४५।९४; ४६।१४, १०६, १४०, १६२; ४७।२७, ४५, ४६, ६१,
७७, ७९, ९८, ११४, ११८, १२१; ४८।४, ४८, ७६, ९१; ४९।१८-२४; ५१।१८; ५२।१४; ५३।२९,
३२, १२२, २१३, २१७, २२७, २४४, २४५, २४६, २४९, २६२, २७१; ५४।३२; ५४।४३-४६, ८९;
५८।३७; ६०।२३, ५०, ५४, ७०, ९४, १०३, १०९; ६१।८; ६२।२३, ३४, ६१, ६७, ७०, ८३, ८४ ६३।
३६; ६४।४३; ५४, ५९, ७४; ६५, ३८, ५२, ६०, ७४; ६६।११, १४, ७९; ६७।२६; ६८।२२; ६९।५;
७०।४५, ४८, ५७, ७८, ९३, ९४; ७१।३, ९, १०, २३, ५१, ६७, ७१, ८४, ९३; ७२।२५, २७, २८, ४६, ४८,
५६, ५८, ७१; ७३।३४, ३८, ३९, ५३, ५४, १२५, १५४; ७४।३०, ४६, ५०, ५१, ५२; ७५।२३; ७६।३०,
३५; ७७।११, १७, १८, १९; ७८।४; ७९।३२, ३५; ८१।१०४; ८३।२३, ६६; ८६।१५, ८९।५३, ८०;
९०।९, २८; ९४।३०, ३६, ३७; ९५।४९, ५२, ५४; ९६।३५; ९७।७३, ८४, १०१, १०९, १११; १०२।
८५, १०१, १०३।०; १०७।२३, २१, ६४; १०८।२२, २४, ३३; १०९।७, १८, ३०, ४७, १०१; १०९।
८, २६, २७, २९, ३३, ३६, ७५; १११।१८; ११२।२२, ४८-५२; ११३।२, १२, २४; ११४।१३, १६;
१२२।५४, ५९; १२३।३७, ५० आदि।

३२३ और भी देखें वही, ३।१००-१०१; ७।६६; २८।४; ६१।४; ८०।११८।

३२४ और भी देखें वही, ७९।५३।

३२५. कृष्णक के ‘पद्मपुराण’ में पद्म-पद्म पर उवाहन है जिनके कुछ सकेत प्रस्तुत हैं—

५।११७, २८०, ३०४, ३८०; ६।५७, ९७, ९८, २२३, ३३२, ३५०, ३६३, ४६५; ७।२००, २३१; ८।
१७३, २१६१।११८; १३।२२५; १५।६५, १७९-१८०; १६।३२, १३८, १६६; १८।२६; १९।३२,
६२, १२७; २०।१०१, १०२, १०८-१०९, २०४; २२।१४; २४।१००, ११८; २५।९, २६, १४, १९;
२८।२१३; ३०।५, १०, ४५, ८८, १०४, १६०; ३१।१२, २३५; ३५।१७९; ३७।४३, १२४; ३८।
४७, १३८; ३९।१२०, २१३; ४०।२३; ४१।११; ४४।२, १३०; ४८।१८७; ४७।८७; ४९।६२;
५४।१९; ६०।४१, ४९; ६१।२; ६२।१५ ६६।७८, ८३, ८५, ८६; ७१।१४, ६०; ७२।७०; ७३।३६,
४२, ४५, ५४, ६७; ९३।३१; ९५।१७-२७; ९७।८४; १०५।५३; १०८।४३, ५५; ११०।५६;
१११।६; ११२।१२; ११३। १८, ३१-३४; ११४।२२ आदि।

इनके प्रतिरिक्त मिलच्छकपकों और सांगकपकों के लिए ये स्थल भी देखिए—

६।२९०-२९२, ४०१, ४५०, ३५१; ९।६०-६२; ११।२८६-२८८; २१।३२-३५; ३१।६३-६४, ८६-
८९-३७।१६५; ३८।१३७; ३९।१२१-१२६; ४२।७८, ४४।८६; ४८।३१; ७३।१०७-११०;
९५।११-१६; १०६।१०५; १०९।८०-८२; ११०।८५-८८ आदि।

प्रतिशयोक्ति : “धृतोज्ञेन जटाभारश्छन्नाशेषदिगाननः ।

छायया तस्य सञ्जाता शर्वरीष तदा चिरम् ॥” (पद्म० ६।४४३)

दोषक : “नामा भवन्ति तिष्ठन्ति निघ्नन्ते शोचयन्ति च ।

हवस्त्वदन्ति बाधन्ते विवदन्ति पठन्ति च ॥”^{३३०}

(पद्म० २१।६१)

निदर्शना : “मृगैः सिंहवधः सोऽयं शिलानां पेयणं तिलैः ।

वधो गण्डूपदेनाद्देर्गजेन्द्रशसनं शुना ॥”^{३३१} (पद्म० २।२४७)

व्यतिरेक : “दहति त्वचमेवाको बहिरण्तश्च मन्मथः ।

अन्तर्द्विरस्ति सूर्यस्य मन्मथस्य न विद्यते ॥” (पद्म० २८।४५)

सहोक्ति : “मूर्च्छया पतिते तस्मिन्त्ववर्गस्यापतन्मनः ।

मूर्च्छायाश्च परित्यागादुत्थिते पुनरुत्थितम् ॥”

(पद्म० १२।२३५)

विनोक्ति : “पुनस्तदुद्बुत्य जगाद राजन् यथामुना रत्नवरेण हीनः ।

न शोभतेऽगारकलाप एष त्वया विनेदं भुवनं तथैव ॥”

(पद्म० २१।१५४)

समासोक्ति : “यत्रौषधिप्रभाजालैस्तमो दूरं निराकृतम् ।

चक्रे बहुलपक्षेऽपि समावेशं न रात्रिषु ॥” (पद्म० ६।७७)

परिकर : “हा वत्स, विनयाधार, गुरुपूजनतत्पर ।

जगत्सुन्दर, विख्यातगुण, क्वासि गतो मम ॥” (पद्म० १८।६६)

पर्यायोक्त : “जाता विषुद्धवंशेषु वरक्रीडनभूमयः ।

मा भूवन् विधवा भद्र, तवैता वरयोधितः ॥”^{३३२}

(पद्म० ३७।११८)

३१।२०२-२३२; ३३।२०२, २०३, २०४; ३४।२७-३४; ३६।३३-६८; ३७।४६, ७३; ३९।१२, १७, २९, ५८; ४१।१५३; ४२।२४-३७, ४३।८५, १२०; ४४।६३; ४६।१५५, १५८; ५०।१; ५२।२; ५४।११, ५०-५६, ५७; ५७।१९; ६०।१७, ८८, ९७, १०१; ६१।९, १२; ६२।४४-४५; ६४।५७; ६५।७५, ६६।१७, ७७; ७१।४३, ५०, ७३।३६, ४१-४२, १२५-१४०, १४७, १५०, ७४।११, ७९।५७, ८३।३१, ३४, ९५।१८, २०, २१; ९६।१; ९७।१३५; १००।२-७, २२-३१, ५३-८३; १०४।१४, ३९, ४०, ६२, १०८।३४; १०९।४, ७१; ११०।१३, १६, २१; ११२।८, १२, ६९ आदि ।

३३०. शीक का यह उदाहरण हम भाषा के विश्लेषण में देख चुके हैं, वे० पद्म० २१।५९-७१ ।

३३१. निदर्शना के लिए और भी देखिए—पद्म०, २।२३८-२४०; ६।२८१, १३।६२, १४।७५, ४१।६० आदि ।

३३२. पर्यायोक्त के लिए और भी देखिए—पद्म०, ६।८, ३९१; ७।२३, १६०; ८।१५६, १६।१२६; ४१।२३; ४७।७२, १३३; ५४।६५ आदि ।

- आश्लेष :** “न विषः स किमस्माकं क्रुद्धो नाथः करिष्यति ।
अथवा सप्रणामेषु देवो यास्मति मार्दवम् ॥”
(पद्य० ३७।१३५)
- बिरोधाभास :** “यत्र मातंगवामिभ्यः शीलवत्यश्च योषितः ।
श्यामाश्च पद्मरागिण्यो गौर्यश्च विभवाभ्याः ॥”^{३३३}
(पद्य० २।४५)
- बिलोचोषित :** “रूपं पश्यन् जिनस्यासी सहस्रनयनोऽपि सन् ।
तुष्टिमिन्द्रो न सप्राप त्रैलोक्यातिशयस्थितम् ॥”
(पद्य० ३।१७४)
- विषम :** “जटामुकुटभारः क्व, क्व चेदं प्रथमं वयः ।
विरुद्धसम्प्रयोगस्य लण्टारो यूयमुद्गताः ॥”^{३३४} (पद्य० ७।२७३)
- कारणमाला :** “प्राणिनो ग्रन्थसंगेन रागद्वेषसमुद्भवः ।
रागात् सञ्जायते कामो द्वेषाज्जन्तुविनाशनम् ॥
कामक्रोधाभिभूतस्य मोहेनाक्रम्यते मनः ।
कृत्याकृत्येषु मूढस्य मतिर्न स्याद्विवेकिनी ॥”
(पद्य० ११।१३६-१३७)
- सार :** “दुर्लभं सति जन्तुत्वे मनुष्यत्वं शरीरिणाम् ।
तस्मादपि सुरूपत्वं ततो धनसमृद्धता ॥
ततोऽप्यार्यत्वसम्भूतिस्ततो विद्यासमागमः ।
ततोऽप्यर्यज्ञता तस्माद् दुर्लभो धर्मसंगमः ॥”
(पद्य० ५।२३३-२३४)
- यथासंख्य :** “शोभयारवाक्षिहस्तानां अंगमामिव पद्मिनीम् ।
जयन्ती करिणी हंसीं सिंही च गतिविभ्रमैः ॥” (पद्य० ८।६६)
“अथै रथंभट्टनगैः पतङ्गिरतिरंहसा ।
अथवा रथा भटा नागा न्यपात्यन्त सहस्रशः ॥”
(पद्य० १२।२८३)
- वर्षाय :** “प्रभासमुज्ज्वलः कायो योऽयमासीन्महाबलः ।
जात. सम्प्रत्यसौ वर्षाहृतचित्रसमच्छविः ॥”^{३३५}
(पद्य० २१।१३५)

३३३. और भी—पद्य०, २।४६-४८, ४३-४४, ७।२६७; ९।१८१-१८४; २४।११२ आदि ।

३३४. विषम के लिए देखिए और भी—पद्य०, ९।११३; २३।६१; २८।१४५; १०७।३३; १२२।४५ ।

३३५. और भी—पद्य०, १५।२२१; २१।१३३-१३४; २३।४७-४८; २६।५२-५६; ३६।१००-१०१ ।

- परिसंख्या : “रत्नबुद्धिरमूढस्य मलमुक्तेषु साधुषु ।
पृथिवीभेदविज्ञानं पाषाणशकलेषु तु ॥”^{३३६} (पद्म० २।५५)
- परिवृत्ति : “मदिरायां परिन्वस्तं नारीमिमुं लसौरभम् ।
लोचनेषु निजो रागस्तासां मदिरया कृतः ॥” (पद्म० ७३।१३८)
- विकल्प : “कुरु सज्जी करं दातुमादातुं वायुधं करो ।
गुहाण चामरं शीघ्रं ककुभां वा कदम्बकम् ॥
शिरो नमय चापं वा नयाज्ञां कर्णपूरताम् ।
मौर्वीं वा दुस्तहारावामात्मजीवितदायिनीम् ॥
मत्पावजं रजो मूर्ध्नि शिरस्त्रमथवा क्रुध ।
षट्पाञ्चलिमुद्वृत्य करिणां वा महाचयम् ॥
विभुश्चेष्टुं धरिणीं वा भजैकं क्षेत्रकुन्तयोः ।
पश्य मेऽङ्घ्रिभ्रानखे वक्त्रमथवा सङ्गदर्पणे ॥”^{३३७}
(पद्म० ६।६०-६३)

- समाधि : “वारयन्ती वर्धं तस्य निश्चेष्टीकृतविग्रहा ।
मूर्च्छां कालं कियन्तं चिच्छकारोपकृतिं पराम् ॥” (पद्म० ७७।२)
- अर्थापत्ति : “यासां (धेनूनां) वर्चश्च मूत्रं च शुभगन्धं तुल्यकवत् ।
कान्तिवीर्यप्रदं तासां पयः केनोपमीयते ॥”^{३३८}
(पद्म० ३।३२२)

- काव्यलिंग : “पूच्छयमाना च यत्नेन मूच्छहितुं श्लयांगिका ।
शशाकं त्रपया वक्तुं न सा स्तिमितलोचना ॥” (पद्म० १५।२०२)
- अर्थान्तरन्यास : “तद्वरान्वेषणे तस्य ततः समताऽभवमिति ।
अत्यन्तव्याकुलप्रायः कन्यादुःखं मनस्विनाम् ॥”^{३३९}
(पद्म० १५।२३)

३३६. और भी—पद्म, ७।५३४-५३७ आदि ।

३३७. विकल्प के लिए देखिए और भी पद्मपुराण, २८।४६; ३३।२२९; ३७।३६ आदि ।

३३८. अर्थापत्ति के लिए देखिए और भी वही, ६।३४०; ७।१६, ३४४; १३।३६; १४।८८ २८।१८; ३७।११२; १३४; ५७।११ आदि ।

३३९. अर्थान्तरन्यास का तो कवि ने बहुत खुलकर आश्रय लिया है। सहस्र के लगभग उक्तिमां अर्थान्तरन्यास अलंकार की उदाहरण बनकर आयी हैं। कुछ के संकेत प्रस्तुत हैं—
पद्म०, १।२४, १०३; २।१६७, १८१; ३।७२; ४।३४, ३६, ९४, ९७, ९९; ५।१२१, २७६, ३०७, ३२८, ४०५, ४०६; ६।२४, ४३, ४९, १४४, १६७, १७१, २००, २११, २१६, २६७, २८६, ३१६, ३९४, ४५०, ४६३, ४८०, ४८१, ४८५, ४९६, ५०३; ७।५२, ६६, १६०, १८४, २०२, २२०, २४०, २८०, ३०३, ३०४, ३०६, ३१५, ३९४; ८।१०, ११, ३१, ४८, ४९, ५१, ७३, १०७, १५७, १७१, १८९, १९०, १९२,

सम्भावना (यद्यर्थे) 'अपि दिनकरदीप्तिः कौमुदी चन्द्रकान्तिः

सिंहायोक्तिः)

सुरपतिमहिषी वा कापि वा सा सुभद्रा ।

यदि भजति तदीयासङ्गशोभां कथञ्चिच्च—

नियतमतिमनोभास्तास्ततो वेदनीयाः ॥' (पद्म० २६।१७०)

स्वभावोक्तिः : राजा श्रीकण्ठ वानरों के साथ क्रीड़ा करता है। वानरों की चेष्टाओं का वर्णन कवि करता है:—

यूकापनयनं पश्यन् विनयेन परस्परम् ।

प्रेम्णा च कलहं रम्यं कृतस्त्रोत्कारनिस्वनम् ॥

कर्णान् विदूषकासक्तश्रवणाकारधारिणः ।

निताम्यकामलश्लक्ष्णानचलद्विपुषां स्पृशन् ॥'

(राजा तैत्साक रन्तु प्रववृते—इति शेषः ॥)^{१४०} (पद्म० ६।११५, ११७)

उदात्तः : 'अनेक वैभवशाली वस्तुओं के वर्णन में इसका प्रयोग देखा जा सकता है ।'^{१४१}

निरुक्तिः : जहाँ नामों की व्युत्पत्ति दी गयी है वहाँ इसके अनेक उदाहरण हैं ।

इनके संकेत हम इसी अध्याय में 'भाषा' उपशीर्षक में दे चुके हैं ।

निश्चयः : 'नामूनि शतपत्राणि न चैते वत्स तोयदाः ।

सितकेतुकृतच्छायाः सहस्राकारतोरणाः ॥

शृङ्गेषु पर्वतस्यामी विराजन्ते जिनालयाः ॥' (पद्म० ८।२७५-२७६)

मालोपमा : हसीव पद्मिनीखण्डे महिषीव महाह्रदे ।

सम्ये सारङ्गबालिव तन्नाभूत् साभिनायिणी ॥' (पद्म० ४३।६४)

उपर्युक्त अलंकारों के उदाहरण दिङ्मात्र प्रस्तुत कर दिये गये हैं । इनका वास्तविक आनन्द तो ग्रन्थ पढ़ते हुए ही आता है जब कि अलंकार अहमहमिकया

२२०, २२६, २३०, २३२, २८२, २९६, ३७३; १।३२, २०१, २०२, २०५; १।१३, २१, २६, ३२, १४७, १६३, १६५; ११।३०, ५६, ७४, १२३, १६६, १८५, १९८, २००, २०३, २०९, २१०, ३००, ३०५, ३७१, ३८१; १२।५०, १००, १०१, १४५, १३१, १३२, १६५, १७२, ३७५; १३।४, ३०, ४०, ६८, ६९, ९२; १५।२४, ३५, ५२, १०१, ११२; १६।३०, ५६, ६९, ११६, २३२; १८।४७, ७९; १९।११, ७९, ८९; २०।१६०, २१।११५, ११६, ११७, १३६, १६६, १४५; २३।६५, ६६; २४।१००; २५।४४ ५३।८५, ११, २६२, २६८, २८९; ५६।३६; ५७।६६; ५८।६८; ६०।६८, ८७, ९०; ६२।२७; ६३।१३, २३; ६४।१६; १।१, ६५।१६, ५५, ६६।३, २६, ५३, ८३, ८९; ६७।२७; ७२।६४, ९०, ७३।७४; ७६।१२, २६; ७७।६८, ६९, ९१।६८ आदि अनेक स्थल ।

३४०. और भी पद्मपुराण ६।११२-११८, २४५-२४७, ३६४-३७८; ८।२३-५२९; १५।४८; १६।२१७-२१९; २८।२१६-२६८; ४३।४९; ४३।१०९; ५७।३१; ६५।१८, ७९ आदि ।

३४१. यथा-यथा ३।११८-१२१; १११-३३७ आदि ।

अपनी चमत्कृति दिखाते हैं और अनेक संसृष्टि-संकर आते हैं। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और अर्थान्तरम्यास अलंकार तो जहाँ एक बार आरम्भ हो जाते हैं, फिर रुकने का कठिनता से ही नाम लेते हैं। इन सभी उदाहरणों से रविवेण के अलंकाराधिकार की पूर्ण परिपुष्टि हो जाती है।

गुण : गुण रस के धर्म होते हैं जिन्हें गुणवृत्ति से शब्दार्थ का धर्म भी कह दिया जाता है—

ये रसस्यागिनो धर्माः शीर्षादय इवात्मनः ।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ॥’

गुणवृत्त्या पुनस्तेषां वृत्तिः शब्दार्थयोर्मता ॥”^{१४२}

ये तीन माने गये हैं:—१-माधुर्य २-ओज तथा ३-प्रसाद। इन्हीं में अनेक आलंकारिकों द्वारा माने गये १०-१० और २४-२४ गुण अन्तर्भावित हो जाते हैं। माधुर्य कोमल रसों—संभोग शृंगार, वियोग शृंगार, करुण तथा शान्त में, ओज कठोर रसों—वीर, बीभत्स तथा रौद्र में एवं प्रसाद सभी में होता है। यहाँ दिखमात्र उदाहरण देकर हम ‘पद्मपुराण’ के गुणों पर विचार करेंगे।

‘पद्मपुराण’ में प्रकृति के वर्णनों में, सौंदर्य-वर्णनों में, वियोग-वर्णनों में तथा स्तुतिश्यों में ‘माधुर्य’ गुण के दर्शन होते हैं। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं:—

“बलयाना रणत्कारः कलालापसमन्वितः ।
तदा मनोहरो जज्ञे भ्रमरौघरबोपमः ॥
तस्यास्ते काम्यमानाया नेत्रके करतारके ।
मुकुले दधन् शोभां चलविन्दीवरस्थिताम् ॥”^{१४३}
“पुस्कोकिकलकलालापैर्जयशब्दमिवाकरोत् ।
वातकम्पितवृक्षाग्रे वज्रबाहोर्धराधरः ।
वीणाभकाररम्याणां भृङ्गाणां मदशालिनाम् ।
नादेन श्रवणी तस्य मानसेन सम हृती ॥”^{१४४}

“सफेनबलया लसत्प्रकटवीचिमालाकुला

विमदितसितासितारुणपयोजपत्राचिता ।

समुद्गतकलस्वनातिरुहसंगमासेविता

समं रघुकुलेन्दुना रतिमिवाकरोदापगा ॥''२४५

''जुगुञ्जुर्मञ्जवो गुञ्जा विनेदुः पटहाः पटु ।

नाम्बो नन्दनुरायतं चकवणुः काहलाः कलम् ॥''२४६

इनके अतिरिक्त मूल ग्रन्थ में अनेक स्थानों पर 'भावय' के दर्शन किये जा सकते हैं ।

'पद्मपुराण' में युद्ध के ऐसे बहुत से वर्णन हैं जहाँ शीघ्र के दर्शन किये जा सकते हैं । समासभूयस्कता तो पद-पद पर है जिसका सकेत हम भाषा का विवेचन करते हुए कर जाये हैं । यहाँ तो नाम-मात्र के लिए उदाहरण प्रस्तुत करते हैं:—

''दंष्ट्राकरालबदना स्फुरत्पिपनिरीक्षणा ।

मस्तकोर्ध्ववलत्पुच्छा नखक्षतवसुम्बरा ॥

कृतगम्भीरहुंकारा मारीवोपातबिग्रहा ।

लसत्लोहितजिह्वाभा विस्फुरद्देहधारिणी ॥''२४७

जहाँ तक 'प्रसाव' का सम्बन्ध है—पारिभाषिक शब्दों के स्थलों को छोड़कर सर्वत्र व्याप्त है । लम्बे-लम्बे समासों में भी प्रासादिकता है, छोटे वाक्यों में तो है ही, उदाहरणार्थ—

''हा वत्स, विधियोगेन महादुर्लभ्यमर्णवम् ।

उत्तीर्य संगतोऽभ्येतामवस्थामतिदारुणाम् ॥

अयि मद्भक्तिसच्चेष्टो मदर्थं सततोद्यतः ।

क्षिप्रं प्रयच्छ मे वाचं किं मौनेनावतिष्ठसे ॥

• • •

वव सौमित्रिः वव सौमित्रिरिन्द्रादं समुत्सुकः ।

लोकोऽपि हि समस्तो मे प्रक्ष्यति प्रेमनिर्भरः ॥

• • •

पर्यट्य पृथिवीं सर्वां स्थानं पश्यामि तन्मनु ।

यस्मिन्मवाप्यते भ्राता जननी जनकोऽपि वा ॥''२४८

२४५. वही, ४२।७२

२४६. वही, १०४।४६

२४७. व्याख्यानार्थ, पद्मपुराण, २२। ६६-६७

२४८. वही, ६३।४-५, ९, १५ ।

रीति और वृत्ति : रीति का लक्षण करने हुए विश्वनाथने लिखा है—‘पदसंघ-टना रीतिरङ्ग-संस्थाभिषेयवत् । उपकर्त्री रसादीनाम् ।’^{१४९} अर्थात् शरीर की अङ्गसंस्था के समान रीति होती है। रीति को ही प्रायः वृत्ति कहा जाता है अन्तर इतना है कि रीति का सम्बन्ध देश से है और वृत्ति का मन से। वृत्तियों के अम्मट ने तीन भेद माने हैं—१-यख्या, २-उपनागरिका, तथा ३-कोमला। रीतियों के चार भेद माने गये हैं—१-गौडी, २-वैदमी, ३-पांचाली तथा ४-लाटी। गौडी या यख्या ओजःप्रकाशकवर्णों का आढम्बर बाँधने वाली रीति है, वैदर्भी या उपनागरिका माधुर्यव्यञ्जक शब्दों की ललित रचना है, पाञ्चाली या कोमला थोड़े समासों वाली प्रसादव्यञ्जिका रचना है। लाटी वैदर्भी और पाञ्चाली के बीच की मानी गयी है।

‘पद्मपुराण’ में उपर्युक्त गुणों में उक्त रीतियाँ या वृत्तियाँ प्रयुक्त हैं जिनके उदाहरण ‘गुण’—प्रकरण में देखने चाहिए।

दोष : दोष काव्यात्मा रस के अपकर्षाघायक होते हैं। विशालकाय काव्यों में प्रायः कहीं न कहीं कोई दोष आ ही जाता है—‘सर्वथा निर्वोषस्यैकान्तम-सम्भवात्’^{१५०}। दोष के अनेक भेद होते हैं यथा—पदगत, पदांशगत, वाक्यगत, रसगत। इनके भी अनेक भेदोपभेद होते हैं।

‘पद्मपुराण’ में भी कुछ दोष आ गये हैं। जहाँ शास्त्रार्थ, धर्मोपदेश और नामावलियों के वर्णन आते हैं वहाँ ‘अंगिनोऽनुसन्धानमनङ्गस्य च कीर्तनम्’ के साथ अप्रतीतत्वादि दोष पर्याप्त मात्रा में आ गये हैं, दूसरे भारतीय दृष्टिकोण से सीता पूज्य हैं, स्थान-स्थान पर उनके स्तनों एवं कामोत्पादकत्व का व्याख्यान शायद किसीको ठीक न लगे। साथ ही हनुमान् के पिता का यद्यपि शृंगार-वर्णन बहुत अच्छा है किन्तु यह भी ‘पित्रोः सम्भोगवर्णनविवात्यन्तमनुचितम्’ वाली कोटि में रखा जा सकता है। तीसरे, उपाख्यानों में जहाँ एक-से-एक उपाख्यान निकलता जाता है, वहाँ भी पाठक भटक-सा जाता है। अस्तु, महाग्रन्थों में छोटे-मोटे दोषों का आ जाना अस्वाभाविक नहीं है। यह निश्चित है कि दोषों की अपेक्षा गुण ही इस काव्य में अत्यधिक समृद्ध रूप में उपलब्ध हैं। दोष का दिक्कमात्र उदाहरण प्रस्तुत हैं—‘क्वचिद्विभ्रान्तसत्त्वकं क्वचिद्विभ्रवसत्त्वकम्’ (४२।४६) वहाँ संयुक्ताद्यदीर्घ मानने पर छन्दोभंग होता है। अस्तु—‘महात्मनां दोषेऽधोवर्ण-मात्मनो दोषायैव’—इत्यलम्।

संवाद : पौराणिक काव्यों में वक्ता-श्रोता-योजना होने के कारण संवादों

की स्थिति अवश्यम्भावी है। मुख्य संवाद के अतिरिक्त कथा में और भी अनेक संवाद आते हैं। काव्य में संवादों के सद्भाव से ताजगी और एक-विशिष्ट विच्छिन्ति आ जाती है। संवादों का परीक्षण करते समय हमें उनकी स्वाभाविकता, व्यञ्जना-शीलता, अवसरानुकूलता, व्यावहारिकता, गत्यात्मकता एवं प्रभावशालिता पर विचार करना होता है। यहाँ हम 'पद्मपुराण' के संवादों पर संक्षिप्त विचार करेंगे।

'पद्मपुराण' में गौतम गणधर और राजा श्रेणिक के संवाद के अतिरिक्त अनेक संवाद आये हैं इन संवादों का नामग्राह्य इस प्रकार किया जा सकता है—
 श्रेणिक-गणधर-संवाद, ^{१५१} मय-चन्द्रनला-संवाद, ^{१५२} रावण-सहस्ररश्मि-संवाद, ^{१५३} नारद-पर्वतक-बसु-स्वस्तिमती-संवाद, ^{१५४} संवत-नारद-पुरोहित-संवाद, ^{१५५} उप-रम्भा-विचित्रमाला-संवाद, ^{१५६} विचित्रमाला-रावण-संवाद, ^{१५७} युद्धोक्ति, ^{१५८} सह-सार-सम्भन-संवाद, ^{१५९} रावण-अनन्तवल-संवाद, ^{१६०} प्रह्लाद-गवर्जय-संवाद, ^{१६१} बरुण-रावणदूत-संवाद, ^{१६२} पवनजय-अञ्जना-संवाद, ^{१६३} केतुमती-प्रहसित-संवाद, ^{१६४} चन्द्रगति-पुष्पवती-संवाद, ^{१६५} व-द्रगति-जनक-संवाद, ^{१६६} दशरथ-सुप्रभा-संवाद, ^{१६७} दशरथ-कंचुकी-संवाद, ^{१६८} दशरथ-भरत-संवाद, ^{१६९} राम-भरत-संवाद, ^{१७०} राम-अपराजिता-संवाद, ^{१७१} राम-सीता-संवाद, ^{१७२} पुरवासियों के भावालाप, ^{१७३} राम-भरत-केकया-संवाद, ^{१७४} भरत-शुनिभट्टारक-संवाद, ^{१७५} वज्रकर्ण-साधु-संवाद, ^{१७६} कपिल-राम-लक्ष्मण-संवाद, ^{१७७} लक्ष्मण-वनमाला-संवाद, ^{१७८} राम-सीता-लक्ष्मण-संवाद, ^{१७९} वनवासी-रामलक्ष्मण को देखकर नारियों के भावालाप, ^{१८०} लक्ष्मण-

३५१. पद्य० पर्व २,
३५२. वही, १०१५९-१६९
३५३. वही, पर्व १२
३५४. वही, १२११५-१३४
३५५. वही, १२१२६-२७३
३५६. वही, १५१२१-२१८
३५७. वही, १६१८६-९६
३५८. वही, २६११३६-१५५
३५९. वही, २९१२५-४०
३६०. वही, ३११२८-१५३
३६१. वही, ३११६६-१८३
३६२. वही, ३११२०४-२१४
३६३. वही, ३२१४६-१८३
३६४. वही, ३५१५४-७४
३६५. वही, ३६१५०-६२

३५२. वही, ८१३२-३०.
३५४. वही, १२१३६-६३
३५६. वही, १२१९९-११२
३५८. वही, १२१२६८-२७३
३६०. वही, १३१३-३१
३६१. वही, १६१३५-६०
३६४. वही, १८१५८-६३
३६६. वही, २८१२०१५१
३६८. वही, २९१४१-७१
३७०. वही, ३११५४-१६३
३७२. वही, ३११८४-१८५
३७४. वही, ३२११६-१३५
३७६. वही, ३३१८८-१०९
३७८. वही, ३६१४१-४९
३८०. वही, ३८१४८-५६

शत्रुघ्न-संवाद, ३८१ रावण-चन्द्रनखा-संवाद, ३८२ रावण-मन्दोदरी-संवाद, ३८३ मन्दोदरी-सीता-संवाद, ३८४ रावण-हनुमान्-संवाद, ३८५ भामण्डल-चन्द्रप्रतिम-संवाद, ३८६ राम-रावणदूत-भामण्डल-संवाद, ३८७ रावण-सद्दूत-संवाद, ३८८ पूर्णभद्र-मणिभद्र-राम-यक्ष-संवाद, ३८९ मन्दोदरी-रावण-संवाद, ३९० रावण-लक्ष्मण-संवाद, ३९१ रावण-लक्ष्मण-संवाद, ३९२ भरत-केकया-रामलक्ष्मण-राजा-संवाद, ३९३ राम-लक्ष्मण-शत्रुघ्न-संवाद, ३९४ शत्रुघ्न-सुप्रभा-संवाद, ३९५ कृतान्तवध-सीता-संवाद, ३९६ मदन-कुश-नारद-सीता-संवाद, ३९७ भामण्डलादि-सीता-संवाद, ३९८ रामकेवली-सीता-संवाद, ३९९

इन संवादों में कुछ संवाद तो महत्त्वपूर्ण नहीं कहे जा सकते हैं किन्तु कुछ विशिष्ट कहे जा सकते हैं। प्रायः दूतों के सम्भाषणों से रविवैष्णव का राजादिगतो-चिन्ताचारपरिज्ञान परिनिक्षित होता है, नारियों के परस्पर संलापों से उसका सहज-संवाद-सौष्ठव सिद्ध होता है और अन्य अनेक संवादों से उनका गतिशील-सम्बन्ध-संवाद-योजन सिद्ध होता है। राम-मुनि-संवाद तथा रावण-मुनि-संवाद आदि कुछ संवाद धार्मिक-प्रचार-प्रधान होने के कारण पाठक को रजित नहीं कर पाते। हनुमान्-सीता-संवाद एवं नागद-मदनकुश-संवाद से कथा की सूचना मिलती है।

गतिशीलता की दृष्टि से एक संवाद—‘चन्द्रगनि-पुण्यवती-संवाद’ प्रस्तुत है—

“पर स विस्मयं प्राप्तः पप्रच्छ प्रियदर्शना ।

कयाय जनितो नाथ पुण्यवत्या स्त्रिया गिशुः ॥

सोऽबोचद्भिते जातस्तवायं प्रवरः सुतः ।

प्रतीहि शशयं मा गास्त्वत्तो घन्या परा तु का ॥

३८१. वही, ३८।१०-११८

३८३. वही, ४६।४४-७०

३८५. वही, ५३।२३०-२५५

३८७. वही, ६६।२१-६०

३८९. वही, ७०।६८-१०१

३९१. वही, ७४।८७-९७

३९३. वही, ८३।६७-८८

३९५. वही, ८९।१९-३०

३९७. वही, १०२।७-८२

३९९. वही, १२३।६८-८५

३८२. वही, ४६।३१-३७

३८४. वही, ४६।७३-८६

३८६. वही, ६४।१८-३१

३८८. वही, ६६।६१-९५

३९०. वही, ७३।३८-१२४

३९२. वही, ७६।१७-२७

३९४. वही, ८९।१-१८

३९६. वही, ९७।१०५-४९

२९८. वही, १०४।२५-३५

साबोक्षप्रिय बन्ध्यास्मि कुतो मे सुतसम्भवः ।
 प्रतारितास्मि द्वैवेन किं मे भूयः प्रतार्यते ॥
 सोऽबोचद्देवि मा शक्नुं कार्षीः कर्मनियोगतः ।
 प्रच्छन्नोऽपि हि नारीणां जायते गर्भसम्भवः ॥
 साबोचदस्तु नामैवं कुण्डले त्वतिचारुणी ।
 ईदृशी मर्त्यलोकेऽस्मिन् सुरस्ते भवतः कुतः ॥
 सोऽबोचद्देवि नानेन विचारेण प्रयोजनम् ।
 शृणु तम्यं पतन्नेव गगनादाहृतो मया ॥” आदि^{४००}

प्रकृति-चित्रण : प्रकृति से चिर-सम्बन्ध होने के कारण कवि अपने काव्य में उसका चित्रण किया करता है। यह चित्रण अनेक रूपों में होता है यथा—
 (१) आलम्बन रूप में, (२) उद्दीपन रूप में, (३) संवेदनात्मक रूप में, (४) वातावरणनिर्माण के रूप में, (५) रहस्यात्मक रूप में, (६) प्रतीक के रूप में, (७) अलंकार के रूप में, (८) लोक-शिक्षा के रूप में, (९) दूती के रूप में तथा (१०) मानवीकरण के रूप में। हमारे आलोच्य ग्रन्थ में भी प्रकृति-चित्रण कई रूपों में हुआ है जिनका संक्षिप्त संकेत हम यहाँ कर रहे हैं। इनका पूर्ण विवरण हम वक्ष्यमाण ‘वर्णन’ शीर्षक में देंगे।

‘पद्मपुराण’ में प्रायः वातावरण-निर्माण के रूप में, उद्दीपन रूप में, लोकशिक्षा के रूप में, संवेदनात्मक रूप में तथा अलंकार रूप में अधिक प्रकृति-चित्रण हुआ है। शेष रूप कम ही आये हैं। प्रायः सूर्योदय-सूर्यास्त के वर्णन तो वातावरण निर्माण एवं संवेदनात्मक रूप में ही किये गये हैं। ऋतुवर्णनों में प्रकृति-चित्रण उद्दीपन रूप में प्रधान है। कमलकोप में भ्रमर के संपीड़न तथा ज्योतिर्विम्ब के लीन होने आदि के वर्णनों में प्रकृति लोक-शिक्षा-प्रदात्री के रूप में चित्रित है। इन सभी उदाहरणों की सूची ‘वर्णन’ शीर्षक में दी जा रही है।

वर्णन : ‘लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म काव्य’^{४०१} के लिए वर्णन अत्यावश्यक होते हैं। वर्णनों से कवि की ‘निपुणता’ का ज्ञान होता है जो ‘लोक शास्त्र एवं काव्यादि के अवलक्षण’^{४०२} से आती है तथा जिसके विषय में कहा गया है—

४००. पद्मपुराण २६।१३६-१४१।

४०१. देखिए—काव्यप्रकाश १।२

४०२. वही, १।३

‘छन्दोव्याकरणकलालोकस्थितिपदपदार्थविज्ञानात् ।

युक्तायुक्तविवेको व्युत्पत्तिरियं समासेन ॥

विस्तरस्तु किमप्यस्त इह बाध्यं न बाधकं लोके ।

न भवति यत्काव्याङ्ग सर्वज्ञत्वं ततोऽप्येषा ॥’^{४०१}

इसी निपुणता-कांचन के निकषप्रावा होते हैं वर्णन जिनकी स्वाभाविकता एवं मनोहरता उनका जीवातु है। वर्णनों की कोई इयत्ता नहीं है तथापि उनकी एक सूची साहित्य-दर्पणकार विश्वनाथ ने इस प्रकार दी है जिसे सभी सहृदय स्वीकार करते हैं—

‘सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः ।

प्रातर्मध्याह्नमृगयाशीलर्तुवनसामराः ॥

सम्भोगविप्रलम्भी च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ।

रणप्रयाणोपयमा मन्त्रपुत्रोदयादयः ॥

वर्णनीया यथायोग्यं साङ्गोपाङ्गा अमी इह ॥’^{४०४}

दण्डी ने भी इससे पहले विविध वर्णनों की अनिवार्यता पर काव्य-लक्षण में बल दिया था। इस प्रकार स्पष्ट है कि काव्य में, विशेषतः वर्णनात्मक महाकाव्य में वर्णनों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ हम ‘पद्मपुराण’ के वर्णनों की स्वाभाविकता, समुचित विस्तृति, रसमयता तथा मनोहारिता का परीक्षण करेंगे।

‘पद्मपुराण’ को आदि से अन्त तक पढ़ने पर वर्णनों का प्राचुर्य स्पष्ट ही दृष्टिगोचर हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि रविवेण के हृदय से वर्णन अहमहमिका से उसी प्रकार आतुरता से प्रकट हो रहे हैं जैसे किसी पर्वत से निर्भर प्रवाह। यदि ‘पद्मपुराण’ के लगभग २५० वर्णनों के आधार पर ‘रविवेण’ को वर्णनों का ‘बादशाह’ अथवा ‘जैनसाहित्य का बाण’ कहा जाय तो कोई अनौचित्य न होगा। एक ही वस्तु का कई बार नवीन प्रकार से वर्णन करते हुए रविवेण सहृदय को बलात् आकर्षित कर लेता है। उन सभी वर्णनों का पृथक्पृथक् वर्णन करना अत्यधिक स्थानसापेक्ष है अतः संक्षिप्त सूचीबद्ध विवरण देना ही अधिक औपयिक समझा जा रहा है—

१. आत्मपरिचय

(१) कवि का आत्म-निवेदन^{४०५}

४०३. उद्धट, काव्यालंकार १।१८, १९

४०४. साहित्यदर्पण ६।३२२-३२४

४०५. पद्मपुराण, १।१५-२२

(२) पद्मपुराण-माहात्म्य-वर्णन ४०९

२. वार्षिक वर्णन—

(१) समवसरण-वर्णन, ४०७	(२) जितेन्द्र-मन्दिर-वर्णन, ४०८
(३) जिन-पूजा वर्णन, ४०९	(४) शास्त्रार्थ-वर्णन, ४१०
(५) जैन-मुनि-वर्णन, ४११	(६) धर्म के फल, ४१२
(७) धर्म का विशेष कथन, ४१३	(८) पर्व-वर्णन, ४१४

३. स्थान-वर्णन—

(१) भगवद्देश-वर्णन, ४१५	(२) राजगृह-नगर-वर्णन, ४१६
(३) लंका-नगरी-वर्णन, ४१७	
(४) सुप्रभाकालस्थ-भरत-क्षेत्र वर्णन, ४१८	
(५) द्वीपस्थानगर-पर्वतादि-वर्णन, ४१९	
(६) वानरद्वीप-वर्णन, ४२०	(७) किष्कुपुर-नगर-वर्णन, ४२१
(८) स्वयम्भूतनगर-वर्णन, ४२२	(९) किष्किन्धनगर-वर्णन, ४२३
(१०) ग्राम-नगर-वर्णन, ४२४	(११) क्षेमाञ्जलि-नगर-वर्णन, ४२५
(१२) अलंकारोदय-नगर-वर्णन, ४२६	(१३) महेंद्र-नगर-वर्णन, ४२७

४०६. वही, १३२।१६६-१८७ ४०७. वही, २।१३४-१४२।

४०८. वही, २।५८-९६, ३।२२४-२३०, ४।२७-३२, ६।११-२०; ८।६०-७-१०; ८।७०-७४, ११।२५-४८।

४०९. वही, ६।११-३, १।८०-१०, ९।६८-४३।

४१०. वही, १।१३६-२४२।

४११. वही, ६।७०-२९२; २।१९१-९४, ३।१९-३; ३।८३।८३-८४, ५।१६-१७; ६।३३-३४, ४९-५१, १०६-१०७; ४।१३-१६; १०।१००-९३ १।१६६-१८१।

४१२. वही, १।१४७-१६० तथा और भी अनेक स्थान।

४१३. वही, १।१६४-२४०।

४१४. वही, २।११-६

४१५. वही, २।१-३२।

४१६. वही, २।३३-४९।

४१७. वही, ४।१०४-१७७, ५।११-२१८, १।२६४-३६०; ५।७३-७६; ४।१०६-११६।

४१८. वही, ३।६०-६३।

४१९. वही, ६।६२-६९।

४२०. वही, ६।७०-१०१।

४२१. वही, ६।१२२-१३३।

४२२. वही, ७।२७-३४०।

४२३. वही, ९।८-९।

४२४. वही, ३।५४-५६।

४२५. वही, ३।८-१२-६४।

४२६. वही, ४।२०-२७।

४२७. वही, ५।४-७।

- (१४) दक्षिमुख-द्वीप-नगर का वर्णन, ४२८
 (१५) नव-निर्मित अयोध्या-नगरी का वर्णन, ४२९
 (१६) सन्धुघ्न-निर्मित-नगरी का वर्णन, ४३०

४. प्रकृति-वर्णन—

- (१) सन्ध्या-सूर्यास्त-चन्द्रोदय-रात्रिमुख-वर्णन, ४३१
 (२) सूर्योदय प्रभात-वर्णन, ४३२
 (३) पर्वत (विपुलाचल, त्रिकूट, कौलाम आदि)-वर्णन, ४३३
 (४) बापी-वर्णन, ४३४
 (५) नदी (नर्मदा, शबरी, गंगा आदि)-वर्णन, ४३५
 (६) वन (भीम, महावन, दण्डक, दवापद आदि)-वर्णन, ४३६
 (७) उपवन-वर्णन, ४३७ (८) वृक्ष-वर्णन, ४३८
 (९) समुद्र-वर्णन, ४३९ (१०) वसन्त-ऋतु-वर्णन, ४४०
 (१०) वर्षा-ऋतु-वर्णन, ४४१ (१२) शरद-ऋतु-वर्णन, ४४२
 (१३) हेमन्त-ऋतु-वर्णन, ४४३ (१४) ग्रीष्म-वर्णन, ४४४

४२८. वही, ५१।१-८ ।	४२९. वही, ८१।११४-१२३ ।
४३०. वही, ९२।८३-८९ ।	
४३१. वही, २।२००-२१८, ८।६०२-४०४, १०।५२-५६, १३३-१३५, १६।१५०; १७।२२७-२२३; १९।११, ३०-३२, ३१।२१९-२२२; ७३।१५-१२९ ।	
४३२. वही, ३।१४१-१४९; ८।४३३; २१।९९-१०४, ४६।१०५-१०८; १९५। ९०-९३ ।	
४३३. वही, २।१०२-१०८; ३।३०९-३३८, ५।१५२-१६५; ९।१३६-१४४, २१।८२- ८८, ३८।१४-१५ ।	
४३४. वही, ८।९०-९४, ४६।१६०-१६२, १०५।१०-१३ ।	
४३५. वही, १०। ९-६४, ३२।३२-३५, ९७।९६-१०० ।	
४३६. वही, ६।११०-५१७; ७।२५७-२६१, ८।२२-२४, ३३।२२-३३; ४१।३-४, ४२।५-१०१, ४६।१४१-१४९; ६४।५४-५९, ९७।८२-१४, ९९।३०-३४, ९९।४७-५५; १२।२१८-३३ ।	
४३७. वही, ५३।१४-१८ ।	४३८. वही, ६।९१-१०६ ।
४३९. वही, ८।५०८-५०९ ।	
४४०. वही, १५।५५-७३, १५।११-२३, २१।८२-८८ ।	
४४१. वही, ११।३५७-३६९; २२।५०-६५; ३५।३५-३९; ६४।७३; ११२।१-१२ ।	
४४२. वही, २२।७४-८३, ४३।१-११; ६४।७१, ११२।१३-१८; ३०।१-६ ।	
४४३. वही, ३१।६३-७५ ।	४४४. वही, ६४।७२ ११२।२-८ ।

(१५) सरोवर-वर्णन, ४४५

५. नारी-सौन्दर्य-व्यापार-आलाप-वर्णन—

- (१) रानी चेलना का वर्णन, ४४६
- (२) नाभिराज-पत्नी मरुदेवी का वर्णन, ४४७
- (३) गर्भवती मरुदेवी की परिचर्या का वर्णन, ४४८
- (४) विजयार्द्ध-पर्वत की नगरियों की स्त्रियों का वर्णन, ४४९
- (५) वानर-दर्शनब्रह्म-भयकातर गुणवती का वर्णन, ४५०
- (६) केकसी का नखशिख-सौन्दर्य-वर्णन, ४५१
- (७) गर्भवती केकसी का वर्णन, ४५२
- (८) मन्दोदरी का सुनियोजित नखशिख-सौन्दर्य-वर्णन, ४५३
- (९) हरिवेण-दर्शनोन्मत्त स्त्रियों का वर्णन, ४५४
- (१०) दशानन-दर्शनोत्सुक-पुरांगनाओं का वर्णन, ४५५
- (११) मदनाक्रान्त-उपरम्भा का वर्णन, ४५६
- (१२) अप्सराओं का नखशिख-सौन्दर्य-वर्णन, ४५७
- (१३) निकृष्ट तथा उत्कृष्ट स्त्रियों का वर्णन, ४५८
- (१४) अंजना-मुन्दरी का नखशिख-सौन्दर्य-वर्णन, ४५९
- (१५) पद्मरागा-सौन्दर्य-वर्णन, ४६०
- (१६) हनूमद्दर्शनोत्सुक नारियों की व्याकुलता का वर्णन, ४६१
- (१७) दिव्यस्त्री-पद्मलवण्डरूपक, ४६२
- (१८) केकया की कलाओं का वर्णन, ४६३
- (१९) पुरुषवेणी कल्याणमाला का वर्णन, ४६४

४४४. वही, १६।१०३-१०६।

४४७. वही, ३।९१-१११।

४४९. वही, ३।३२१-३३५।

४४९. वही, ७।१४९-१५७।

४४३. वही, ५।७।७२।

४४५. वही, ८।५२३-५२७।

४५७. वही, १४।१३७-१४६।

४५९. वही, १५।१६-२१, १४०-१४६।

४६१. वही, १९।१२२-१२४।

४६३. वही, २४।५-८३।

४४६. वही, २।७१।

४४८. वही, ३।११२-१२०।

४४०. वही, ६।१६८-१७०।

४५२. वही, ७।२०४-२०८।

४५४. वही, ८।२।१-२२३।

४५६. वही, १२।९७-१११।

४५८. वही, १४।२९२-३०७।

४६०. वही, १९।१०८-१०९।

४६२. वही, २१।३२-३५।

४६४. वही, ३४।३-७।

- (२०) राम-लक्ष्मण-दक्षिणी नारियों के भावालापों का वर्णन, ४५५
- (२१) सीता-सौन्दर्य-वर्णन, ४६६
- (२२) नृत्यकारिणी सीता का वर्णन, ४६७
- (२३) न.गदत्ता की कामोद्दीपक चेष्टाओं का वर्णन, ४६८
- (२४) सीता-नखनिल-वर्णन, ४६९
- (२५) मुग्धव की तेरह पुत्रियों का वर्णन, ४७०
- (२६) हनूमहर्षण-विस्मय-नारी-समालाप-वर्णन, ४७१
- (२७) विशल्या-सौन्दर्य-वर्णन, ४७२
- (२८) रावण को समझाने के लिये मन्दोदरी के गमन का वर्णन, ४७३
- (२९) मन्दोदरी की शोभा का वर्णन, ४७४
- (३०) सीता की गर्भावस्था का वर्णन, ४७५
- (३१) लवणाकुश-दर्शनोत्सुक-नारी-कुतूहल-वर्णन, ४७६
- (३२) नारी-वार्तालाप-वर्णन, ४७७
- (३३) तपस्विनी सीता का वर्णन, ४७८
- (३४) राम के तप में विघ्न डालने वाली कन्याओं की शृंगार-चेष्टाओं आदि का वर्णन, ४७९

६. पुरुष के सौन्दर्य-वैभव-व्यापारों के वर्णन :

- (१) राजा श्रेणिक का वर्णन, ४८०
- (२) महावीर जिनेन्द्र का वर्णन, ४८१
- (३) मुप्तोत्थित राजा श्रेणिक के शय्या त्याग कर शयनागार से बाहर आने का वर्णन, ४८२
- (४) सामन्त-वर्णन, ४८३

४६५. वही, ३८/४८-४९

४६७. वही, ३९/४४-४६

४६९. वही, ४४/६०-६५

४७१. वही, ५३/१७३-१७७

४७३. वही, ७३/३२-३७

४७५. वही, १००/१९-१६

४७७. वही, १०७/५३-६६

४७९. वही, १२२/४९-६०

४८१. वही, २/७२-१०१

४८३. वही, ३/२-५

४६६. वही, २६/६६५-१७१

४६८. वही, ३९/१८८-१९२

४७०. वही, ४७/१३६-१४७

४७२. वही, ६५/७४-७६

४७४. वही, ७३/४०-४३

४७६. वही, १०३/७७-९६

४७८. वही, १०९/७-१६

४८०. वही, २/५०-७०

४८२. वही, २/२५४-२५६

- (५) ऋषभ-तारुण्य-वर्णन, ४८४
 (६) विजयाद्वैपर्वतस्थित विद्याधरों के आवासों तथा समृद्धि का वर्णन, ४८५
 (७) भरत चक्रवर्ती के ऐश्वर्य का वर्णन, ४८६
 (८) भरत की राज्य-समृद्धि का वर्णन, ४८७
 (९) महोदधि के दीक्षा-ग्रहण के समय व्याकुल परिजनों के भावालापों का वर्णन, ४८८
 (१०) श्रीमाला के स्वयंवर में स्थित विविध राजकुमारों का वर्णन, ४८९
 (११) इन्द्र के प्रताप और ऐश्वर्य का वर्णन, ४९०
 (१२) माली-प्रभाव-वर्णन, ४९१
 (१३) केकसी के भावी पुत्रों के प्रताप का वर्णन, ४९२
 (१४) रत्नश्रवा-प्रताप-वर्णन, ४९३
 (१५) रावण-प्रताप वर्णन, ४९४
 (१६) रावणादि की विद्यामिद्धि, अनावृत यक्ष के द्वारा बिघ्न तथा उनकी विद्या-प्राप्ति का वर्णन, ४९५
 (१७) रावण-परिजनोत्सास-वर्णन, ४९६
 (१८) रावण-स्नान-वर्णन, ४९७
 (१९) रावण-सौन्दर्य-वर्णन, ४९८
 (२०) पवनजय-सौन्दर्य-वर्णन, ४९९
 (२१) राम-लक्ष्मण-वर्णन, ५००
 (२२) दशरथ-पुत्रों के मिथिला-नगरी-प्रवेश का वर्णन, ५०१
 (२३) पृथ्वीधर के नगर में प्रवेश करते हुए राम-लक्ष्मण का वर्णन, ५०२

४८४. वही, ३।२२४-२३०

४८६. वही, ४।६१-६६

४८८. वही, ६।३३९-३४८

४९०. वही, ७।१९-३२

४९२. वही, ७।८६-९४

४९४. वही, ७।२१३-२२२

४९६. वही, ७।३४७-३५१

४९८. वही, ११।३२२-३३७

५००. वही, २५।२७-३३

५०२. वही, ३६।९६-१००

४८५. वही, ३।३०९-३३२

४८७. वही, ४-७८-८४

४८९. वही, ६।३८१-४२६

४९१. वही, ७।३३-३६

४९३. वही, ७।१३३-१४४

४९५. वही, ७।२६२-३०९, ३२४-३३५

४९७. वही, ९।३५९-३६६, ७२।११-१७

४९९. वही, १५।४९-५१

५०१. वही, २२।२७१-२७५

- (२४) अतिवीर्य-प्रताप-वर्णन, ५०३
- (२५) राम-स्वरूप-वर्णन, ५०४
- (२६) विद्याधरकुमार-वर्णन, ५०५
- (२७) शासनदेव-वर्णन, ५०६
- (२८) रावण-भवन-वैभव-वर्णन, ५०७
- (२९) राम-लक्ष्मण-स्नान-वर्णन, ५०८
- (३०) राम-लक्ष्मण-वैभव-वर्णन, ५०९
- (३१) वज्रजंघ-प्रताप-वर्णन, ५१०
- (३२) बालक-लवणाकुश-वर्णन, ५११
- (३३) विद्याप्राप्ति-मदनाकुश-वर्णन, ५१२
- (३४) राममुनि-स्वभाव-वर्णन आदि ५१३

७. सम्भोग-क्रीडा तथा उत्सव-आत्योद आदि के वर्णन :

- (१) महारत्न की उद्यान-केलि का वर्णन, ५१४
- (२) सुन्दरियों के साथ तडित्केश के विलास का वर्णन, ५१५
- (३) मन्दोदरी के साथ रावण की केलि का वर्णन, ५१६
- (४) छ. सहस्र कुमारियों के साथ रावण की जलकेलि का वर्णन, ५१७
- (५) सहस्ररश्मि की जलकेलि का वर्णन, ५१८
- (६) पवनजय-अजना-सम्भोग-वर्णन, ५१९
- (७) सीता-राम-लक्ष्मण की वन-क्रीडा का वर्णन, ५२०
- (८) सैनिक-विलास-वर्णन, ५२१
- (९) द्रोण-वर्षा-शीतानुसार राम-लक्ष्मण के विलास का वर्णन, ५२२

५०३. वही, ३७।३३-३६

५०४. वही, ७०।३१-३३

५०७. वही, ७१।१६-४१

५०९. वही, ८३।२-३३

५११. वही, १००।२२-३१

५१३. वही, १२०।१५-३५

५१५. वही, ६।२२७-२३५

५१७. वही, ८।९५-११०

५१९. वही, १६।१७९-२१३

५२१. वही, ७३।१५८-१७७

५०४. वही, ४९।५१-६३

५०६. वही, ७०।५९-६७

५०८. वही, ८०।७०-७५

५१०. वही, ९८।१५-२५

५१२. वही, १००।५३-८३

५१४. वही, ५।२९७-३०४

५१६. वही, ८।८४-८९

५१८. वही, १०।६५-८४

५२०. वही, ३१।३३-३५

५२२. वही, ११२।१-१८

- (१०) नाभिराज-जन्मोत्सव-वर्णन, ५२१
- (११) इन्द्र द्वारा नाभिराज के अभिषेक-मण्डनोत्सव का वर्णन, ५२४
- (१२) श्रीमाला के स्वयंवर-उत्सव का वर्णन, ५२५
- (१३) सहस्रार के पुत्र इन्द्र के जन्मोत्सव का वर्णन, ५२६
- (१४) इन्द्र के विजयोत्सास का वर्णन, ५२७
- (१५) दशानन-जन्मोत्सव-वर्णन, ५२८
- (१६) केकया-स्वयंवर-समारोह-वर्णन, ५२९
- (१७) सीता-स्वयंवर-समारोह-वर्णन, ५३०
- (१८) दशरथपुत्रों के मिथिला-नगरी-प्रवेश-समारोह का वर्णन, ५३१
- (१९) उत्सव मनाने का वर्णन, ५३२
- (२०) सुरप्रभ द्वारा राम-लक्ष्मण-सीता के स्वागत का वर्णन, ५३३
- (२१) मुनिमुक्त जिनेन्द्र के पंचकल्याणक का वर्णन, ५३४
- (२२) लक्ष्मण के अभिषेकोत्सव का वर्णन, ५३५
- (२३) राम-लक्ष्मण के नगरीप्रवेश-समारोह का वर्णन, ५३६

८. युद्ध, सेना, यात्रा, उपद्रव तथा तत्सम्बद्ध वर्णन :

- (१) भरत-बाहुबलि-युद्ध-वर्णन, ५३७
- (२) किष्किन्ध-अन्धक की क्षुब्ध बानर सेना का वर्णन, ५३८
- (३) बानर-विद्याधर-युद्ध-वर्णन, ५३९
- (४) माली द्वारा पीड़ित सामन्तों की प्रार्थना पर इन्द्र-विद्याधर की रण-सज्जा एवं माली से युद्ध का वर्णन, ५४०
- (५) वैश्रवण की रणयात्रा एवं रावण से युद्ध का वर्णन, ५४१
- (६) चतुरंग सेना का वर्णन, ५४२

५२३. वही, ३।१६०-१७२

५२४. वही, ६।३५९-३८०

५२७. वही, ७।१६१-१०६

५२९. वही, २४।८७-९८

५३१. वही, २८।२७१-२७५

५३३. वही, ४०।२-२४

५३५. वही, ८८।२६-३७

५३७. वही, ४।६८-७३

५३९. वही, ६।४४७-४६७

५४१. वही, ८।१९६-२४२

५२८. वही, ३।१७३-२००

५२६. वही, ७।१४-१८

५२८. वही, ७।२१२

५३०. वही, २८।२०६-२४९

५३२. वही, ३६।९३-९५

५३४. वही, ७८।६२-६३ के मध्य का गद्य

५३६. वही, ८२।२७-५४

५३८. वही, ६।४३४-४४६

५४०. वही, ७।६८-९६।

५४२. वही, ८।५०७

- (७) रावण की सेना का वर्णन, ५४१
- (८) सहस्ररश्मि-रावण-युद्ध-वर्णन, ५४४
- (९) इन्द्र की युद्ध-सज्जा का वर्णन, ५४५
- (१०) इन्द्र-सेना का युद्ध-वर्णन, ५४६
- (११) युद्धस्थल का वर्णन, ५४७
- (१२) इन्द्र और रावण के विविध शस्त्रास्त्रों से विकट युद्ध का वर्णन, ५४८
- (१३) विजयीरव्यशालिनी सेना का वर्णन, ५४९
- (१४) रावण एवं वरुण की सेना के युद्ध का वर्णन, ५५०
- (१५) कैकया-स्वयम्बरोपरान्त राजाओं से दशरथ के युद्ध का वर्णन, ५५१
- (१६) म्लेच्छों से राम-लक्ष्मण के युद्ध का वर्णन, ५५२
- (१७) खरदूषण-लक्ष्मण-युद्ध-वर्णन, ५५३
- (१८) विराधित-सहित लक्ष्मण के खरदूषण से युद्ध का वर्णन, ५५४
- (१९) युद्धस्थल की भयंकरता तथा बीभत्सता का वर्णन, ५५५
- (२०) महेन्द्र-हनूमान्-युद्ध-वर्णन, ५५५
- (२१) रावण की चतुरंगिणी सेना का वर्णन, ५५७
- (२२) अनेक राजाओं के अनेक बार युद्धों का वर्णन, ५५८
- (२३) युद्धयात्रा-वर्णन, ५५९
- (२४) लक्ष्मण-रावण-युद्ध तथा युद्ध-वेष्टा-वर्णन, ५५९
- (२५) लक्ष्मण-शक्ति पर क्षुब्ध अयोध्या की युद्ध-सज्जा का वर्णन, ५६०
- (२६) विद्याधर-कुमारों की लंका के लिए युद्ध-यात्रा का वर्णन, ५६१
- (२७) वीरों के युद्धार्थ प्रस्थान का वर्णन, ५६२
- (२८) रावण-लक्ष्मण-युद्ध-वर्णन, ५६३
- (२९) शत्रुघ्न-भष्म-युद्ध-वर्णन, ५६६

४४३. वही, १०१३९-४१

४४४. वही, १२११८-११९

४४७. वही, १२११९-३०६

४४९. वही, १२१३४५-३६१

४४९. वही, २४११०१-१२

४४३. वही, ४४१५१-५८

४४४. वही, ४७११-४

४४७. वही, ४६१२-१४

४४९. वही, ४६०११-१२

४६१. वही, ७०११६-२३

४६३. वही, ७४११६-११४

४४४. वही, १०११०७-१३२

४४६. वही, १२११९४-११८

४४८. वही, १२१३१७-३४४

४४०. वही, १९१४१-६८

४४२. वही, २७१४६-८५

४४४. वही, ४४११-३०

४४६. वही, ४०११४-३६

४४८. वही, ६०११-१४१

४६०. वही, ६३१७२२

४६२. वही, ७३११७८-१७७

४६४. वही, ८९१४९-९५

- (३०) लवणांकुश-दूध-मुद्ग-वर्णन, ५९५
 (३१) लवणांकुश-दिविजय-वर्णन, ५९६
 (३२) लवणांकुश-रणयात्रा-वर्णन, ५९७
 (३३) राम-लक्ष्मण की सेना के वैभव का वर्णन, ५९८
 (३४) बज्रजंघ की सेना सहित लवणांकुश के राम से युद्ध का वर्णन, ५९९
 (३५) राम-लक्ष्मण से लवणांकुश के विविध शस्त्रास्त्रों से युद्धका वर्णन, ५९०
 (३६) आकाश-यात्रा-वर्णन, ५९१
 (३७) इन्द्र की यात्रा का वर्णन, ५९२
 (३८) माली की यात्रा का वर्णन, ५९३
 (३९) वैश्रवण की यात्रा का वर्णन, ५९४
 (४०) राक्षस-यात्रा-वर्णन, ५९५
 (४१) ब्राह्मण-नारद-कलहू तथा यज्ञ-ध्वंस का वर्णन, ५९६
 (४२) सिहोदर की सभा के शीघ्र का वर्णन, ५९७
 (४३) उपद्रव के समय नर-नारियों के भावालापों का वर्णन, ५९८
 (४४) अग्निप्रभदेव द्वारा उपसर्ग का वर्णन, ५९९
 (४५) वनध्वंस-वर्णन, ६००
 (४६) राम के क्रोध का वर्णन, ६०१
 (४७) युद्ध के लिए विदा होते समय वीरों तथा उनकी पत्नियों के भावा-
 लापों का वर्णन, ६०२
 (४८) साढ़े चार करोड़ कुमारों के लंका से रणप्रयाण का वर्णन, ६०३
 (४९) राम की सेना के रणप्रयाण का वर्णन, ६०४
 (५०) विद्याधर-कुमारों के आगमन पर लंकावासियों की आकुलता का

५६५	वही, १०१।२६-५८
५६७	वही, १०२।८६-११५
५६९	वही १०२।१५४-२००
५७१	वही, ५।६७-१७४
५७३	वही, ७।३७-४०
५७५	वही, ८।५०४-४०७
५७७	वही, ३३।२३०-२३६
५७९	वही, २९।१८८-१९२
५८१	वही, ५५।४०-४६
५८३	वही, ५७।४२-६७

५६६	वही, १०१।६८-१०९
५६८	वही, १०२।१३९-१५३
५७०	वही, १०३।२-३०
५७२	वही, ६।१३५-१३९
५७४	वही, ७।२३०-२३३
५७६	वही, ११।२५३-२७७
५७८	वही, ३३।२४७-२६८
५८०	वही, ५३।१९०-२१५
५८२	वही, ५७।३-४३
५८४	वही, ५८।१-४३

वर्णन, ५८५

(५१) कुमारों के उपश्रव का वर्णन, ५८५

(५२) पदाति-सैनिक वर्णन, ५८७

(५३) लंका में अंगदादि के द्वारा उपश्रव का वर्णन, ५८८

(५४) कुम्भकर्ण द्वारा बरुण के नगर की लूट का वर्णन, ५८९

६. विरह तथा विलाप-वर्णन :

(पुरुष-विरह) (१) हरिषेण-विरहावस्था-वर्णन, ५९०

(२) पवनजय-कामवशा-वर्णन, ५९१

(३) पवनजय-विरहावस्था-वर्णन, ५९२

(४) भामण्डल-विरहावस्था-वर्णन, ५९३

(५) मदनाक्रान्त-रावण की अवस्था का वर्णन, ५९४

(६) राम-विरह-वर्णन, ५९५

(स्त्री-विरह) (७) अंजना-विरहावस्था-वर्णन, ५९६

(८) विरहक्षाममुत्ती अंजना की दयनीय दशा का वर्णन, ५९७

(९) विरहक्षीण अंजना के पवनजय से साक्षात्कार का वर्णन, ५९८

(१०) निष्कासित अंजना की अवस्था तथा वनभ्रमण का वर्णन, ५९९

(११) सीता-विरहावस्था-वर्णन, ६००

(१२) आगमिष्यत्पतिका विरहिणी सीता की दशा का वर्णन, ६०१

(पुरुष-विलाप) (१३) भाई अन्धक के लिए किष्किन्ध के विलाप का वर्णन, ६०२

(१४) लक्ष्मण-शक्ति पर राम के विलाप का वर्णन, ६०३

(१५) रावण की मृत्यु पर विभीषण के विलाप का वर्णन, ६०४

(१६) सीता-त्याग पर राम के विलाप का वर्णन, ६०५

५८५ बही, ७०।३१-३३

५८७ बही, ७०।४-७

५८९ बही, ११।४१-६८

५९० बही, ८।३०८-३१५

५९२ बही, १५।१०-२७७

५९४ बही, ४६।१०७-१९२

५९६ बही, १६।२-२४

५९८ बही, १६।१६८-२७२

६०० बही, ५४।१७-२२

६०२ बही, ६।४७१-४७८

६०४ बही, ७७।५-८

५८६ बही, ७०।५१-५८

५८८ बही, ७१।५२-८०

५९१ बही, १५।९५-१००

५९३ बही, २८।२२-४७

५९५ बही, ४८।२-२२

५९७ बही, १६।८४-८६

५९९ बही, १७।४४-५०; १७९९-१०८

६०१ बही, ७९।३१-४८

६०३ बही, ६३।३-२०

६०५ बही, ९९।५९-५९

- (१७) सीता-त्याग पर लक्ष्मण के विलाप का वर्णन, ९०६
 (१८) लवणांकुश-दर्शन पर राम के विलाप का वर्णन, ९०७
 (१९) लक्ष्मण की मृत्यु पर राम के विलाप का वर्णन, ९०८
 (स्त्री-विलाप) (२०) अंजना-विलाप-वर्णन, ९०९
 (२१) केतुमती-विलाप-वर्णन, ९१०
 (२२) वनगमन के समय राम माता के विलाप का वर्णन, ९११
 (२३) अनंगकुसुमा-विलाप-वर्णन, ९१२
 (२४) लक्ष्मण-शक्ति पर सीता के विलाप का वर्णन, ९१३
 (२५) रावण की मृत्यु पर उसकी स्त्रियों के विलाप का वर्णन, ९१४
 (२६) मन्दोदरी-विलाप-वर्णन, ९१५
 (२७) कौशल्या-विलाप-वर्णन, ९१६
 (२८) वन में परित्यक्त सीता के विलाप का वर्णन, ९१७
 (२९) शम्भूक-वध पर चन्द्रनला के विलाप का वर्णन आदि ९१८

१०. अन्य वर्णन :

- (१) हस्ति-वर्णन, ९१९
 (२) अशोकवृक्षतलस्थ-सिंहासन-वर्णन, ९२०
 (३) ग्रध्या-वर्णन, ९२१
 (४) विविध रानियों के स्वप्नों का वर्णन, ९२२
 (५) विजयाष्टमिवंतस्वित-विद्याधरावास-समृद्धि-वर्णन, ९२३
 (६) बानर-वर्णन, ९२४ (७) विवाह-वेदीस्थ-चित्र-वर्णन, ९२५

६०६. वही, १९।८८-१०३

६०८. वही, १९६।५-४४

६१०. वही, १८।६४-७२

६१२. वही, ४९।१८-१६

६१४. वही, ७७।२२-४३

६१६. वही, ८१।७-९

६१८. वही, ४९।७५-८९

६०७. वही, १०३।४८-५४

६०९. वही, १७।६३-७९; १८७६-८३

६११. वही, ३१।१६७-१७०

६१३. वही, ६४।७-१३

६१५. वही, ७८।८-९१

६१७. वही, ९७।१५३-१८२

६१९. वही, २।११४-२२३; ८।४१६-

४२२, ७।७१-७३,

६२०. वही, १।१४३-१५२

६२१. वही, २।२१९-२२४; १६।२३९-२४०

६२२. वही, ५।१२३-१३९, ७।७५-८३; २५।२-३, २५।१२-१५; ९४।३-१०

६२३. वही, ३।३०९-३३८

६२४. वही, ६।१०७-११९

६२५. वही, ६।१६३-१६६

(८) नरक-वर्णन, ६२९	(९) शकुन-अपशकुन-वर्णन, ६२७
(१०) नगर-प्रासाद-वर्णन, ६२८	(११) पुष्पक-विमान-वर्णन, ६१९
(१२) कौलास-कम्पन-वर्णन, ६३०	(१३) वैकिकिक-शरीर-वर्णन, ६११
(१४) यन्त्र-वर्णन, ६३२	(१४) व्याकुल-चक्रवाकी-वर्णन, ६१३
(१६) सिंह-वर्णन, ६३४	(२७) व्याघ्री-वर्णन, ६१५
(१८) जीव-क्रिया-वर्णन, ६३६	(१६) अश्व-वर्णन, ६३०
(२०) राम-जन-गमन पर पुरवासियों के भावालापों का वर्णन, ६३८	
(२१) विविध-व्यंजन-वर्णन, ६३९	(२२) परब-बाह्य कपिन-वर्णन, ६४०
(२३) पत्र-वर्णन, ६४१	(२४) नृत्य-वर्णन, ६४२
(२५) मुनि-क्रोध-वर्णन, ६४३	(२६) रथ-वर्णन, ६४४
(२७) स्फुट-प्रवृत्ति-दृश्य-वर्णन, ६४५	(२८) चक्ररत्न-वर्णन, ६४६
(२९) गज-उपद्रव-वर्णन, ६४७	(३०) शिविका-वर्णन, ६४८
(३१) सज्जित-रामकथा-वर्णन, ६४९	(३२) तपस्विनी-सीता-वर्णन, ६५०
(३३) श्मशान-वर्णन, ६५१	(३४) सैनिक-वार्तालाप-वर्णन, ६५२

इस प्रकार स्पष्ट है कि ‘पद्मपुराण’ एक वर्णन-भरा काव्य है। उपर्युक्त सूची में समागत वर्णनों के अतिरिक्त और भी अनेक संक्षिप्त वर्णन हैं, किन्तु वे अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं। ‘पद्मपुराण’ के वर्णनों में एक विशिष्ट विच्छिन्नता है, एक

६२६. बही, ६३०६-३११ ३३।९५-९९ १०५।११६-१३८ १२३।१-११

६२७. बही, ७।४२।४८ १६।०९-८३ ५४।६९-५४ ५०।६९-७२ ७३।१८-२१ ९७।७५-७७

६२८. बही, ८।२५-२६ १।१।१८-१३२

४९।२-६ ११।१६३-६७

६२९. बही, ८।२५३-२५८

६३०. बही, ९।१३६-१४४

६३१. बही, १४।१३४-१३६

६३२. बही, ६।५४१

६३३. बही, १६।१०७-११३

६३४. बही, १७।२०४-२३८

६३५. बही, २२।८५-९०

६३६. बही, २१।५९-७१

६३७. बही, २८।६४-७१

६३८. बही, ३२।२०५-२१४

६३९. बही, ३२।१३-१६

६४०. बही, ३५।३५-३९

६४१. बही, ३७।३२-३६

६४२. बही, ३७।१००-११२

६४३. बही, ४१।८५-९१

६४४. बही, ४२।१-४ ७४।५-९

६४५. बही, ५३।२२४-२२८

६४६. बही, ७५।४३-४७

६४७. बही, ८३।११०-११५

६४८. बही, ९९।१-३

६४९. बही, १०२।१२-३९

६४९. बही, १०९।७-१६

६५०. बही, १०९।१३-१५

६५२. बही, ११८।५५-५९।

अनोखा आकर्षण है, सहृदय को रमाने की विलक्षण शक्ति है, कवि की निपुणता है, रसोपकारकता है, आलंकारिकता है तथा अवसरोचित भाषा का मंजुल प्रयोग है जिसकी पुष्टि हम निम्नोद्धृत उदाहरणों से करेंगे।

‘पद्मपुराण’ के कुछ विशिष्ट वर्णन

‘पद्मपुराण’ के वर्णनों में कुछ बहुत ही विशिष्ट और मनोहारी हैं। यहाँ हम कुछ शीर्षकों में रविवेष के वर्णनों पर दृष्टिपात करके उसके वर्णन-कौशल का परिचय प्राप्त करेंगे। वर्णनों की परीक्षा करने के लिए हम निम्नलिखित शीर्षकों में विभक्त वर्णनों को लेंगे।

(१) नगर-वर्णन, (२) ऋतु-वर्णन, (३) नदी-सरोवर-समुद्र-वर्णन, (४) सौन्दर्य-वर्णन, (५) पूर्वानुराग-जलक्रीड़ा-वर्णन तथा (६) युद्ध-वर्णन।

‘पद्मपुराण’ में नगर-नगरियों के अनेक चार चित्र उपलब्ध होते हैं जिनका उल्लेख हमने पहले कर दिया है। यहाँ केवल मगध देश के ‘राजगृह’ नगर एवं लंका के वर्णनों को ही उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है—

“तत्रास्ति सर्वतः कान्तं नाम्ना राजगृहं पुरम् ।
 कुसुमामोदसुभगं भुवनस्येव यौवनम् ॥
 महिषीणा महर्षयंकुङ्कुमाञ्चिताविग्रहैः ।
 धर्मान्तःपुरनिर्भासं घत्ते मानसकर्षणम् ॥
 मरुदुद्धूतचमरैर्बालिव्यजन-शोभितं ।
 प्रान्तैरमरराजस्य च्छायां यदवलम्बते ॥
 सन्तापमपरिप्राप्तैः कृतमीश्वरभार्गवैः ।
 मनुजैर्यत्करोतीव त्रिपुरस्य जिगीषुताम् ॥
 सुधारससमासङ्गपाण्डुरागार-पक्विभिः ।
 टङ्ककल्पितशीतांशुशीलाभिरिव कल्पितम् ॥
 मदिरामत्तवनिता - भूषणस्वनसभृतम् ।
 कुबेरनगरस्येव द्वितीय सन्निवेशनम् ॥
 तपोवन मुनिश्रेष्ठैर्वेश्याभिः काममन्दिरम् ।
 लासकैर्नृतभवन शत्रुभिर्यमपत्तनम् ॥
 शस्त्रिभिर्वीरनिलयोर्भिलाषमणिरधिभिः ।
 विद्याधिभिर्युरोः सद्य बन्दिभिर्चूतंपत्तनम् ॥
 गन्धर्वनगरं गीतशास्त्रकौशलकोविदैः ।
 विशानग्रहणोद्युक्तैर्बन्दि विचक्षकर्मणः ॥

साधूनां सङ्गमः सद्भिर्भूमिलांसस्य वाणिजैः ।
 पञ्चरं सरणप्राप्तैर्विजयविनिमित्तम् ॥
 वातिकैरमुरच्छिद्रं विदग्धैर्विटमण्डली ।
 परिणामो मनोज्ञस्य कर्मणो मार्गवर्तिभिः ॥
 चारुणैस्तसवावासः कामुकैरप्सरःपुरम् ।
 सिद्धलोकैश्च विदितं यत्सदा सुखिभिर्जनैः ॥
 यत्र मातङ्गगामिन्यः शीलवत्यश्च योषितः ।
 श्यामाश्च पद्मरागिण्यो गौर्यश्च विप्रबाश्रयाः ॥
 चन्द्रकान्तशरीराश्च शिरीषसुकुमारिकाः ।
 भुजङ्गानामगम्याश्च कञ्चुकावृतविग्रहाः ।
 महालावण्ययुक्ताश्च मधुराभाषतत्पराः ।
 प्रसन्नोज्ज्वलवक्त्राश्च प्रमादरहितेहिताः ॥
 कलत्रस्य पृथोर्लक्ष्मीं दधतेऽथ च दुविधाः ।
 मनोज्ञा नितरां मध्ये सुवृत्ताश्चायति गताः ॥
 लोकान्तपर्वताकार यत्र प्राकारमण्डलम् ।
 समुद्रोदरनिर्भासपरिखाकृतवेष्टनम् ॥
 आसीत्तत्र पुरे राजा श्रेणिको नाम विश्रुतः ।
 देवेन्द्र इव बिभ्राणः सर्ववर्णधरं धनुः ॥ १५९

[अर्थात् उस (मगध देश) में सब ओर से सुन्दर तथा पुष्पों की सुरभि से मनोहर, ससार के यौवन के समान ‘राजगृह’ नामक नगर है। वह नगर धर्म अर्थात् यमराज के अन्तःपुर के समान सदा मन को अपनी ओर आकर्षित करता रहता है। क्योंकि जिस प्रकार यमराज का अन्तःपुर केसर से युक्त शरीर को धारण करने वाली सहस्रों महिषियों (भैसों) से युक्त होता है उसी प्रकार वह भी केशर से लिप्त शरीर वाली सहस्रों महिषियों (रानियों) से पूर्ण रहता है। उस नगर के प्रदेश यत्र-तत्र बालव्यजनों (छोटे पक्षी) से सुशोभित थे जिनमें मरुत् (बायु) के द्वारा चमर हिलते रहते थे जिनके कारण वह इन्द्र की शोभा को प्राप्त कर रहा था क्योंकि इन्द्र के पास भी बालव्यजन रहते हैं तथा उनमें मरुत् (देवों) के द्वारा चमर कम्पित रहते हैं। वह नगर, मानों त्रिपुर नगर को जीतना ही चाहता है क्योंकि जिस प्रकार त्रिपुर नगर के निवासी मनुष्य ईश्वरमार्गणों (महादेव के बाणों) से सन्तप्त हैं उस प्रकार यहाँ के निवासी ईश्वरमार्गणों (वनिक वर्ग की याचना) से सन्तप्त नहीं हैं। वह सफेद बूने से पुते हुए भव्य महलों की पंक्ति से

ऐसा लगता है मानो टाँकियों से गढ़े चन्द्रकान्त-मणियों से ही बनाया गया हो। वह नगर मदिरा के नक्षे में मस्त स्त्रियों के आभूषणों की भँकारों से सदा भरा रहने के कारण कुबेर की नगरी अलकापुरी का प्रतिबिम्ब ही जान पड़ता है। उस नगर को श्रेष्ठ मुनियों ने तपोवन, वेश्याओं ने काम का मन्दिर, नृत्यकारों ने नृत्य-भवन, शत्रुओं ने यमराज का नगर, शस्त्रधारियों ने वीरों का घर, पाषाणों ने चिन्तामणि, विद्याधियों ने गुरु का भवन, बन्धीजनों ने धूर्तों का नगर, संगीत-शास्त्र में निपुण लोगों ने गन्धर्वनगर, विज्ञानग्रहण में तत्पर लोगों ने विश्वकर्मा का भवन, सज्जनों ने सत्समागम का स्थान, व्यापारियों ने लाभ की भूमि, शरणागतों ने वज्रमय लकड़ी से निर्मित-सुरक्षित पंजर, समाचार-श्रेयकों ने असुरों के बिल जैसा रहस्यपूर्ण स्थान, चतुर जनों ने बिटों का समूह, सभीचीन मार्ग में चलने वालों ने किसी मनोश कर्म का मुफल, चारणों ने उत्सवों का निवास, कामियों ने अप्सराओं का नगर और सुखीजनों ने सिद्धों का लोक माना था।

वहाँ की स्त्रियाँ मातंगगामिनी (१. चाण्डालगामिनी, २. गजगामिनी) होकर भी शीलवती थी; ब्यामा (१. काली, २. तरुणी) होकर भी पद्मरागिणी (१. पद्म के समान लाल आभा वाली, या २. कमलो में अनुराग रखने वाली अथवा ३. पद्मरागमणियों से युक्त) थी; गोरी (१. पार्वती, २. गौरवर्ण वाली) होकर भी विभवाश्रया (१. महादेव के आश्रय से रहित, २. वैभवयुक्त) थी; चन्द्रकान्त-शरीर वाली (१. चन्द्रकान्त-मणिनिर्मित शरीर वाली, २. चन्द्रमा के समान प्रिय कान्ति से युक्त शरीर वाली) होकर भी शिरीष के पुष्प के समान कोमल थी; भुजंगों (१. सर्पों, २. गुण्डों) के द्वारा अगम्य होती हुई भी वे कचुकावृतविग्रहा (१. कंचुली से ढके शरीर वाली, २. चालियों से ढके शरीर वाली) थीं; महा-लावण्य (१. अन्यधिक खारेपन, २. अत्यधिक तारुण्य) से युक्त होकर भी मीठा बोलने में तत्पर थी, प्रसन्न तथा उज्ज्वल मुखां वाली तथा प्रमादरहित चेष्टाओं वाली थीं; दुर्बिध होकर भी स्त्री-सम्बन्धी भारी लक्ष्मी को धारण करती थीं सुवृत्त होकर भी आयति को प्राप्त करती थीं (अर्थात् वे अत्यन्त सुन्दर थीं, सदाचारयुक्त थीं तथा उत्तम भविष्य से सम्पन्न थी)। उस नगर का कोट मनुष्य-लोक के अन्त में स्थित मानुषोत्तर पर्वत के समान जान पड़ता था तथा समुद्र के समान गम्भीर परिखा उसे चारों ओर से घेरे हुए थी। उसमें देवेन्द्र-सदृश राजा श्रेणिक रहता था।

इसी प्रकार लंका का एक सक्षिप्त-सा वर्णन लीजिए:—

“तुगम्राकारयुक्तां तां हेमसद्मसमाकुक्षाम्।

कैलासशिखराकारैः पुण्डरीकैर्विराजिताम्॥

विजिगीः कुट्टिमतलैरालोकेनावभासतीम् ।
 पद्मोद्यानसमायुक्तां प्रपादिकृतभूषणाम् ॥
 शैत्यासयैरलंतुंगैर्नानावर्णसमुज्ज्वलैः ।
 विभूतिषां पवित्राञ्च महेन्द्रनगरीसमाम् ॥
 लंका दृष्ट्वा समासन्नां सर्वे चैचरपुंगवाः ।
 हंसद्वीपकृतावासा बभूवुः परमोदयाः ॥६९४

‘ऋतु-वर्णन’ की दृष्टि से ‘पद्मपुराण’ के एक वर्षा-वर्णन एवं एक शरद् ऋतु-वर्णन को लिया जा सकता है:—

(वर्षा-वर्णन) ‘तयोर्विहरतोयुक्तं यत्रास्तमितशायिनोः ।
 कृष्णीकुर्वन् दिशां चक्रमुपतस्थौ घनागमः ॥
 नभः पयोमुखां व्रातैरनुलिप्तमिवासितैः ।
 बलाकाभिः क्वचिक्चक्रे कुमुदौघैरिवाचनम् ॥
 कदम्बस्थूलमुकुलः क्वणद्भृङ्गकदम्बकः ।
 पयोदकालराजस्य यशोगानमिवाकरोत् ॥
 नीलाञ्जनचयैर्व्याप्तं जगत्सुगनगैरिव ।
 चन्द्रसूयो गतो नवापि तजिताचिव गजितैः ॥
 अच्छिन्नजलधाराभिर्द्रवतीव नभस्तलम् ।
 तोषादिवोत्तमान् महा शण्पकञ्चुकमावृतम् ॥
 जनितं जलपूरेण समं सर्वं नतोन्नतम् ।
 अतिवेगप्रवृत्तेन प्रसलस्येव चेतसा ॥
 भूमी गर्जन्ति तोयीषा विहायसि घनाघनाः ।
 अन्विध्यन्त इवाराति निदाघसमय द्रुतम् ॥
 कन्दलैर्निबिडैश्छन्ना धरा निर्झरशोभिणः ।
 अत्यन्तजलभारेण पतिता जलदा इव ॥
 स्थलीदेशेषु दृश्यन्ते स्फुरन्तः शक्रगोपका ।
 घनचूणितसूर्यस्य खण्डा इव मही गताः ॥
 चचार वैष्णवं तेजो दिक्षु सर्वासु सत्वरम् ।
 पूरितापूरितं देशं पश्यच्चक्षुरिवाम्बरम् ॥
 मण्डितं शक्रचापेन गगनं चित्रतेजसा ।
 अत्यन्तोन्नतियुक्तेन तोरणैरेव चारुणा ॥

कूलद्वयनिपातिन्यो भीमावर्ता महाक्षयाः ।
 बहुम्लि कलुषा नद्यः स्वच्छन्दप्रमदा इव ॥
 घनाघनरवप्रस्ता हरिणीचकितेक्षणाः ।
 बालिलिगुर्जुतं स्तम्भान्मार्यः प्रोषितभर्तृकाः ॥
 गजितेनातिरीद्रेण जर्जरीकृतचेतनाः ।
 प्रोषिता बिह्वलीभूताः प्रमदाशाहितेक्षणाः ॥
 अनुकम्पापराः शान्ता निर्बन्धमुनिपुग्वाः ।
 प्रासुकस्थानमासाद्य चातुर्भासीव्रतं स्थिताः ॥
 गृहीतं श्रावकैः शक्त्या नानानियमकारिभिः ।
 दिग्विरामव्रत साधुसेवातत्परमानसैः ॥ ११५ ॥

(अर्थात्—इस प्रकार सूर्यास्तशायी कीर्तिघर मुनि और सुकोशल के अनुकूल विहार करने पर दिक्चक्र को मलिन करता हुआ वर्षाकाल आ गया। मेघों के समूह से आकाश लिप्त-सा प्रतीत होता था, बक-पंक्तियो से ऐसा प्रतीत होता था मानों उस पर कुमुदों के समूह से अर्चा की गयी हो। जिन पर भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे—ऐसी कदम्ब की बड़ी-बड़ी कलियाँ वर्षा काल रूपी राजा का यशोगान सा कर रही थी। जगत् ऐसा प्रतीत होता था मानो ऊँचे-ऊँचे पर्वतों के समान नीलाञ्जन के समूह से ही व्याप्त हो गया हो, चन्द्रमा और सूर्य मेघों के गर्जन से तजित हुए के समान कहीं चले गये थे। अनवरत जलधारा के द्वारा आकाश पिघलता-सा प्रतीत होता था, पृथ्वी पर हरी-हरी घास ऐसी लगती थी मानों पृथ्वी ने उत्तम (अपार) सन्तोष के कारण हरा कञ्चुक धारण कर लिया हो। जिस प्रकार अतिशय दुष्ट मनुष्य का चित्त छोटे-बड़े सभी को समान कर देता है (उसे पूज्यापूज्य का विवेक नहीं रहता) उसी प्रकार वेग से बहने वाले जल-समूह ने पृथ्वी को समान कर दिया था। भूमि पर जल-समूह गरजते थे, और आकाश में बादल जिससे ऐसा भान होता था मानो वे भागे हुए ग्रीष्म रूपी शत्रु की शोच कर रहे हों। भरनो से सुशोभित पर्वत अत्यन्त सघन कन्दलों से आच्छादित हो गये थे जिससे वे ऐसे लगते थे मानो जल के बहुत भारी भार से मेघ ही नीचे गिर पड़े हो। पृथ्वी पर चमकते हुए इन्द्रगोप (बीरबहूटी) ऐसे लगते थे जैसे बादलों के द्वारा घूर्णित सूर्य के सण्ड ही पृथ्वी पर आ पड़े हों। बिजली का तेज समस्त विशाजों में सीधता से फैल जाता था जो आकाश के उस नेत्र के सदृश प्रतीत होता था जो वर्षा-त्रल से भरे और न भरे स्थलों की परीक्षा

करता हो। अनेक प्रकार के तेज को धारण करने वाले इन्द्रधनुष से आकाश ऊँचे भव्य तोरण के द्वारा मण्डित हुआ-सा लगता था। दोनों तटों को गिराने वाली, भयंकर आबर्तों वाली तथा महावेग सम्पन्न कलुषित नदियाँ स्वच्छन्द स्त्रियों के समान बह रही थीं। मेघों के गर्जन से भयभीत भृगाक्षी प्रोषितमर्तु काएँ शीघ्र ही खम्भों का आसिगमन कर लेती थीं। अत्यन्त भयंकर मेघ-गर्जन से जर्जर चेतना वाले परवेशी मनुष्य उसी दिशा में नेत्र लगाये हुए बिह्वल हो रहे थे जिस दिशा में उनकी स्त्री थी। सदा अनुकम्पा के पालन में दत्तचित्त मुनिराजों ने प्रासुक स्थान प्राप्त कर चातुर्मास व्रत का नियम ले लिया। जो शक्ति के अनुसार नाना प्रकार के व्रत-निबन्ध आदि धारण करते थे तथा साधुओं की सेवा में तत्पर रहते थे—ऐसे श्रावकों ने दिग्ब्रत धारण कर लिया था।)

(शरद्वसु-वर्णन) “ततः शरद्वसुः प्राप सोद्योगासिलमानवः।

प्रत्यूष इव निःशेषजगदासोकपण्डितः॥

सितच्छाया घनाः क्वापि दृश्यन्ते गगनांगणे।

विकासिकाशसघातसंकाशा मन्दकम्पिताः॥

घनागमविनिर्मुक्ते भाति खे पद्मबान्धवः।

गते सुदुःषमाकाले भव्यबन्धुजिनो यथा॥

तारानिकरमध्यस्थो राजते रजनीपतिः।

कुमुदाकरमध्यस्थो राजहंसयुवा यथा॥

ज्योत्स्नया प्लावितो लोकः क्षीराकूपारकल्पया।

रजनीसु निशानाथ-प्रणाममुखमुक्तया॥

नद्यः प्रसन्नतां प्राप्तास्तरङ्गाङ्गितसैकताः।

क्रौञ्चसारसचक्राह्वनादसंभावणोद्यताः॥

उग्मज्जन्ति चलद्भ्रूङ्गाः सरःसु कमलाकराः।

भव्यसङ्घा इवोन्मुक्तमिष्यात्वमलसञ्चयाः॥

तलेषु तुङ्गहर्म्याणा पुष्पप्रकरबाहवुः।

रमन्ते भोगसम्पन्ना नरा नवतं प्रियान्विताः॥

सन्मानितसुहृद्बन्धुजनसभा महोत्सवाः॥

हम्पतीनां विमुक्तानां सञ्जायन्ते समागमाः॥

कार्तिक्यामुपजातायां विहरन्ति तपोधनाः।

जिनातिशयदेशेषु महिभोद्धतजन्तुषु॥” १५९

(अर्थात्-तदनन्तर, जिसमें समस्त मानव उद्योग-व्यवहाराँ से लग गये थे तथा जो प्रातःकाल के समान समस्त संसार को प्रकाशित करने में निपुण थी, ऐसी शरद्-ऋतु आयी। उस समय आकाशाङ्गण में कहीं-कहीं ऐसे श्वेत मेघ दिखाई देते थे जो फूले हुए काँस के फूलों के समान थे तथा मन्द-मन्द हिल रहे थे। जिस प्रकार उत्सर्पिणी काल के दुषमाकाल बीतने पर भव्य जीवों के बन्धु श्रीजिनेन्द्रदेव सुशोभित होते हैं उसी प्रकार मेघागम-रहित आकाश में सूर्य सुशोभित होने लगा। जिस प्रकार कुमुदों के बीच में तटस्थ राजहंस सुशोभित होता है उसी प्रकार ताराओं के समूह के मध्य में चन्द्रमा सुशोभित होने लगा। रात्रि के समय चन्द्रमा रूपी पतनाले के मुख से निकली हुई क्षीरसागर-सदृश धवल चाँदनी से समस्त संसार व्याप्त हो गया। जिनके रेतीले किनारे तरङ्गों से चिह्नित थे तथा जो श्रौण्व, सारस, चक्रवाक आदि पक्षियों के शब्द के बहाने मानो परस्पर वार्तालाप कर रही थी, ऐसी नदियाँ प्रसन्नता को प्राप्त हो गयी थी। जिन पर भ्रमर चल रहे थे—एसे कमलों के समूह तालाबों में ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे मिथ्यात्व-रूपी मूल के समूह को छोड़ते हुए भव्य जीवों के समूह। भोगी मनुष्य फूलों के समूह से सुन्दर ऊँचे-ऊँचे प्रासादतलों में रात्रि के समय अपनी प्रियाओं के साथ रमण करने लगे। जिनमें मित्र तथा बन्धुजनों के समूह सम्मानित किये गये थे तथा जिनमें महान् उत्सवों की बृद्धि हो रही थी ऐसे विपुल स्त्री-पुरुषों के समागम होने लगे। कार्तिक मास की पूर्णिमा व्यतीत होने पर तपस्वी जन उन स्थानों में विहार करने लगे जिनमें भगवान् के गर्भ-जन्म आदि कल्याणक हुए थे तथा जहाँ लोग अनेक प्रकार की प्रभावना करने में उद्यत थे।

‘अलास्य-वर्णन’ की दृष्टि से ‘पद्मपुराण’ के नर्मदा, शर्वरी एवं गंगा आदि नदियों के वर्णन तथा ‘समुद्र’ एवं ‘सरोवर’ के वर्णन लिये जा सकते हैं जिनमें यहाँ ‘नर्मदा नदी का वर्णन’ प्रस्तुत है :—

“ततः नानाशकुन्तौघैः कुर्वद्भिर्धुरस्वरम् ।
 संभाषणमिव भ्रष्टमयाव कुर्वतीमयम् ॥
 ददशै नर्मदां फेनपटलैः सस्मितामिव ।
 शुद्धस्फटिकसङ्काससलिलां द्विपभूषिताम् ॥
 तरङ्गभ्रूविलासाद्यामावर्त्ततमनाभिकाम् ।
 विस्फुरच्छफरीनेषां पुलिनोत्कलत्रिकाम् ॥
 नानापुष्पसमाकीर्णा विमलोदकवाससम् ।
 वराङ्गनामिवालोच्य महाम्रीतिमुपागतः ॥

उग्रनक्रकुलाक्रान्तां गम्भीरां वेगिनीं क्वचिन् ।

क्वचिच्च प्रस्थितां मन्दं क्वचित्कुण्डलगामिनीम् ॥

नानाचेष्टितसम्पूर्णां कौतुकव्याप्तमानसः ।

अवतीर्णः स तां भीमां रमणीयां च सादरः ॥^{१५७}

[तदन्तर (रावण ने) नर्मदा नदी देखी। वह मधुर शब्द करने वाले पक्षियों के समूह के साथ मानो खुलकर बातें कर रही थी। फेन के समूह से ऐसा जान पड़ता था मानो वह हँस रही हो; उसका जल स्वच्छ स्फटिक के समान निर्मल था; वह हाथियों से सुगोभित थी। वह नर्मदा तरङ्गरूपी भ्रुकुटी के विलास से युक्त थी, आकर्षणीय नामि से सहित थी, तैरती हुई मछलियाँ ही उसके नेत्र थे; दोनों विशाल तट ही उसकी ऊरु तथा श्रोणी थे; वह नाना पुष्पों से व्याप्त थी और निर्मल जल ही उसका वस्त्र था। इस प्रकार बराङ्गना-सदृश नर्मदा को देख कर रावण बहुत प्रसन्न हुआ। वह नर्मदा कही तो उग्र मगरमच्छों के समूहों से व्याप्त होने के कारण गम्भीर थी; कही वेग से, कहीं मन्द गति से और कहीं टेढ़ी-मेढ़ी चाल से बहती थी। वह नाना चेष्टाओं से युक्त थी तथा भयङ्कर होने पर भी रमणीय थी। कौतुकी रावण ने ऐसी नदी में बड़े आदर के साथ प्रवेश किया।]

‘सौन्दर्य-वर्णन’ की दृष्टि से ‘पद्मपुराण’ के कई स्थल दर्शनीय हैं। ‘केकसी’, ‘मन्दोदरी’ और ‘सीता’ का सौन्दर्य-वर्णन तो बहुत ही उत्कृष्ट कहा जा सकता है, जिनमें पृथक्-पृथक् उपमानों का प्रयोग हुआ है, यथा:—

(केकसी-वर्णन) “नीलोत्पलेक्षणां पद्मवक्त्रा कुन्ददलद्विजाम् ।

शिरीषमालिकाबाहु पाटलादन्तवाससम् ॥

बकुलामोदनिःश्वासां चम्पकस्त्रिष्वक्समस्त्रिषम् ।

कुसुमैरिव निःशेषा निमितां दधती तनुम् ॥

मुक्तपद्मालया पद्मां रूपेणैव वक्षीकृताम् ।

परमोत्कण्ठयानीता पादविन्यस्तलोचनाम् ॥

अपूर्वपुरुषालोकलज्जितानतविग्रहाम् ।

सप्ताध्वसविनिक्षिप्तनिःश्वासीकम्पितस्तनीम् ॥

लावण्येन विलम्पन्ती पल्लवानन्तिकाग्रताम् ।

निःश्वासाकृष्टमत्सालिकुलव्याकुलिताननाम् ॥^{१५८}

६५७. पद्य०, १०।५१-६४

६५८. आचार्य रविचन्द्र ने नायिका के मुखामोद का वर्णन करते समय उससे प्रभर की प्राणिका अनेकशः उल्लेख किया है। केकसी, विद्युत्केस की रानियों, सीता, अनेक भूमिगोचरियों की कन्याओं तथा सुव्रतनाथ की रानियों आदि के वर्णन में उनके मुख के श्वास से प्रभरों को

सौकुमार्यादिबीदारोद्विबन्धतानतिनिर्भरम् ।
 शौचनेन कृताश्लेषां सम्भूतिं योषितः पराम् ॥
 गृहीत्वेवाश्लिखन्नेनं लावण्यं त्रिजगद्गतम् ।
 कर्मभिर्निमिता कर्तुमद्भुतं सार्वलौकिकम् ॥
 शरीरेणैव संयुक्ता साक्षाद्विद्यामुपागताम् ।
 वशीकृतामुदारेण तपसा कान्तिशालिनाम् ॥''६११

[(रत्नश्रवा ने केकसी को देखा) केकसी के नेत्र नीचे कमल के समान थे, मुख कमल के समान था; दाँत कुन्दकली के समान थे; भुजाएँ शिरीष-माला के समान थीं; अघर गुनाब के समान था। उसकी श्वास से मौलिशी के पुष्पों की सुरभि आ रही थी; उसकी कान्ति (पके हुए) चम्पे के फूल के समान थी; उसका सम्पूर्ण शरीर पुष्प-निर्मित-सा ही प्रतीत होता था। रत्नश्रवा के पास खड़ी वह ऐसी लगती थी मानो उसके रूप से वशीभूत होकर लक्ष्मी ही कमलरूपी घर को छोड़कर बड़ी उत्कण्ठा से उसके समीप आयी हो; वह (लज्जा के कारण अपने अथवा सम्मान के कारण रत्नश्रवा के) चरणों में नेत्र गड़ाकर खड़ी थी। अपूर्व पुरुष के देखने से उत्पन्न लज्जा के कारण उसका शरीर नीचे की ओर झुक रहा था तथा धबराहट के साथ निकलते हुए श्वासो-च्छ्वास से उसके स्तन काँप रहे थे। वह अपने लावण्य से पलकों को निल कर रही थी; वह रत्नश्रवा के पास ही खड़ी थी; उसके मुगन्धित निःश्वास से आकृष्ट भौरो के समूह से उसका मुख व्याकुल हो रहा था। वह अत्यधिक सौ-

आकृष्ट दिखाते हुए रविधेन का मन बहुत रमा है। उदाहरणार्थ कुछ पवित्रार्थ प्रस्तुत हैं —

‘निःश्वासाभौदनिनिद्राद्विरेकसमुपासिते ।’ (पद्मपुराण, ७।१७८)

‘बकुलसुरभिक्लामोदबद्धालिभृन्वा ।’ (पद्मपुराण, २९।१६७)

‘जामोद रावणो जगै केतकीना न योषिताम् ।

‘नि श्वासमहताकृष्टगुज्जदभ्रमरपंक्तिना ॥’ (पद्य०, ११/३=१)

‘सौरभाकृष्टसम्मान्नाभ्रमरोपपुष्पवन्दत ।’ (पद्य०, २१/३३)

‘कमलनिकरेब्धद श्लेषच्छकृतानिकलस्वने ।

विभूतपयनासमात्कम्पेज्वभीष्मकृतस्रमम् ।

परमसुरभेण्धाद्भवत्तानवेष समुदगतान् ।

सधुकपटलं कान्ते शीघ्र विभाति रजोहजम् ॥’ (पद्य० ४२/६७)

इन ‘कविसमयक्याति’ का वाल्मीकि और कालिदास ने भी प्रयोग किया है, देखो ‘वाल्मीकि-रामायण’ ५/९/३८-३९, ‘रघुवज्र’ ७/११ आदि। स्वयंभू ने भी अपने ‘पद्मचरित’ में रविधेन से प्रभावित होते हुए इसका प्रयोग किया है—यथा—‘पद्मचरित’ १/१३/९, १०/३/६ और १३/७/४ आदि।

६५९. पद्य०, ७/१५०-१५७।

कुमार्य के कारण इतनी इतनी अधिक नीचे को झुक रही थी कि यौवन डरने-डरते ही उसका आलिंगन कर रहा था। केकसी क्या थी, मानो स्त्रीत्व की परम सृष्टि थी। समस्त ससार-सम्बन्धी आश्चर्य इकट्ठा करने के लिए ही मानों त्रिभुवन-सम्बन्धी समस्त स्थियों का सौन्दर्य एकत्रित कर कर्मों ने उसकी रचना की थी। वह उदार तप से वशीभूत होकर आई हुई साक्षात् विद्या के सद्गुण प्रतीत होती थी।]

[मन्दोदरी-सौन्दर्य] “वक्षुषो गोवरीभावं निन्ये मन्दोदरीमसौ ॥
 चारुलक्षणमम्पूर्णा सौभाग्यमणिभूमिकाम् ।
 तनुस्निग्धनखोत्तुङ्गपृष्ठपादसरोरुहाम् ॥
 रम्भास्तम्भसमानाम्यां तूणाम्या पुष्पधन्वनः ।
 लावण्याम्भःप्रवाहाम्यामूरुभ्यामतिराजिताम् ॥
 युक्तविस्तारमुत्तुङ्गं मन्मथास्थानमण्डपम् ।
 नितम्बं दधतीमप्रकुन्दरमनोहराम् ॥
 वज्रमध्यामधोवक्त्रां हेमकुम्भनिभस्तनीम् ।
 शिरीषसुमनोमाला - मुदुबाहुलतायुगाम् ॥
 कम्बुरेखानतप्रीवा पूर्णचन्द्रसमाननाम् ।
 नेत्रकान्तिनदीसेतुबन्धसन्निभनासिकाम् ॥
 रक्तदन्तच्छदच्छायाञ्छुरिताच्छकपोलकाम् ।
 वीणाभ्रमरसोन्मादपरपुष्टसमस्वनाम् ॥
 इन्दीवरारविन्दानां कुमुदानाञ्च संहृतीः १६०
 विमुञ्चन्तीमिवाशासु दृष्ट्या द्रुत्या मनोभुवः ॥
 अष्टमीशवंरीनाथसमानालिकपट्टिकाम् ।
 संगतश्रवणां स्निग्धनीलसूक्ष्मशिरोरुहाम् ॥
 शोभयास्याग्निहस्तानां जङ्गमामिव पद्मिनीम् ।
 जयन्ती करिणी हंसी सिंहीं च गतिविभ्रमैः ॥
 विद्यालिङ्गनजामीप्यां धारयन्ती दशानने ।
 पद्मालयं परित्यज्य लक्ष्मीमिव समागताम् ॥

६६०. रविषेण ने नायिका के 'विषर्ण' नेत्रों का पर्याप्त वर्णन किया है 'विहारी' की नायिका के 'रंगे स्निग्ध रंग' नयन सप्तम श्लो ६० में पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुके थे। 'पद्मपुराण' के इन बारह स्थलों पर इनका उल्लेख मिलता है—३।३३५, ८।६४, १५।१४०, १७।११६, २१।१३५, २४।३३२, ३९।७, ४२।३१, ४८।१५, ६५।७४, ७९।७ एवं ९९।६०। प्रतीत होता है कि रविषेण को तिरणे नेत्रों ने पर्याप्त प्रभावित किया था।

अङ्गनाविषयां सृष्टिमपूर्वाभिव कर्मणा ।
 आहूत्य जगतोऽशेषं सावर्ण्यमिव निमित्ताम् ॥
 विवाकरकरस्पर्शस्वभानुग्रहसीतितः ।
 तारापति परित्यज्य क्षितिं काम्तिमिवागताम् ॥
 सीमन्तमणिभाजालरचितास्यावगुण्ठनाम् ।
 हारेण वक्त्रलावण्यसेतुनेव विभूषिताम् ॥
 कर्णयोर्बालिकालांकांमुक्ताफलसमुत्थितात् ।
 सितस्य सिन्दुवारस्य मञ्जरीमिव विभ्रतीम् ॥
 कन्दर्पदर्पसंक्षोभं सहते जवनं न यत् ।
 द्नीव वेष्टितं काञ्चया मणिवक्त्रककान्तया ॥१११॥

[उस (रावण) ने मन्दोदरी को देखा । वह मन्दोदरी सुन्दर लक्षणों से पूर्ण थी, सौभाग्यरूपी मणियों की भूमि थी; उसके चरणकमलों का पृष्ठभाग छोटे स्निग्ध नखों से ऊपर को उठा हुआ प्रतीत होता था । वह कदलीस्तम्भ, कामदेव के तरकस तथा सौन्दर्यरूपी जल के प्रवाह के सदृश ऊँचों से अत्यन्त सुशोभित हो रही थी । वह योग्य विस्तार संयुक्त ऊँचे उठे हुए, कामदेव के सभामण्डप के तुल्य तथा कुछ ऊँचे उठे कूल्हों से युक्त नितम्ब को धारण करती थी । उसकी कमर हीरे के समान चमकदार थी; लज्जा के कारण उसका मुख नीचे की ओर था, स्वर्ण-कलश के सदृश उसके स्तन थे; शिरीष के पुष्पों की मालाओं के सदृश उसकी दोनों भुजाएँ थी । उसकी गरदन शङ्ख जैसी रेखाओं से सुशोभित तथा कुछ नीचे की ओर झुकी हुई थी; उसका मुख पूर्णचन्द्रमा के सदृश था; उसकी नाक ऐसी प्रतीत होती थी जैसे नेत्रों की कान्तिरूपी नदी पर पुल ही बाँध दिया गया हो । उसके स्वच्छ कपोल ओष्ठों की अरुण आभा से व्याप्त थे तथा उसकी आवाज वीणा भ्रमर और उन्मत्त कोयल की ध्वनि के समान थी । उसकी दृष्टि कामदेव की दूती के समान थी जिससे वह विशाओं में नीले, लाल तथा सफेद कमलों के समूह बिखेरती सी प्रतीत होती थी । उसका मस्तक अष्टमी के चन्द्रमा के समान था, कान सुन्दर थे तथा बाल चिकने और काले थे । वह मुख, चरण तथा हाथों की शोभा से चलती-फिरती कमलिनी को एवं गति के विभ्रम से हस्तिनी हंसिनी तथा सिंहिनी को जीत लेती थी । “विद्याओं ने दशानन का आलिङ्गन कर लिया और मैं ऐसी ही रह गयी”—मानों इस ईर्ष्या से साक्षात् लक्ष्मी ही कमल रूपी घर को छोड़कर रावण के पास आ गयी थी । कर्मरूपी विद्याता ने संसार

के समस्त सौन्दर्य को एकत्रित कर उसके व्याज से स्त्रीविषयक अपूर्व सृष्टि ही रची ऐसा प्रतीत होता था । वह सूर्य की किरणों के स्पर्श तथा राहुग्रह के आक्रमण भय से चन्द्रमा को छोड़कर पृथ्वी पर आयी हुई चन्द्रमा की कान्ति के समान जान पड़ती थी । उसने अपने सीमंत में जो मणि पहिन रखी थी उसकी कान्ति का जाल उसके मुख पर घूँघट का काम कर रहा था । वह जिस हार से सुशोभित थी वह मुख के सौन्दर्य के प्रवाह के सेतु के सदृश लगता था । उसने अपने कानों में मोतीजड़ी बालियाँ पहिन रखी थीं जो कि कान्ति से ऐसी प्रतीत होती थी मानों सफेद सिन्दुवार की मञ्जरी ही हों । क्योंकि जवनस्थल कामदेव के दर्पजन्य शोभ को सहन नहीं करता था—इसलिए ही मानो उसे मणि समूह से सुशोभित काञ्ची (मेखला) से बाँध दिया गया था ।]

[सीता-सौन्दर्य] “अपश्यच्च महामोहसम्प्रवेशनकारिणीम् ।

रत्यरत्नोः समुद्रनीं साक्षाल्लक्ष्मीमिव स्थिताम् ॥

चन्द्रमःकान्तयवनां बन्धूकाभवराधराम् ।

तनूदरी च लक्ष्मीं च जलजच्छदलोचनाम् ॥

महेभकुम्भशिखरप्रोत्तुङ्गविपुलस्तनीम् ।

यौवनोदयसम्पनां सर्वस्त्रीगुणसद्गताम् ॥

सहितामिव कामेन कान्तिज्यां दृष्टिसायकाम् ।

निजा चापलतां हन्तुं सुखेनैव यथेष्टितम् ॥

सर्वस्मृतिमहाचारी रूपातिशयवर्तिनीम् ।

सीतां मनोमयोदारज्वरग्रहणकारिणीम् ॥” ६६२

[(आते ही रावण ने उस) सीता को देखा जो महामोह में प्रवेश कराने वाली, रति और अरति—दोनों को एक साथ उत्पन्न करने वाली तथा साक्षात् लक्ष्मी के समान थी । वह चन्द्रमा के समान कान्तियुक्त मुख तथा दुपहरी (बन्धूक) के पुष्प के समान लाल अघर को धारण करने वाली, क्षीण उदर वाली तथा कमलदल के तुल्य नेत्रों वाली लक्ष्मी सी थी । किसी बड़े हाथी के गण्डस्थल के अग्रभाग के सदृश उन्नत तथा स्थूल उसके स्तन थे; वह यौवन के उदय से सम्पन्न तथा समस्त प्रमदोचित गुणों से सम्पन्न थी । वह इच्छित पुरुष को अनायास ही मारने के लिए कामदेव के द्वारा धारण की गयी उसकी अपनी (खास) चाप-लता सी प्रतीत होती थी जिसकी डोरी उसकी कान्ति एवं उस पर चढ़ाये बाण उसके नेत्र थे । वह समस्त स्मृति की हरणकर्त्री थी, अत्यन्त रूपवती थी तथा काम

रूपी महाज्वर को उत्पन्न करने वाली थी ।]

‘भृंगसार’ के वर्णनों से तो पद्मपुराण भरा पड़ा है जिनकी एक सूची हमने पहले दे दी है । यहाँ केवल एक ‘जलकेलि-वर्णन’ दिया जा रहा है :—

‘जले यन्त्रप्रयोगेण क्षणेन विधूते सति ।
 भ्रमन्ति पुलिने नार्यो नानाकीडनकोविदाः ॥
 कलत्रनिविडाविलष्टसुसूक्ष्मविमलांशुकाः ।
 बभूवुः सत्रपा दृष्टा रमणं न वराङ्गनाः ॥
 विगतालेपना कार्षित् कुची नखपदाङ्कितौ ।
 दर्शयन्ती चकारेर्ष्या प्रतिपक्षस्य कामिनी ॥
 काचिद्दृश्यसमस्ताङ्गा वरयोषित् त्रपावती ।
 अभिप्रियं निचिक्षेप कराभ्यां जलमाकुला ॥
 प्रतिपक्षस्य दृष्ट्वाभ्यां जघने करजक्षतीः ।
 लीलाकमलनालेन जघान प्रमदा प्रियम् ॥
 काचित् कोपवती मीन गृहीत्वा निश्चला स्थिता ।
 पत्या पादप्रणामेन दयिता तोषमाहृता ॥
 यावत्प्रसादयत्येका तावदेव्यपरा रूषम् ।
 यथाकथञ्चिद्दानिन्ये तोष सर्वाः पुनर्नृप ॥
 दर्शनात् स्पर्शनात् कोपात् प्रसादाद्विविधोदितात् ।
 प्रणामाद्वारिनिक्षेपादवतसकताडनात् ॥
 वञ्चनादंशुकाक्षेपान्मेखलादामश्ननान् ।
 पलायनान्महारावात् सम्पर्कात् कुचकम्पनात् ॥
 हासाद् भूषणनिक्षेपात् प्रेरणाद्भ्रूविलासतः ।
 अन्तर्घातात् समुद्भूतेरन्यस्माच्च सुविभ्रमात् ॥
 रेमे बहुरस तस्या स मनोहरदर्शनः ।
 आवृता वग्नारीभिर्देवीभिरिव वासवः ॥
 पतितान् विकृतापृष्ठे नावङ्कारान् पुनः स्त्रियः ।
 आचकाक्षुमंहाचिता निमल्यस्त्रम्भुणानिव ॥
 काचिच्चन्दनलेपेन चकार धवलं जलम् ।
 अभ्या कुङ्कुमपङ्कजेन द्रुतचामीकरप्रभम् ॥
 धीतलाम्बूलरागामघराणां सुयोचिताम् ॥
 चक्षुषां व्यञ्जनानां च लक्ष्मीरभवदुत्तमा ॥

पुनश्च यन्त्रनिर्मुक्तवारिमध्ये यथेप्सितम् ।

रेने समं वरस्त्रीभिर्नरेशः स्मरहेतुभिः ॥^{१११}

[यन्त्रों के प्रयोग से क्षण भर में नर्मदा का जल एक जाने पर नाना क्रीडाओं में निपुण स्त्रियाँ किनारे पर घूमने लगी । उन स्त्रियों के अत्यन्त पतले और उज्ज्वल वस्त्र जल का सम्पर्क पाकर उनके नितम्ब-स्थलों से एकदम चिपक गये थे जिसके कारण वे पति के देखने पर लज्जा से गड़ी जाती थी । शरीर का लेप धुल जाने के कारण नखक्षत्रों से चिह्नित स्तन दिखलाने वाली कोई स्त्री अपनी सौत के लिए ईर्ष्या उत्पन्न कर रही थी । जिसके समस्त अंग दिख रहे थे, ऐसी कोई उत्तम स्त्री लजाती हुई दोनों हाथों से बड़ी आकुलतावश पति की ओर पानी उछाल रही थी । कोई अन्य स्त्री सौत के नितम्बस्थल पर नखक्षत देखकर क्रीडा-कमल की नाल से पति पर प्रहार कर रही थी । कोई एक स्वभाव से क्रोधिनी स्त्री मोन धारण कर निश्चल खड़ी थी; तब पति ने चरणों में प्रणाम कर उसे किसी प्रकार सन्तुष्ट किया । राजा सहस्ररश्मि जब तक एक स्त्री को प्रसन्न करना तब तक दूसरी स्त्री क्रोध कर बैठी थी; इस कारण वह समस्त स्त्रियों को बड़ी कठिनाई से सन्तुष्ट कर सका था । उत्तमोत्तम स्त्रियों से परिवृत मनोहर-रूपधारी वह राजा किसी स्त्री की ओर देखकर, किसी का स्पर्श कर, किसी को गैब दिखाकर, किसी के प्रति अनेक प्रकार की प्रसन्नता प्रकट कर, किसी को प्रणाम कर, किसी के ऊपर पानी उछाल कर, किसी को कर्णमूषण से ताड़ित कर, किसी का धोखे से वस्त्र खींचकर, किसी को मेखला से बाँधकर, किसी के पास से दूर हटकर, किसी को भारी टाँट दिखाकर, किसी के साथ सम्पर्क कर, किसी के स्तनों में कम्पन उत्पन्न कर, किसी के साथ हँसकर, किसी के आभूषण गिराकर, किसी को गुदगुदाकर, किसी के प्रति भीड़ चलाकर, किसी से छिपकर, किसी के समक्ष प्रकट होकर तथा किसी के साथ अन्य प्रकार के विभ्रम दिखाकर नर्मदा नदी में बड़े आनन्द से उस प्रकार क्रीड़ा कर रहा था जिस प्रकार देवियों के साथ इन्द्र क्रीड़ा करता है । उदात्त हृदय को धारण करने वाली उन स्त्रियों के जो आभूषण जालू के ऊपर गिर गये थे, उन्होंने निर्मात्य के समान उन्हें फिर उठाने की इच्छा नहीं की । किसी स्त्री ने चन्दन के लेप से पानी को सफ़ेद कर दिया था तो किसी ने केसर के द्रव से उसे सुवर्ण के समान पीला बना दिया था । जिनकी पान की लालिमा धुल गयी थी ऐसी स्त्रियों के ओठ तथा जिनका काबल छूट गया था, ऐसे नेत्रों की कोई अद्भुत ही शोभा हो रही थी । तदनन्तर यन्त्र के द्वारा छोड़े

गये जल के बीच में, वह राजा काम उत्पन्न करने वाली अनेक उत्कृष्ट स्त्रियों के साथ इच्छानुसार क्रीड़ा करने लगा ।]

‘युद्ध-वर्णन’ के दर्शन ‘पद्मपुराण’ में अनेक स्थलों पर होते हैं जिनकी सूची पीछे दी जा चुकी है। पूरे के पूरे पर्व युद्ध-वर्णन में निकल जाते हैं। जिनका स्थानाभाव से यहाँ उल्लेख करना असम्भव है। केवल ‘लक्ष्मण-हन्द्रजित्-युद्ध’ का कुछ अंश प्रस्तुत है :—

“अन्येऽप्येवं महायोधा यथायोर्म्य परस्परम् ।
 आरेभिरे रणं कर्तुमाह्वानमुत्तराननाः ॥
 गुहाण प्रहरागच्छ जहि व्यापादयोन्मिरः ।
 छिन्धि भिन्धि क्षिपोत्तिष्ठ तिष्ठ दारय धारय ॥
 बधान स्फोटयाकर्षं मुञ्च चूर्णय नाशय ।
 सहस्व दस्व निःसर्प सन्धस्वोच्छ्रय कल्पय ॥
 किं भीतोऽसि न हन्मि त्वा पिक् त्वां कातरको भवान् ।
 कस्त्वं बिभेसि नष्टोऽसि मा कन्पिष्ठा क्व गम्यते ॥
 जयं स वर्तते कालः शूरासूरविचारकः ।
 भुज्यतेऽन्नं यथा मृष्टं न तथा युध्यते रणे ॥
 गजितैरिति धीराणां तूर्यनादैस्तथोन्नतैः ।
 नर्दन्तीव दिगो मत्ता क्षतजातान्धकारिताः ॥
 चक्रशक्तिगदायष्टिकनफाष्टिघनादिभिः ।
 दंष्ट्रालमिव सञ्जात गगनं भीषणं परम् ॥
 रक्ताशोकवनं किं तत्किं वा किशुककाननम् ।
 पारिभद्रद्रुमारण्यमुत जातं क्षतं बलम् ॥
 कश्चिद्विघटितं दृष्ट्वा कङ्कटं छिन्नबन्धनम् ।
 सन्धस्ते स्वरितं भूयः स्नेहं माधुजनो यथा ॥
 कश्चित्सन्धार्य दन्तादौः खड्गं परिकरं दृढम् ।
 बध्वा दीप्रः पुनर्यादुं ध्रुममुक्तं प्रवर्तते ॥
 मत्तवारण्यदन्नाप्रक्षतवक्षस्थलोऽपरः ।
 चक्षत्कर्णसमुद्धूतवीजितः कर्णचामरैः ॥
 उत्तीर्णं स्वामिकर्तव्यो निराकुलमतिः परम् ।
 दन्तोत्सङ्गे ततः शिष्यं सम्प्रसार्य भुजद्वयम् ॥
 धातुपर्वतसङ्काशाः केचित् क्षतजनिर्भराः ।
 मुमुक्षुः शीकरासारसेकबोधितमूर्च्छिताम् ॥

पर्यस्ता भूतले केचिहृदीष्ठाः शस्त्रपाणयः ।
 कुञ्चितभ्रदुरीक्ष्यास्या वीरा मुञ्चन्ति जीवितम् ॥
 उपसंहृत्य संरम्भं त्यक्तशस्त्रास्तथाऽपरे ।
 मुञ्चन्ति जीवितं धीरा ध्यायन्तः परमाक्षरम् ॥
 विषाणकोटिसंस्कृतपाणयः केचिदुत्कटाः ।
 आन्दोलनं गर्जेन्द्राणामग्रतः समुपासिरे ॥
 रक्तच्छटां विमुञ्चन्तश्चञ्चलाः शस्त्रपाणयः ।
 कबन्धा नर्त्तनं चक्रुः शतशोऽतिभयानकम् ॥
 केचिदस्त्रविनिर्मुक्ता जर्जरीभूतकङ्कटाः ।
 प्रविष्टाः सलिलं क्लिष्टा जीविताशापराङ्मुखाः ॥

× × ×
 महातामसशस्त्रं च भीमं शक्रविदक्षिपत् ।

विनाशं भूतबीयेन तदस्त्रेणानयन्निपुः ॥^{१६४}

[... 'उस समय अनेक योद्धाओं ने एक दूसरे को ललकारते हुए युद्ध करना प्रारम्भ किया । उस समय वीरों के इस प्रकार गर्जन-भरे शब्द मुख से निकल रहे थे—'पकड़ो', 'प्रहार करो', 'आओ', 'मारो' 'जान से मार डालो', 'छेदो', 'भेदो' 'फेंक दो', 'उठो', 'बैठो', 'खड़े रहो', 'विदीर्ण करो', 'धारण करो', 'बाँधो', 'फोड़ डालो', 'घसीटो', 'छोड़ो', 'चूर-चूर कर दो', 'नष्ट कर दो', 'सहन करो', 'दो', 'पीछे हटो' 'सन्धि करो', 'उन्नत हो', 'समर्थ बनो', 'तू क्यों डरता है ? मैं तुझे नहीं मारता' 'घिस्कार है तुझे, तू डरपोक है !', 'तू क्यों डरा हुआ है ? मत काँप' 'अरे ! अब बचकर कहाँ जाएगा ?' 'यह समय आया है जबकि शूर और कायर की परीक्षा होगी । जैसा मीठा अन्न खाया है वैसा रण में युद्ध नहीं कर रहे हो !' इस प्रकार धीर-वीरों की गर्जना और तुरही के उन्नत शब्दों से बिशाएँ ऐसी प्रतीत होती थी मानो रघुर की वर्षा से अन्धकारयुक्त तथा पागल होकर चिल्ला ही रही हों । चक्र, दक्षि, गदा, यष्टि, कनक, आर्षि तथा घन आदि शस्त्रों से आकाश उस प्रकार अत्यन्त भयंकर हो गया था मानो सब को निगलने के लिए डाढ़ें ही धारण कर रहा हो । खून से लथपथ घायल सेना को देखकर ऐसा सन्देह होता था कि क्या यह रक्त अशोक का वन है ? अथवा पलाश का कानन है ? अथवा पारि-भद्र वृक्षों का ही वन है ? किसी का कवच टूट गया तथा उसके वन्धन खुल गये, इसलिए उसने शीघ्र ही उसे उस प्रकार जोड़ लिया जिस प्रकार साधुजन टूटे स्नेह

को क्षीघ्र हो जोड़ लेते हैं। कोई तेजस्वी योद्धा दाँतों के अग्रभाग से तलवार दबा तथा हाथों से कमर कसकर अमरहित हो फिर से युद्ध करने के लिए तैयार हो गया। मदीनमत्त हाथी के दन्ताग्र से जिसका बक्षःस्थल घायल हो गया था ऐसा कोई योद्धा हाथी के चञ्चल कानों से ऊपर उठे हुए कर्णचामरों से बीजित हो रहा था। जिसने स्वामी का कर्तव्य पूरा कर दिया था—ऐसा कोई योद्धा निराकुलचित्त हो दोनों हाथ पसार पर हाथी के दाँतों के बीच सो रहा था। जिनसे रुधिर के निर्झर भर रहे थे तथा जो गेरु के पर्वत के समान जान पड़ते थे ऐसे कितने ही योद्धाओं ने जलकणों की वर्षा के सिञ्चन में सचेत हो मूर्च्छा छोड़ी थी। जो बाँठ इस रहे थे हाथों में शस्त्र लिये थे और टेढ़ी भौंहों से जिनके मुख भयकर दिख रहे थे ऐसे कितने ही योद्धा पृथ्वी पर पड़े हुए प्राण छोड़ रहे थे। कितने ही धीर-वीर योद्धा ऐसे भी थे जो क्रोध का सकोच कर तथा शत्रुओं का त्याग कर परब्रह्म का ध्यान करते हुए प्राण छोड़ रहे थे। कितने ही प्रचण्ड वीर गजदन्तों के अग्रभाग को हाथों से पकड़ कर झूला झूल रहे थे। जो रक्त की छटा छोड़ रहे थे तथा हाथों में अस्त्र धारण किये हुए था, ऐसे सैकड़ों उछलते कबन्ध अत्यन्त भयंकर नृत्य कर रहे थे। जिनके कवच जर्जर हो गये थे ऐसे कितने ही दुःखी योद्धा, जीवन की आशा में विमुख हो शस्त्र छोड़ पानी में धुस गये।
 × × ऐसे युद्ध में इन्द्रजित् ने अत्यन्त भयंकर महातामस नामक शस्त्र छोड़ा जिसे लक्ष्मण ने सूर्यास्त्र के द्वारा नष्ट कर दिया। ।]

अष्टम अध्याय

पद्मपुराण में जैन धर्म-दर्शन

धर्म और दर्शन एक-दूसरे के पूरक शब्द हैं। 'धर्म' की अनेक व्याख्याओं और 'दर्शन' की विचारधाराओं का मिलान करने पर धर्म और दर्शन अलग-अलग नहीं दिखाई देते। ये अन्योन्याश्रित दिखाई देते हैं। यद्यपि विवेचन के सौकर्य की दृष्टि से दर्शन को विचारपक्ष और धर्म को आचारपक्ष के रूप में पृथक्तया देखा जा सकता है तथापि इनका ऐकान्तिक पार्थक्य असम्भव है। जैन धर्म और दर्शन के विषय में भी यह बात लागू होती है। जैन-दर्शन का मूल विचार 'अहिंसा' है और 'अहिंसा' से फलित होने वाला आचार जैन-धर्म है। पद्मपुराण पर जैन धर्म और दर्शन का पर्याप्त प्रभाव है।

डा० राधाकृष्णन् ने जैन-दर्शन की मुख्य विज्ञापताएँ ये बतायी हैं—“इसका प्राणिमात्र का यथार्थ रूप में वर्गीकरण, इसका ज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्त, जिसके साथ संयुक्त है इसके प्रख्यात सिद्धान्त 'म्याद्वाद' एवं 'सप्तभगी' अर्थात् निरूपण की मान प्रकार की विधियाँ; और इसका मध्यमप्रधान नीतिशास्त्र अथवा आचार-शास्त्र। इस दर्शन में अन्यान्य भारतीय विचार-पद्धतियों की भाँति त्रियात्मक नीतिशास्त्र का दार्शनिक कल्पना के साथ गठबन्धन किया गया है।”^{१६५} इन समस्त विशेषताओं को इन तीन शब्दों में कहा जा सकता है :—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र्य। ये तीनों मिलकर ही मोक्षमार्ग बनते हैं।^{१६६} सम्यग्दर्शन होने पर ही सम्यग्ज्ञान होगा और सम्यग्ज्ञान होने पर ही सम्यक् चारित्र्य होगा; तभी मोक्षलाभ होगा। 'तत्त्वार्थश्रद्धान' को सम्यग्दर्शन कहते हैं। जिस-जिस

१६५. 'भारतीय दर्शन (हिन्दी अनुवाद)', राजपान एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्क० १९६६, पृष्ठ २७०।

१६६. तत्त्वार्थसूत्र १।१ पर सर्वार्थसिद्धि टीका—“मार्ग इति चैकवचननिर्देशः समस्तस्य मार्गभाषणापनार्थः। तेन व्यस्तस्य मार्गत्वनिवृत्ति कृता भवति। अतः सम्यग्दर्शनं, सम्यग्ज्ञानं, सम्यक्चारित्र्यमित्येतत्त्रितयं समुचितं मोक्षस्य साक्षान्मार्गो वेदितव्यः॥”

प्रकार से जीवादि पदार्थ व्यवस्थित हैं उसी प्रकार से उनकी अवगति को सम्यक्-ज्ञान कहा जाता है। संसार के कारण की निवृत्ति के प्रति उद्यत मानी जिन अच्छे कामों को करता है उसे सम्यक्चारित्र कहा जाता है। सम्यक् शब्द यहाँ साधिप्राय है जैसा कि पूज्यपाद ने 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' (तत्त्वार्थसूत्र १।१) की व्याख्या करते हुए लिखा है—“उदासीनां याथात्म्यप्रतिपत्तिविषय-श्रद्धानसंग्रहार्थं दर्शनस्य सम्यग्विशेषणम्। येन येन प्रकारेण जीवादयः पदार्था व्यवस्थितास्तेन तेनावगमः सम्यग्ज्ञानम्। अनभ्यक्ताय संशयविपर्यय-निवृत्त्यर्थं सम्यग्विशेषणम्। संसारकारणनिवृत्तिं प्रत्यागूर्णस्य ज्ञानवतः कर्मानिदाननिमित्तक्रियोपरमः सम्यक्चारित्रम्। अज्ञानपूर्वकाचरणनिवृत्त्यर्थं सम्यग्विशेषणम्।” १६७

इन्हीं तीनों का विचार उमास्वाति के 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र' या 'तत्त्वार्थसूत्र', कुन्दकुन्द के 'पञ्चास्तिकायसार' एवं सिद्धसेन दिवाकर के 'श्यायावतार' में हुआ है। १६८

सम्यग्दर्शन : तत्त्वार्थश्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा गया है। जैनदर्शन में मूल दो तत्त्व हैं—जीव और अजीव। इन दोनों का विस्तार पाँच अस्तिकाय,

६६७. तत्त्वार्थसूत्र १।१ पर सर्वाधिसिद्धि टीका।

६६८. ये सभी ग्रन्थ रक्षिणेन से पूर्व रचे जा चुके थे।

जैनदर्शन का सर्वप्रसिद्ध ग्रन्थ है उमास्वाति का 'तत्त्वार्थसूत्र' जिसका काल ईसा की पहली शताब्दी से तीसरी तक माना जाता है। 'तत्त्वार्थसूत्र' को 'मोक्षशास्त्र' भी कहा जाता है। “अथर्वसूत्रतत्त्वार्थसूत्रापरनामभाष्यशास्त्रस्यैव केवलस्य विवरणा कुना।”—मोतीचन्द्र कोठारी। 'सर्वाधिसिद्धि', भूमिका भाग, पृष्ठ ३४। प्रका० राजजी सखाराम बोयी, माणिकचन्द्र, विजयनगर जैन, परीक्षामन तृतीय संस्करण, १९३९ ई०। इस ग्रन्थ के स्पष्टीकरण के लिए अनेक विद्वानों ने टीकाएँ लिखीं जिनका उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है :—(१) समन्त-भद्रस्वामि-विरचित गणहस्तिसिद्धि-भाष्य (२) पूज्यपादस्वामि-विरचित सर्वाधिसिद्धि टीका, (३) सकलकृष्णभट्ट-विरचित राजवार्तिक, (४) विद्यानन्दविप्रणीतलोकवार्तिकालङ्कार, (५) भास्करानन्द की टीका, (६) धृतमागर की धुनसामरी टीका, (७) द्वितीयभूतसामरकुता तत्त्वार्थसूत्रबोधनी टीका, (८) विबुधसेनाचार्य की तत्त्वार्थटीका, (९) योगीन्द्रदेव की तत्त्व-प्रकाशिका टीका, (१०) योगदेव की तत्त्वार्थवृत्ति, (११) लक्ष्मीदेव की तत्त्वार्थटीका तथा (१२) अथर्वनन्दिसूरि की टीका। इसके अतिरिक्त प्राकृत भाषा में रचित अनेक अर्थाधीन टीकाएँ भी उपलब्ध होती हैं। इन सभी टीकाओं से इस ग्रन्थ का महत्त्व सिद्ध होता है। अथर्वनन्दिसूरि का समय ५० वर्ष ईसा पूर्व से लेकर छठी शताब्दी ई० तक माना जाता है। सिद्धसेन दिवाकर का समय ईसा की पाँचवीं शताब्दी माना जाता है।

छः द्रव्य अथवा सात या नव तत्त्व के रूप में पाया जाता है।^{६६९} पाँच अस्तिकाय हैं—जीव, धर्म, अधर्म, आकाशऔर पुद्गल। छः द्रव्य हैं—जीव, धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल। सात तत्त्व हैं—जीव, अजीव, आत्म, संबन्ध, बन्ध, निर्जरा और मोक्ष। नव तत्त्व हैं—जीव, अजीव, आत्म, संबन्ध, बन्ध, निर्जरा, मोक्ष, पाप और पुण्य। इन तत्त्वों की सरल विवेचना श्री दलमुख मानवणिया के शब्दों में इस प्रकार की जा सकती है—

“जैन दर्शन में मूल दो तत्त्व है : जीव और अजीव। इन दोनों का विस्तार पाँच अस्तिकाय, छः द्रव्य अथवा सात या नव तत्त्व के रूप में पाया जाता है। चार्वाक केवल अजीव को पाँच भूतरूप मानते थे और उपनिषद् के ऋषि केवल जीव अर्थात् आत्मा—पुरुष—ब्रह्म को मानते थे। इन दोनों मतों का समन्वय जीव एवं अजीव ये दो तत्त्व मानकर जैन दर्शन में हुआ। संसार और सिद्धि अर्थात् निर्वाण अथवा बन्धन और मोक्ष सभी घट सकते हैं जब जीव और जीव से भिन्न कोई हो। इसीलिए जीव और अजीव दोनों के अस्तित्व की तात्त्विक संगति जैनो ने सिद्ध की और पुरुष एवं प्रकृति का अस्तित्व मानकर प्राचीन सांख्यो ने वैसी संगति साधी। इसके अतिरिक्त आत्मा को या पुरुष को केवल कूटस्थ मानने से भी बन्ध मोक्ष जैसी विरोधी अवस्थाएँ जीव में नहीं घट सकती। इससे सब दर्शनों से अलग पड़कर, बौद्धसम्मत चित्त की भाँति, आत्मा को भी एक अपेक्षा से जैनो ने अनित्य माना और सबकी तरह नित्य मानने में भी जैनो को कुछ आपत्ति तो है ही नहीं, क्योंकि बन्ध और मोक्ष तथा पुनर्जन्म का चक्र एक ही आत्मा में है। इस प्रकार आत्मा को जैन मत में परिणामी नित्य माना गया और पुरुष को कूटस्थ, जैनो ने जड़ और जीव दोनों को परिणामी-नित्य माना। इसमें भी उनकी अनेकान्त दृष्टि स्पष्ट होती है।

जीव के चैतन्य का अनुभव मात्र देह में ही होता है, अतः जैन मत के अनुसार

६६९ जिनसेन ने अपने ‘हरिवंशपुराण’ (८४० वि० सं०) में—

‘एकद्विलिखतुः पञ्चषट्सप्ताष्टनवास्पदा ।

अपयामाणि सत्तेषामन्तपयामिमांशिनी ॥’ (हरिवंश, ५८।५)

कहकर एक से नौ तक जैन धर्म के तत्त्व गिनाये हैं।

एक—जीव, दो—चेतन-अचेतन अथवा भूतिक-अभूतिक, तीन—सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र अथवा चेतन-अचेतन और चेतना, चेतन द्रव्य, चार—चार गति, चार कथाय अथवा चार प्रत्यय, षाट—अष्ट कर्म।

जीव-आत्मा वेह परिणाम है। नये नये जन्म जीव धारण करता है, इसलिए उसके लिए गमनागमन अनिवार्य है। इसी कारण जीव की गमन में सहायक द्रव्य धर्मास्तिकाय के नाम से और स्थिति में सहायक द्रव्य अधर्मास्तिकाय के नाम से—इस प्रकार दो अजीव द्रव्यों का मानना अनिवार्य हो गया। इसी प्रकार यदि जीव का संसार हो तो बन्धन भी होना ही चाहिए। वह बन्धन पुद्गल अर्थात् जड़ द्रव्य का है। अतएव पुद्गलास्तिकाय के रूप में एक दूसरा भी अजीव द्रव्य माना गया। इन सबको अवकाश देने वाला द्रव्य आकाश है, उसे भी जड़रूप अजीव द्रव्य मानना आवश्यक था। इस प्रकार जैन दर्शन में जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल—ये पाँच अस्तिकाय माने गये हैं। परन्तु जीवादि द्रव्यों की विविध अवस्थाओं की कल्पना काल के बिना नहीं हो सकती। फलतः एक स्वतंत्र काल-द्रव्य भी अनिवार्य था। इस प्रकार पाँच अस्तिकायों के स्थान पर छह द्रव्य हुए। जब काल को स्वतंत्र द्रव्य नहीं माना जाता तब उसे जीव और अजीव द्रव्यों के पर्याय रूप मानकर काम चलाया जाता है।

अब सात तत्त्व और नौ तत्त्व के बारे में थोड़ा स्पष्टीकरण कर ले। जैन दर्शन में तत्त्वविचार दो प्रकार से किया जा सकता है। एक प्रकार के बारे में हमने ऊपर देखा। दूसरा प्रकार मोक्षमार्ग में उपयोगी हो, उस तरह पदार्थों की गिनती करने का है। इसमें जीव, अजीव, आत्मव, संवर, बन्ध, निर्जरा और मोक्ष—इन सात तत्त्वों की गिनती का एक प्रकार और उसमें पुण्य एव पाप का समावेश करके कुल नौ गिनने का दूसरा प्रकार है। वस्तुतः जीव और अजीव का विस्तार करके ही सात और नौ तत्त्व गिनाये हैं। क्योंकि मोक्षमार्ग के वर्णन में वैसा पृथक्करण उपयोगी होता है। जीव और अजीव का स्पष्टीकरण तो ऊपर किया ही है। अन्ततः अजीव-कर्मसंस्कार-बन्धन का जीव से पृथक् होना निर्जरा है और सर्वांशतः पृथक् होना मोक्ष है। कर्म जिन कारणों से जीव के साथ बन्ध में आते हैं वे कारण आत्मव हैं और उसका निरोध संवर है। जीव और अजीव कर्म का एकाकार जैसा सम्बन्ध बन्ध है।

सारांश यह कि जीव में राग-द्वेष, प्रमाद आदि जहाँ तक रहते हैं, वहाँ तक बन्ध के कारणों का अस्तित्व होने से समारवृद्धि हुआ करती है। उन कारणों का निरोध किया जाय तो ससारभाव दूर होकर जीव सिद्धि अथवा निर्वाण अवस्था प्राप्त करता है। निरोध की प्रक्रिया को संवर कहते हैं, अर्थात् जीव की मुक्ति होने की साधना—विरति आदि—संवर हैं, और केवल विरति आदि से सन्तुष्ट न होकर जीव कर्म से छूटने के लिए तपश्चर्या आदि कठोर अनुष्ठान आदि भी करता है, उससे निर्जरा—आशिक छुटकारा—होता है और अन्त में वह मोक्ष को

प्राप्त करता है।^{१७०}

सम्बन्धान् : डॉ० राधाकृष्णन् के अनुसार उसका (वर्धमान का) का ज्ञान-सम्बन्धी सिद्धान्त उसका अपना है और दर्शनशास्त्र के विद्यार्थी के लिए अपना एक विशेषत्व रखता है।^{१७१}

‘येन येन प्रकारेण जीवादयः पदार्था व्यवस्थितास्तेन तेनावगमः सम्यग्ज्ञानम्।’ यह ज्ञान पाँच प्रकार का माना गया है—मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय और केवल।^{१७२}

(१) “मतिज्ञान साधारण ज्ञान है, जो इन्द्रिय के प्रत्यक्ष सम्बन्ध द्वारा प्राप्त होता है। इसी के अन्तर्गत आते हैं स्मृति, संज्ञा अथवा प्रत्यभिज्ञा अथवा पहचान; और तर्क अथवा प्रत्यक्ष के आधार पर किया गया आगमन अनुमान, अभिनिबोध या अनुमान अथवा निगमन विधि का अनुमान।^{१७३} मतिज्ञान के कभी-कभी तीन भेद किये जाते हैं अर्थात् उपलब्धि अथवा प्रत्यक्ष ज्ञान भावना अथवा स्मृति और उपयोग अथवा अर्थग्रहण।^{१७४} इन्द्रियो एवं मन (जिसे इन्द्रियों से भिन्न होने के कारण अनिन्द्रिय भी कहते हैं) के संयोग के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है उसे मतिज्ञान कहते हैं।^{१७५} मतिज्ञान की उत्पत्ति से पूर्व हमें सदा दर्शन होता है। (२) श्रुतिज्ञान अथवा शब्द या आप्तप्रमाण बहु ज्ञान है जो लक्षणो, प्रतीकों अथवा शब्दों द्वारा हमें प्राप्त होता है। जब कि मतिज्ञान हमें परिचय द्वारा मिलता है, यह ज्ञान केवल वर्णन द्वारा प्राप्त होता है। श्रुतिज्ञान भी चार प्रकार का है—लब्धि अथवा ससंगे या साहचर्य, भावना अथवा ध्यान देना, उपयोग अथवा अर्थ-ग्रहण, और नय अथवा वस्तुओं के तात्पर्य के नाना पक्ष।^{१७६} नय को यहाँ इसलिए दर्शाया गया है चूँकि धार्मिक ग्रन्थों की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ विवाद के लिए उपस्थित की जाती हैं। (३) देश और काल की दूरी रहते हुए भी वस्तुओं का

१७०. दत्तमुख मालवजिया, ‘जैनधर्म का प्राण (५० मुखलास)’ की भूमिका, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, संस्क० १९६५, पृ० ९-११।

१७१. ‘भारतीय दर्शन’ (हिन्दी अनुवाद), पृ० २३०

१७२. मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥ —तत्त्वार्थसूत्र १।१९

१७३. ‘पञ्चास्तिकाय समयसार’, ४१

मति. स्मृति. संज्ञा चित्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ।—तत्त्वार्थसूत्र १।१३

१७४. बह्वी, ४२।

१७५. ‘इन्द्रियमनसा च यथास्त्ववधान्निगमते, अनया मनुते, मननमात्रं वा मतिः।

(तत्त्वार्थसूत्र १।१९ पर सर्वार्थसिद्धि)

१७६. पञ्चास्तिकाय, समयसार, ४३।

जो सीधी या प्रत्यक्ष ज्ञान है उसे अवधि कहते हैं। यह ज्ञान असाधारण दृष्टि द्वारा अतीन्द्रिय विषयों का ज्ञान है। (४) मनःपर्यय, अन्य व्यक्तियों के वर्तमान एवं भूत विचारों साक्षात् ज्ञान; जैसे टेलीफ़ोन द्वारा दूसरों के मन में प्रवेश किया जाता है। (५) केवल अवस्था पूर्णज्ञान, सब पदार्थों एवं उनके परिवर्तनों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना।^{६७७} यह देश, काल एवं विषय की सीमा से रहित सर्वज्ञता है। पूर्ण चेतना के लिए सम्पूर्ण यथार्थता प्रत्यक्ष रूप में प्रकट है। यह ज्ञान जो इन्द्रियों के ऊपर निर्भर नहीं है और जो केवल अनुभवगम्य ही है एवं वाणी द्वारा जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, केवल ऐसे पवित्रात्माओं के लिए ही सम्भव है जो बन्धनों से मुक्त हो चुके हैं। पहले तीन प्रकार के ज्ञानों में भ्रान्ति की सम्भावना है, किन्तु पिछले दोनों में कोई दोष नहीं हो सकता।^{६७८}

पुनः ज्ञान दो प्रकार का है : प्रमाण अर्थात् पदार्थ को उसी रूप में जानना जिस रूप में वह है, और नय अर्थात् पदार्थ का किसी सम्बन्ध-विशेष के साथ ज्ञान। नयों को कई प्रकार से विभक्त किया गया है यथा—नैगमनय, सग्रहनय, व्यवहारनय, ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढनय और सर्वभूतनय।^{६७९} नयों के और भी भेद किये गये हैं; यथा द्रव्याधिक एवं पर्यायाधिक। इन नयों का सबसे महत्त्वपूर्ण उपयोग निश्चय ही 'स्याद्वाद' पर 'सप्तभंगी' में होता है। 'सप्तभंगी' का अर्थ है किसी वस्तु अथवा उसके गुणों के विषय में कथन करने के, दृष्टिकोण के रूप से, सात भिन्न-भिन्न प्रकार, जो ये हैं—(१) स्याद् अस्ति, (२) स्याद् नास्ति, (३) स्याद् अस्ति नास्ति (४) स्याद् अवक्तव्यम्, (५) स्याद् अस्ति च अवक्तव्यम्। (६) स्याद् नास्ति अवक्तव्यम्, (७) स्याद् अस्ति च नास्ति च अवक्तव्यम्। यह 'सप्तभङ्गी' जैन तर्कशास्त्र का बहुवर्चित पारिभाषिक शब्द है।

सम्यक्चारित्र्य : कर्म जिन कारणों से जीव के साथ बन्ध में आते हैं वे कारण ध्राजब हैं और उनका निरोध संबर है।^{६८०} जीव की मुक्त होने की साधना, विरति आदि—संबर है और केवल विरति आदि से सन्तुष्ट न होकर जीव की कर्म से छूटने के लिए तपश्चर्या आदि कठोर अनुष्ठान आदि निर्जरा-आशिक छुटकारा है, अन्त में मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार संबर और निर्जरा सम्यक् चारित्र्य के अन्तर्गत आते हैं। पूज्यपाद ने सम्यक्चारित्र्य की परिभाषा देते हुए लिखा है कि संसार के कारणों की निवृत्ति के प्रति समुद्यत ज्ञानवान् का कर्मदाननिमित्तक्रियोपरम

६७७ सर्वद्रव्यपर्यायिषु केवलस्य ।—तत्त्वार्थसूत्र १।२९

६७८ डा० राधाकृष्णन् 'भारतीय दर्शन', पृष्ठ २७०-२७१

६७९ नैगमसग्रहव्यवहारजुं सूत्रसम्बन्धसमभिरूढभूता नवाः ।—तत्त्वार्थसूत्र १।३३

६८० असत्निरोध. संबरः ।—तत्त्वार्थसूत्र १।१

सम्यग्चारित्र है।^{१८१} इस चारित्र के अन्तर्गत सागार तथा अनाकारों का धर्म आता है। महाव्रत, अणुव्रत, गुप्तिर्था, सन्तिर्था, शिजाव्रत, गुणव्रत एवं अनेक नियम इस चारित्र के अन्तर्गत आते हैं। मोटे तौर से इन्हें अहिंसा-दर्शन का क्रियात्मक पक्ष कहा जा सकता है।

‘पद्मपुराण’ में जैन-धर्म के इन तीन स्तम्भों—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यग्चारित्र का यथावसर पर्याप्त विवेचन मिलता है। दिगम्बर और श्वेताम्बर—जैन धर्म के दोनों सम्प्रदायों में पद्मपुराण का समान सम्मान है। इसका कारण यह है कि रविषेण ने अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थों—जिन्हें आज दिगम्बर या श्वेताम्बर सम्प्रदाय के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ कहा जाता है—का गहन अध्ययन किया था और उनकी मान्यताओं को अपने ग्रन्थ में स्थान दिया। यही कारण है कि ‘पद्मपुराण’ में कुछ बातें ऐसी आ गयी हैं जो दिगम्बर-सम्प्रदाय में मान्य हैं कुछ ऐसी भी जो श्वेताम्बर-सम्प्रदाय में मान्य हैं। उमास्वाति भी रविषेण की मान्य हैं और कुन्दकुन्द भी। सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र का विवेचन वचमान, गौतमस्वामी, सर्वभूषण केवली, अनन्तबल, मुनिराज आदि के उपदेशों में मुखरित हुआ है। जैन तर्कशास्त्र की मान्यताओं का उपयोग एकादश पर्व में नारद-पर्वतक के शास्त्रार्थ के समय किया गया है। ‘पद्मपुराण’ में तत्त्वों का विवेचन प्रायः उमास्वाति के सूत्रों के आधार पर किया है।^{१८२} क्षेत्र तथा काल के वर्णन उमास्वाति के सूत्रों और यतिवृषभ की ‘तिलोयण्णत्ति’ से पर्याप्त प्रभावित हैं। ‘ज्ञान’ के सिद्धान्त के प्रकाशन में ‘अनेकान्तवाद’, ‘स्याद्वाद’, ‘सप्तभङ्गी’ आदि शब्दों का प्रयोग रविषेण ने किया है। चारित्र का विस्तृत विवेचन उसने विविध उपदेशों के समय किया है। यह स्मरणीय है कि रविषेण ने धर्म का प्रयोग कहीं पूरे मोक्ष मार्ग (दर्शन-ज्ञान-चारित्र) के लिए, कहीं चारित्र के लिए और कहीं केवल

१८१ संनारकारणनिवृत्ति प्रत्यागूर्णस्य ज्ञानधन. कर्मादाननिमित्तधियोपरम सम्यग्चारित्रम्॥

तत्त्वार्थसूत्र १।१ पर सर्वार्थसिद्धि टोका।

१८२ तिलोयण्णत्ति (तिलोकप्रज्ञप्ति) की रचना रविषेण से पूर्व हो चुकी थी। प्राकृत भाषा में रचित इस ग्रन्थ का विषय मुख्यतः विश्वरचना—लोकस्वरूप है तथा प्रसंगवश इसमें धर्म और तत्त्वज्ञान से सम्बन्ध रखने वाली अनेक धर्म्य बातों की भी चर्चा आयी है। समस्त ग्रन्थ नी महाविकारों में विभाजित है—(१) सामान्य लोक का स्वरूप, (२) नारक लोक, (३) भवन-वासी लोक, (४) मनुष्य लोक, (५) तिर्यगलोक, (६) ध्यन्तरलोक, (७) ज्योतिषलोक, (८) देवलोक और (९) सिद्धलोक।

इसका प्रथम भाग (चतुर्थ महाविकार तक) १९४३ ई० में और दूसरा भाग १९५१ ई० में प्र० होरकाल जैन, आदिनाथ उपाध्ये एवं प० बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री के सम्पादकत्व में जैन संस्कृत-संरक्षक-मंडल कोलापुर से प्रकाशित हुआ है।

धार्मिक अनुष्ठानादि के लिए किया है,। कहीं विनेन्द्र-शासन का अर्थ धर्म है और कहीं 'भारवर्ति' के अर्थ में। इसीलिए 'पद्मपुराण' में 'धर्म' शब्द से धर्म और दर्शन दोनों की सम्मिश्रित अर्थावगति होती है।

'पद्मपुराण' के अनुसार जैनधर्म ही एक ऐसा धर्म है जो निष्कलुष एवं आदर्श है। यद्यपि मिथ्यादृष्टियों (ब्राह्मणों) के कुशासन में भी कहीं थोड़ा बहुत धर्म का शेष मिल सकता है तथापि सम्पूर्णदर्शन के बिना वह निम्न ही है।^{१८१}

'पद्मपुराण' के अनुसार—धर्म का मूल है दया और उसका मूल—अहिंसा^{१८४} धर्म दो प्रकार का है—महाव्रत और अणुव्रत। इनमें महाव्रत गृहत्यागियों (अनागारों) का है और अणुव्रत गृहस्थों का।

मुनियों को पंच महाव्रतों का पालन करना पड़ता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का ऐकान्तिक और आत्यन्तिक पालन करना पंचमहाव्रत-पालन है। अनागारों को तीन गुप्तियों, पंच समितियों एवं नाना तपों को बश में करना होता है।^{१८५}

गृहस्थों का धर्म मुख्यतः इन द्वादश भागों में विभक्त है—पाँच अणुव्रत, चार शिक्षाव्रत एवं तीन गुणव्रत।^{१८६} इनके अतिरिक्त यथाशक्ति उन्हें अनेक नियम धारण करने होते हैं। स्नान हिंसा, स्नान भूठ, स्नान पर-द्रव्य-ग्रहण, पर-स्त्री-समागम और अनन्तलूणा से विरत होना—ये गृहस्थों के पाँच अणुव्रत हैं।^{१८७} इन व्रतों की रक्षा के लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय, परस्त्रीविरक्ति तथा इच्छा का परिमाण परम आवश्यक है।^{१८८}

अणुव्रतों के साथ ये तीन गुणव्रत भी लेने पड़ते हैंः—अनर्थदण्डों का त्याग करना, विद्याओं और विविधाओं में आवागमन की सीमा निर्धारित करना एवं भोगोपभोगों का परिमाण करना।^{१८९}

चार शिक्षाव्रत ये हैं—प्रयत्नपूर्वक सामायिक करना, श्रोत्रघोषवास धारण करना, अतिथि-संविभाग और आयु का क्षय होने पर सल्लेखना धारण करना।^{१९०} सामायिक व्रत में गृहस्थ को प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल में नित्य कुछ समय तक आध्यात्मिक तत्त्वानुशीलन करना होता है। श्रोत्रघोषवास के अनुसार गृहस्थ को दोनों पक्षों की अष्टमी और चतुर्विंशी को भोजन से विरत रहने का व्रत लेना होता है। अतिथि-संविभाग के द्वारा उसे अतिथियों का स्वागत करना होता है एवं उन्हें भोजन देकर स्वयं भोजन करना होता है। जिसने अपने आगमन के

१८३. पृष्ठ ०, ६।२८२। १८४. वही, ६।२८६। १८५. वही, ६।२८९-२९२, १४। १९४-१९९। १८६. वही, १४।१८३। १८७. वही, १४।१८४-१८५। १८८. वही, १४।१८६-१९४। १८९. वही, १४।१९८। १९०. वही, १४।१९९।

विषय में किसी तिथि का संकेत नहीं किया है, जो परिग्रह से रहित है और सम्बन्धदर्शनादि गुणों से युक्त होकर घर जाता है ऐसा मुनि अतिथि कहलाता है। ऐसे अतिथि के लिए अपने जैन्य के अनुसार आदरपूर्वक लोभरहित हो भिक्षा तथा उपकरण आदि देना चाहिए।^{१९१} सत्लेखना के अनुसार शुद्धमन होकर, सभी मनोविकारों से मुक्त होकर और सभी लोगों को जमा प्रदान करके अपने सभी पापों की आलोचना की जाती है और अन्त में महाव्रतों को अपना कर शोक-भय-विषाद-अरति आदि से चित्त को विमुक्त करके भोजन और पेय का संबंध त्याग करके समाधि-मरण अपना लिया जाता है। इन व्रतों में से सामायिक प्रोषधोपवास और अतिथिसंविभाग क्रमशः वैदिक संस्कृति के ब्रह्मचर्य, व्रतोपवास और अतिथि-यज्ञ के समकक्ष पड़ते हैं।^{१९२}

इनके अतिरिक्त गृहस्थ के लिए पालनीय ये नियम हैं—मधुत्याग, मद्य-त्याग, मांस-त्याग, दूत-त्याग, रात्रिभोजन-त्याग और वेद्यागमन-त्याग आदि।^{१९३}

इस प्रकार धर्माचरण करने से गृहस्थ मरकर देव-पर्याय को प्राप्त होता है और वहाँ से म्र्युत होकर उत्तम मनुष्यत्व प्राप्त करता है। ऐसा जीव अधिक से अधिक आठ भवों में रत्नत्रय का पालन कर अन्त में निर्गन्ध होकर सिद्धिपद को प्राप्त हो जाता है।^{१९४}

‘पद्मपुराण’ के अनुसार जो भी व्यक्ति जिनेंद्र की वन्दना करता है अथवा उनका भावपूर्वक स्मरण करता है, उसके पाप क्षीण हो जाते हैं।^{१९५} जिनेंद्र की स्तुति से, जिनेंद्र की प्रतिमा बनवाने से और जिनेंद्र की पूजा करने से कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता।^{१९६} जो भी प्राणी धर्म से युक्त होता है वही समस्त संसार में पूज्य होता है और स्वर्ग में अपार सौख्य प्राप्त करता है।^{१९७}

इस मुनिधर्म और गृहस्थ धर्म के विपरीत जो भी आचरण अथवा ज्ञान है वह ‘अधर्म’ है।^{१९८}—जिससे परलोक और पुनर्जन्म में अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं।^{१९९} अधर्मी प्राणी अनेक नरकों में जाता है।^{२००}—ऐसी ‘पद्मपुराण’ की साम्यता है।

‘पद्मपुराण’ के अनुसार, यज्ञ करना (विशेषतः हिंसायज्ञ) पातक है और

१९१. वही २४।२००-२०१।

१९२. रामजी उपाध्याय : प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका।

१९३. पद्य० १४।२०२।

१९४. पद्य० १४।२०३-२०४

१९५. वही, १२।२०८

१९६. वही, १४।२१३

१९७. वही, १४।२१४

१९८. वही, ६।१०४

१९९. वही, १४।२६६-२६७

२००. वही, ६।३०५-३११

दिन भर व्रत करके रात्रि में व्रत की पारणा करना भी अघर्म है।^{७०१}

'पद्मपुराण' के अनुसार, जैनधर्म में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र—इनकी एकता ही मोक्ष का मार्ग है।^{७०२} इनमें से तत्त्वों का अद्यान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है।^{७०३} अनन्त गुण और अनन्त पर्यायों को धारण करने वाला तत्त्व चेतन-अचेतन के भेद से दो प्रकार का है।^{७०४} स्वभाव अवस्था परोपवेश के द्वारा भक्तिसपूर्वक जो तत्त्व को ग्रहण करता है, वह जिनमत का अद्यानु सम्यग्दृष्टि जीव कहा गया है।^{७०५} शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा और प्रत्यक्ष ही उदार मनुष्यों में दोष लगाना—उनकी निन्दा करना—ये पाँच अतिचार हैं।^{७०६} परिणामों की स्थिरता रखना, जिनायतन आदि क्षेत्रों में रमण करना—स्वभाव से उनका अच्छा लगना, उत्तम भावनाएँ भाना तथा शंकादि दोषों से रहित होना—ये सब सम्यग्दर्शन को क्षुब्ध रखने के उपाय हैं।^{७०७} सम्यग्ज्ञानपूर्वक जितेन्द्रिय मनुष्य के द्वारा जो आचरण किया जाता है वह सम्यक्चारित्र कहलाता है।^{७०८} सम्यक्चारित्र में, इन्द्रियों का वशीकरण, वचन तथा मन का नियन्त्रण, श्यायपूर्ण प्रवृत्ति करने वाले प्रस-स्थावर जीवों पर अहिंसा, मन और कानों को आनन्दित करने वाले, स्नेहपूर्ण, मधुर, सार्यक और कल्याणकारी वचनों का कथन, अदत्त वस्तु के ग्रहण में मन-वचन-काय से निवृत्ति, श्यायपूर्वक दी गयी वस्तु का ग्रहण, ब्रह्मचर्य-धारण, मोक्ष-मार्ग में महाविघ्नकारी मूर्च्छा के त्याग के साथ परिग्रह का त्याग, मुनियों के लिए दान एवं विनय-नियम-शील-ज्ञान-दया-दम-मोक्ष के लिए ध्यान-धारण आदि करने होते हैं।^{७०९} कल्याण-प्राप्ति के लिए जिन-शासनोक्त सम्यक्चारित्र का अवश्य पालन करना चाहिए।^{७१०} इनके विरुद्ध मिथ्या दर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र हैं जिनसे प्राणी संसार से नहीं निकल पाता।^{७११}

किन्तु इस विवेचन से पद्मपुराण की काव्यात्मकता अत्यन्त बोधिल प्रतीत होने लगती है। यदि जैन धर्म और दर्शन के सिद्धान्तों का सार प्रस्तुत किया जाता तो अधिक सरसता बनी रह सकती थी। किन्तु रविवेण, मानों कच्चे माल की भरती करने के आदी हैं। जिस तत्परता से वे बाण के हर्षचरित के वाक्य के वाक्य

७०१. वही, पृष्ठ १४

७०२. वही, १०४।३-२१०

७०३. वही, १०४।२११

७०४. वही, १०४।२११

७०५. वही, १०४।२१२

७०६. वही, १०४।२१३

७०७. वही, १०४।२१४

७०८. वही, १०४।२१५

७०९. वही, १०४।२१६-२२३

७१०. वही, १०४।२२४

७११. वही, १०४।२२६-२६९

पवीकृत करके राजगृह नगर का अधशा श्रेष्ठिक राजा का वर्णन करते हैं उसी तत्परता से वे कुम्भकुम्भ के 'पंचास्तिकायसार' उमास्वाति के 'तत्त्वार्थसूत्र' एवं यतिवृषभ की 'तिलोवपणपति' की सामग्री को अनुष्टुप्-बद्ध करके पाठकों के सम्मुख रखते हैं, चाहे उनका पाठक उसे सरलता से पचा सके या न पचा सके^{७११}। कुछ तुलनात्मक उद्धरण प्रस्तुत हैं—

उमास्वाति और रविषेण

१. उमास्वाति : सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ।^{७१२}
रविषेण : उवाच भगवान् सम्यग्दर्शनज्ञानवेष्टितम् ।
मोक्षवर्त्म समुद्दिष्टमिदं जैनेन्द्रशासने ॥^{७१३}
२. उमा० : तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ।^{७१४}
रवि० : तत्त्वश्रद्धानमेतस्मिन् सम्यग्दर्शनमुच्यते ॥^{७१५}
३. उमा० : तन्निर्गन्धिगममाद्या ।^{७१६}
रवि० : निर्गन्धिगममाद्याः तत्त्वमुपाददत् ।^{७१७}
४. उमा० : शङ्काकांक्षाविचिकित्साऽप्यदृष्टिप्रभांसासंस्तवाः सम्यग्बुद्धे-
रतीचाराः ।^{७१८}
रवि० : शङ्काकांक्षा चिकित्सा च परशासनसंस्तवः ।
प्रत्यञ्जोदारदोषाद्या एते सम्यक्स्वबुधणाः ॥^{७१९}
५. उमा० : तत्स्वैर्यं भावनाः पञ्च पञ्च ।^{७२०}
रवि० : स्वैर्यं जिनवरागारे रमण भावनाः पराः ।
जङ्गादिरहितस्व च सम्यग्दर्शनसोधनम् ॥^{७२१}

७१२ आगे चलकर जिनसेन से भी अपने 'हरिवंशपुराण' (८४० वि० सं०) के ५८वें सर्ग में जैन धर्म के तत्त्वों का इसी प्रकार विस्तृत विवेचन किया है। दे० 'हरिवंशपुराण', (सम्पादक, प० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, संस्क० १९६२ ई०) पृ० ६६०-६९३। क्षेत्र, काल तथा धृत-मति-केवल ज्ञानी का विवेचन श्री रविषेण की रीति से 'हरिवंशपुराण' के चतुर्थ, पंचम, सप्तम तथा दशम सर्ग में हुआ है।

७१३ तत्त्वार्थसूत्र, १।१

७१४. पद्य०, १०५।२१०

७१५. तत्त्वार्थ०, १।२

७१६. पद्य०, १०५।२११

७१७. तत्त्वार्थ०, १।३

७१८. पद्य०, १०५।२१२

७१९. तत्त्वार्थ०, ७।२३

७२०. पद्य०, १०५।२१३

७२१. तत्त्वार्थ०, ७।३

७२२. पद्य०, १०५।२१४

६. उमा० : कायषाडमनःकर्म योगः ।^{७२३}
स आस्रवः ।^{७२४}
- रवि० : गोपायितहृषीकत्वं वचोमानसयन्त्रणम् ।
विद्यते यत्र निष्पापं सुचारित्रं तदुच्यते ॥^{७२५}
७. उमा० : हिंसाऽनृतस्तेयान्नह्यपरिग्रहेभ्यो विरतिर्लतम् ।^{७२६}
- रवि० : अहिंसा यत्र भूतेषु जसेषु स्वावरेषु च ।
क्रियते भ्याययोगेषु सुचारित्रं तदुच्यते ॥
मनःश्रोत्रपरिह्लादं स्निग्धं मधुरमर्षवत् ।
शिवं यत्र वचः सत्यं सुचारित्रं तदुच्यते ॥
अदत्तग्रहणे यत्र निवृत्तिः क्रियते त्रिधा ।
दत्तं च गृह्यते न्याय्यं सुचारित्रं तदुच्यते ॥
सुराणामपि सम्पूज्यं दुर्धरं महतामपि ।
ब्रह्मचर्यं क्षुभं यत्र सुचारित्रं तदुच्यते ॥
शिवमार्गमहाविघ्नमूच्छत्यजनपूर्वकः ।
परिग्रहपरित्यागः सुचारित्रं तदुच्यते ॥^{७२७}
८. उमा० : बन्धवघच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ।^{७२८}
क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णघनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणाति-
क्रमाः ।^{७२९}
- रवि० : वधताडनबन्धाङ्कदोहनादिविघायिनः ।
ग्रामक्षेत्रादिसक्तस्य प्रव्रज्या का हतात्मनः ॥
क्रयविक्रयसक्तस्य पंकितयाचनकारिणः ।
सहिरण्यस्य का मुक्तिर्दीकितस्य दुरात्मनः ॥^{७३०}
९. उमा० : रत्नशंकराबालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभाभूमयो घनाम्बु-
वाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽवः ।^{७३१}
- रवि० : रत्नाभा प्रथमा तत्र यस्यां भवनजाः सुराः ।
पडघस्तासतः क्षोण्यो महाभयसमाबह्राः ॥

शर्कराबालुकापक्कधूमध्वान्ततमोनिभाः ।

सुमहादुःखदायिन्यो नित्यान्धध्वान्तसंकुलाः ॥७१२

...अधस्तान्महीरत्नप्रभाशर्कराबालुकापक्कधूमप्रभाध्वान्त-
भातिप्रकृष्टान्धकाराभिवास्ताश्च नित्यं महाध्वान्त-
युक्ताः ॥७१३

१०. उभा० : नारका नित्याशुभतरलेख्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥७१४

रवि० : चक्षुषः पुटसङ्कोचो यावन्मात्रेण जायते ।

तावन्तमपि नो कालं नारकाणां मुलासनम् ॥७१५

११. उभा० : जम्बूद्वीपलवणोदयादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥७१६

द्विद्विविष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो बलयाकृतयः ॥७१७

तन्मध्ये मेरुनाभिवृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बू-
द्वीपः ॥७१८ भरतहेमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैराव-

तवर्षाः क्षेत्राणि ॥७१९ तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्म-

हाहिमबन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥७२०

हेमार्जुनतपनीयर्वह्न्यूरजतहेममयाः ॥७२१ मणिविचित्र-

पाश्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥७२२ पद्ममहापद्मति-

गिच्छकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥७२३

प्रथमो योजनसहस्रायामस्तद्वर्द्धविष्कम्भो ह्रदः ॥७२४ दश-

योजनावगाहः ॥७२५ तन्मध्ये योजन पुष्करम् ॥७२६ तद्वि-

गुणाद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥७२७ तन्निवासिन्यो देव्यः

श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पत्न्योपमस्थितयः ससा-

मानिकपरिषत्काः ॥७२८ गङ्गासिन्धुरोहिद्रोहितास्माहरि-

द्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णरूपकूला-

७३२. पद्म०, १०५/१११-११२

७३४. तत्पार्श्व०, ३१३

७३६. तत्पार्श्व, ३१७

७३८. वही, ३१९

७४०. वही, ३१९१

७४२. वही, ३१९३

७४४. वही, ३१९५

७४६. वही, ३१९७

७४८. वही, ३१९६

७३३. वही, ७८/६२ के बाद का पद्य ।

७३४. पद्म०, २११२

७३७. तत्पार्श्व०, ३१८

७३९. वही, ३१९०

७४१. वही, ३१९२

७४३. वही, ३१९४

७४५. वही, ३१९६

७४७. वही, ३१९८

रक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥७४९॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः
पूर्वगाः ॥७५०॥ शेषास्त्वपरगाः ॥७५१॥ चतुर्दश नदी सहस्रपरि-
वृता गङ्गासिन्धवादयो नद्यः ॥७५२॥ विदेहेषु संख्येय-
काला ॥७५३॥ द्विघातकीलण्डे ॥७५४॥ पुष्करार्द्धे च ॥७५५॥ प्राङ्-
मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥७५६॥ आर्या म्लेच्छाश्च ॥७५७॥ भरत-
रावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरुत्तरकुरुभ्यः ॥७५८॥
मृत्स्थिती परापरे त्रिपत्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥७५९॥ तिर्यम्योनि-
जनानां च ॥७६०॥

रचि० : जम्बूद्वीपमुखा द्वीपा लवणाद्याश्च सागराः ।
प्रकीर्तिताः शुभा नाम संख्यानपरिवर्जिताः ॥
पूर्वाद् द्विगुणविष्कम्भाः पूर्वविशेषवर्तिनः ।
वलयाकृतयो मध्ये जम्बूद्वीपः प्रकीर्तितः ॥
मेरुनाभिरसौ वृत्तो लघयोजनमानमृत् ।
त्रिगुणं तत्परिषेपादधिकं परिकीर्तितम् ॥
पूर्वापरायतास्तत्र विज्ञेयाः कुलपर्वताः ।
हिमबाश्च महाज्ञेयो निषधो नील एव च ॥
रुक्मी च शिखरी चेति समुद्रजलसङ्गताः ।
वास्यान्येभिर्विभक्तानि जम्बूद्वीपगतानि च ॥
भरताख्यमिदं क्षेत्रं ततो हैमवतं हरिः ।
विदेहो रम्यकाख्यं च हैरण्यवतमेव च ॥
ऐरावतं च विज्ञेयं गङ्गाद्याश्चापि निम्नगाः ।
प्रोक्तं द्विघातकीलण्डे पुष्करार्द्धे च पूर्वकम् ॥
आर्या म्लेच्छा मनुष्याश्च मानुषाचलतोऽपरे ।
विज्ञेयास्तत्प्रभेदाश्च संख्यानपरिवर्जिताः ॥
विदेहे कर्मणो भूमिर्भरतैरावते तथा ।
देवोत्तरकुरुभोगक्षेत्रं शेषाश्च भूमयः ॥

७४९. वही, ३१२०

७४९. वही, ३१२२

७४३. वही, ३१३१

७४४. वही, ३१३४

७४७. वही, ३१३६

७४९. वही, ३१३८

७४०. वही, ३१२१

७४२. वही, ३१२३

७४४. वही, ३१३३

७४६. वही, ३१३५

७४८. वही, ३१३७

७६०. वही, ३१३९

त्रिपल्यान्तर्मूर्तं तु स्थिती नृणां परावरे ।

मनुष्याणामिव ज्ञेया तिर्यग्योनिमुपेयुषाम् ॥७६१॥

१२. उक्त० : देवाश्चतुर्गिकायाः ॥७६२॥ दशाष्टपञ्चदशसकिल्पाः
कल्पोपपन्नपर्यन्ता ॥७६३॥ भवनवासिनोऽमुरनागविद्युत्सु-
पर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपक्षिकुमाराः ॥७६४॥ व्यन्तराः
किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥७६५॥
ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतार-
काश्च ॥७६६॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥७६७॥ सौधर्म-
शानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मान्तरलान्तवकापिष्ठशुक-
महाशुकशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतधोर्नवसु
श्रीवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वासिसिद्धी
षु ॥७६८॥

रवि० : अष्टभेदजुषो वेद्या व्यन्तराः किन्नरादयः ।
तेषां क्रीडनकावासा यथायोग्यमुदाहृताः ॥
ऊर्ध्वं व्यन्तरदेवानां ज्योतिषा चक्रमुज्ज्वलम् ।
मेरुप्रदक्षिणं नित्यञ्जतिश्चन्द्रार्कराजकम् ॥
सख्येयानि सहस्राणि योजनानां व्यतीत्य च ।
तत ऊर्ध्वं महालोको विज्ञेयः कल्पवासिनाम् ॥
सौधर्मस्वस्त्यैशानः कल्पस्तत्र प्रकीर्तितः ।
ज्ञेयः सानत्कुमारश्च तथा माहेन्द्रसंज्ञकः ॥
ब्रह्म ब्रह्मोत्तरो लोको लान्तवश्च प्रकीर्तितः ।
कापिष्ठश्च तथा शुको महाशुकाभिचस्तथा ॥
शतारोज्य सहस्रारः कल्पश्चानतशम्बितः ।
प्राणतश्च परिज्ञेयस्तत्परावारणच्युतौ ॥
नव श्रीवेयकास्ताभ्यामुपरिष्ठात्प्रकीर्तिताः ।
अहमिन्द्रतया येषु परमास्त्रिदशाः स्थिताः ॥

७६१. पद्य०, १०५।१५४-१६३ इतके अतिरिक्त पद्य० ३।३९-४० भी देखें ।

७६२. तत्पर्याय०, ४।१

७६३. तत्पर्याय०, ४।३

७६४. वही, ४।११

७६५. वही, ४।१३

७६४. वही, ४।१०

७६६. वही, ४।१२

७६८. वही, ४।१९

- विजयो वैजयन्तस्य जयन्तोऽप्यपराजितः ।
 सर्वार्थसिद्धिनामा च परमैतेऽनुसूताः स्मृताः ॥७६९॥
१३. उक्ता० : भरतैरावतयोर्बुद्धिहासौ षट्समभ्यामुत्सपिष्यन्सपिषी-
 भ्याम् ॥७७०॥
- रवि० : उत्सपिष्यन्सपिष्योरेवं क्रमसमुद्भवः ॥७७१॥
१४. उक्ता० : पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥७७२॥
 संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥७७३॥
- रवि० : पृथिव्यापद्म तेजश्च मातरिष्वो वनस्पतिः ।
 शेषास्त्रसाश्च जीवानां निकायाः षट् प्रकीर्तिताः ॥७७४॥
१५. उक्ता० : अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥७७५॥ द्रव्यानि ॥७७६॥
 जीवाश्च ॥७७७॥ आ आकाशादेकद्रव्यानि ॥७७८॥
- रवि० : धर्माधर्मविराजितकालजीवपुद्गलभेदतः ।
 द्योढा द्रव्यं समुद्दिष्टं सरहस्यं जिनेश्वरैः ॥७७९॥
१६. उक्ता० : तत्त्वार्थथेद्वानं सम्यग्दर्शनम् ॥७८०॥ तन्निर्गन्धिगमाद्वा ॥
 ७८१॥ नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्म्यासः ॥७८२॥ प्रमाणनवी-
 रधिगमः ॥७८३॥ सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्प-
 बहुत्वैश्च ॥७८४॥ नैगमसंसह्यबह्वर्जुसूत्रशब्दसमभिरू-
 ळैवम्भूता नवाः ॥७८५॥ जीवभ्रम्यामव्यत्वानि च ॥७८६॥ उप-
 योगो लक्षणम् ॥७८७॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्मेव ॥७८८॥ संसारिणो
 मुक्ताश्च ॥७८९॥ समनस्कामनस्काः ॥७९०॥ संसारिणस्त्रस-
 स्थावराः ॥७९१॥ पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥७९२॥

७६९. पद्य०, १०५।१६४-१७१

७७१. पद्य०, ३।७३

७७३. बही, २।१२

७७५. तत्त्वार्थसूत्र, ५।१

७७७. बही, ५।३

७७९. पद्य० १०५।१४२

७८१. बही १।३

७८३. बही १।६

७८५. बही १।३३

७८७. बही २।८

७८९. बही २।१०

७९१. बही २।१२

७७०. तत्त्वार्थसूत्र ३।२७

७७२. तत्त्वार्थसूत्र २।१३

७७४. पद्य०, १०५।१४१

७७६. बही, ५।२

७७८. बही, ५।६

७८०. तत्त्वार्थसूत्र १।२

७८२. बही, १।५

७८४. बही, १।८

७८६. बही, २।७

७८८. बही, २।९

७९०. बही, २।११

७९२. बही, २।१३

ह्रीन्निद्रयादयस्त्रसाः ॥७९१॥ पञ्चेन्द्रियाणि ॥७९४॥ स्पर्शनरसन-
घ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥७९५॥

रवि०

सप्तभंगीबन्धोमार्गः सम्यक्प्रतिपदं मतः ।
प्रमाणं सकलादेशो नयोऽवयवसाधनम् ॥
एकद्वित्रिचतुःपञ्चद्विषीकेष्वविरोधतः ।
सर्वं जीविषु विज्ञेयं प्रतिपक्षसमन्वितम् ॥

० ० ०

भव्याभव्यादिभेदं च जीवद्रव्यमुदाहृतम् ।
संसारे तद्बद्धयोगमुक्ताः सिद्धास्तु परिकीर्तिताः ॥
ज्ञेयद्रव्यस्वभावेषु परिणामः स्वशक्तितः ।
उपयोगश्च तद्रूपं ज्ञानदर्शनतो द्विधा ॥
ज्ञानमष्टविधं ज्ञेयं चतुर्धा दर्शनं मतम् ।
संसारिणो विमुक्ताश्च ते सचित्तविचेतसः ॥
वनस्पतिपृथिव्याद्याः स्थावराः शेषकास्त्रसाः ।
पञ्चेन्द्रियाः श्रुतिघ्राणचक्षुस्त्वग्रसनान्विताः ॥७९६॥

१७. उभा०

: सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥७९७॥ सचित्तशीतसवृताः
सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥७९८॥ जरायुजाण्डजपोतानां
गर्भः ॥७९९॥ देवनारकाणामुपपादः ॥८००॥ शेषाणां
सम्मूर्च्छनम् ॥८०१॥

रवि०

पोताण्डजजरायूनामुदितो गर्भसम्भवः ।
देवानामुपपादस्तु नारकाणाञ्च कीर्तितः ॥
सम्मूर्च्छनं समस्तानां शेषाणां जन्मकारणम् ।
योन्यस्तु विविधाः प्रोक्ता महादुःखसमन्विताः ॥८०२॥

१८. उभा०

: जीदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकर्मणानि शरीराणि ॥८०३॥
परम्परं सूक्ष्मम् ॥८०४॥

७९१. बही, २/१४

७९४. बही, २/१९

७९७. तत्त्वार्थसूत्र, २/६१

७९९. बही, २/३३

८०१. बही, २/३५

८०३. तत्त्वार्थसूत्र, २/३६

७९४. बही, २/१४

७९६. पद्य०, १०५/१४३-१४९

७९८. बही, २/३२

८००. बही, २/३४

८०२. पद्य०, १०५/१४०-१४१

८०४. बही, २/३७

- रवि० श्रीवारिकं चारीरं तु वैक्रियाऽऽहारके तथा ।
तैजसं कामेण वैव विद्धि सूक्ष्मं परं परम् ॥८०५
१९. उमा० : प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राप्तैवसात् ॥८०६ अनन्तगुणे
परे ॥८०७ तदाक्षीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना
चतुर्म्हः ॥८०८
- रवि० असंख्येयं प्रदेशेन गुणतोऽनन्तके परे ।
आदिसम्बन्धमुक्ते च चतुर्गमिकालता ॥८०९
२०. उमा० : देवाश्चतुर्णिकायाः ॥८१० भवनवासिनोऽसुरनागविष्टस्तु-
पर्णभिन्वातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥८११ व्यन्तराः
किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वक्षराक्षसभूतविशाखाः ॥८१२
ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतार-
काश्च ॥८१३ वैमानिकाः ॥८१४ कल्पोपपन्नाः कल्पाती-
ताश्च ॥८१५
- रवि० ज्योतिषाः भावनाः कल्पा व्यन्तराश्च चतुर्विधाः ।
देवा भवन्ति योग्येन कर्मणा जन्तवो भवे ॥८१६
२१. उमा० : ईर्ष्यावैषण्यदाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥८१७
- रवि० : ईर्ष्यावैषण्यदाननिक्षेपोत्सर्गरूपिका ।
समितिः पालनं तस्याः कार्यं यत्नेन साधुना ॥८१८
२२. उमा० : सम्मथ्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥८१९ कायबाहुमनःकर्म
योगः ॥८२०
- रवि० : बाहुमनःकायवृत्तीनामभावो ह्रदिमाधवा ।
गुप्तिराचरण तस्या विधेयं परमादरात् ॥८२१
२३. उमा० : दिग्देसानर्थदण्डविरतिसामाधिकप्रोषचोपवासोपभोगपरि -
भोगपरिभाणातिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च ॥८२२ मार-

८०५. पद्मपुराण, १०५।१५२

८०७. बही, २।३९

८०९. पद्मपुराण, १०५।१५३

८११. बही, ४।१०

८१३. बही, ४।१२

८१५. बही, ४।१७

८१७. तत्त्वार्थसूत्र, ९।४

८१९. तत्त्वार्थ०, ९।४

८२१. पद्म०, १४।१०९

८०६. तत्त्वार्थसूत्र, २।३८

८०८. बही, २।४३

८१०. तत्त्वार्थसूत्र, ४।१

८१२. बही, ४।११

८१४. बही, ४।१६

८१६. पद्मपुराण, ३।८२

८१८. पद्म०, १४।१०८

८२०. बही, ६।१

८२२. तत्त्वार्थ०, ७।२१

नामिकीं सल्लेखनां बोधिता ।^{८२३}

रवि० : पद्मपुराण (१४।१८३-१८६) । किन्तु रविवेण ने 'सल्लेखना' को चार शिक्षाव्रतों में चौथा माना है जो कि 'कुन्दकुन्द' की स्पष्ट भाव्यता है । उमास्वाति ने सल्लेखना को चार शिक्षाव्रतों में परिगणित नहीं किया है ।

कुन्दकुन्द और रविवेण

२४. कुन्दकुन्द : पञ्चैवगुणव्याहं गुणव्याहं हवंति तह तिण्णि ।
सिक्खावय चत्तारि य संजमचरणं च सायारं ॥
धूले तसकायबहे धूले मोसे अदत्तधूले य ।
परिहारो परमहिला परिग्गहारभ परिमाण ॥
दिसविदिसमाणपढमं अणत्थदण्डस्स वज्जणं विदिय ।
भोगोपभोगपरिमा द्वयमेव गुणव्याह तिण्णि ॥
सामाद्वय च पढम विदिय च तहेव पोसहं भणिय ।
तद्वयं च अतिहिपुज्जं चउत्थ सल्लेहणा अंते ॥^{८२४}

रविवेण : व्रतान्यणूनि पञ्चैवां शिक्षा बोक्ता चतुर्विधा ।
गुणास्त्रयो यथाशमित नियमास्तु सहस्रशः ॥
प्राणातिपाततः स्थूलाद्विरतिविततास्तथा ।
ब्रह्मणात्परवित्तस्य परदारसमागमात् ॥
अनन्तायाश्च गच्छायाः पञ्चसकस्यमिद व्रतम् ।
भावना चैयमेतेषां कथिता जिनपुङ्गवैः ॥
× × ×
विगमोऽनर्थदण्डेभ्यो दिग्विदिक्परिवर्जनम् ।
भोगोपभोगसकस्यानं त्रयमेतद्गुणव्रम् ॥
सामाधिकं प्रयत्नेन प्रोवधानशनं तथा ।
सविभागोऽतिथीना च सल्लेखश्चायुषः क्षये ॥^{८२५}

यतिबुधभ और रविवेण

२५. 'तिलोवपण्णत्ति' के नरसीक महाधिकार में मनुष्यलोक का निर्देश, जम्बु-द्वीप, लवणसमुद्र, घातकी लण्ड, कालोदक समुद्र, पुष्करार्ध

द्वीप, इन अढ़ाई द्वीपसमुद्रों में स्थित मनुष्यों के भेद, संख्या, अल्पबहुत्व, गुणस्थानादि, आयुबन्धक, परिणाम, योनि, सुख, दुःख, सम्यक्त्वग्रहण के कारण और मोक्ष जाने वाले जीवों का प्रमाण, इस प्रकार १६ अधिकार हैं। इसके २९६१ पद्यों और एक गद्यभाग में वैदिका, भरतादि क्षेत्रों और कुलपर्वतों का विन्यास, भरत क्षेत्र, उसमें प्रवर्तमान छः काल, हिमवान्, हैमवत महाहिमवान्, हरिवर्ष, निषध, विदेह क्षेत्र, नील पर्वत, रम्यक क्षेत्र, श्विम पर्वत, हैरण्यवत क्षेत्र, गिखरी पर्वत और ऐरावत क्षेत्र—इन १६ अन्तराधिकारों द्वारा जम्बूद्वीप का वर्णन, बहुत विस्तार पूर्वक किया गया है।

यहाँ प्रसंगवश २४ तीर्थंकरों का वर्णन ५२२ से गाथाओं में विस्तार के साथ किया गया है।

चक्रवर्तिप्ररूपणा में (गाथा १२८१ से १४१० तक) भरतादिक चक्रवर्तियों का उत्सेध, आयु, कुमारकाल, मण्डलीककाल, दिग्विजय, राज्य और संवत्सकाल का वर्णन है।

गा० १४११ से १४७३ में बलदेव, नारायण, प्रति-नारायण, रुद्र, नारद और कामदेव की संक्षिप्त प्ररूपणा की गयी है।

रविबेण ने पद्मपुराण के तीसरे, बीसवें और एक सौ पाँचवें पद्यों में मुख्यतः इस धार्मिक सामग्री का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए एक संकेत दिया जा रहा है।

यत्तिबुवभ ने तीर्थंकरों की ऊँचाई (उत्सेध) इस प्रकार निरूपित किया है—

“पञ्चसयन्नूपमाणो उसहजिजिदस्त होदि उच्छेहो ।
ततो पण्णासूणा नियमेण य पुप्फदंतपेरत्ते ॥
एत्तो जाव अणंतं दस दस कोदंडमेत्तपरिहीणो ।
ततो नेमि जिणंतं पणपणचावेहि परिहीणो ॥
णव हत्था पासजिणे सग हत्था बद्धमाणणामम्मि ।
एत्तो तित्थयराणं सरीरवण्णं पक्खेमो ॥” ८९६

रविबेन ने भी इसी रूप में तीर्थंकरों के उत्सेध का उल्लेख किया है—

“शतानि पञ्च चापानां प्रथमस्य महात्मनः ।
उत्सेधो जिननाथस्य वपुषः परिकीर्तितः ॥
पञ्चाशच्छापहान्यातः प्रत्येकं परिकीर्तितम् ।
शीतलात् प्राग् जिनेन्द्राणां नवतिः शीतलस्य च ॥
ततो धर्मजिनात्पूर्वं दशचापपरिक्षयः ।
प्रत्येकं धर्मनाथस्य चत्वारिंशत्सप्तपञ्चिकाः ॥
ततः पार्श्वजिनात्पूर्वं प्रत्येकं पञ्चमिः क्षयः ।
नवारत्निमितः पार्श्वो महावीरो द्विर्जितः ॥”^{८२७}



राजनीतिक गृह्य-संहिता : राजघरानों की परम्पराओं, चरित्रों, जलस्रोत-प्रसंगों तथा वैभवादि के वर्णनों से यह व्यक्त होता है कि 'पद्मपुराण' में वर्णित राजनीतिक गृह्य-संहिता पर्याप्त ज्ञानस्तर की है।

राजाओं में बहुपत्नीत्व-प्रथा खूब प्रचलित थी, अन्तःपुर भरे रहते थे—ऐसा प्रतीत होता है। राजा श्रेष्ठिक के अन्तःपुर में सहस्रों महिलाओं का उत्प्रेषण है।^{८११} राजाओं की दिनचर्या प्रातःकाल से रात्रि तक अत्यन्त व्यस्त थी। उनके शयनीय-गृह में अत्यन्त शोभा होती थी। शय्या पर रत्न एवं पुष्प जड़े होते थे।^{८१२} शय्या के पास बैठकर वेद्याएँ गान करती थीं।^{८१३} राजा स्त्रियों के द्वारा मंगल क्रिये जाने पर (स्वस्त्रीभिः कृतमंगलः) शयनीय से उठता था।^{८१४} कप्योन्नत तुरहीमादन एवं मांगलिक ध्वज करते थे।^{८१५} वेद्याएँ उत्सृष्टा जयकार करती थीं।^{८१६} जागकर राजा भद्रविष्टर (सिंहासन) पर कृतशेषतनुस्त्विति एव सर्वा-संस्कारसम्पन्न होकर बैठता था।^{८१७} तनुस्त्विति का प्रधान अंग था—स्नान। गन्ध और उद्दतन के साथ स्नान का अनेक बार उत्प्रेषण हुआ है।^{८१८} राजाओं और युवराजों की स्नानविधि बड़ी उपचारपूर्ण थी। सुन्दर वनिताएँ उन्हें स्नान कराती थीं। रत्न-जड़ित और स्वर्णनिर्मित चौकियों पर बैठकर वे स्नान करते थे। औक्षण और राजत कलशों से उनका अभिषेक किया जाता था। इन कलशों के मुख पर नव-पल्लव रखे रहते थे और ये हारों से सुशोभित रहते थे। इनमें सुवासित जल रहता था। कलशों में एक या अथवा अनेक मुक्त होते थे। स्नान के पश्चात् कृष्णलेप और उद्दतन होता था एवं कुशागनाएँ संवलाधार करती थी। सूर्यनाथ होता था। स्वामीपरांत वस्त्राभूषण धारण किये जाते थे, राजकुमार मुञ्जनों की बन्दना भी करते थे।^{८१९}

प्रतीहारवत्तद्वार सावन्त प्रातःकाल आकर राजा को प्रणाम करते थे।^{८२०} जब राजा किसी धार्मिक स्थान पर जाता था तो सामन्त उसके साथ चलते थे।^{८२१} वह कुशा (भूल) से युक्त हाथी पर चढ़कर चलता था।^{८२२} आगे-आगे पैदल

८११. पद्मपुराण, २।३४

८१२. वही, २।२१९-२२०

८१३. वही, २।२२०

८१४. वही, २।२५३

८१५. वही, १०।५७

८१६. वही, २।२५६

८१७. वही, ३।१

८१८. वही, ३।१८५।७२।१२।१७ तथा ८३।१०७-१०८ आदि।

८१९. वही, ७।३५९-३६७। बाण ने भी काव्यम्बरी में मूढक के स्नान का ऐसा ही वर्णन किया है।

८२०. वही, ३।२-४

८२१. वही, ३।५

८२२. वही, ३।३५

सिपाही भीड़ को हटाते चलते थे^{८४१} तथा बन्दीजन सुभाषित पढ़ते चलते थे।^{८४२} किसी बड़े मुनि के पास जाकर राजा हाथी से उतरकर पैदल ही जाता था और उनकी तीन प्रवक्षिणाएँ करके कृताञ्जलि होकर उन्हें प्रणाम करता था।^{८४३} हाथी से उतरना अपार शिष्टाचार का द्योतक था।^{८४४} राजा आदि के सामने आकर तथा अनुग्रहकामना सूचित करने के लिए पृथ्वी पर घुटने टेकने तथा सिर पर अञ्जलि रखने की प्रथा थी।^{८४५} उच्च मुनियों तथा महर्षियों का राजकुलों में विशेष आदर होता था।^{८४६} राजा और रानियाँ मन्दिरों में धार्मिक पूजा के लिए आज्ञा प्रसारित करते थे।^{८४७}

राजकुलों में अन्तःपुर की व्यवस्था के लिए कंचुकी रखे जाते थे।^{८४८} कन्याओं के अन्तःपुरों में द्वारपालियाँ भी रखी जाती थी।^{८४९} रानियों की शय्याओं पर गल्लक (गद्दे), उपधान (तकिये) तथा चारों ओर सशस्त्र स्त्रियाँ पहरे के लिए खड़ी रहती थीं।^{८५०} शयनों एवं तूर्यों के मधुर शब्दों और चारणों की रम्य बाणी से रानियाँ जागती थीं।^{८५१} रानी की गर्भावस्था में उसकी परिचर्या पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इस परिचर्या की भूलक रानी मखदेवी की गर्भावस्था के वर्णन में मिलती है। परिचारिकाएँ रानी की स्तुति करती थीं।^{८५२} बीणा बजाकर उसका गुणगान करती थीं,^{८५३} उसे गीत सुनाती थीं,^{८५४} उसके पैर पलोटती थीं,^{८५५} कोई ताम्बूल देती थी कोई आसन,^{८५६} कोई तलवार हाथ में लेकर उसकी रक्षा करती थी,^{८५७} कोई महल के भीतरी द्वार पर और कोई महल के बाहरी द्वार पर माला, सुवर्ण की छड़ी, दण्ड और तलवार आदि हथियार लेकर पहरा देती थीं,^{८५८} कोई चमर डोलती थी, कोई वस्त्र लाकर देती थी, कोई आभूषण लाकर उपस्थित करती थी,^{८५९} कोई शय्या बिछाने के कार्य में रत रहती थी, कोई झाड़ू लगाती थी। कोई पुष्प बिखेरने में लीन रहती थी, कोई सुगन्धित द्रव्य का लेप करती थी, कोई भोजन-पान के कार्य में व्यग्र रहती थी और कोई आह्वान-कर्म में लीन रहती

८४३. वही, ३।८

८४४. वही, ३।१३-१४

८४५. वही, २९।४२

८४६. वही, ६९।११

८४७. वही, २८।८

८४८. वही, ७।१७

८४९. वही, ३।११४

८४७. वही, ३।११४

८४९. वही, ३।११६

८६१. वही, ३।११८

८४४. वही, ३।९

८४६. वही, ३६।८८

८४८. वही, १०।१४२, २९।८७

८५०. वही, २९।४१

८५२. वही, ७।१७२-१७३

८५४. वही, ३।११४

८५६. वही, ३।११४

८५८. वही, ३।११६

८६०. वही, ३।११७

थी।^{८९९} प्रमोद के अवसर पर राजा लोग भी नृत्य करते थे।^{८९९}

‘पद्मपुराण’ के अनेक वर्णनों में राजाओं के क्षामोद-प्रमोदों का भी परिचय मिल जाता है। राजा लोग रानियों के साथ प्रमोदोद्यान में क्रीडा और बापिकाओं में जलक्रीडा किया करते थे। प्रमोदोद्यान में सरोवर, बोला (झूले) कृत्रिम क्रीडा-पर्वत (जिस पर सीढ़ियाँ बनीं होती थीं) एवं वृक्षों के फुरमुट बनाये जाते थे।^{८९९} राजाओं के द्वारा रात्रि में उत्तुंग भवन के शिखर पर बैठकर चारुगोष्ठीसुधास्वाद ग्रहण करने का भी उल्लेख आया है।^{८९९} इसके अतिरिक्त नृत्य, वाद्य एवं संगीत द्वारा भी राजाओं का मनोविनोद होता था। वेश्या, नृत्यकार (लासक), बन्दीजन, गीतशास्त्रकौशलकोविद वातिक (पेशेवर कहानी सुनाने वाले), चारण तथा विटों का मनोरंजन के साधन के रूप में उल्लेख हुआ है।^{८९९} पानगोष्ठी भी प्रचलित थी। स्त्रियाँ भी मदिरापान करती थीं।^{८९७}

‘पद्मपुराण’ के राजबैभव-वर्णनों से निष्कर्ष निकलता है कि खजाने, खान, गीर्ह, हल, उत्तम हाथी, घोड़े, अनेक वशंवद राजा, अनेक सुन्दर स्त्रियाँ एवं रत्न राजा के वैभव के प्रतीक थे।^{८९८} अनेक यन्त्रों का भी उल्लेख हुआ है।^{८९९} राज-भवनों को विविध रंगों से सजाया जाता था। सम्पन्न महलों तथा भवनों में हाथी-घोड़े आदि रखे जाते थे। विमान, उज्ज्वल छत्र, चामर आदि राजाओं की विभूति के परिचायक थे। वीणा-सूर्य, वाँसुरी और शंख आदि के मागलिक शब्द राज-भवनों में होते रहते थे।^{८९७} राजभवनों में अनेक द्वार तथा गोपुर होते थे। विभिन्न भवनों तथा शालाओं के नाम अलग-अलग रखे जाते थे। कोट और सभाएँ होती थीं। प्रेक्षागृहों, कार्यालयों एवं गर्भगृहों का व्यवस्थित रूप से निर्माण होता था। रानियों के महलों की पक्षितों एक तरफ होती थी। सुसज्जित शय्यागृह होते थे। अनर्घ्य वस्त्र, दिव्य आभूषण, दुर्मेघ कवच, आभूषण तथा शस्त्रास्त्र, ऊँचे कोट, बाहन, मणिमय फलों, छज्जों, खम्भों तथा स्नानभूमि आदि से समन्वित, सुदृ-घण्टिका-रेशमी वस्त्र-पट्टलम्बूष (फन्सूत)-चामर-उत्तमोत्तमप्राकार-तोरण-गोपुरादि से अलङ्कृत अनेक मजिलों वाले ससंगीत विशाल प्रासाद राजाओं के वैभव में परिगणित थे।^{८९९} ग्रीष्म-वर्षा और शीत में ऋतु के अनुसार राजाओं का

८६२. बही, ३।१११-१२०

८६४. बही, ५।२१७-३०६, ६।२२७- ३१

८६६. बही, २।३९-४३

८६८. बही. ४।६१।६६

८७०. बही, ८।५११-५१८।

८७१. बही, ८।५४-१४, १०।२।११८, ११०।६३-६७, ११२।४४-४८

८६३. बही, ३।३१५

८६५. बही, ६।३३५-१३६

८६७. बही, २।३८

८६९. बही, ८।२५८-२५९

बैभव-विलास होता था। गर्मियों में वे चन्दन का लेप लगवाते थे; जलयन्त्रों (फव्वारों) में स्नान करते थे; ठण्डे उपवनों, जामर, जलकणों से युक्त पंखों, स्फटिक की स्वच्छ मणियों, इलायची, लौंग, कर्पूरचूर्ण युक्त शीतल स्वादिष्ट मनोहर जल एवं कयासक्त स्त्रियों का सेवन करते थे।^{८७२} वर्षा में वे उत्तम महलों एवं महाविलासिनी स्त्रियों का सेवन करते थे।^{८७३} शीतकाल में तरुणी-स्तनों का सेवन करके वे शीतापनोदन करते थे।^{८७४}

राजव्यवस्था और राजा के कर्त्तव्य का भी परिचय 'पद्मपुराण' हमें देता है। राजा सभी भीषित, दरिद्र और दुःखियों का शरण समझा जाता था एवं उनका कष्ट दूर करना उसका कर्त्तव्य था।^{८७५} इसके लिए वह अन्याय का दमन तथा न्याय की उन्नति करके राज्य व्यवस्था को सुदृढ़ करता था। अनेक सामन्तों, गुप्तचरों, लेखवाहक दूतों तथा अन्य प्रशासकों तथा नौकरों के द्वारा वह राज्य की स्थिति से अवगत होता रहता था तथा व्यवहार-निर्णय किया करता था।^{८७६} अत्यन्त गोपनीय समाचारों को वह बिल्कुल एकान्त में सुनता था।^{८७७}

राज्यापराध और दण्ड का भी 'पद्मपुराण' परिचय देता है। उपद्रव, लूट, राजद्रोह, विषदान, हत्या, षड्यन्त्र तथा और भी अनेक अपराध राजनीतिक क्षेत्र में होते थे एवं उनके कर्त्ताओं को कठोर दण्ड दिया जाता था।^{८७८} कन्या, वेष्या तथा रत्नादि को लूट में झपटा जा सकता था।^{८७९} नगर का ध्वंस करना, बाग उखाड़ना, रक्षकों को बिह्वल करना, प्याऊ आदि नष्ट करना, अन्तःपुर में उपद्रव करना, राजि में बीरों की हत्या, हाथी-घोड़ों की चोरी आदि राज्यापराध पद्म-पुराण में उल्लिखित हैं।^{८८०} अपराधी को साँकलों में बाँधकर नंगी तलवार के पहरे में लाया जाता था।^{८८१} उसे नगर में भी घुमाया जा सकता था जहाँ कि जनता उसे घिबकारती थी।^{८८२} अपराधी के गर्दन, हाथ तथा पैरों को साँकलों में जकड़ा जाता था, उस पर धूल फेंकी जाती थी। राजदण्ड में, अपराधी को तलवार से दो टुकड़े करा देना, मुद्गरों की मार से प्राण झुटाकर मरवा देना, लकड़ियों के

म७२. वही, ११२।३-८

८७३. वही, ११२।१०-१२

म७४. वही, ११२।१३-१८

८७४. वही, २६।२२

म७५. वही, ६।४३८, १२।७९-८१, १०।२०-२२

म७६. वही, १२।११८-११९

म७७. वही, ५।१०५, ८।१६१-१६३, ८।४४२, १०।१५८-१६१, २७।८१-८५, ५३।२५०-२५१, ५३।२५७-२६१, ५३।२२१-२२६, ५३।२४१, ७२।५२-७७, ७२।७१-७६, १०६।२७-३४।

म७८. वही, ८।१६२।

म७९. वही, ३७।८१-८५

८८०. वही, १०।१५८

म८२. वही, ५३।२१६-२२१

शिकंजे में कसकर अत्यन्त तीक्ष्ण धार वाली करोंत से चिरवा देना एवं अन्धान्य शस्त्रों से चूर-चूर करा देना, पानी में बिष मिलवाकर पिलवा देना आदि आते थे।^{८८६} राजपूजनी और जंगलों में रहकर आभूषण आदि लूटना भी राज्य-अपराध थे।^{८८७}

युद्ध के विषय में प्रभूत सूचनाएँ पद्मपुराण में मिलती हैं। युद्ध का प्रधान कारण दिग्विजय की भावना थी। राजा अपनी सर्वोच्चता का परिचय देने के लिए नरसंहारकारी दिग्विजय का आयोजन करते थे। दिग्विजय ही नवाभिषिक्त राजा के प्रतापरोपण का एकमात्र साधन था। युद्ध का कारण स्वयंवर में कन्या द्वारा किसी राजा को बरा जाना भी था। चुने गये राजा को प्रतिपक्षी ललकारते थे और दोनों की सेनाओं में युद्ध हो जाता था।^{८८८} कन्याओं का हरण आम बात थी।^{८८९} इसे वंश के लिए अपमान समझा जाता था और कन्यापक्षीय व्यक्ति अपहरणकर्त्ता को मारने तक के लिए तैयार हो जाते थे।^{८९०} यदि अपहृत कन्या को अपहर्ता से छुड़ा लिया जाता था तो उसका विवाह करने को सुविधा से कोई तैयार नहीं होता था और उसे आजीवन विधवा के समान भी रहना पड़ सकता था।^{८९१}

बलवान राजा दूसरे राजाओं को झुकाने के लिए पहले दूत-प्रेषण करता था। दूत अपने राजा की बड़ाई करता हुआ दूसरे राजा को पहले नीति से समझाता था और फिर राजा को पाखण्ड-भरे अपमानजनक वाक्य भी कह देता था।^{८९२} दूत को मारना, नीति-विरुद्ध समझा जाता था किन्तु उसका तिरस्कार खूब किया जा सकता था।^{८९३} दूत के साथ सेना भी चल सकती थी।^{८९४} दूत अपने सैनिकों को छेरे के बाहर ही ठहराकर द्वारपाल के द्वारा राजा की अनुज्ञा पाकर कुछ आप्तजनों के साथ भीतर पहुँचना था जहाँ कि वह शिष्टतापूर्वक सन्ध्यादि का प्रस्ताव राजा के सम्मुख रखता था।^{८९५} दूत की कभी-कभी दुर्गति भी हो जाती थी। स्वामी के प्रधान सामन्त की आज्ञा से क्रुद्ध भट्ट दूत के पैर पकड़कर उसे घसीटते थे तथा नगरी के मध्य तक घसीटकर उसे छोड़ देते थे जहाँ से वह धूलि-धूसरित होकर भाग जाता था।^{८९६} दूत की दुर्गति देखकर उसका स्वामी राजा क्रुपित होकर प्रतिपक्षी से प्रतिशोध लेने के लिए सन्नद्ध हो सकता था।^{८९७}

८८३. वही, ७२।७३-७६

८८४. वही, ६।६२७-४३३

८८७. वही, १।२९

८८९. वही, १।१४-६४

८९१. वही, ६६।१७

८९३. वही, २७।३७-४८

८८४. वही, ९८।१३

८८६. वही, १।१४-१६

८८८. वही, १।३६।

८९०. वही, १।६८, ६६।४१-४९

८९२. वही, ६६।२०-३२

८९४. वही, २७।४३-४४

रण के विषय में राजा अपने लोगों से सलाह लेता था ।^{८९} युद्ध की तैयारी के लिए रणभेरी, तुर्य एवं शंख बजाये जाते थे जिससे योद्धा तैयार होकर राजा के सम्मुख आ जाते थे ।^{९०} मित्र राजा युद्ध के लिए आते थे एवं राजा उनका अस्त्र, बाहुत तथा कवच आदि से सत्कार करता था ।^{९१}

युद्ध-बाधा-बड़े जोर-शोर से होती थी ।^{९२} बड़े-बड़े राजाओं के पास चतु-रंगिणी सेना होती थी ।^{९३} लवणाकुश की अवोध्या पर चढ़ाई के वर्णन से श्रोत होता है कि युद्ध-यात्रा के मार्ग को साफ करने के लिए अनेक पुरुष बड़े-बड़े कुम्हाड़े तथा कुदाल लेकर चलते थे । उनसे वे वृक्ष आदि को काटते जाते थे तथा उन्ध-वध आदि क्रमेण करते थे । सेना में सबसे पहले लज्जाने के भार को धारण करने वाले भैंसे, ऊँट तथा बड़े-बड़े बैल चलते थे, फिर गाड़ियों के सेवक चलते थे, तदनन्तर पैदल सैनिकों के समूह और उनके बाद घोड़े चलते थे । उनके पीछे चतुर हाथी, बुद्धवार एवं 'सर्पस्त्र' पदाति चलते थे । सेना में सभी के लिए शयन, आसन, ताम्बूल, गन्ध, भक्ष्य, वस्त्र, आहार, विलेपनादि का प्रबन्ध रहता था । राजा की आज्ञा (राजवाक्य) से मार्ग में स्थान-स्थान पर निवृत्त पुरुष समस्त युद्ध यात्रियों के लिए मधु, घीघु, घृत, जल तथा विविध रसवत् व्यंजन प्रस्तुत करते थे । यात्रा में सजी हुई स्त्रियाँ भी चलती थीं । प्रायः नदी के किनारे पड़ाव डाल दिया जाता था ।^{९४}

युद्ध-यात्रा में विविध वादित्र, घोड़ों की हिन-हिलाहट, गर्जों की गर्जना, पदा-तियों की बुलाने के शब्द (आकारित), योद्धाओं के सिंहनाद, बन्धियों के जय शब्द एवं कुशीलवी के गीत हलचल किये रहते थे ।^{९५}

आगत शत्रु का आक्रमण होने पर प्रतिपक्षी राजा आयुधशाला (सन्नाह-मण्डप) में जाकर युद्ध की तैयारी के लिये तुर्य बजवाता था, वहाँ हाथी तैयार होते थे, घोड़ों पर पलान कसे जाते थे, तनवार, कवच, घनुष, शिरस्त्राण, अर्ध-बाहुलिका, सायकपुत्रिका आदि से सैनिक लैस होते थे ।^{९६} वे असि, तोमर, पाश, खंज, छत्र, शरासनौ, अर्धबाहुलिका, अर्धसन्नाह, सन्नाहकण्ठसूत्र, शिरस्त्राण आदि से युक्त होकर और किरीट एवं शिर पर माणिक्य-शकल आदि धारण करके युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाते थे ।^{९७} युद्ध के आरम्भ में सेनाओं में योद्धाओं को

८९५. वही, ५५।२

८९७. वही, ५५।८३-८९

८९९. वही, ८।४६७-४६८

९०१. वही, ७३।१७५-१७६

९०३. वही, १२।१८८, ४४।५६, १०।११६, ५७।३०, ५७।३२, ५७।३९

८९६. वही, ५५।३-५

८९८. वही, १०।३५-५१

९००. वही, १०।१९०-१२२

९०२. वही, १२।१८१-१८४

उत्तेजित करते के लिए शंख, तुर्य, भम्मा, भेरी, भ्रुवंग, लम्पाक, धुन्धु, मंडुक, भम्मा, भम्मातक, हक्का, हुंकार, दुण्डुकाणक, भर्भर, हेकगुंजा, काहल और दर्वुर आदि बजाकर तुमुल-नाद किया जाता था।^{१०४}

तुर्यनाद के संकेत पर आक्रमण करने वाली सेना पहले शत्रु-सेना का 'मुख-भंग' करती थी।^{१०५} इस पर दूसरी सेना बचाव के लिए अपनी सर्वाधिक शक्ति मुख पर ही लगाती थी। सेना की मुख-रक्षा दोनों सेनाओं का साध्य होता था।^{१०६} युद्ध में प्रयुक्त होने वाले अनेक शस्त्रास्त्रों का उल्लेख मिलता है। अंसि, प्रास, कनक, भिण्डीमाल, अर्धचन्द्राकार बाण, गदा, शक्ति, कुन्त, मुसल, शर, परिश, चक्र, करवाली, अहिप, शूल, पास, भुशुण्डी, कुठार, मुद्गर, धन, घ्रावा, लांगल, दण्ड, कौण, सायक, बेणु, शिलीमुख, परबु, शतघ्नी, उल्का, लांगूल, शिला, यष्टि, वाष्टि (वज्र) और पाँच प्रकार के शस्त्र आदि का युद्ध में खुलकर प्रयोग होता था।^{१०७} विभिन्न दिव्यास्त्रों का भी उल्लेख मिलता है यथा—आग्नेयास्त्र,^{१०८} वायव्यास्त्र,^{१०९} तामसास्त्र^{११०} प्रभास्त्र^{१११} नागास्त्र,^{११२} गरुडास्त्र^{११३} आदि। निद्रा^{११४} एवं प्रतिबोधिनी^{११५} विद्याओं के प्रयोग का भी उल्लेख है। पर यह पौराणिक प्रभाव प्रतीत होता है।

बीर परस्पर ज्वजा-छेद, धनुर्भंग एवं कवच-विदारण करते थे। योद्धा एक कवच छिन्न हो जाने पर दूसरा तत्काल पहन लेते थे।^{११६} घनघोर युद्ध में सेना के चारों अंगों का परस्पर घात-प्रतिघात होता था।^{११७} शस्त्र लिये ही मर जाना सम्मान की बात थी।^{११८} शस्त्र के गिर जाने पर चूँतों से भी शत्रु को मारा जा सकता था।^{११९} शत्रु को पीठ दिखाना बुरा माना जाता था।^{१२०} न्याय-संग्राम-तत्पर योद्धा त्यक्त-युद्ध प्रतिपक्षी को देखकर अपना भी शस्त्र छोड़ देता था।^{१२१} योग्य शत्रु के साथ युद्ध करना शोभनीय था। पुत्र के रहते पिता का युद्ध करना

१०४. वही, ५८।२६-२८

१०५. वही, १२।१९७-१९९

१०६. वही, १२।३२४

१०७. वही, १२।३२४

१०८. वही, १२।३२८

१०९. वही, १२।३३२

११०. वही, ६०।६०

१११. वही, ३३।३४

११२. वही, १२।२७७

१२०. वही, १२।२८२

१२२. वही, १२।२३१

१०४. वही, १२।१९४

१०७. वही, १०।११२, १२।१३४, १२।२३६,

१२।२१२, १२।२४७-२४८, ४०।३२,

४०।३७, ४२।४०, ६२।७, ७३।१७४

१११. वही, १२।२३०

११२. वही, १२।३३६

११४. वही, ६०।६२

११७. वही, ३२।२६४-२६५

११९. वही, १२।२७९

१२१. वही, १२।२९०

युद्ध के लिए लज्जाजनक था ।^{१२३} मानी राजा असमान सामन्तों पर प्रहार नहीं करते थे ।^{१२४}

अधिक संकट आने पर हाथी पर चढ़कर युद्ध किया जाता था ।^{१२५} हाथी पर युद्ध करते समय प्रबल राजा दूसरे राजा के हाथी पर पैर रखकर महाबत को नीचे गिराकर उसे बाँधकर भी पकड़ सकता था ।^{१२६} जीवित प्रतिपक्षी को पकड़ लेना शत्रुओं और बीरता का द्योतक था ।^{१२७} योद्धा एक-दूसरे को बातों से नीचा दिखाते थे,^{१२८} बाणों से कवचछेद, छत्रपात, धनुषछेद, रथाश्वों का वध, शक्ति-छेद^{१२९} आदि करते थे । रथ पर उछलकर प्रतिपक्षी को पकड़ा भी जा सकता था ।^{१३०} बाहुन के साथ योद्धा का छेद करना बीरता का प्रतीक था ।^{१३१}

युद्ध के समय कभी-कभी सामन्त अवसर देखकर बिना प्रधान राजा की आज्ञा के भी (अनापृच्छ) लाभकारी युद्ध कर बैठते थे ।^{१३२} ऐसे अवसर पर बिना आज्ञा के युद्ध करना भी ठीक ही समझा जाता था । मध्य रात्रि में भी भयंकर युद्ध हो सकता था ।^{१३३} रण-सज्जा के लिए रात या दिन कभी भी रणभेरी बज सकती थी ।^{१३४} स्त्रियों के युद्ध करने तथा वाण से प्रतिपक्षी के पास सन्देश-प्रेषण का भी उल्लेख हुआ है ।^{१३५} दृष्टि-युद्ध, जल-युद्ध एवं बाहु-युद्ध की भी चर्चा है ।^{१३६}

कवच और शस्त्र का त्याग युद्ध-विराम का द्योतक था ।^{१३७} शत्रु-सेना के नायक को मारकर शंखनाद किया जाता था और नायक के मरने पर सेना प्रायः भाग जाती थी ।^{१३८} भागी हुई सेना को कोई नायक तुरन्त सँभालकर उत्साहित कर सकता था ।^{१३९} स्वामिभक्ति से प्रेरित होकर सैनिक अत्यधिक युद्ध करते थे ।^{१४०} कूँक नायक-रहित सेना में लड़ने की हिम्मत नहीं रहती थी अतः नायक-रक्षा पर विशेष बल दिया जाता था ।^{१४१} सेना के क्षय हो जाने पर राजा स्वयं आकर लड़ता था ।^{१४२}

प्रतीत होता है कि शत्रु की प्रार्थना पर कुछ देर के लिए युद्ध-विराम भी हो

१२३. वही, १२।२२३-२४५
१२४. वही, ६०।६९
१२७. वही, ८।४५१
१२९. वही, ४६।१२४, ४२।३८,
४०।१८, ४०।१९, ४२।३९
१३३. वही, ४७।४४
१३४. वही, ६३।८
१३६. वही, ४।७१, ७२
१३८. वही, १२।२४२
१४०. वही, १२।२४६
१४२. वही, ८।४४६, १०।११४

१२४. वही, १२।३०६
१२६. वही, ८।४५१
१२८. वही, ४०।२९
१३०. वही, ४०।३४-३६
१३१. वही, ४६।५८
१३३. वही, ८।४४४
१३४. वही, ४२।३१, ४८
१३७. वही, १०३।४४
१३९. वही, १२।२४३-२४४
१४१. वही, ६०।१११-११४

सकता था ।^{१४३}

सेना के नायक को गृहीत कर लेने पर प्रायः सेना को ध्वस्त नहीं किया जाता था ।^{१४४} गृहीतनायक सेना प्रायः विहीन हो जाती थी ।^{१४५} सामन्तों की स्थिति पूर्ववत् भी रह सकती थी ।^{१४६} मूर्छित प्रधान योद्धाओं को कैद कर लिया जाता था ।^{१४७} जीवित सन्तुओं को पकड़कर बांध लिया जाता था और अपने घेरे पर लाया जाता था ।^{१४८} बन्दी राजा को विजयी राजा के सामने मंथी तलवार के पहरे में लाया जाता था ।^{१४९} बन्दी राजा को कभी-कभी किसी महापुरुष की प्रार्थना पर छोड़ा भी जा सकता था एवं उसका सम्मान भी किया जा सकता था ।^{१५०} बन्दी योद्धाओं को मारा भी जा सकता था ।^{१५१} दूसरे द्वीपों के राजाओं को जीतकर उन्हें वही का अधिकारी भी बना दिया जाता था ।^{१५२} दिग्विजयी राजा को विजित राजा भेंट ले-लेकर तथा हाथों को जोड़कर तथा उन्हें मस्तक से लगाकर नमस्कार करते थे ।^{१५३} दिग्विजय बहुत बड़ी वीरता की द्योतक थी ।^{१५४} 'परमभिन्नमानेन क्षत्रियाणा कृतार्थता' की भावना को ऊँचा स्थान प्राप्त था ।^{१५५}

विजयी राजा बड़ी शान से अपनी राजधानी को लौटता था जहाँ उसका परम स्वागत होता था ।^{१५६} उसका पटह, शंख, झंझर एवं बन्दीजनों के जयनाद द्वारा अभिनन्दन होता था ।^{१५७}

आदर्श युद्ध में पीड़ितों की सहायता का उल्लेख इस प्रकार आया है : —

'युद्ध की यह विधि है कि दोनों पक्षों के श्वेद-खिल तथा महाप्यास से पीड़ित मनुष्यों के लिए मधुर तथा शीतल जल दिया जाता है, क्षुषा से दुःखी मनुष्यों के लिए अमृत-नुत्य भोजन दिया जाता है, पसीने से युक्त मनुष्यों के लिए आह्लाव का कारण गोशीर्षचन्दन दिया जाता है, तालवृक्ष आदि से हवा की जाती है। बर्फ के जल के छीटे दिये जाते हैं। इनके अतिरिक्त जो कार्य आवश्यक होता है उसकी पूर्ति भी समीपस्थ लोग तत्परता से करते हैं। युद्ध की यह विधि जिस प्रकार अपने पक्ष के लोगों के लिए है उसी प्रकार दूसरे पक्ष के लोगों के लिए भी। युद्ध में निज और पर का भेद नहीं होता। ऐसा करने से ही कर्तव्य की समग्र सिद्धि

१४३. बही, ६२।६४-९५

१४४. बही, १२।३५४

१४७. बही, ६०।११२

१४९. बही, १०।१५८

१५१. बही, ६६।६

१५३. बही, १०।२४-२५

१५५. बही, १०।१४७

१५७. बही, १२।३५५

१८४. बही, १२।३५०

१४६. बही, १२।३५१

१४८. बही, १०।१३०-१३२

१५०. बही, १०।१५६-१६१, १३।१-२३

१५२. बही, १०।२०

१५४. बही, १०।१९

१५६. बही, १२।३५७-२७४

होती है।^{१५८} मूर्छित हो जाने पर वस्त्र के छोर से हवा करने, उसे आरम्य जनो के द्वारा सुरक्षित स्थाव पर ले जाकर चन्दन-मिश्रित शीतल जल से उसकी मूर्च्छा दूर करने तथा घायलों के घाव ठीक करने का भी विधान था।^{१५९} युद्धभूमि में घायल सेनानायक की चिकित्सा के लिए विशिष्ट शिविर बनाया जाता था। लक्ष्मण-शक्ति के प्रसंग में सप्तकक्षाट्टसम्पन्न विशिष्ट शिविर का उल्लेख हुआ है जहाँ पर कठोर पहरा लगा हुआ था।^{१६०}

पराङ्मुख क्लीबसम धनु को मारना वीरता का द्योतक नहीं था।^{१६१}

कपोत, शुक, काम्बोज, मकन आदि म्लेच्छों के आर्य देश पर आक्रमण का भी उल्लेख मिलता है। वे युद्ध करने में बहुत बर्बर थे। वे कारुण्य-विवर्जित होकर बड़े वेग से टिड्ढियों के समान आक्रमण करते थे।^{१६२} वे आदिदेश में उपद्रव करते थे।^{१६३} युयुत्सु म्लेच्छों की वेषभूषा एवं स्वभाव का उल्लेख इस प्रकार हुआ है:—वे चापासिचक्रबहुल, कृतसंघातपंक्ति, रमतवस्त्रशिरस्त्राण, बर्बर-धारी, असिधेनुकर, क्रूर, नानावर्णांगधारी, भिन्नांजनच्छाय, शूष्कपत्रत्विव, कटि-सूत्रमणिप्राय, पत्रचीवरधारी, नानाधातुविलिप्तांग, मज्जरीकृतघोसर, बराटकाभ-दशन, विशालपिठरोवर, भीषणायुधपाणि, पीनजघाभुजस्कन्ध, निर्दय, पशुमांस-भक्षी, प्राणिबधोद्यत, सहस्रारम्भकारी, बराहमहिषव्याघ्रवृककंकारिकेतु, नानायान-च्छदच्छत्र होते थे।^{१६४} अर्धवर्बरक दुष्ट म्लेच्छों के द्वारा धन, धान्य, गौ, भैस, एवं रत्नादिपूर्ण नगरी का लुण्ठन, प्रजापीडन एवं धर्मध्वंस का भी संकेत मिलता है।^{१६५} युद्ध के समय धन और रत्नादि के साथ स्त्रियों को लूटना नैतिकता की दृष्टि से नहीं देखा जाता था।^{१६६}

लंका के उपद्रव के समय यक्षेन्द्रों का सुग्रीव की छुशामद एवं स्वर्ण से अर्घ-दान प्राप्त कर प्रसन्न होना और उपद्रव करने की अनुमति देना इस बात का द्योतक है कि कुछ राज्याधिकारी इस प्रकार चाटुकारिता एवं उत्क्रोच के लोभ से विद्रोहियों की सहायता भी कर देते होंगे।^{१६७}

समाज-व्यवस्था एवं रहन-सहन का भी पद्मपुराण पर्याप्त परिचय देता है पद्मपुराण में चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—का उल्लेख आता

१५८. वही, ७५।१-४

१६०. वही, ६३।२८-३९

१६२. वही, २७।१०-११

१६४. वही, २७।६७-७३

१६६. वही, १९।७०-९१

१५९. वही, ८।४४७, ४५३, ४४९

१६१. वही, २७।८६

१६३. वही, २७।१२-२२

१६५. वही, २७।१२७-१२८

१६७. वही, पर्व ७०।

है। क्षत्रियों का कार्य क्षतबाण था, वाणिज्य कुवि-गोरक्षा आदि करना वैश्यों का कार्य था और नीचकर्म करना शूद्रों का कार्य था।^{१९८} जैनी लोग ब्राह्मणों के विरोधी थे, सम्भवतः इसीलिए उनकी निन्दा करते थे। उनके यज्ञादि कर्म जैनमता-वलम्बियों के लिए गहिृत थे।^{१९९} प्रतीत होता है कि ब्राह्मणों का फिर भी समाज में बोल-बाला था और प्रजा प्रायः उनकी अनुगामिनी थी। इससे जैनियों को बड़ी कुढ़न थी।^{२००} जैन धर्मानुयायियों के अनुसार ये ब्राह्मण पाखण्डी माने जाते थे। उनके लिए ये मद्योद्धत, प्राणिहंसक, महाकषायसंयुक्त, पापक्रियोद्धत, हिंसाभाषण-तत्पर वेदसंज्ञक कुम्भ को अकर्तृक बताकर प्रजा को बरगलाने वाले, महारम्भ-संस्कृत, प्रतिग्रहपरायण, जिनभाषित शासन की निन्दा करने वाले, निर्ग्रन्थमुनि को आगे देखकर क्रोध करने वाले तथा लोक के उपद्रव के लिए विषवृक्षांकुर-से थे।^{२०१} ब्राह्मण राजाओं के पुरोहित होते थे।^{२०२} हितकर वैश्य की कथा से पुरोहितों के छिप कर अकार्य करने का संकेत भी मिलता है।^{२०३} ब्राह्मण चोरी आदि भी कर लेते होंगे। चोर ब्राह्मण को तिरस्कृत कर नगर से बाहर निकाल दिया जाता था। श्रीवर्द्धन ने बल्लिषिख द्विज को नियमवत्त के घन की चोरी करने पर खलीकारपूर्वक नगर से निर्वासित किया था। जैनियों की खिल्ली भी खूब उड़ा दी जाती थी। अन्तिक ग्राम से गुजरते हुए चतुर्विध सध की एक कुम्भकार को छोड़कर सभी ने मज्जाक बनाई थी।^{२०४} कुछ ब्राह्मण अत्यन्त क्रोधी और स्वयं को उत्कृष्ट मानने वाले होते थे। वे हाथ में कमण्डलु, सिर पर बड़ी चोटी, लम्बी चौड़ी दाढ़ी और कन्धे पर यज्ञोपवीत धारण करते थे। उनके उच्छवृत्ति से जीवि-कायापन करने की भी चर्चा हुई है।^{२०५} क्षत्रिय राजा होते थे तथा सैनिक होते थे। घन कमाने की इच्छा से वणिकों की पोत द्वारा देशान्तर की यात्रा का उल्लेख हुआ है।^{२०६} वणिक नख-दमश्रु और जटा रखते थे।^{२०७} समाज में दास-वृत्ति भी विद्यमान थी।^{२०८} दासों को जिनमन्दिरों में भी नियुक्त किया जा सकता था।^{२०९} सैरिक (हववाहक) का काम भी ये करते थे।^{२१०} म्लेच्छ लोग बैल का

१९८. वही, ३।२४६-१४८

१७०. वही, ४।२११-२२०

१७२. वही, ४।३९

१७४. वही, ४।२८६-२८७

१७६. वही, ४।९६-९९

१७८. वही, ४।१२२

१८०. वही, ४।१२४।

१९९. वही, ४।११६-१२०

२०१. वही, ४।२१९

२०३. वही, ४।३९-४०

२०४. वही, ३४।११-१४

२०७. वही, ४।१०६

२०९. वही, ४।१२३

मांस भी खाते थे ।^{१८१} म्लेच्छ लोग अत्यन्तबर्बर और दादणकर्मा होते थे । स्त्रियों पर अत्याचार करने में वे परम पटु थे ।^{१८२} समाज में अनेक जातियाँ थी ।

विवाह के विषय में, पद्मपुराण हमें बताता है कि विवाह के लिए वर के उत्तम अभिजन, सम्पन्नता एवं सौख्य को देखा जाता था ।^{१८३} विसवान् विनयो-पेत, कान्त तथा सर्वकलान्वित वर प्रशस्त्य समझा जाता था ।^{१८४} यदि स्वयं कन्या ही किसी वर को पसन्द कर लेती थी तो उसके बीच में रोड़ा अटकाना ठीक नहीं समझा जाता था ।^{१८५} विवाह की वेदी के पास चित्र रचना होती थी । जमरप्रभ के विवाह में विवाह-वेदी के पास अनेक चित्र बनाये गये थे ।^{१८६} मामा-फूफी के लड़के-लड़कियों में परस्पर विवाह की प्रथा का भी उल्लेख है ।^{१८७} विवाह में दान-दहेज खूब दिया जाता था ।^{१८८}

जहाँ तक यौन-नैतिकता का प्रश्न है—समाज में वासना बड़ी प्रचण्ड-शी प्रतीत होती है । सम्भोग करने के लिए नर-नारी अधिक बन्धनों को स्वीकार नहीं करते थे । बेचया-सेवन, द्यूत और सुरापान समाज में प्रचलित थे ।^{१८९} स्त्रियों का हरण आम बात थी ।^{१९०} नैतिक दृष्टि से परपुरुष और परनारी का परिहार ही श्लाघ्य था ।^{१९१} दूसरे की स्त्री के स्तनों का स्पर्श अत्यन्त खतरनाक समझा जाता था ।^{१९२} अज्ञात रूप से गर्भ-धारण करने पर स्त्री को परिवार के सदस्य घर में नहीं रखना चाहते थे । ऐसी स्त्री के निर्वासित होने के उदाहरण मिलते हैं ।^{१९३} अंजना के सास-श्वसुर ने उसे अज्ञात रूप से गर्भवती जानकर घर से बाहर निकाल दिया था ।^{१९४} इसी से यह भी व्यक्त होता है कि घर में सास-श्वसुर की उपस्थिति में बहू के साथ उसका पति सम्भोग करने के लिए स्वतंत्र नहीं था । वह चोरी से अवसर पाकर उसके साथ सम्भोग कर लेता था और इस सम्भोग को प्रकाशित करने में लज्जा का अनुभव करता होगा । इसी गोपन का यह परिणाम होता था कि बहू को कलंकित मानकर निराकृत कर दिया जाता था । ऐसी विवश बहूएँ पिता के घर की राह लेती थी किन्तु समाज के भय से अपना कुलाभिमान के कारण उनके पिता भी प्रायः उन्हें दुत्कार देते थे । अंजना को इसी प्रकार दुत्कार दिया गया था । राजघरानों में धार्मिक सन्ध्यासियों के गुप्त

१८१. बही, ५।११९

१८३. बही, ६।११

१८५. बही, ६।१०, ६६।११-७४

१८७. बही, ८।३७३, ६५।३१

१८९. बही, ५।१०-१०१

१९१. बही, ३३।१४६-१४७

१९३. बही, ४८।४५

१८२. बही, ७।२९१-३०३

१८४. बही, ६।४१

१८६. बही, ६।१६३-११६

१८८. बही, ३८।१-१०

१९०. बही, ८७।२७२

१९२. बही, ४५।१७

यौन-सम्बन्ध के भी उदाहरण मिलते हैं।^{१९९} मित्र की पत्नी में आसक्ति के भी उल्लेख हैं।^{१९९} एक ही कन्या के एकाधिक प्रेमियों के कलह के भी उदाहरण कम नहीं हैं।^{१९०} परपुरुषों से छिप कर मिलना भी प्रचलित था।^{१९१} तपोवन की नारियाँ भी कामावेग में आ जाती थीं।^{१९२} स्त्रियों के कारण कामुक बड़े से बड़ा साहस कर सकते थे।^{१९३} कन्याओं का हरण होता तो खूब था किन्तु माना जाता था यह अपराध ही।^{१९४}

समाज में नारी का स्थान उदात्त और निकृष्ट दोनों ही प्रकार का मान्य था। कुछ लोग उसे ऊँचा स्थान देते थे और दूसरे उसे नरक का द्वार मानते थे।^{१९५}

पद्मपुराण से धर्म एवं धार्मिक सम्प्रदायों का भी परिचय मिल जाता है।^{१९६} ब्राह्मण, जैन एवं बुद्धमत पद्मपुराणकालीन प्रधान धर्म थे।^{१९७} ब्राह्मण-जैन-विरोध पर्याप्त मात्रा में था।^{१९८} ब्राह्मण यज्ञ पर बल देते थे और जैनी उसका विरोध करते थे।^{१९९} जनमतानुयायी जिनबिम्बनमस्कार, विविधव्रतों का धारण तथा फाल्गुन शुक्लपक्ष एवं आषाढ़ शुक्लपक्ष में आष्टाहिक उत्सव आदि का समारोह करते थे।

पद्मपुराण में ये पौराणिक उल्लेख आये हैं—हरि का वृषाघात, पिनाकी का दश-वर्ग-नाप, इन्द्र का गोत्र-मेद, भरत की कथा, सगर की कथा आदि।^{१९००} इनसे यह सिद्ध होता है कि ये कथाएँ समाज में प्रसिद्ध थीं।

‘पद्मपुराण में जैन पर्वों एवं उत्सवों का भी उल्लेख हुआ है। आषाढ़ शुक्ल अष्टमी से आष्टाहिक महापर्व एवं फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी से लेकर पौर्णमासी तक नन्दीश्वर आष्टाहिक महोत्सव का उल्लेख हुआ है। इन पर्वों को जैन समाज में बड़ी भक्ति से मनाया जाता था।^{१९०१} इन उत्सवों पर कोई मण्डल बनाने के लिए वडे आदर में पाँच रंग के चूर्ण पीसता था, कोई माला गूँथता था,

१९५. वही, ४१।७२-७६

१९६. वही, ३९।५५-९४

१९७. वही ३९।१५३-१७४

१९८. वही, ३२।३-१२

१९९. वही, ३३।१५-१७

१९००. वही, ३३।१५५-१५९

१९०१. वही, ३०।३५-४४

१९०२. वही, ९६।६१-६४

१९०३. पद्मपुराण की आदर्श धर्म पर अष्टम अध्याय में विस्तृत विचार किया जा चुका है।

१९०४. पद्म०, ५।२८६-२।६४

१९०५. वे० प्रस्तुत शोधग्रन्थ के षष्ठ अध्याय के अन्तर्गत ‘विचारतरण’।

१९०६. वे० ‘पद्मपुराण’ का ११ वाँ पर्व तथा ४।५७

१९०७. वे० ‘पद्मपुराण’ २।६१-६४, ५।२६९, ५।१४७-२९५

१९०८. वही, २९।१-६, ६८।१-२२

कोई जल की सुगंधित करता था, कोई सींचता था, कोई नाना प्रकार के उत्कृष्ट सुगंधित पदार्थ पीसता था, कोई अत्यन्त सुंदर वस्त्रों से जिन-मन्दिर के द्वार की शोभा करता था और कोई नाना वास्तुओं के रस से दीवारों को अलंकृत करता था। विनेष्ट्र-विन्ध्य का अभिषेक बड़ी धूमधाम से किया जाता था।

समाज में सामिथ और निरामिथ दोनों प्रकार का भोजन प्रचलित था किन्तु निरामिथ को जीनी दृष्टिकोण से प्रशस्त माना जाता था। एकपात्र में भोजन करना परम मित्रता का उपलक्षक था।^{१००९}

स्त्री-पुरुषों की वेशभूषा के भी पर्याप्त संकेत 'पद्मपुराण' में मिलते हैं। उत्तरीय और मधोवस्त्र पुरुषों के प्रधान वस्त्र थे।^{१०१०} स्त्रियाँ कंचुकी धारण करती थीं।^{१०११} उच्चवर्ग के पुरुष और स्त्री दोनों ही आभूषण धारण करने थे। पुरुषों की वेशभूषा में शुक्लवस्त्र का बड़ा महत्त्व था। रावण ने स्नान करने के अनन्तर शुक्लवस्त्र धारण किये थे। मौलि पर भी वस्त्र बाँधा जाता था।^{१०१२} वस्त्रों के अतिरिक्त वक्षःस्थल पर हार, शरीर पर अंगराग का अनुलेपन, कानों में कुण्डल, शिर पर माणिष्य-शकल तथा अग्रान्ध्र अंगों पर अध्यान्य अलंकार धारण किये जाते थे।^{१०१३} सामन्त केयूर, प्रबरांशुक, मौलिमालावतंस तथा कटक धारण करते थे।^{१०१४} राजकुमारों के कानों को सूची से बाँधकर उनमें कुण्डल पहनाये जाते थे।^{१०१५} चूड़ा पर मणि धारण की जाती थी।^{१०१६} चन्दन से अर्धचन्द्राकार ललाटिका बनायी जाती थी।^{१०१७} बाहुमूलों पर केयूर पहनाये जाते थे।^{१०१८} स्त्रियों के मस्तक पर नीलोत्पलपत्र, ^{१०१९} मालां पर तमालपत्र, ^{१०२०} कानों में रत्नकनककुण्डल, ^{१०२१} शरीर पर सुगंधित चूर्ण, ^{१०२२} पैरों में नूपुर, ^{१०२३} कुर्चों पर हार, ^{१०२४} धारण किये जाने का उल्लेख है। जल के समान स्वच्छ और पारदर्शक वस्त्रों का भी उल्लेख है।^{१०२५}

समाज में प्रस्थानकालिक मंगलों के विषय में भी विश्वास था। व्यक्ति के प्रवेश जाते समय कुलबृद्धाएँ उसका मंगलाचार करती थीं। ^{१०२६} अपने इष्टदेव को

१००९. वही, १९१।४२

१०११. वही, २।३८

१०१३. वही, ७३।४, ४४।६७, ४४।५६

१०१५. वही, ३।१८८

१०१७. वही, ३।१९०

१०१९. वही, ३।१००

१०२१. वही, ३।१०२

१०२३. वही, ३।११०

१०२५. वही, ३६।३५

१०१०. वही, ४४।६७

१०१२. वही, ७।२६२

१०१४. वही, २।२-४

१०१६. वही, ३।१८९

१०१८. वही, ३।९०

१०२०. वही, ३।१०१

१०२२. वही, ३।१०४

१०२४. वही, ३।१०८, ८१।४२-४३

१०२६. वही, १६।७९

प्रणाम करके व्यक्ति परदेश के लिए चलता था।^{१०२७} आसीर्वादि देते हुए माता-पिता उसका मस्तक चूमते थे। विद्यासु व्यक्ति सभी बान्धवों से अनुमति लेता था, बड़ों का अभिषादन करता था, प्रणत लोगों से प्रेम पूर्वक संभाषण करता था।^{१०२८} पहले दाहिने पैर को उठाना अच्छा समझा जाता था।^{१०२९} जाड़े वाले व्यक्ति के मंसल के लिए सपल्लवमुख पूर्णकुम्भ सामने रखा जाता था। दक्षिण-भुजा का फड़कना कार्यसिद्धि का द्योतक।^{१०३०} पवनंजय के रावण के पास प्रस्थान करते समय इन सभी की चर्चा हुई है।

शकुन-अपशकुनों के विषय में भी समाज में विश्वास था। प्रयाणकालिक शुभ शकुन ये माने जाते थे—निर्धूम अग्नि की ज्वाला का दक्षिणावर्त से प्रज्वलित होना, मयूर का रम्य स्वर से बोलना, अलकृत नारी का साक्षात्कार, सुगन्ध फैलाने वाली वायु का बहना, निर्ग्रन्थ मुनिराज का सामने से आना, छत्र दिसना, घोड़ों की गभीर हिनहिनाहट, प्रिय घण्टानाद, दधिपूर्ण कलश, बायीं ओर नवीन गोबर को बार-बार बिखेरते हुए तथा पंखों को फैलाते हुए कौए का मधुर शब्द करना, भेरी-शंखों का शब्द होना, 'सिद्ध हो,' 'जय हो,' 'समृद्धिमान हो' तथा 'निर्विघ्न प्रस्थान करो'—आदि मंगलशब्दों का होना।^{१०३१}

प्रयाणकालिक अपशकुन ये माने जाते थे—सूखे वृक्ष के अग्रभाग पर बैठकर एक पैर सकुचित कर कौए का पंख फड़फड़ाना एवं व्याकुल मन से सूखा काठ खोंच में दबाकर क्रूर शब्द करना,^{१०३२} दाहिने हाथ पर रोमांच धारण कर भृंगाली का घोर शब्द करना,^{१०३३} सूर्यबिम्ब के परिवेष में कबन्ध का दिखाई देना।^{१०३४} पर्वत-कम्पी निर्घातो का पतन,^{१०३५} मुक्तकेशी वनिताओ का नभस्तल में दिखाई देना,^{१०३६} दाहिनी ओर गधे का मुँह ऊपर उठाकर बोलना तथा पृथ्वी को खुरों से खोदना,^{१०३७} महाभयंकर शब्द करते भालुओं का मण्डल बाँधकर दक्षिण दिशा में दिखाई देना।^{१०३८} पंखा से गाढ़ अधकार करते एवं विकृत स्वर करते गूढ़ों का आकाश में उड़ना,^{१०३९} अनेक भीम तथा वैहायस पक्षियों (शकुनों) का क्रन्दन करना,^{१०४०} पीछे की ओर झुत (छीक) होना,^{१०४१} महानाग के द्वारा मार्ग काट दिया जाना,^{१०४२} बालू से

१०२७. वही, १६।१९

१०२९. वही, १६।८२

१०३१. वही, ५४।४८-५३

१०३३. वही, ७।४५

१०३५. वही, ७।४७

१०३७. वही, ७।४८

१०३९. वही, ५७।७०

१०४१. वही, ७३।१९

१०२८. वही, १६।८०-८१

१०३०. वही, १६।८२-८३

१०३२. वही, ७।४३-४४

१०३४. वही, ७।४६

१०३६. वही, ७।४७

१०३८. वही, ७७।९९

१०४०. वही, ५७।७१

१०४२. वही, ७६।१८

प्रेक्षित होकर छत्र का भ्रम हो जाना,^{१०४३} उत्तरीय वस्त्र का नीचे गिर जाना,^{१०४४} कौए का शक्ति दिसा में रटना^{१०४५} और सामने महाशोकसन्तप्त बाल फँकेरे हुए-भाँटे का परिवेषन तथा रुदन करना।^{१०४६}

समाज में ढोले आदि का भी प्रचलन था। बच्चों के सिर पर रक्षार्थ सरतों के बाने डाले जाते थे, गीरोचना का लेप होता था और स्वाध्याय का भी उपयोग होता था।^{१०४७}

इसके अतिरिक्त सामाजिक रहन-सहन सम्बन्धी ये सूचनाएँ मिलती हैं:—
प्रतिज्ञा करने के लिए 'बूढाबिमोक्षण' कर दिया जाता था।^{१०४८} स्वप्नों के विषय में विश्वास था। रात्रि के चरम याम में देखे स्वप्न अमोघ माने जाते थे।^{१०४९} कन्याएँ गुरुजनों के घर शिक्षा ग्रहण करती थीं और इसी के फलस्वरूप यौनचेतना के जागृत होने से विद्याग्रहण में हानि होती थी।^{१०५०} युवावस्था में सर्वसाधनसम्पन्न सुन्दरी स्त्री का तपश्चरण अच्छा नहीं समझा जाता था, जीवन का अन्तिम पक्ष ही इसके लिए उपयुक्त समझा जाता था।^{१०५१} सदाचारी तथा सार्वत्रिक गुरु के प्रभाव से व्यक्ति दीक्षा धारण कर लेते थे। गृहत्याग वैराग्य का प्रमाण था।^{१०५२} भाई और बहिन का स्नेह परम इलाध्य माना जाता था।^{१०५३} समाज के एक कोने में गरीबी भी थी। गरीबी और अमीरी को पञ्चभुज का प्रभाव कहकर सन्तोष कर लिया जाता था।^{१०५४} अतिथि-सत्कार की भावना प्रायः समाज में प्राप्त थी।^{१०५५} बहू जेठ-जेठानी के सामने लज्जा करती थी तथा अपने को वस्त्रावृत रखती थी।^{१०५६} देवर और भाभी में मझाक चलती थी। यह भाई के सामने भी चल सकती थी।^{१०५७} यौन अनैतिकता मुनियों में भी सम्भव थी।^{१०५८} धनी लोग निर्धनों की अवज्ञा करते थे।^{१०५९} द्वीपाभ्यन्तर में मरण अच्छा नहीं माना जाता था।^{१०६०} अनेक बहिनों का एक घर से विवाह सम्भव था।^{१०६१} शुभ अवसरों पर अश्रुपात अपलाकुन समझा जाता था।^{१०६२} मिष्टान्न-पक्वान्न उत्तम भोजन थे।^{१०६३} भूमि में तलगूह (तहलाने) होते थे जहाँ रत्न और मणिभाण्ड छिपाये जा सकते थे।^{१०६४} धन बाह्य प्राण माना जाता

१०४३. बही, ७३/१९
१०४४. बही, ७३/१९, १७/७४
१०४७. बही, १००/२२-२७
१०४९. बही, ७/७९-१९७
१०५१. बही, २६/१९
१०५३. बही, ३०/१३८-१३९
१०५४. बही, ३३/१९९-२००
१०५७. बही, ३९/२३
१०५९. बही, ४७/६१
१०६१. बही, ५/१४७-४९
१०६३. बही, ६२/४३

१०४६. बही, ७३/१९
१०४९. बही, ७९/७९
१०४८. बही, ६६/४७
१०५०. बही, २६/१५-१८
१०५२. बही, २६/४२
१०५४. बही, ३०/६६-७६
१०५६. बही, ३६/४४-४६
१०५८. बही, ४१/१३५-१३६
१०६०. बही, ४८/७९
१०६२. बही, ५७/४४
१०६४. बही, ६५/१७-१८

था।^{१०१५} सति के नरक पर नारियाँ बूड़ियाँ तोड़ लेती थीं।^{१०१६} मुनि किसी भी राजा की सल्लाह कर सकते थे।^{१०१७} समाज में रोग-दुःख फैलने पर व्यक्ति अपने धाम नगर को छोड़कर भाग जाते थे।^{१०१८} उरोबात, महाबाहुज्वर, सालापरिक्षाव, कषयन्, स्फोटक, अरुचि, छदि और सर्वसूल फैलने वाले रोग थे।^{१०१९} भयभीत, ब्राह्मण, मुनि, निहत्थे व्यक्ति, स्त्री, बालक, पशु और ब्रूत अवश्य समझे जाते थे।^{१०२०} राजा के अधिकार में बड़े-बड़े सेठ होते थे जो गाँवों और शहरों के मालिक होते थे और मन्दिर आदि का निर्माण कराते थे।^{१०२१} मंत्र आदि में विश्वास था, आकिनी मन्त्रभीत मानी जाती थी।^{१०२२} अम्वन-पुष्प-फल आदि सत्कार के साधन थे।^{१०२३} प्रसन्नता का समाचार देने वालों का माला-पान-सुगन्ध से समावर होता था।^{१०२४} प्रसन्नता के अवसर पर दान दिया जाता था।^{१०२५} खाद्य-पदार्थों में लड्डू, मांड़े, पूरियाँ, घालि (धान) का भात, दाल, घूठ, पुण, घनबन्ध (घेवर), नाना प्रकार के व्यंजन, दूध, दही, अनेक प्रकार के पानक, खाँड के लड्डू और शक्कुली (कचौरी), आदि थे।^{१०२६} स्त्रियाँ पुरुष-वेष में भी घूमती थीं।^{१०२७} भुजा ऊपर उठाकर छाती पीटना और चिल्लाना हृदय के अत्यन्त दुःख का सूचक था।^{१०२८} भूत बाघ आदि की बीमारी में भी विश्वास था।^{१०२९}

पद्मपुराण में धार्मिक जीवन और व्यवसाय के भी सकेत मिलते हैं। घन कमाने की इच्छा से वनिकों की पीठों से जलयात्रा की कई जगह चर्चा आई है।^{१०३०} गीओं का व्यापार किया जाता था।^{१०३१} कुछ ब्राह्मण गणितशास्त्री (सांख्यिक) होते थे।^{१०३२} कुम्भकार मिट्टी के पात्र बनाकर अपनी जीविका चलाते थे।^{१०३३} पुस्तकर्म (मिट्टी के खिलौने आदि बनाना) भी एक प्रसिद्ध व्यवसाय था।^{१०३४} मस्त्रा-निर्माण करना भी जीविकोपार्जन का साधन था। भस्त्रा (घोंकनी या मशक) गीदड़ आदि की खाल से बनायी जाती थी।^{१०३५} व्यापार के लिए सार्व बांधकर यात्रा भी की जाती थी।^{१०३६} 'अतो यथात्र सूत्रार्थं कश्चित्संभूर्णयेन्मयीन्'

१०६५. बही, ७०।८३
१०६७. बही, ७०।६५-६६
१०६९. बही, ६४।३५
१०७१. बही, ६७।११
१०७३. बही, ८०।८५
१०७५. बही, ८१।१०८-१०९
१०७७. बही, पर्व ३४
१०७९. बही, ११३।२-३
१०८१. बही, ५।११७
१०८३. बही, ५।२८७
१०८५. बही, ४८।४६

१०६६. बही, ७८।६
१०६८. बही, ८०।१५९
१०७०. बही, ६६।९०
१०७२. बही, ७४।५१
१०७४. बही, ८१।१००
१०७६. बही, ८७।५, २४।१३-१४
१०७८. बही, १०९।१२०
१०८०. बही, ५।९६-९९, ४८।६९, ४८।४४
१०८२. बही, ५।११४
१०८४. बही, ७।२८३
१०८६. बही, १।४२२६

से यह भी प्रतीत होता है कि उस समय मणि पीसकर पक्का भाँका तैयार किया जाता था।^{१०८०}

‘पद्मपुराण’ के काल तक भवन, मन्दिर और मूर्तियों के निर्माण की कला पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त हो चुकी थी।

नगरों के बर्रानों में ऊँचे-ऊँचे मकानों का उल्लेख है।^{१०८८} भवनों की मूर्तियों पर सालभञ्जिकाएँ (पुतलियाँ) उकेरी जाती थीं।^{१०८९} राजमहलों के द्वार पर विविध प्रकार के बेल-बूटें (भक्तिकर्म) बने रहते थे।^{१०९०} ऊँचे-ऊँचे तोरण होते थे।^{१०९१} अनेक कक्ष होते थे। सोपान होते थे।^{१०९२} कुछ महलों में स्फटिक और शीशे का बहुत प्रयोग होता था।^{१०९३} प्रदीपक (बरांडे) और कपोतपालिका भी होती थीं।^{१०९४} द्वारपाल भी बने होते थे।^{१०९५} नौमन्त्रिण महलों का भी उल्लेख है।^{१०९६} नानाकुट्टिमभूभाग, चारुनिर्व्यूहसंगत, सर्वोपकरणान्वित, स्नानादिविधिसम्पत्तियोग्यनिर्मलभूमि एवं कल्पप्रासादसन्निभ महलों के वर्णन से तत्कालीन महल-निर्माण-कला की उन्नति छोटित होती है।^{१०९७}

जिन-मन्दिरों की पर्याप्त चर्चा है।^{१०९८} मन्दिरों के गबाक्षों में मोतियों की झालरें लटकती थीं और उनके खम्भे रत्नजटित एवं स्वर्ण-निर्मित होते थे।^{१०९९} मन्दिरों में रत्न जड़े रहते थे, अनेक प्रकार का मणि-भक्ति-कर्म (मणियों के बेल-बूटों का काम) रहता था, हेमपीठ होते थे, मनोहारी तोरणों पर मालाएँ लटकती रहती थीं, भूमियों पर विस्तृत वेदिकाएँ बनी होती थीं, वैद्वर्गमणि-निर्मित दीवारों पर सिंह-हाथी आदि के चित्र बने होते थे और संगीत करने वाली स्त्रियों के लिए कुक्षियाँ होती थी। इनकी ऊँचाई बहुत होती थी तथा इनमें भव्य जिन-प्रतिमाएँ स्थापित रहती थी।^{११००} कुछ मन्दिरों के तीन द्वार होते थे।^{११०१} गोपुर, प्राकार, तोरण, बलभियाँ, हर्म्य, शालाएँ तथा परिखाएँ उन्हें सौन्दर्य और सुरक्षा प्रदान

१०८७. बही, १४।२२६	१०८८. बही, ७।३३७
१०८९. बही, १६।८५	१०९०. बही, ३८।८३
१०९१. बही, ३८।८३	१०९२. बही, ७१।२७
१०९३. बही, ७१।२४-३८	१०९४. बही, ६।१२४-१२५
१०९५. बही, ७१।३५	१०९६. बही, १००।३९
१०९७. बही, ११०।६४-६५	
१०९८. बही, ७।३३८, ३८।८८-९६, ३१।२२४-२३०, ४०।२७-३२, ६७।११-२०,	
८०।७-१०, ८०।७०-७५, ११२।२५-४८	
१०९९. ‘बैन-स्वायस्य में स्तम्भों के निर्माण की विगंघता रहती है।’—डा० रामजी	
उपाध्याय : प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ० १०६३।	
११००. पृ० २३।१२-१९	११०१. बही, ३१।२२४

करती थीं।^{११०२} मन्दिरों पर पताकारें फहराती थीं तथा विविध चण्डादि के शब्द होते थे।^{११०३} छोटी-छोटी किकिणियाँ, पट्टलम्बूष (फन्नुस), प्रकीर्णक (अमर), कुङ्कुमावर्ष (गोल घीघे) आदि मन्दिरों में होते थे।^{११०४}

मूर्ति-निर्माण बड़ी उच्च कोटि का था। जिनैन्द्र-प्रतिमाओं के वर्णन से ज्ञात होता है कि प्रासुओं को मिलाकर पंचवर्ण की मूर्तियाँ बनती थीं।^{११०५}

पद्मपुराण में कलाओं का भी पर्याप्त उल्लेख मिलता है।^{११०६} पद्मपुराण के अनुसार नृत्य के तीन भेद होते हैं—अंगहाराश्रय, अभिनयाश्रय तथा व्यायामिक, फिर इनके और भी प्रभेद होते हैं। इसका ज्ञान 'नृत्यकला' है।^{११०७} संगीत कण्ठ, सिर और उरःस्थल से अभिव्यक्त होता है तथा षड्ज ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद—इस सात स्वरों में विभक्त रहता है। वह द्रुत-मध्य-विलम्बित नामक लयों से सहित होता है, अक्ष और चतुरस्र तालकी इन दो योनिशों को धारण करता है एवं स्थायी-संचारी-आरोही-अवरोही-नामक चार वर्णों के कारण चार प्रकार का माना गया है।^{११०८} संगीत में प्रातिपदिक, तिक्तन्त, उपसर्ग और निपातों से संस्कार को प्राप्त हुई संस्कृत, प्राकृत और शौरसेनी भाषा प्रयुक्त होती है।^{११०९} संगीत की आठ या दस जातियाँ एवं तेरह अलंकार मान्य हैं। आठ जातियाँ ये हैं—धैवती, आर्षभी, षड्ज-वड्जा, उदीच्या, निषादिनी, गान्धारी, षड्जकैकशी और षड्जमध्यमा।^{१११०} दस जातियाँ ये हैं—गान्धारोदीच्या, मध्यमपञ्चमी, गान्धारपञ्चमी, रक्तगान्धारी, मध्यमा, आन्ध्री, मध्यमोदीच्या, कर्मारवी, नन्दिनी और कैशिकी।^{११११} तेरह अलंकार ये हैं—प्रसन्नान्ति, प्रसन्नान्त, मध्यप्रसाद और प्रसन्नाद्यवसान ये चार स्थायी पद के अलंकार हैं।^{१११२} निर्वृत्त, प्रस्थित, बिन्दु, प्रेक्षोलित, तार और प्रसन्नमन्द्र—ये छः संचारी पद के अलंकार हैं।^{१११३} आरोही पद का प्रसन्नान्त नामक एक ही अलंकार है।^{१११४} अवरोही पद के प्रसन्नान्त एवं कुहर नामक दो अलंकार हैं। इन सभी लक्षणों से अन्वित संगीत का ज्ञान 'संगीतकला' कहलाती है।^{१११५} वाद्य के इन चार भेदों का उल्लेख है—तन्त्री से उत्पन्न तत, मृदग से उत्पन्न अनवद्य, बंसी से उत्पन्न सुविर

११०२. वही, ४०।२७-२९, ११२।४६

११०४. वही, १११।४५-४६

११०६. वही, २४४।५

११०८. वही, २४।६-१०

१११०. वही, २४।१२

१११२. वही, २४।१६

१११४. वही, २४।१८ ।

११०३. वही, ४०।२९-३९

११०५. वही, ४०।३२

११०७. वही, २४।६

११०९. वही, २४।११

११११. वही, २४।१३-१४

१११३. वही, २४।१७

१११५. वही, २४।१९

एवं साल से उत्पन्न धन । फिर इस बाध के अनेक अवान्तर भेद हो सकते हैं ।^{१११५} इसके ज्ञान का नाम ही 'वाद्यकला' है । नृत्य, गीत और वाद्य का एकीकरण नाट्य कहा जाता था जिसमें शृंगार, हास्य, कथन, वीर, अद्भुत, भयानक, रोद्र, बीभत्स और शान्त नामक नौ रस होते थे । नाट्य का ज्ञान 'नाट्यकला' है ।^{१११७}

लिपिर्षी का ज्ञान भी एक कला है । जो लिपि अपने देश में सामान्यतः चलती थी उसे 'अनुवृत्त' कहा गया है, लोग अपने-अपने संकेतानुसार जिसकी कल्पना कर लेते थे उसे 'विकृत' कहा गया है, प्रत्यंग आदि वर्णों में जिसका प्रयोग होता था उसे 'सामयिक' कहा गया है एवं वर्णों के बदले पुष्पादि द्रव्य रखकर जो लिपि का ज्ञान किया जाता था उसे 'नैमित्तिक' कहा गया है । इस लिपि के प्राच्य, मध्यम, यौधेय और समाद्र आदि देशों की अपेक्षा अनेक अवान्तर भेद स्वीकार किये गये हैं ।^{१११८}

'पञ्चपुराण' के अनुसार 'उत्तकौशल' नामक भी एक कला स्वीकार की गयी है ।^{१११९} इसके स्थान आदि अनेक भेदों का उल्लेख है यथा स्थान, स्वर, सस्कार, विन्यास, काकु, समुदाय, विराम, सामान्याभिहित, समानार्थता, भाषा और जातियाँ ।^{११२०} उरःस्थल, कण्ठ और मूर्द्धा के भेद से 'स्थान' तीन प्रकार का है । 'स्वर' पङ्क्ति आदि के भेद से सात प्रकार का है । लक्षण और उद्देश अथवा लक्षण और अभिप्राय की अपेक्षा 'सस्कार' दो प्रकार का है । पदवाक्य और महावाक्य आदि के विभाग सहित कथन 'विन्यास' कहलाता है । 'काकु' के दो भेद हैं—सापेक्ष और निरपेक्ष । गद्य, पद्य, और मिश्र (चम्पू) की अपेक्षा 'समुदाय' तीन प्रकार का है । संक्षिप्तता को 'विराम' कहते हैं । एकार्थक शब्दों का प्रयोग 'सामान्याभिहित' कहा गया है । एक शब्द के द्वारा बहुत अर्थ का प्रतिपादन करना 'समानार्थता' है । आर्य, लक्षण और म्लेच्छ के नियम से 'भाषा' तीन प्रकार की कही गयी है । पत्रव्यवहार-रूप लेख तथा व्यवहारात्-लोकवाक्-मार्गव्यवहारादि-रूप मातृकाएँ जातियाँ हैं । उत्तकौशल के इन भेदों के और भी भेद हो सकते हैं ।^{११२१}

चित्र के ज्ञान को 'चित्रकला' कहा गया है । चित्र दो प्रकार का माना गया है—शुष्कचित्र और आर्द्रचित्र । शुष्कचित्र के भी दो भेद हैं—नानाशुष्क और वर्जित । चन्दनादि के द्रव से उत्पन्न होने वाला आर्द्रचित्र नाना प्रकार का है । कुत्रिम और अकुत्रिम रंगों के द्वारा पृथ्वी, जल तथा वस्त्र आदि के ऊपर इसकी

१११५. वही, २४.२०-२१

१११६. वही, २४.२४-२६

११२०. वही, २४.२७-२८

१११७. वही, २४.२२-२३

१११९. वही, २४.२७

११२१. वही, २४.२९-३५

रचना होती है। यह अनेक रंगों के सम्बन्ध से संयुक्त होता है।^{११२२}

‘पुस्तकर्म’ एक दुर्लभ कला है। क्षय, उपचय और संक्रम के भेद से पुस्तकर्म तीन प्रकार का कहा गया है। लकड़ी आदि को छील-छालकर (तक्षण करके) खिलौने आदि बनाना क्षयजन्य पुस्तकर्म है, ऊपर से मिट्टी आदि लगाकर खिलौने आदि बनाना उपचयजन्य पुस्तकर्म है एवं प्रतिबिम्ब अर्थात् सचि आदि यद्वाकर खिलौने आदि बनाना संक्रमजन्य पुस्तकर्म है।^{१०२३} यह पुस्तकर्म यन्त्र, निर्यन्त्र, सञ्छिद्र तथा निश्छिद्र आदि भेदों वाला है अर्थात् कोई खिलौना यन्त्रचालित होता है तो कोई बिना यंत्र के ही एवं कोई छिद्रसहित होता है तो कोई छिद्ररहित।^{१०२४} दशरथ का पुतला समुद्रहृदय मन्त्री ने बनवाया था। इसे ‘लेप्यं वपुः’ कहा गया है।^{१०२५} इसके भीतर लाक्षादि का रस भर कर चक्षिर की रचना हुई थी और स्वाभाविक शरीर जैसी कोमलता भी इसमें उत्पादित की गयी थी।^{१०२६} इसे ‘लेप्यकार’ ने बनाया था।^{१०२७}

‘पत्रच्छेद्य’ की कला भी महत्वपूर्ण कही गयी है। ‘पद्मपुराण’ के अनुसार उसके तीन भेद हैं—बुष्किम, छिन्न और अच्छिन्न। सुई अथवा वस्तु आदि के द्वारा जो बनाया जाता है उसे ‘बुष्किम’ कहते हैं। जो कर्तरी (कैंची) से काटकर बनाया जाता है तथा जो अन्य अवयवों के सम्बन्ध से युक्त होता है उसे ‘छिन्न’ कहते हैं। जो कैंची आदि से काट कर बनाया जाता है तथा अन्य अवयवों के सम्बन्ध से रहित होता है उसे ‘अच्छिन्न’ कहते हैं। यह पत्रच्छेद्यक्रिया पत्र, वस्त्र तथा सुवर्णादि के ऊपर की जाती है तथा स्थिर और चंचल दोनों प्रकार की

११२२. वही, २४।३६-३७। ११२३. वही, २४।३८-३९। ११२४. वही, २४।४०। ११२५. वही, २४।४१। ११२६. वही २४।४२।

११२७. रविवेण के समकालीन बाण के ‘हर्षचरित’ में भी पुस्तकर्म का उल्लेख आया है—पुस्तकर्मणा पाणिनविप्रज्ञाः। ‘बाण की मितमण्डवी में कुमारवत् पुस्तकर्म में उल्लास था। पुस्त का सम्बन्ध लेप्य था और ज्ञात होता है कि पुस्तकर्त्ता ही लेप्यकार भी कहा जाता था, जैसा राज्यश्री के विवाह के अवसर पर मिट्टी की मञ्जरी, कटुए, मगर, फल, वृक्ष आदि बनाने के लिये ‘लेप्यकार’ बुलाये गये थे (लेप्यकारकदम्बक्रियमाणमृगमयमीनकूर्ममकरमारुकेलकदलीपूगवृक्षजम्)। गुप्त-युग में मृगमय कला के द्वारा ही मौर्य की अनुसृति समाज के सभी स्तरों में इतनी व्यापक बजाई जा सकी थी। मिट्टी के खिलौने घर-घर में भर गये थे और पूज-पूजों की समवायी ईदों से ही भाँतों की चुनाई होने लगी थी। गुप्त-युग की यह छावनी इतनी अधिक मिनी है कि उसे मृगमय प्रतिमाओं का युग ही कहा जाय तो प्रत्युक्ति न होगी। अतएव पुस्तक-व्यापार (पुस्तक-व्यापारकर्म) वा पुस्तककार्य संज्ञात् कुलपुत्रों की शिक्षा का आवश्यक अंग समझा जाता हो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।’ डा० बाबुदेवचरण अग्रवाल कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ८६।

होती है।^{१०२८}

आत्रं, गुष्क, तक्षुमुषत और मिश्र के भेद से 'मास्वनिर्माण' की कला चार प्रकार की कही गयी है। इनमें से गीले अर्थात् ताजे पुष्पादि से जो माला बनायी जाती है उसे आत्रं कहते हैं, सूखे पत्रादि से जो बनाई जाती है उसे गुष्क कहते हैं। चावलों के सिक्क (सीय अथवा जवा) आदि से जो बनायी जाती है उसे 'तक्षुम्भत' कहते हैं और जो उक्त तीनों चीजों के मेल से बनायी जाती है उसे 'मिश्र' कहते हैं।^{१०२९} यह मास्वकर्म रणप्रबोधन, ४ गृहसंयोग आदि भेदों से सहित होता है।^{१०३०}

पद्मपुराण के अनुसार योनिद्रव्य, अघिष्ठान, रस, वीर्य, कल्पना, परिकर्म, गुणदोषविज्ञान तथा कौशल—ये गन्धयोजना अर्थात् 'सुगन्धितपदार्थ-निर्माण-कला' के अंग हैं। जिनसे सुगन्धित पदार्थों का निर्माण होता है, ऐसे तगर आदि 'योनिद्रव्य' हैं। जो धूपबत्ती आदि का आश्रय है उसे 'अघिष्ठान' कहते हैं। कषाय, मधुर, तिक्त, कटु, अम्ल,—पाँच प्रकार का 'रस' कहा गया है जिसका सुगन्धित द्रव्य में विशेषतः निश्चय करना पड़ता है। पदार्थों की जो शीतता अथवा उष्णता है वह दो प्रकार का 'वीर्य' है। अनुकूल तथा प्रतिकूल पदार्थों का मिलाना कल्पना है। तैल आदि पदार्थों का शोधना तथा छोना आदि 'परिकर्म' कहलाता है। गुण अथवा दोष को जान लेना 'गुणदोष-विज्ञान' है। परकीय तथा स्वकीय वस्तु की विशिष्टता जानना कौशल है। इस गन्धयोजना की कला के स्वतन्त्र और अनुगत भेद होते हैं।^{१०३१}

स्वादिष्ट पदार्थ तैयार करने की कला का नाम 'आस्वाद्यविज्ञान' है। इसमें भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य और कूप्य—इन भोजन सम्बन्धी पदार्थों के निर्माण का ज्ञान आता है। इनमें से जो स्वाद के लिए खाया जाता है उसे 'भक्ष्य' कहते हैं, इसके कृत्रिम तथा अनुकृत्रिम दो भेद हैं। जो झुषा की निर्वृति के लिए खाया जाता है उसे 'भोज्य' कहते हैं इसके भी दो भेद हैं—मुख्य और साधक। ओदन-रोटी आदि मुख्य भोज्य हैं और यवायू (मपसी) दाल-नाक आदि साधक भोज्य हैं। 'पेय' के तीन भेद हैं—शीतयोग (शर्बत), जल और मद्य। 'लेह्य' के भी तीन भेद हैं—राग, लाण्डव और लेह्य। 'कूप्य' के दो भेद हैं—कृत्रिम और अकृत्रिम। इन सब का ज्ञानस्वरूप 'आस्वाद्यविज्ञान' पाचन, छेदन, उष्णत्वकरण तथा शीतत्व-

१०२८. आत्रं ने सभ्यतः 'पत्रधनं' शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया है यथा—पत्रधन-यकरिका, पत्रधनपुस्तिका, उत्किरता पत्रधनान् आदि। १०२९ अथवाज्ञान ने पत्रमय का अर्थ 'पत्रमाला का अर्थ करण' किया है।—वही, पृष्ठ २९१।

१०२९. पद्म०, २४/४४-४५। १०३०. वही, २४/४६। १०३१. वही, २४/४७-४८।

करणवि भेदों से युक्त है।^{१११२}

बज्र (हीरा), भौतिक, वैदूर्य, सुवर्ण, रत्नताम्र तथा वस्त्र-संज्ञा आदि रत्नों का संस्क्षण ज्ञान भी एक कला है।^{१११३}

‘पद्मपुराण’ के अनुसार वस्त्र पर धागे से कढ़ाई का काम करता (तन्तु-संस्त्रप्तप्रयोग) तथा वस्त्र को अनेक रंगों में रंगना (बहुवर्णक-रङ्गाधान) भी एक कला है।^{१११४} इनके अतिरिक्त और भी अनेक कलाएँ उल्लिखित हैं, यथा—लोहा, इस्त, लाख, शार, पत्थर तथा सूत आदि से बनने वाले नाना उपकरणों का बनाना।^{१११५} मेघ-देश-गुला-काल-मान का ज्ञान भी एक कला है। ‘प्रस्थ आदि’ जिस के अनेक भेद हैं उसे मेघ कहते हैं, कितरित आदि देशमान हैं, पल आदि गुलामान हैं और समय (घड़ी, घण्टा) आदि कालमान हैं। वह मान, जाटोह, परीणाह, तिर्यग्मीरव और क्रिया से उत्पन्न होता है।^{१११६} भूतिकर्म-अर्थात् बेन-बूटा खींचना,^{१११७} निधिज्ञान अर्थात् सड़े हुए धन का ज्ञान होना,^{१११८} रूपज्ञान,^{१११९} वणिग्निधि अर्थात् व्यापारकला,^{११२०} जीव-विज्ञान,^{११२१} मनुष्य-हाथी-गो-अश्व आदि की चिकित्सा का निदानादि के साथ ज्ञान,^{११२२} मायाकृत, पीड़ा या इन्द्रजालकृत एवं मन्त्रीषधादिकृत विमोहन का ज्ञान,^{११२३} सांख्य आदि मतों का, उनमें वर्णित चारित्र्य तथा नाना प्रकार के पदार्थों के साथ ज्ञान^{११२४} आदि।

११३२. बही, २४।५३-५६

११३३. बही, २४।५७

११३४. बही, २४।५५

११३५. बही, २४।५९

११३६. बही, २४।६०-६२

११३७. बही, २४।६३

११३८. बही, २४।६३

११३९. बही, २४।६३

११४०. बही, २४।६४

११४१. बही, २४।६३

११४२. बही, २४।६४

११४३. बही, २४।६५

११४४. बही, २४।६६

“समयं च समीक्ष्यादि पाण्ड्यपरिकल्पितम् । चारित्र्येण पदार्थैश्च विवेक विविर्वैतुम् ॥”
कहकर रविवेण ने केकया की जैनमत के अतिरिक्त ब्राह्मण दर्शनों एवं मतों की पारपामिता घोषित की है। सातवीं शताब्दी की यह प्रवृत्ति थी कि अपने दर्शन से अतिरिक्त दर्शनों का भी अध्ययन किया जाता था। बाण ने भी ‘हर्षचरित’ में ‘समिन्तमस्तत्राध्यान्तरसंज्ञीति’ और ‘उद्घाटितसमग्रसम्पार्थश्रवणः’ शब्दों से इस प्रवृत्ति का परिचय दिया है। इस विषय पर डा० बाबुदेवचरण अग्रवाल का वचनअव अवलोकनीय है—‘बाण ने तत्कालीन ज्ञान साधन की दो विशेषताओं की ओर भी यहाँ इशारा किया है। अपने दर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शनों में भी जो संकाएँ उठाई जाती थी उनका समाधान भी ने (बाण की विराटरी के ब्राह्मण) जानते थे : समितसमस्तत्राध्यान्तरसंज्ञीति । युक्तकाल से बाण के समय तक के युग में बौद्ध, ब्राह्मण तथा जैन धार्मिक अनेक बुद्धिकोशों से तत्त्वविमल करते रहते थे। उस समय के धार्मिक सम्बन्ध की यह श्रेणी थी कि वे विज्ञान एक-दूसरे से उद्घावित नवी-नवी बुक्तियों और कोटियों से अपने

‘पञ्चपुराण’ के अनुसार चेष्टा, उपकरण, बाणी तथा कला-आव्यवसन भेद से कीड़ा और प्रकार की है। शरीर से उत्पन्न होने वाली कीड़ा ‘चेष्टा’ है, कन्धुक आदि की कीड़ा ‘उपकरण’ है, नाना प्रकार के सुभावित कहना ‘बाणी-कीड़ा’ है और जुआ (दुरोदर) आदि खेलना ‘कलाव्यवसन’ है।^{११४५}

‘पञ्चपुराण’ में ‘लोक-का-ज्ञान’ भी कला के रूप में स्वीकृत है। आविष्ट और आश्रय भेद से लोक दो प्रकार है। जीव और अजीव तो आविष्ट हैं और पृथ्वी आदि उनके आश्रय हैं। इसी लोक में जीव की नाना पधायों में उत्पत्ति हुई है और इसी में उसकी नयवरता है—यह सब जानना लोकज्ञता है। इस लोकज्ञता का प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है। पूर्वापर पर्वत, पृथ्वी द्वीप, देश आदि भेदों में यह लोक स्वभाव से ही अवस्थित है।^{११४६}

‘संवाहन-कला’ दो प्रकार की है—कर्मसंश्रया और शम्योपचारिका। त्वचा, मांस, अस्थि और मन—इन चार को सुख पहुँचाने के कारण कर्मसंश्रया के चार भेद हैं अर्थात् किसी संवाहन से केवल त्वचा को सुख मिलता है, किसी से त्वचा और मांस को, किसी से त्वचा, मांस और हड्डी को एवं किसी से त्वचा, मांस, हड्डीयों और मन को। इसके अतिरिक्त इस कला के सस्पृष्ट गृहीत, भुक्ति, कर्त्त, आहृत, भंगित, विद्ध, पीडित और भिन्न पीडित—ये भेद भी हैं। फिर

आपको परिचित रखते और अपने ग्रन्थों में उनका विचार और समाधान करते थे। प्रमुख आचार्य अन्य मतों में प्रवृत्त रहि रखने थे, उपेक्षा का साधन था। इस प्रकार की जागरूकता के बालाचरण में ही बसुन्धु, धर्मकीर्ति, मित्रसेन, दिवाकर, उद्योतकर, कुमारिल और शंकर जैसे अनेक प्रचण्ड मस्तिष्कों ने एक-दूसरे से टकरा-टकराकर दार्शनिक क्षेत्र में अभूतपूर्व तेज उत्पन्न किया। इस पुण्ड्रभूमि में बाण का ‘कर्मितममस्तथाज्ञानरमकीर्ति’ विशेषण साभिप्राय है और ज्ञान-साधन की तत्कालीन प्रवृत्ति का परिचय देता है। इस प्रसंग में दूसरी बात यह कही गयी है कि वे विद्वान् समग्र ग्रन्थों में जो अर्थ की धर्मियाँ थी, उनकी उद्घाटित करने थे : ‘उद्घाटित-समग्रग्रन्थार्थप्रचयः’। इसमें भी तत्कालीन विद्यासाधन की अलक है। समग्र ग्रन्थों से तात्पर्य विन्न-विन्न दर्शनों, जैसे—आयर्वैशेषिक, माध्यमिक, वैदान्त, मीमांसा, पाशुपत-बौद्ध, आहृत आदि के ग्रन्थों से है। उस समय के पठन-पाठन में ऐसी प्रथा थी कि भोग केवल अपने ही दार्शनिक ग्रन्थों के अध्ययन से सम्पूट न सहकर दूसरे सम्प्रदायों के ग्रन्थों का भी अध्ययन करते थे और उसमें जो अर्थ की कठिनाइयाँ थी, उन्हें स्पष्ट करते थे। इसी प्रथा की कारण नामन्वा के बौद्ध विश्वविद्यालय में वेद-आस्त आदि ब्राह्मणों के ग्रन्थों का पठन-पाठन भी कुछ चलता था जैसा कि ह्युआन-त्सुआंग ने लिखा है। अध्ययन, अध्यापन और ग्रन्थ-प्रचयन, यौनी क्षेत्रों में ही सकल शास्त्रीयों ने रहि उस युग के विद्वानों की विशेषता थी। स्वयं बाण ने दिवाक-मित्र के आश्रम का वर्णन करते हुए इस प्रवृत्ति का जीर्णो देखा सच्चा चित्र खींचा है।^१

—डा० सासुवेचरण अचवाल, ‘हर्षचरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन’, पृ० २५।२६।

इसके मृदु, मध्य और प्रकृष्ट के भेद से तीन भेद और भी होते हैं। जिस संवाहन से केवल त्वचा को सुख होता है वह मृदु अथवा सुकुमार कहा जाता है। जो त्वचा और मांस को सुख पहुँचाता है वह मध्यम कहा जाता है एवं जो त्वचा, मांस तथा हड्डी को सुख देता है वह प्रकृष्ट कहलाता है। संवाहन के साथ जब कोमल-संगीत भी होता है तब वह मनः सुख-संवाहन कहलाता है। इस संवाहन कला के ये दोष होते हैं—शरीर के रोगों का उल्टा उल्लंघन करना, जिस स्थान में मांस नहीं है वहाँ अधिक दवाना, केशाकर्षण, भ्रष्टप्राप्त, अमार्गप्रयास, अतिभुजक, अवेसाहत, अत्यर्थ और अवसुप्त प्रतीचक। जो इन दोषों से निर्मुक्त है, योग्यदेश में प्रयुक्त है और अभिप्राय को जानकर किया गया है, ऐसा संवाहन अत्यन्त शोभास्पद होता है। जो संवाहन-क्रिया अनेक कारण अर्थात् आसनों से की जाती है वह चित्त को सुख देने वाली वाय्वीय-वायुरिका नाम की क्रिया जाननी चाहिए। यह संवाहन-कला अंग-प्रत्यंगों से सम्बन्ध रखने वाली है।^{११४०}

इसके अतिरिक्त शरीर-वेष-संस्कार-कौशल, स्नान करना, सिर के बाल गुँथना तथा उन्हें सुगन्धित करना भी कलाओं में परिकल्पित है।^{११४१}

यन्त्र-विज्ञान के भी पद्मपुराण में संकेत मिलते हैं। एक स्थान पर किले में लगे ऐसे यन्त्रोंका वर्णन है जो कि गगनांगण में बिहार करते विमानस्थ प्राणियों को बाँध लेते थे।^{११४२} यदि आजकल के लोग इसे कोरी कल्पना ही समझें तो भी कम से कम इतना तो मानना चाहिए कि राडार और एण्टी एयरक्राफ्ट गनों जैसे यन्त्रों की कल्पना उस युग में हो चुकी थी। विमानों का पर्याप्त उल्लेख हुआ है।^{१०५०} युद्ध के समय महाघोर यन्त्रों के प्रसारण की भी चर्चा हुई है।^{११५१} यन्त्र नगर की रक्षा के साधन समझे जाते थे।^{११५२} वैज्ञानिक यन्त्रों के सहारे बहुत बड़ी सेना को रोका जा सकता था।^{११५३} जलयन्त्रों से पानी छोड़ा और रोका जा सकता था।

‘पद्मपुराण’ में औद्योगिक उल्लेख भी पर्याप्त मात्रा में हुए हैं। नदियों, पर्वतों, नगरों, ग्रामों, राष्ट्रों, द्वीपों तथा वन आदि के अनेक वर्णन और संकेत ‘पद्मपुराण’ में आये हैं। यद्यपि नगर आदि के बहुत से नाम रविषेण के कल्पना-वैभव का ही प्रदर्शन करते हैं तथापि बहुतसे नगर आदि के नाम वास्तविक भी हैं। यहाँ हम इनकी

११४७. वही, २४।७३-८१

११४९. वही, ६।४४१

११५१. वही, ४६।२१४, २३०

११५३. वही, ५२।२-४

११४८. वही, २४।८२

११५०. वही, ४७।७८ आदि

११५२. वही, ४५।२४५

एक सूची प्रस्तुत कर रहे हैं^{११५४}—

नवी-समुद्र : कर्णकुण्डल (५३), कर्णरवा (४०, ४१), कौबरवा (४३), शंखा (२, ४६ १०१), नर्मदा (१०, ३४), पुष्पाभागा (८६), यमुना (५५), रेखा (३५), सवणसमुद्र (८२), वैतरणी (८), शर्वरी (२२), हंसावली (१३), ।

वर्षत : अष्टापद (८), अंजनगिरि (३७), उदय (३), कुशाग्र (१), कैलास (१, ६, २०, ८५), किष्कु (६), किष्किन्धागिरि (६, ८८), कर्ण (६), कलिन्द (२७), गन्धमादन (१३), गिरिनार (२०), जलवीथि (१६), विकूट (५, ६, ४३), सुमेरु (३३), दक्षिण खेणी (८), दम्ती (१५), दण्डक (४२), दुर्गगिरि (८५), वरणीमौलि (६), नारद (११), नन्दी (२७), निकुञ्ज (२७), नगोत्तर, बलाहक (८, ३०), भूत (१), मधु, (१, ६), मेरु (४, २६, ३१) मानुषोत्तर (६), मेघरव (८), मणिकाम्त (६), महेंद्र (१५), मलयान्न (८), मन्दर (८२), रघावर्त (१३), रामगिरि (४०), विपुल (१, २७), विजयार्द्र (१, ६, २७), विन्ध्य (१०), वंशाघर (३६, ४०), वंशगिरि (४०), वंशस्पविल (६१), सुमेरु (१, ३, ६, ७२, ११२), सन्ध्यावर्त (८), सम्मोह (८, ६, २०), सरयली (८), स्यान्ध्र (१८), श्रीशैल (४६), हिमालय (२, १०२),

अन्य : चारणप्रिय (४६) जनानन्द (४६), तिलक (६१), दण्डक (४०, ४२, ४६), देवारण्य (४६), नन्दन (६, २३), निकुञ्ज (१०६), निर्जल (१८), निबोध (४६), प्रमद (६, ४६), परियात्रा (३२), पाण्डुक (६, ११२), पृथ्वी कर्णतटाटवी (६), प्रकीर्णक (४६), भद्रशालिवन (६), भीमवन (८), मन्दा-रुण (८), मन्दारण्य (३१), महावन (१७, ४१), महेंद्रोदय वन (८५), मेखला (८), विन्ध्याटवी (३४), पवापव (६३, ६४), सीमनसवन (६, ४२), सुलसेव्य (४६), समुच्चय (४६), सहस्राभ (१०६) ।

नगर, प्राय, राष्ट्र, देश, द्वीप और राज्यों के नाम^{११५५} : अरुण (१), अमल (६), अमुर (७), अलका (५८), अम्बष्ट (३८), अग (३८), अर्धवर्षर (२७), जलक्षपुर (२०), अश्वपुर (५५), अमृतपुर (५५), अक्षपुर (७७), अपराजित (२०), अम्भोद (५), अयोध्या (३, २०, २१, २२, २५, ३७ आदि), अस्कारपुर (६, ७, १६, ४५ आदि), असुरसगीत (८), अलकारोव्य (८, ६,

११५४. कोष्ठक में वर्षसंख्या है । कोष्ठांकित संख्या के अतिरिक्त भी उपर्युक्त नामों का उल्लेख हुआ है ।

११५५. इस सूची में पञ्चपुराण में समागत स्थानों के नाम भी आ गये हैं जो पञ्चपुराण का भौगोलिक अध्ययन करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं ।

४३), अरिजयपुर (१३), अरिष्टपुर (२०, २६), अन्तिक (५), अर्धस्वर्णलोकट
 (६), अतिशालमुगद्गीप (६), आवर्त (५, ६), आवली (५), आश्विनपुर
 (६, १५), आलोक (११, ८५), आरण (२०), आमत (२०), आम्भ
 (१०१), ईशानती (२०), उत्तरकुरु (३, १०८), उत्कट (५), ऊर्ध्वद्वैवेयक
 (२०), उज्जयिनी (३३), उशीनर (१०१), ऐरावत (३), कर्णकुण्डल (६,
 १६, ४१, ११२), कनकाम (६), कनकपुर (१५), कमलसंकुल (२२), कम्बर
 (४१), कलिंग (३७, १०१), कम्पनपुर (५५), कक्ष (१०१), कांचन (३, ६,
 ११०), कान्त (६), काम्पल्यनगर (८), कापिष्ठ (२०), काकन्दी (२०,
 १०८), कार्लजर (५६), कारमीर (१०१), काल (१०१), काशीपुर (१०८),
 किन्नरगीत (५, १६), किष्किन्वापुर (१, ४, ५, १६, ४७), किष्कुपुर (६, ७,
 १६, ४६), किन्नर (७), किकुनगर (८), किष्कुप्रमोद (६), किन्नरगीतपुर
 (५५), कुमुदावली (५), कुम्भपुर (८), कुशाग्रनगर (२०, २१, ६८),
 कुम्भपुर (२०, २८), कुक्षेत्र (३१), कुसुमपुर (४८), कुशस्थल (५६)
 कुम्भपुर (४८), केलीकिल (५५), केरल (१०१), कौबेर (१०१), कौसल
 (१०१), कौतुकमंगल (७, २४), कौशाम्बी (२०, २१ ३४, ७८), कौमुदी
 (३६), कौचपुर (४८), क्षेम (६, १०६), क्षेमा (२०), क्षेमाजलिपुर
 (३८), गन्धर्वगीत (५), गन्धोद्युपद (२८), गन्धवती (४१), गगनतिलक
 (५५), गगनवल्लभपुर (५५), गजपुर (६३), गन्धर्वगीतपुर (५५), गान्धारी
 (३१), गान्धार (६४), द्वैवेयक (२०), गोपुर (३३), गोशील (१०१), गोष
 (२१), चक्रवाल (५), चक्रपुर (२०, २६, ५५, ६४), चन्द्रपुर (५, ६),
 चम्पानगरी (८, २०, ६८), चन्द्रादित्य (८५), चारु (१०१), छत्राकारपुर
 (२०), ज्योतिपुर (१०, ६४), ज्योतिप्रभ (८), ज्योतिदेण्डपुर (५५),
 जम्बूद्वीप (५, १७, ४३), जलधिध्वान (६), जाम्बूनद (४८), तट (५),
 ताम्रशूङ्गपुर (१३२), तिलकपुर (६४), तोम (५), तोपावली (६), त्रिपुर
 (२, ५५), त्रिजट (१०१), त्रिस्तार (१०१), दरी (१०१), दधिमुल
 (५१, ५५), दशामपुर (३३), दशारण्यपुर (३३), वर्मस्थल (२२), दारु
 (३०) द्वारिका (१०६), द्रापुरी (२०), दुर्गह (५), दुर्लभ्यपुर (१२),
 देवकुण्ड (३, ५३, १२३), देवोपगीत (४८, ८८), देवगीतपुर (६६),
 धन्यपुर (२०), नन्दत (३७), नभस्तिलक (६), नन्दीश्वर द्वीप (६),
 नन्दावर्तपुर (३७), नमोभानु (६), नाग (८५), नागपुर (२०), निवासोक्त
 (६), नैपाल (१०१), नैविक (५५), नृत्यगीतपुर (५५), पद्मक (५),
 पद्मिनी (३६), पराजयपुर (५५), परिजोबरपुर (५५), पञ्चसंगम (७);

पाण्डुक (१२), पांचाल (३७), पुण्डरीक (१६, ६३), पुण्योत्तर (२०),
 पुण्डरीकिणी (२०, २३), पुण्याम्बक (१, ७), पुष्कलावती (५, ३७),
 पृथुस्थान (४८), पृथ्वीपुर (५, २०), पोद्मपुर (४, २०, २६, ८६),
 पौष्प (३७), प्रतिष्ठपुर (६३, ६४), प्राणत (५, २०), प्रीतिकूर्मपुर
 (६), बंग (३७, १०१), बहुरथ (६४), बहुनादपुर (५५), भरत (३, ७),
 भद्रिका (२०, ६८), भीरु (१०१), भूतरथ (१८), मथुरा (१, २०, ८६),
 मन्व (२, २८, ३७, ४३), मनोज्ञाव (५, ६), मनोहर (५, ३०, ५५),
 मन्दरकुंज (६), मन्दर (१७), महेन्द्रनगर (१७), महापुरी (२०), महाबुक
 (२०), महाशीलपुर (५५), महेन्द्रोदय (६६), मलय (६४), मलयानन्दपुर
 (५५), महाबिदेह (१३), मध्यमलोक (२८), मध्यमद्वैतक (२०), मयूरमाल
 (२७), माहिष्मती (६, २२), माहेन्द्र (२०), मालव (१०१), मार्तण्डामपुर
 (५५), मिथिला (२०, २१, २३, २८, ३७), मुनिभद्र (३७), मृगाङ्कनगर
 (१७), मृत्तिकावती (४८), मृणालकुण्डल (१०६), मेघपुर (६, ७), मेखल
 (१०१), यवन (१०१), यक्षपुर (७, ६४), यक्षगीत (७), यक्षस्थान (३६),
 योध (५), योधन (६), रम्यक (३), रजोवली (५), रथनूपुर (१, ६, ७,
 १६, २८, ८८, ६४), रत्नपुर (६, १३, ५५, ६३), रत्नद्वीप (५, ६, ५५),
 रत्नसंचय (५, १३), रत्नस्थलपुर (१२३), रत्नपुर (२८), रामपुरी (१),
 राजगृह (२, २०, २५, ८६) राजपुर (११), राक्षस द्वीप (४३), रिपुञ्जयपुर
 (५५), रोधन (६), लंका (५, ६, ७, १०, २०, ४३), लक्ष्मीगीतपुर (५५),
 लान्तक (२०), वत्सनगरी (२०), वर्बर (१०१), वसततिलक (३६), वज्र-
 पजर (६), वाङ्मिक (१०१), वाराणसी (२०, ४१, ६८), विजय (२०),
 विजयनगर (३७), विजयावती (१२३), विदेह (३, ५, २३), विघट
 (५, ६), विश्ववत् (७), विशाखापद (१३), विनीता (२०, ८५), विदग्ध
 (२६, ३०), विशालपुर (५५), वीतशोकज (२०), वेणुतट (४८), वेलन्धर
 (५५), वेध (१०१), वैजयन्त (२०), वैजयन्तपुर (३६), वंशस्थपुर (४०),
 वंशस्थश्रुति (३६), वंशस्थविलपुर (४०), शकट (५), शतार (५), शर्बर
 (१०१), शक (१०१), शतद्वार (१२), शशिपुर (३१), शशिस्थानपुर
 (५५), शतमन्थु (१२३), शशांक (८५), शशिच्छाय (६४), शास्मली
 (१०८), शिवमण्डिरपुर (५५), शूरसेन (१०१), शोभापुर (५५), स्फुटतट
 (६), स्वयंभ्रम (७, ८), सर (६), समुद्र (५), सन्ध्या (५५), सन्ध्याकार
 सहस्रार (२०), सनत्कुमार (२०), सर्वादिपुर (३०), सर्वादिस्तिष्ठि (२०),
 साकेत (२०, ८३), साधुभद्र (३७), सांकाश्यपुर (२८), सिन्धुनद (८),

सिंहपुर (२०, ३१, ५५, ६४), सिद्धार्थ (३६), सद्मृतु (५), सुबेल (५, ६), सुसीमा (२०), सुमाद्रिका (२०), सुमहानगर (२०), सुरपुर (२८), सुमद्र (३७), सुबीर (३७), सूर्योदय (८, ५५), सूर्यपुर (२०), सूर्यामपुर (५५) सुलपुर (५५), सौषमं (२०), हरि (३, ५, ६), हरिक्षेम (१२३), हरिपुर (२०, २१, ५६), हनुकह द्वीप (१, १७), हस्तिनापुर (४, २०, २१, ३१, ८६), हिडिम्ब (१०१), हैहय (५५), हेमपुर (६, १५, ५६), हैमवत (३) हिरण्यवृत्त (३), हंसद्वीप (५, ६), श्रावस्ती (६, २०, ६२), श्रीगृह (६४), श्रीगुप्तपुर (५५), श्रीपुर (४६, ८८), श्रीमन्तपुर (५५), श्रीमनोहरपुर (५५), श्रीविजयपुर (६४), श्रेयस्कर (६४) ।

इन नगर-जनपद-ग्राम राष्ट्रों में बहुतां का अस्तित्व इतिहास-सिद्ध है—
यथा—माहिष्मती, मथुरा आदि ।^{११५}

●

११५५. उपर्युक्त नदियों, पर्वतों और नगरादि के परिचय के लिए देखें—ब्रह्मदेव उपाध्याय .
'पुराण-विमर्श' और डा० राजबाली पाण्डेय : पुराण-विद्वानुक्रमणी, प्रथम भाग ।

दसम अध्याय

पद्मपुराण का जैन-रामकाव्य-परम्परा में स्थान

जैन रामकथा-परम्परा की चर्चा पहले की जा चुकी है। उसमें जैनाचार्य रविषेण के 'पद्मचरित' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। साहित्यिक सौंदर्य, धर्मप्रचार, दार्शनिक पृष्ठभूमि एवं सांस्कृतिक परिचय आदि सभी दृष्टियों में इसे महनीय ग्रन्थ माना जा सकता है। यह एक सफल पौराणिक-चरित-महाकाव्य है।

पद्मपुराण को देखकर इसके रचयिता के अगाध-पाण्डित्य, उर्वर मस्तिष्क और मर्मस्पर्शी चिन्तन के प्रति बरबस आश्चर्यान्वित हो जाना पड़ता है। भाषा पर कवि का अद्भुत अधिकार है। वेगवती धारा की भाँति अजस्र गति से बह पाठक को अपने साथ बहाए ले चलती है। उसमें पौराणिक आख्यान-रूपी आवर्त है, वक्रोक्ति-रूपी तरंग है, दीर्घसमास-रूपी नक है और सबसे बड़कर हैं भावरूपी चटुल शफरो का नर्तन। शब्द और अर्थ की इतनी सुन्दर योजना भाग्यशाली कवियों की कृतियों में भी सम्भव है।

भाषा के साथ उसकी गति देने वाला छन्दोविधान भी कम रमणीय नहीं है। विविध छन्दो को कवि ने चुना है और सफलता पूर्वक उनका प्रयोग किया है।

अलंकारों के प्रयोग में तो कवि सिद्ध-हस्त ही हैं। श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक समासोक्ति, विरोधाभास आदि अलंकार 'अपृथग्यत्ननिर्वर्त्य,' रूप में इस महनीय कृति में विराजमान हैं। 'अयोनि' और 'अन्यच्छायायोनि' उत्प्रेक्षाएँ, सांग-रूपक और उपमाएँ शताधिक संख्या में सहृदयों का मन मोह लेती हैं। भाव यह है कि कलापक्ष के अन्तर्गत आने वाले सभी तत्त्वों का पूर्ण पारिपाक इस कृति में दिख-साईं देता है।

पद्मपुराण की रस-भाव-योजना भी बड़ी हृद्य है। अगी होते हुए भी शान्त-रस भृंगार, वीर, रौद्र तथा अन्य रसों से पुष्ट होता हुआ सहृदयों के हृदयों को आर्जित करता है। सम्वादों की गतिशीलता, प्रयुत्पन्नमतिता, मार्मिकता, विषयसम्बद्धता, सुहृदिपूर्णता आदि विशेषताएँ इस ग्रन्थ को और भी रोचक बना देती हैं। प्रकृति-वर्णन बड़ी मनोरमता के साथ इस ग्रन्थ में हुआ है। यों प्रकृति का

वर्णन उदीपन रूप में ही अधिक है परन्तु जहाँ कहीं कवि ने तत्सलीन होकर वर्णन किया है वहाँ उसका आलम्बन रूप भी बड़ी मनोहरता से व्यक्त हुआ है।

पद्मपुराण के कवि की वर्णना-शक्ति बड़ी अद्भुत है। अप्रतिहत गति से उसकी प्रतिभा सभी वर्णनीय विषयों को बारतविक रूप में प्रकाशित करती चली गयी है। एक बात को अनेक ढंग से कहने का जितना बड़ा कौशल इस कवि को प्राप्त है उतना बहुत कम कवियों में देखने को मिलता है। ढाई सौ से अधिक वर्णन पद्मपुराण के सौन्दर्य को और भी कलान्वित किये हुए हैं।

पद्मपुराण का जैन धर्म के तत्त्वों के निरूपण एवं जैनधर्म के प्रचार के दृष्टिकोण से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। विगम्बर जैन सम्प्रदाय का यह धर्मग्रन्थ है। भगवत्कुन्दकुन्द, उमास्वाति यतिवृषभ आदि जितने भी रचित्रों के पूर्ववर्ती आचार्य हुए हैं उन सभी के ग्रन्थों का उपयोग करते हुए कृति ने जैनधर्म के सिद्धान्तों को विविध प्रसंगों में प्रस्तुत किया है।

पद्मपुराण में जैन-धर्म का दार्शनिक पक्ष भी उजागर हुआ है। इस ग्रन्थ की दार्शनिक पृष्ठभूमि पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ अपेक्षित है। एकादश पर्व के शास्त्रार्थ को समझने के लिए समग्र जैन-दर्शन का मनन अपेक्षित हो जाता है।

पद्मपुराण में हमें बौद्धिक दृष्टिकोण सर्वत्र दिखाई पड़ता है। सभी असंभव या अतिमानुष घटनाओं की बौद्धिक व्याख्या इसमें प्रस्तुत की गयी है। रावण के कण्ठहार में उसके मुख का प्रतिबिम्ब पड़ने से उसका दशाननत्व, लागूल नामक हनुमान् का शस्त्र होना एवं राक्षस-वानरों का राक्षस एवं बन्दर न होकर विद्या-घरवशी राजा होना आदि कवि के तर्कसंगत व्याख्या-दृष्टिकोण का परिचय प्रस्तुत करते हैं।

पद्मपुराण का तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से भी बहुत महत्त्व है। जैन एवं जैनतर ग्रन्थों के सिद्धान्तों के प्रतिपादन में कवि ने किस प्रकार अन्यान्य ग्रन्थ-कारों को अपनी भाषा में प्रस्तुत किया है यह तुलना का एक रोचक एवं महत्त्वपूर्ण विषय है।^{१११७}

सुभाषितों और सूक्तियों का तो यह पुराण मानों भण्डार ही है। कवि का ज्ञान कितना व्यापक था, उसका अनुभव कितना विशाल था और उस अनुभव को अभिव्यक्त करने का उसका सामर्थ्य कितना अलोकसामान्य था यह योग्य है। परिशिष्ट (अ) में हम रचित्रों की सूक्तियों की एक सूची देंगे।

‘पद्मपुराण’ का सर्वाधिक महत्त्व उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में सन्निहित है।

१११७. देखिए प्रस्तुत ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय में ‘रचित्रों का लोकशास्त्र काव्या-द्यक्षण।’

तत्कालीन समाज, रीति-नीति, आचार-विचार, परम्पराओं और दृष्टिकोण को समझने के लिए यह पुराण जिस विपुल सांस्कृतिक अध्ययन की सामग्री को प्रस्तुत करता है वह इसकी महत्वपूर्ण देन है। इस सामग्री का उपयोग करने की आवश्यकता है। जिस प्रकार बाण की कादम्बरी और हर्षचरित सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से अध्ययन की दृष्टि से अध्ययन महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं उन्ही प्रकार रविवेण का ‘पद्मपुराण’ भी।

‘पद्मपुराण’ के अन्वकारपक्ष को भी प्रकाशित कर देना अनुचित न होगा। जहाँ धार्मिक उपदेशों एवं साम्प्रदायिक प्रचार की अति हो गयी है वहाँ सहृदय ऊबने लगता है। ऐसे स्थलों को साहित्यिक दृष्टि से अच्छा नहीं कहा जा सकता। अस्तु।

संक्षेप में पद्मपुराण का जैन-रामकथा-साहित्य में वही स्थान है जो ब्राह्मण-संस्कृत-साहित्य में वाल्मीकि-रामायण का और हिन्दी-वर्णन-रामकथा-साहित्य में तुलसीकृत ‘रामचरित मानस’ का

एकादश अध्याय पद्मपुराण और रामचरितमानस

आचार्य रविषेणकृत पद्मपुराण या पद्मचरित और गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानस 'महाकाव्य के पौराणिक चरितकाव्य' भेद के उदाहरण है। पद्मपुराण और उसके कर्ता के विषय में विगत दस अध्यायों में लिखा जा चुका है। प्रस्तुत अध्याय में तुलसी के रामचरितमानस के साथ पद्मपुराण की विविध दृष्टियों से तुलना करने का प्रयत्न होगा। तुलसीदास के वैयक्तिक परिचय— जिसमें उनकी जन्म तिथि, जन्मस्थान, माता-पिता, जाति-पाँति, बाल्यकाल, गुरु, वैवाहिक जीवन तथा वैराग्य और देह-त्याग आदि का विवेचन हो—हमारी दृष्टि से प्रस्तुत तुलना में अनपेक्षित है। तुलसी की रचनाओं का परिचयात्मक विवरण देना भी सुची पाठकों का उपहास करना है। नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज रिपोर्ट (१९०३, १९०४, १९०६, १९०७, १९०८, १९०९, १९१०, १९११, १९१७, १९१८, १९२०, १९२१ तथा १९२२) तथा कुछ और प्रमाणों से तुलसी की अनेक रचनाओं का उल्लेख मिलने पर भी उनके प्रमाणिक ग्रन्थ १२ ही माने जाते हैं जिनका नामग्रह इस प्रकार किया जा सकता है—(क) प्रारम्भिक रचनाएँ (सं० १६१६-२५) १. रामललानहछू, २. रामाज्ञा प्रबन्ध, (ख) मध्य-कालीन रचनाएँ (सं० १६२६-१६४५) ३. जानकीमंगल, ४. रामचरितमानस, ५. पार्वतीमंगल, (ग) उत्तरकालीन रचनाएँ (सं० १६४६-६०) ६. गीतावली, ७. विनयपत्रिका, ८. कृष्णगीतावली (घ) अन्तिम और अपूर्ण रचनाएँ (१६६१-८०) ९. बरबै, १०. सतसई दोहावली, ११. कवितावली एव १२. बाहुक। इन सभी रचनाओं में 'रामचरितमानस' बहुचर्चित एवं महत्त्वपूर्ण है जो तुलसी की काव्य-प्रतिभा और लोकनायकता का चिरस्थायी कीर्तिस्तम्भ है।

तुलसीदास के पूर्व संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं में पर्याप्त राम-साहित्य लिखा जा चुका था। बाल्मीकि ने जिस राम-कथा का प्रणयन किया था उसमें कुछ परिवर्तन-परिवर्तन करके अनेक कवियों ने संस्कृत तथा अन्य भाषाओं

में काव्य, नाटक, चम्पू तथा गद्यकाव्य आदि की रचना की। इन रचनाओं का परिचय डा० कामिल बल्के ने अपने शोध ग्रन्थ 'रामकथा' में दिया है। इसके अतिरिक्त बौद्धों और जैनों ने भी रामकथा-सम्बन्धी कृतियाँ भारतीय साहित्य को समर्पित की हैं। जैन-रामकाव्य-परम्परा का परिचय प्रस्तुत ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय में दे दिया गया है।^{११५८} बौद्धों ने ईश्वरी मन्त्र के कई शताब्दियों पूर्व राम को बोधितरूप मानकर 'वशरथ जातकम्', 'अनामकं जातकम्', तथा 'वस-रवकचानकम्' आदि की रचना की। किन्तु तुलसी पर बौद्ध एवं जैन रामकाव्य-परम्परा का प्रभाव नहीं के बराबर पड़ा। वाल्मीकि की परम्परा ने ही उन्हें प्रधानतया प्रभावित किया है। इस परम्परा में कालिदास कृत रघुवंश प्रवरसेन द्वारा महाराष्ट्री प्राकृत में लिखित 'रावणबहू' अथवा 'सेतुबन्ध', भट्टि द्वारा रचित 'रावणबध' अथवा 'भट्टिकाव्य', कुमारदानकृत 'जानकीहरण' अभिनन्द कृत 'रामचरित', क्षेमेन्द्रकृत 'रामायणमंजरी' साकल्यमल्ल द्वारा रचित 'उदार-राघव' आदि महाकाव्य, भासकृत 'प्रतिमानाटक' और 'अभिषेकनाटक', भव-भूतिकृत 'महावीरचरित' और 'उत्तररामचरित', दिङ्नागकृत 'कुन्धमाला', मुगारिकृत 'अनर्घराघव', राजशेखरकृत 'वासरामायण', मधुसूदन अथवा दामोदर मिश्र से सम्बद्ध 'महानाटक', माधुराजकृत 'उवासराराघव', शक्तिभद्र कृत 'घावचर्यचूडामणि', जयदेवकृत 'प्रसन्नराघव', हस्तिमल्लकृत 'भैषिली-कल्याण', सोमेश्वरकृत 'उल्लास राघव', सुभट्टकृत 'भूतांगव', एवं भास्कर-भट्टरचिन 'उन्मत्तराघव' आदि नाटक, सन्ध्याकरनन्दिकृत 'रामचरित', धनजयकृत 'राघव पाण्डवीय', माधवभट्टकृत 'राघवपाण्डवीय' तथा हरदत्त सूरिकृत 'राघवनेत्रवीय' आदि इत्येवकाव्य, सूर्यदेवकृत 'रामकृष्णविलोमकाव्य' एवं इसके अनन्तर रचे गये दो 'घावबाराघवीय' आदि विलोमकाव्य, कृष्णमोहनकृत 'रामलीलामृत', तथा वेंकटेशकृत 'चित्रबन्धरामायण' आदि चित्रकाव्य, वेंकटेश कृत 'हंससन्देश' अथवा 'हंसवृत्त', रुद्रवाचस्पतिकृत 'अमरवृत्त', वामुदेवकृत 'अमरसन्देश', आदि वृत्तकाव्य तथा गीतगोविन्द के अनुकरण पर रचित 'गीत-राघव', 'जानकीगीता' एवं 'संगीत-रघुनन्दन' आदि शृंगारिक लज्जकाव्य एवं इनके अतिरिक्त और अनेक रचनाएँ आती हैं जो साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कही जा सकती हैं। द्रविड़ भाषाओं में भी तुलसी से पूर्व रामकथा सम्बन्धी काव्य रचे जा चुके थे जिनमें कम्बनकृत 'तमिलरामायण', (तमिल) 'रंगनाबरामायण', 'भास्कररामायण', (तेलुगु), 'रामचरित' (मलयालम), आदि प्रमुख हैं। आधु-

निक आर्य भाषाओं में भी तुलसी से पूर्व कुछ राम काव्यों की रचना हो चुकी थी जिनमें कृतिबास की 'रामायण', (बंगला) माधवकन्दलीकृत वाल्मीकि रामायण का पञ्चानुवाच (असमिया) एवं भालण का 'सीतास्वयंवर' अथवा 'राक्ष-बिबाह', एकनाथ कृत 'भावाभ्यंरामायण', (मराठी) आदि महत्वपूर्ण हैं। विदेशों में भी तुलसी से पूर्व राम-कथा से सम्बद्ध कुछ कृतियाँ रची जा चुकी थीं।

भाव यह है कि आदिकवि वाल्मीकि की रामायण का प्रभाव न केवल संस्कृत की रचनाओं पर अपितु संस्कृतेतर भारतीय भाषाओं की रचनाओं पर भी पड़ा एवं अनेक ग्रन्थ-रत्नों की रचना होती रही जो तुलसी से पूर्व भी हुई एवं तुलसी के बाद भी। तुलसी के बाद के हिन्दी रामकाव्य का परिचय देना हमारे लिए प्रासंगिक नहीं है। हिन्दी में तुलसी से पूर्व रामकाव्य अधिक समृद्ध नहीं है। चन्दबरदाई कृत 'पृथ्वीराजरासो' के दूसरे 'समय' में दशावतार-कथा के अन्तर्गत रामकथा विषयक लगभग सौ छन्द, सम्वत् १३४२ में भूपति द्वारा लिखित 'रामचरितरामायण', सम्वत् १३७५ के लगभग स्वामी रामानन्द द्वारा रचित 'रामार्चनपद्धति', सम्वत् १५३५ में उत्पन्न सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर' के नवम स्कन्ध में आये रामकथा-विषयक लगभग १५० पद आदि इस हिन्दी रामसाहित्य के अन्तर्गत आते हैं।

तुलसी ने यथासम्भव उपलब्ध राम-साहित्य का अध्ययन-मनन करके उसमें अपनी प्रतिभा का योगदान करते हुए रामचरितमानस की रचना की। रामचरितमानस की दशाधिक प्राचीन प्रतियों की चर्चा लेखकों ने की है।

इन प्राचीन प्रतियों में लिखावट भेद और पाठभेद बराबर मिलते हैं। गोस्वामी जी ने अपनी मृत्यु से ४१ वर्ष पूर्व 'मानस' की रचना कर डाली थी। सम्भव है कि उन्होंने अपने जीवनकाल में ही इस ग्रन्थ में कुछ परिवर्तन या संशोधन किये हों। यद्यपि इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता फिर भी मानस की ऐसी प्रतियाँ भी उपलब्ध हैं जिनके विषय में हमें मौलिकता का विश्वास करना चाहिए। उन प्रतियों में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा सम्पादित प्रति, रामदास गोड़ द्वारा सम्पादित प्रति, पं० बिजयानन्द त्रिपाठी और डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित प्रतियाँ अधिक विश्वसनीय कही जा सकती हैं। गीता प्रेस, गोरखपुर ने भी मानस की लाखों प्रतियाँ मुद्रित की हैं। हमने गीता प्रेस के पाठ को ही अध्ययन का आधार बनाया है।

इससे पूर्व कि रविचरण और तुलसी के कास की परिस्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय और 'पद्मपुराण' और 'रामचरितमानस' विषयवस्तु, पात्र तथा चरित्र-चित्रण, भावसम्पदा, कला-कौशल, धर्म और संस्कृति की दृष्टि से

तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की जाय, रामचरितमानस का संक्षिप्त परिचय देना प्रासंगिक समझा जा रहा है।

रामचरितमानस : संक्षिप्त विवेचन

रामकाव्य-परम्परा में तुलसी के रामचरितमानस का स्थान अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है। 'मानस' की गम्भीरता के अनुसार ही गोस्वामी जी ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में उसकी विशद भूमिका बाँची है। इस रचना के उपक्रम में सती-मोह है और उप-संहार में गरुड़-मोह है। पार्वती और गरुड़ की शंकाओं का समाधान ही एक प्रकार से इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य है। शिव और काकभुशुण्डि—दोनों ही क्रमशः पार्वती और गरुड़ के समक्ष नरावतार में राम की ब्रह्मता का प्रतिपादन करते हैं और दोनों ही ज्ञान के आचार्य होकर भी भक्ति का प्रतिपादन करते हैं।

कथा कहने से पूर्व कवि ने अनेक प्रकार की वन्दनाओं का क्रम बाँचा है। वाणी-विनायक, भवानी-शंकर, कबीन्दर-कपीन्दर और सीता-राम की वन्दना के बाद गणेश, विष्णु, शिव और गुरु की वन्दना है। फिर ब्राह्मणों, वैष्णवों तथा खलो की भी वन्दना की है। इसके पश्चात् देव, वनुज, नर, नाग, खग, प्रेत, पितर, गन्धर्व, किन्नर और रजनीचरों की वन्दना है। साथ ही ८४ लाल योनियों के जीवों की भी वन्दना की है। इस विस्तृत वन्दना का कारण बताते हुए कवि कहता है—'निज बुधि बल भरोस मोहि नाही। तानें विनय करहुँ सब पाहीं॥'^{११५५} इसी प्रसंग में कवि ने राम-चरित का विसदता और अपनी बुद्धि की क्षमता की ओर भी संकेत किया है। फिर रामकाव्य के कवियों को प्रणाम किया है। साथ ही वाल्मीकि, देव, ब्रह्मा, विबुध विप्र, बुध, ग्रह, शारदा, सुरसरिता, महेश-भवानी, अवधपुरी के नर-नारी, कोसल्या, दशरथ, परिजनसहित विदेह, राम-भरत, लक्ष्मण-गङ्गधन, हनुमान् जी तथा बन्दर-समाज आदि सभी को प्रणाम किया है। फिर राम-नाम की महिमा का वर्णन है।

राम-कथा के अनेक वक्ता-श्रोताओं में गोस्वामी जी ने अपने पूर्व के तीन वक्ता-श्रोताओं का उल्लेख किया है—शिव-पार्वती, काकभुशुण्डि-गरुड़, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज। ये ही वक्ता-श्रोता पूर्व में रहे हैं। चौथे वक्ता गोस्वामी जी स्वयं हैं और श्रोता सन्त लोग। रामावतार के प्रसंग के लिए ही उन्होंने जय-विजय कथा तथा नारद-शाप की कथा प्रस्तुत की है। प्रतापभानु-प्रसंग भी रामावतार का एक हेतु ही है। दानवों के अत्याचार और देवों की उत्पत्ति के साथ ही कवि राम

जन्म पर आ जाता है।

मानस का कथासार : 'रामचरितमानस' में वर्णित रामकथा का अत्यन्त संक्षिप्त सार इस प्रकार है—“अयोध्यापति महाराज दशरथ की तीन रानियाँ थी किन्तु किसी भी रानी से कोई सन्तान न थी। वृद्धावस्था में कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी-रानियों से राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामक चार पुत्र हुए। राम ज्येष्ठ पुत्र थे। उनका विवाह विदेहराज जनक की पुत्री सीता से हुआ था। कुछ समय पश्चात् राजा दशरथ ने अयोध्या के राजसिंहासन पर राम को अभिविक्त करना चाहा परन्तु ठीक समय पर कैकेयी ने वरदान माँगकर विघ्न कर दिया। राम वन को चले गये। सीता और लक्ष्मण भी उनके साथ ही अयोध्या छोड़कर चल पड़े। कैकेयी राम के स्थान पर भरत का अभिवेक करना चाहती थी परन्तु भरत ने ही यह बात स्वीकार नहीं की। कुछ समय बाद राम द्वारा समझाये जाने पर भरत ने राज्य-कार्य सँभाल लिया। दुर्भाग्यवश लंका का राजा रावण वन से सीता को चुराकर ले गया। राम-लक्ष्मण उसकी खोज करने निकले। इसी बीच सुग्रीव और हनुमान आदि से उनका परिचय हुआ। इन्हीं की सहायता लेकर राम ने लंका पर चढ़ाई कर दी। अन्त में राम ने राक्षसों का संहार करके सीता को प्राप्त किया। अन्त में अयोध्या लौटकर राम सिंहासन पर अभिवेक हुए और प्रजा की रक्षा करते हुए शासन कार्य करने लगे।

सात सोपान . कवि ने उपर्युक्त कथा को सात सोपानों द्वारा प्रस्तुत किया है। मानस-रूपक का वर्णन करते हुए कवि ने ‘सप्त प्रबंध सुभग सोपाना’ कहा है। ‘आबिरामायण’ में ‘सोपान’ न होकर ‘काण्ड’ ही हैं। सम्भव है प्रारम्भ में ये ‘काण्ड’ भी न रहे हों एवं बाद में राम के अयन (पर्यटन) के स्थानों को आधार मानकर इनकी कल्पना की गयी हो। पहले तो स्थानपरक ये पाँच ही ‘काण्ड’ बने—अयोध्या-काण्ड, अरण्य-काण्ड, किष्किन्ध्याकाण्ड और लंकाकाण्ड। बाद में सम्पूर्ण चरित को ही काण्डान्तर्गत विभक्त करने के हेतु ‘बालकाण्ड’ नामक दो काण्ड और जोड़ दिये गये। आजकल तो ये सात काण्ड सर्वमान्य बन गये हैं। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सम्पादित रामचरितमानस में प्रथम दो सोपानों का कोई नाम नहीं लिखा गया है; तृतीय सोपान का नाम ‘बिमल-वैराग्य-सम्पादन’, चतुर्थ का ‘विशुद्ध-संतोष-सम्पादन’, पाँचवे का ‘ज्ञान-सम्पादन’, छठे का ‘बिमल-विज्ञान-सम्पादन’ और सातवें का ‘अबिरल-हरिभक्ति-सम्पादन’ नाम लिखा गया है। श्री रामदास गोड़ द्वारा सम्पादित प्रति में प्रथम सोपान को बिमल-संतोष-सम्पादन’ और द्वितीय को ‘बिमल-विज्ञान-वैराग्य-सम्पादन’ नाम दिये गये हैं। इन्हीं सात सोपानों में कवि ने रामकथा का सम्पूर्ण रूप प्रस्तुत किया है। इन

सोंपानों में आध्यात्मिक दृष्टि से कथाक्रम के साथ भगवान् राम के चरणों तक पहुँचने का एक क्रम भी बराबर चलता दिखाई देता है।

कथारोहणः प्रथम सोपान में, कवि ने विविध चिनत्तियों के बाद याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद से राम-जन्म की ओर संकेत कराया है। रावण के जन्म के साथ ही उसके लकाधिपति होने का वर्णन किया है। यथासमय राज कुमारों के नाम-करण, चूड़ाकरण, उपनयन और विद्यारंभ आदि सत्कारों का वर्णन किया है। फिर विश्वामित्र आगमन, ताडका-वध, धनुष-यज्ञ और चारों भाइयों के विवाह का वर्णन किया है। अन्त में उनके अयोध्या लौटकर आनन्दपूर्वक रहने के वर्णन के साथ ही प्रथम सोपान की समाप्ति होती है।

द्वितीय सोपान का आरंभ राम के राज्याभिषेक की धूमधाम से होता है। कैकेयी के वर माँगने पर राम के राज्याभिषेक में विघ्न होता है। राम वनगमन अत्यन्त मार्मिक रूप से चित्रित किया गया है। इसके पश्चात् भरत का ननिहाल से आगमन होता है। वे सिंहासन को अस्वीकृत कर राम से विनम्रता में मिलने जाते हैं। राम वापिस आने को तैयार नहीं होते। तब भरत नन्दिग्राम में राम के एक प्रतिनिधि के रूप में राजकार्य का संचालन करते हैं तथा अपना मन राम के चरणों में अर्पित किये रहते हैं।

तृतीय सोपान में—राम शरभंग के आश्रम में जाते हैं। विराघ का वध होता है। ऋषि-अस्थियों को देखकर राम 'निसिन्धर हीन करों महि'—आदि प्रतिज्ञा करते हैं। पर्णकुटी-निर्माण, जटायु-मिलन, शूर्पनखा की आसक्ति, एव विरूपी-करण, खरदूषण-वध, रावण द्वारा राम से विरोध का निश्चय, सीताहरण, मारीच-वध, जटायु-संस्कार आदि इसी सोपान के अन्तर्गत आते हैं। राम के पम्पा सरोवर पहुँचने पर वह सोपान समाप्त हो जाता है।

चतुर्थ सोपान में, पम्पा सरोवर से राम ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँच जाते हैं। हनुमान के माध्यम से सुग्रीव से उनकी मित्रता होती है। बालि-सुग्रीव का युद्ध, बालि-वध, सुग्रीव का राज्याभिषेक, प्रवर्षणगिरि पर वर्षाकाल में निवास, शरदा-यम पर हनुमान आदि द्वारा सीतान्वेषण-प्रस्थान, सम्पाति द्वारा सीता के लंका में होने की सूचना आदि वर्णनों के साथ आगे बढ़ता हुआ यह सोपान जाम्बवान् द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके लंका जाने को प्रस्तुत हनुमान को जाम्बवान के परामर्श के साथ समाप्त हो जाता है।

पंचम सोपान में, हनुमान सुरसा का आशीः प्राप्त करते और सिन्धुवासिनी निसिन्धरी (सिंहिका) का वध करते हुए लंका में प्रविष्ट होते हैं। उनकी विभीषण से मेल होती है। उसी की कतायी हुई युक्ति से उन्हें सीता का वर्णन होता है।

हनुमान द्वारा वृक्ष पर बैठकर रावण की धमकियाँ देलना, त्रिजटा द्वारा सीता का आश्वासन, हनुमान द्वारा मुद्रिका गिराना, राम का सन्देश देना, वन उजाड़ना, अक्षकुमार का वध करना, बन्दी होना, रावण द्वारा पूँछ में आग लगवा देना, हनुमान द्वारा लंका-दहन एवं सीता की चूड़ामणि लेकर राम को सन्देश देना, राम की लंका पर चढ़ाई, विभीषण-राम-मिलन, राम द्वारा विभीषण को 'लंकेश्वर' कहकर उसका अभिषेक करना, समुद्र द्वारा मार्ग-दान आदि विस्तृत एवं मार्मिक प्रसंगों के वर्णन के साथ यह सोपान समाप्त हो जाता है।

षष्ठ सोपान में, राम सेतु से अपनी सेना उस पार लंका में उतार देते हैं। रावण को क्षणिक भय होता है। मन्दोदरी और प्रहस्त आदि उसे सन्मनाते हैं। राम सुवेल-शिलर पर शिविर लगा देते हैं। रावण के छत्र और मन्दोदरी के ताटकों को वे अपने बाण से वही बैठे-बैठे गिरा देते हैं। फिर अंगद का दौल्य, रावण-अपमान, राम-रावण-सेनाओं में युद्ध, लक्ष्मण-भूच्छा, सुवर्ण वृक्ष द्वारा उपचार, कुम्भकर्ण-वध, मेघनाद-वध, रावण-वध, सीता-मिलन, अमृत-वर्षा और मृत बानर-भालुओं का जीवित होना, विभीषण का राज-तिलक होना, पुष्पक विमान द्वारा राम-लक्ष्मण और सीता का अयोध्या लौटना, हनुमान के द्वारा भरत को उनके आगमन की सूचना आदि के साथ यह सोपान समाप्त हो जाता है।

सप्तम और अन्तिम सोपान में, अयोध्या की जनता राम-लक्ष्मण और सीता आदि का स्वागत करती है। राम का राज्याभिषेक होता है। कुछ दिनों के पश्चात् राम अन्य सेवकों को विदा करके हनुमान को अपने पास रहने देते हैं। फिर राम-राज्य का वर्णन है। इसके पश्चात् कवि ने शिव के द्वारा पार्वती को, काक भुशुण्डि और गरुड़ का प्रसंग कहलाया है। इसी प्रसंग में कलि-धर्म-निरूपण, ज्ञान भक्ति का अन्तर और समन्वय एव बाद में सभी सवादों का उपसंहार है। गरुड़ ने काक-भुशुण्डि को और पार्वती ने शिव को अपने राम-सम्बन्धी सन्देशनायक की सूचना दी है। फिर कवि के मानसिक विश्राम का उल्लेख है। अन्त में कवि ने राम से अज्ञान-शान्ति की प्रार्थना की है और संस्कृत के दो श्लोकों में रामचरितमानस में भक्तिपूर्वक अवगाहन करने का फल बताया है। इस प्रकार रामचरित की पूर्ति पर सप्तम सोपान समाप्त हो जाता है।

मानस का आधार : रामकथा का आधार लेकर केवल भारत में ही नहीं, अपितु विश्व-भर में विपुल साहित्य की सृष्टि हुई है, परन्तु सम्पूर्ण राम-साहित्य में गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' का स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इस ग्रंथ में वर्णित विषय के प्रधान रूप से दो ही ग्रन्थ आधार माने जाते हैं:— 'भगवद्गीता' और 'अष्टाध्याय'। कवि ने ग्रन्थारम्भ में ही अपने

ग्रंथ के आधार की सूचना निम्नलिखित श्लोक के द्वारा दे दी है:—

“नानापुराणनिगमाद्यसम्मतं य—

ब्रामायणे निगदितं बह्विद्वन्मतोऽपि ।

स्वातः सुखाय सुलसी रघुनाथगाथा—

भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमात्मनोति ॥”^{१२६०}

यहाँ ‘बह्विद्वन्मतोऽपि’ ध्यान देने योग्य है। नाना-पुराण, निगम, आगम, रामायण आदि तो इसके आधार हैं ही, साथ ही कुछ और भी—अनेक काव्यादि-इसके आधार रूप में अवस्थित हैं। ‘मानस’ के कुछ प्रकरणों को सामने रखकर यह आधार देखा जा सकता है, यथा .—

‘शिव ने अपने मानस में रामकथा को रचकर रख छोड़ा और समय पाकर पार्वती को सुनाया—यह कथा ‘महारामायण’ और ‘रामायणमाला’, के समान है। शील निधि राजा के यहाँ स्वयम्बर की कथा ‘रामायणचम्पू’ के समान, नारद-मोह-वर्णन ‘शिवमहापुराण’ के सृष्टि-खण्ड (अध्याय ३-४) के समान, रावण-कुम्भकर्ण-अवतार ‘भागवतमहापुराण’, ‘शिवमहापुराण’, और ‘भ्रान्त्यारामायण’ के समान उल्लिखित है। प्रतापमानु, अरिमर्दन और धर्मरक्षि के रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण होने की कथा ‘अगस्त्यरामायण’ और ‘मञ्जुलरामायण’ के अनुसार वर्णित है। मनु-शनरूपा की तपस्या, पूर्णब्रह्म से पुत्र रूप में अवतरित होने का वरदान ‘संबुतरामायण’ के अनुसार, पुत्रेष्टि यज्ञ, देवताओं की विष्णु से अवतार की प्रार्थना, पायस प्राप्तकर रानियों की वितरण, देवताओं का बानर आदि योनियों से जन्म, राम का अपनी माता को विराट् रूप दिखलाना तथा उनकी बाल-लीला का कुछ वर्णन, विश्वामित्र-आगमन तथा राम-लक्ष्मण की यज्ञ रक्षा के लिए याचना का वर्णन, ‘अध्यात्मरामायण’ के अनुसार गोस्वामी जी ने किया है। अहल्योद्धार वर्णन, ‘मृसिहपुराण’, स्कन्दपुराण, ‘पद्मपुराण’, ‘भ्रान्त्यारामायण’ और ‘रघुवंश’ के अनुसार, गिरिजा-पूजन, सीताराम के पारम्परिक आकर्षण का वर्णन, जानकी विवाह और जानकीहरण ‘स्वयम्भू रामायण’ के अनुसार, परशुराम-प्रकरण ‘महा-क्षीरचरित’, ‘बालरामायण’, ‘प्रसन्नराघव’ और महानाटक के अनुसार वर्णित है। रामराज्याभिषेक की तैयारी, वसिष्ठराम-वार्तालाप, राज्याभिषेक के विघ्न आदि और राम-वन-गमन ‘अध्यात्मरामायण’ के अनुसार, कैकेयी का दोष सरस्वती के ऊपर होने का वर्णन, ‘भ्रान्त्यारामायण’ के अनुसार, रामवनगमन के प्रसंग में केदर-संवाद ‘चाम्पूरामायण’, ‘अध्यात्मरामायण’ और ‘भ्रान्त्यारामायण’ के अनुसार, राम के चरण धोने का वर्णन ‘सूरसम्भर’ के अनुसार, प्रयाग-माहात्म्य, भर-

द्राज-पट्टनाई 'सुबर्णरामायण' के अनुसार, ग्रामवधूटियों का स्नेह-कथन और उनका पश्चात्ताप-वर्णन 'सौषष्ठरामायण' के अनुसार, वाल्मीकि-मिलन और चित्रकूट-निवास-वर्णन 'रामायणवर्णितम्' और 'अध्यात्मरामायण' के अनुसार, सुमंत्र के अयोध्या लौटने का वर्णन उनका विलाप एवं दशरथ-मरण, 'अध्यात्मरामायण' के अनुसार, भरत-शपथ, भरत-विलाप, राम को लौटाने की तत्परता, निषाद-रोष, निषाद-भरत-संवाद और लक्ष्मण-रोष, आदि कथाएँ 'दुरन्तरामायण' के अनुसार हैं। भरत-चित्रकूट-यात्रा 'अध्यात्मरामायण' के अनुसार, जनक-चित्रकूट-आगमन 'अवधरामायण' के अनुसार, जयन्त की कथा 'वैद्यरामायण' के अनुसार, अग्नि-राम-मिलन, अनमूया-सीता-संवाद एवं नारी-धर्म-निरूपण, 'रामायणवर्णितम्' के अनुसार, विराघवध, शरभंग का शरीरत्याग, सुतीक्ष्ण का प्रेम एवं राम-अगस्त्य-मिलन, 'अध्यात्मरामायण' के अनुसार, दण्डकारण्य पवित्र करते हुए राम के पंच-वटी आगमन और निवास की कथा 'बाल्मीकिरामायण' के अनुसार, गृध्रराज अटायु की मित्रता, लक्ष्मण को उपदेश, शूषनला को दण्ड, खरदूषण-वध, शूर्पनखा का रावण के पास आगमन, राम का मर्म समझना, रावण-मारीच-सम्वाद, सीता का अग्नि-प्रवेश, मायामयी सीता की रचना, रावण द्वारा सीता-हরণ और मारीच-वध, 'अध्यात्मरामायण' के अनुसार है। सीता-विलाप, अटायु-महायता, उसकी मुक्ति का वर्णन, कवच-वध, रामशबरी-भेट, नवधा-भक्ति-वर्णन, 'मृदुलरामायण' के अनुसार, शबरी की मुक्ति और पम्पासुर-गमन की कथा 'अध्यात्मरामायण' के अनुसार, राम-नारद-संवाद, 'सौषष्ठरामायण' के अनुसार, राम-हनुमान-मिलन, सुग्रीव-मैत्री, बालि-वध, सुग्रीव-राज्याभिषेक, राम-लक्ष्मण का प्रवर्षण-निवास, सुग्रीव द्वारा वानरों को सीता की खोज के लिये भेजा जाना, विवर-प्रवेश और सम्पाति-मिलन, 'अध्यात्मरामायण' के अनुसार, समुद्र-तीर पर अंगद-विलाप एवं वानरों का सम्भाषण, 'दुरन्तरामायण' के अनुसार, समुद्र-मन्तरण, लंका-प्रवेश, सीता-धैर्य-प्रदान, वन उजाड़ना, लंका-विध्वंस एवं वहाँ से वापस लौटकर सीता-संदेश का राम से कथन, 'अध्यात्मरामायण' के अनुसार, सेना सहित राम का समुद्र के किनारे आगमन, सेतु-बन्धन, विभीषण-मिलन, और उसका अभिषेक 'अध्यात्मरामायण' के अनुसार, मन्दोदरी का समझाना, 'सुवर्णरामायण' के अनुसार अंगद का दूतकार्य 'बाल्मीकिरामायण' के अनुसार, राक्षस-वानर-संग्राम, कुम्भकर्ण-वध मेघनाद-लक्ष्मण-युद्ध, लक्ष्मण का शक्ति-निहत होना, हनुमान द्वारा सजीवनी लाना, उपचार से लक्ष्मण का स्वस्थ होना, 'अध्यात्मरामायण' और 'सुवर्णरामायण' के अनुसार, मेघनाद-वध, रावण-यज्ञ-विध्वंस, राम-रावण-युद्ध, रावण के नाभि-प्रदेश में अमृत, रावण-वध, विभीषण का राज्याभिषेक,

सीता की अग्नि-परीक्षा, 'अध्यात्मरामायण' के अनुसार, वेद-शिव-इन्द्र-ब्रह्मा द्वारा राम की स्तुति, 'रामायणमणिरेख' के अनुसार, पुष्पकाक्षु राम का लक्ष्मण-सीता सहित, प्रमुख बानरों के साथ अयोध्यागमन, राध्याभिषेक, अनेक प्रकार नृपनीति का वर्णन, 'अध्यात्मरामायण' के अनुसार, काकभुगुण्डि-कथा, 'भुगुण्डि-चरित', 'भुगुण्डिरामायण' और 'सत्योपाख्यान' के अनुसार एव शिव के मराल वेश में नीलगिरि पर रामकथाश्रवण का वृत्तान्त 'रामायणमहावाला' के अनुसार वर्णित है।

कथावस्तु योजना में कवि-कौशल : उपर्युक्त विवेचन से गोस्वामीजी की मधुकरी वृत्ति और गम्भीर अध्ययन का एक साथ परिचय मिलता है। घटनाओं क्रमबद्ध सजाने और उन्हें मौलिक रूप प्रदान करने की गोस्वामी जी में अद्भुत क्षमता दिखाई देती है। 'अध्यात्मरामायण' और 'आखिरामायण' आदि ग्रन्थों से कथासूत्र लेकर भी उन्होंने यथासमय उसमें परिवर्तन किया है और इस प्रकार कथाक्रम में एक आकर्षक विशेषता आ जाती है। कुछ घटनाओं के हेर-फेर से आने वाली नवीनता का संकेत इस प्रकार किया जा सकता है:—

(१) कवि ने रामसीता का साक्षात्कार विवाह से पूर्व पुष्पवाटिका में ही कराया है। यह उन्होंने 'प्रसन्नराघव' के अनुसार ही किया है। इससे कवि को पूर्वनिर्गम चित्रण करने का पर्याप्त अवसर मिल गया है। इस मिलन में गोस्वामी जी ने मर्यादा का कितना ध्यान रखा है कि मिलन एकाग्रत में न दिखाकर सखियों के साथ रखा है। राम के साथ लक्ष्मण भी है। इसका भी कवि ने ध्यान रखा है। यहाँ प्रेम अंकुरित हुआ है, छलका नहीं है।

(२) धनुर्भंग की घटना भी कवि ने राजसभा में ही दिखाई है। इसमें नाटकीयता का वातावरण उत्पन्न करने में पर्याप्त सहायता मिली है। बन्दीजनों द्वारा जनक की प्रतिज्ञा की घोषणा, राजाओं की अमफलता, जनक की निराशा, लक्ष्मण का आवेश और धनुर्भंग से पूर्व उनके द्वारा शेष तथा कच्छप को सावधान करने में नाटकीय आनन्द आ जाता है। इससे कवि को वातावरण की मृष्टि और उसका वर्णन करने का अवकाश मिल सका है।

(३) परशुराम को धनुर्भंग के पश्चात् राजसभा में ही बुलाया है, लौटती बार बीच मार्ग में नहीं। इससे राम-परशुराम-संवाद और विशेषरूपेण लक्ष्मण-परशुराम-संवाद को अवकाश मिल गया है। इस घटना से कवि ने एक ओर तो मनोविज्ञान के चित्रण का अवसर ढूँढ निकाला है। दूसरी ओर लक्ष्मण और परशुराम के संवाद द्वारा एक दमपूरण श्रद्धा को विजित दिखाकर उपस्थित राजाओं को लक्ष्मण-राम के प्रति विशिष्ट भावना बनाने के लिए विवश भी किया है।

(४) भरत के राम से बिलने के लिए चित्रकूट जाते हुए निषादराज के भिड़ जाने की तैयारी का वर्णन तो तुलसीदास का एकदम भौलिक प्रकरण है। अवसर की अनुकूलता तथा मनोविज्ञान—दोनों ही इस घटना की स्वाभाविकता का प्रमाण देते हैं। इस घटना का निर्वाह अत्यन्त कुशलता से किया गया है।

(५) राम के चित्रकूट में निवास के समय कवि ने वहाँ जनक को भी पहुँचाया है। भला राम और सीता बनबास का कष्ट भोगें और पिता जनक पर इसका कुछ भी प्रभाव न हो—यह कैसे सम्भव था? कवि ने इसका अवसर निकाल कर जनक को चित्रकूट के सारे कार्यक्रम में उपस्थित दिलाया है। इससे जनक के मन में पुत्री सीता के चरित्र की एक सन्तोषजनक तस्वीर खिंचती है। यह गृहस्थ-जीवन का एक मार्मिक चित्र है।

(६) पम्पासर पर नारद को राम के समीप पहुँचाकर कवि ने ब्रह्मचर्य में वर्णित नारद-मोह की कड़ी को जोड़ दिया है। यह कवि की प्रबन्ध-कुशलता ही है।

(७) लंका जाने पर हनुमान से विभीषण की भेंट का वर्णन करना भी विभीषण की रामभक्ति के परिचय के लिए अत्यन्त आवश्यक था। कवि ने भविष्य की योजनाओं का श्रीगणेश हनुमान्-विभीषण-मिलन के द्वारा कर दिखाया है।

(८) हनुमान के समक्ष सीता-त्रिजटा-संबाद कराकर कवि ने सीता की प्रेम-विह्वलता का सुन्दर परिचय कराया है। हनुमान को इस परिस्थिति का पूर्ण परिचय देने के लिए यह बुद्धिमत्तापूर्ण आयोजन कहा जा सकता है।

(९) मनोवैज्ञानिक आधार पर कवि ने युद्ध से पूर्व सुवेल-गिलर, चन्द्रोदय, रावण के अलाहे आदि के मनमोहक चित्र उपस्थित किये हैं। ये विरोधी भावनाएँ भी हमारी कल्पना को आनन्द प्रदान किया करती हैं। साथ ही इनसे परिस्थितियों में गम्भीरता भी आ जाती है।

(१०) शिष्ट-परम्परा के अनुसार तथा राजनीति के नियमों के अनुसार अंगद को युद्ध से पूर्व दूत बनाकर रावण के पास भेजा गया है। यह भी एक महत्वपूर्ण आयोजन है। परन्तु अंगद के व्यवहार में कुछ मर्यादा का उल्लंघन दिखाई देता है। सम्भवतः इसका कारण कवि के मन की यह भावना है कि रावण राम का शत्रु था। फिर भी राज-दरबार की मर्यादा का ध्यान रखना आवश्यक था (जैसा कि केशव ने रखा है)।

(११) कवि ने नक्षत्र को रावण के प्रहार से मूर्च्छित न कराकर मेघनाद की शक्ति से मूर्च्छित दिलाया है। इस प्रकार कवि ने शक्ति और वीरता का एक प्रकार से बैठवारा दिखाया है। केवल रावण ही वीर नहीं था, मेघनाद और

कुम्भकर्ण आदि भी महाबली थे। साथ ही राम से रावण और लक्ष्मण से मेघनाद की वैर-भावना दिखाने के प्रकरण में आकर्षण आता है।

(१२) रावण द्वारा प्रेरित शक्ति—जिसे उमने विभीषण को मारने के लिये छोड़ा था—लक्ष्मण की छाती पर नहीं राम की छाती पर जाकर लगती है। उसे राम ने अपने भक्त की रक्षा के लिए अपने वक्ष पर भेला है। इससे कथा-नायक राम का चरित्र और भी ऊँचा उठ जाता है। उनकी शरणागतवत्सलता प्रकट हो जाती है।

(१३) राम को नागपाश में बन्दी दिखाकर कवि ने उत्तरकाण्ड के काक-भुगण्डि-गण्ड-संवाद के लिए कारण बना लिया है। उसी के सहारे ज्ञानभक्ति-विवेचन जैसे महत्त्वपूर्ण प्रकरण सामने आये हैं।

(१४) सीता-वनवास और लवकुश-जन्म आदि की कथा को कवि ने जान-बूझकर छोड़ दिया है। इससे काव्य सुखान्त बन सका है। भारतीय परम्परा का कवि ने खूब पालन किया है। अन्य ग्रन्थों में यह कथाएँ बराबर आती हैं परन्तु तुलसीदासजी ने उनके साथ कथा का उपसंहार करना उचित नहीं समझा है।

कवि की मौलिकता : कई नये मोड़ देकर और कुछ नवीन प्रसंगों की उद्घा-वना करके तुलसी ने युग-युगान्तर से चली आती रामकथा को अत्यन्त आकर्षक, मनोवैज्ञानिक एवं प्रभावपूर्ण बना दिया है। 'रामचरितमानस' के कथानक को सुव्यवस्थित, मर्यादित, गरिमापूर्ण और साहित्यिक रूप प्रदान करना गोस्वामी जी का प्रशंसनीय कार्य है। कुछ प्रसंग तो उन्होंने कथा को सर्वांगपूर्ण बनाने के लिए ही जोड़े हैं। दो-चार प्रसंगों का यहाँ उल्लेख किया जाता है—

(१) राम-लक्ष्मण के सीता-स्वयंवर के अवसर पर मिथिला जाने के समय वहाँ की स्त्रियाँ उनके रूप-सौन्दर्य को लेकर परस्पर खूब बातें करती हैं। यह स्त्रियों के स्वभावानुसार ही है। आजकल भी किसी बर को देखने के लिए स्त्रियाँ एकत्र हो जाती हैं। इस बातलाप के द्वारा भावी सीता-पति के लिए कवि ने एक अवसरकी भी सृष्टि की है।

(२) वनगमन के समय ग्रामवधूटियों का समागम और सीता के साथ उनका बातलाप गोस्वामी जी की नयी उद्घावना है। इससे स्त्रियों के सहज स्वभाव और मर्यादित शृंगार के चित्रण को अवकाश मिला है। साथ ही मायिकता भी जाती है। भोली स्त्रियाँ अयोध्या की राजवधू की दशा को देखकर पानी-पानी हो जाती हैं।

(३) प्रारंभ की विस्तृत वन्दना, मानस-रूपक और बालकाण्ड का अधिकांश भाग कवि की मौलिकता का ही परिचायक है। वन्दनाओं से एक साथ सांस्कृतिक

वातावरण और विमय-शीलता का प्रभाव प्रकट होते हैं।

(४) चार प्रसिद्ध संवादों की अवतारणा भी मौलिक ही है। इससे प्रबन्ध-सौष्ठव सम्पन्न होता है। साथ ही कवि की महाकाव्य लिखने की क्षमता का परिचय भी मिलता है।

(५) उत्तरकाण्ड का ज्ञान-भक्ति-विवेचन कवि की नयी देन ही कही जा सकती है। यह तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति के फलस्वरूप लिखा गया है।

(६) अनेक स्थलों पर कथानक को गोस्वामीजी ने एकदम मौलिक रूप में उपस्थित कर दिखाया है। उनकी कलात्मकता सचमुच प्रशंसनीय है। उन्होंने कथा के आधारभूत नये सिद्धान्त समक्ष रखे हैं। व्यापक रूप से सारे काव्य को राम-भक्ति में ढुंकीकर रख दिया है। यह भी नवीनता ही है।

(७) सभी चरित्र पूर्ववर्ती रामकथा के चरित्रों से विलक्षण बना दिये हैं।

(८) अबोध्याकाण्ड तो मौलिकता का प्रमुख उदाहरण माना जा सकता है। इसके पूर्वार्द्ध के प्रसंगों में तुलसी की मौलिकता स्पष्ट है। भरत का आदर्श चरित्र तो एकदम गोस्वामी जी की लेखनी की ही देन है। उसकी भ्रातृवत्सलता अनुपम है। श्रीराम के प्रति वे अनन्य भक्ति-भावना से परिप्लुत हैं और अपनी माता तक को खरी-खरी सुनाते हैं।

‘रामायण’ और ‘मानस’ के कुछ प्रसंग, राम के चरित्र पर सर्व प्रथम लिखा गया काव्य आदिकवि वाल्मीकि का ‘रामायण’ ही है। उसीके पीछे राम काव्यों की परम्परा चलती है। गोस्वामीजी ने जहाँ अनेक स्थलों पर रामकथा को ज्यों का त्यों रहने दिया है वहाँ अधिकांश स्थल ऐसे हैं जिनमें नवीनता के लिये आवश्यक परिवर्तन कर दिये हैं। इसका कारण यह है कि आदि कवि वाल्मीकि को तो केवल चरित्र-काव्य लिखना था, उनके नायक भी साधारण मनुष्य थे परन्तु गोस्वामी जी को तो रामभक्ति की स्थापना के लिये ग्रन्थ रचना करनी थी। इसी कारण उनके नायक परब्रह्म राम हैं। वे तो ‘बिधि हरि संभु नचावनहारे’ हैं। इसके अतिरिक्त दोनों कवियों ने रामजन्म के प्रकरण का भी अपने ढंग से ही वर्णन किया है। राम लक्ष्मण को सिवा जाने के लिए जब बिद्वामित्र दशरथ के पास आते हैं तो वाल्मीकि के विद्वामित्र क्रोधित हो उठते हैं परन्तु तुलसी के विद्वामित्र यहाँ हर्षित होते हैं। रामायण में, आश्रम की ओर राम-लक्ष्मण के साथ जाते हुए कवि उन्हें अनेक कथा सुनाते हैं परन्तु तुलसी के ‘मानस’ में उस समय केवल गंगा की ही कथा का उल्लेख आता है। वाल्मीकि ने विद्वामित्र और राम-लक्ष्मण के जनक-पुरी-प्रवेश का वर्णन नहीं के बराबर ही किया है वे सीधे स्वम्बर में पहुँचा दिये गये हैं। गोस्वामीजी ने मनोवैज्ञानिक एवं मर्यादित ढंग से सभी मंत्रियों, पुरोहित और

श्रेष्ठ लोगों के सहित जनक द्वारा उनको अगवानी कराई है। वाल्मीकि ने मन्थरा का बिषद एवं सुन्दर वर्णन किया है; वहाँ मानस की भाँति केवल 'बाई बिरा बसि फेरि' कहकर ही प्रसंग समाप्त नहीं किया गया है। कैंकेयी की धाय होने के कारण ही मन्थरा का भरत के राज्याभिषेक के प्रति पक्षपात दिखाया गया है। वह अधिक मनोवैज्ञानिक है। तुलसीकृत मानस के अरण्यकाण्ड की कितनी ही कथाएँ वाल्मीकिरामायण के अयोध्याकाण्ड में आ जाती हैं। कुछ कथाएँ वाल्मीकि में हैं किन्तु तुलसी में नहीं और कुछ तुलसी में है पर वाल्मीकि में नहीं। कुलपति तपस्वियों के राक्षस-भय से आश्रम त्याग की कथा 'मानस' में नहीं है, इधर इन्द्र पुत्र की कथा रामायण में नहीं है। वाल्मीकि ने अग्नि द्वारा राम की पूजा का प्रसंग भी नहीं दिया है। हाँ, अनसूया द्वारा सीता को उपदेश दोनों ही कवियों ने दिलाया है। शरभंग की कथा वाल्मीकि ने विस्तार से दी है जब कि तुलसी ने इस प्रसंग को अत्यन्त संक्षेप में ही कहकर समाप्त कर दिया है। वाल्मीकि में ऋषिगण राम को अस्थियों का ढेर दिखाते हैं। परन्तु तुलसी अपने राम को स्वयं ही अस्थि-कूट देखकर 'निसिचर हीन करौं' आवि प्रतिज्ञा करने का अवसर देते हैं। राम सुतीक्ष्ण-मिलन की कथा मानस में जहाँ अत्यन्त भावपूर्ण है वहाँ रामायण में उसका उल्लेख भी नहीं है। मारीच-रावण-संलाप रामायण में विस्तृत है किन्तु मानस में इसका संकेतमात्र ही किया गया है। वाल्मीकि ने सीता द्वारा लक्ष्मण की अपशब्द कहलाये हैं परन्तु तुलसी ने केवल 'भरम बचन सीता तब बोला' कहकर ही इसका संकेत कर दिया है। इस प्रकार कथा के प्रायः सभी प्रसंगों पर दोनों कवियों के विचार और शैली अलग-अलग दिखाई देते हैं। पात्रों के चरित्रों में भी पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है। राम का चरित्र तो स्पष्टतया अन्तरयुक्त है ही रामायण में लक्ष्मण अत्यन्त तेजस्वी, उग्र स्वभाव, भ्रातृ-सेवक और अनुपम योद्धा हैं, मानस में वे उक्त गुणों के अतिरिक्त विचारशील-भक्त और दार्शनिक रूप में भी उपस्थित होते हैं। भरत के चरित्र को तो मानसकार ने तराशकर एकदम चमकीला हीरा ही बना दिया है। वाल्मीकि के भरत भाई राम के चरित्र पर सन्देह करते हैं परन्तु तुलसी के भरत ऐसा स्वप्न में भी नहीं सोच सकते। वाल्मीकि के दशरथ स्पष्टतः कामी हैं परन्तु तुलसी के दशरथ पुत्र-वत्सल पिता हैं। रानियों के चरित्रों में भी इसी प्रकार अन्तर मिलता है। स्पष्ट है कि वाल्मीकि के कथानक से तुलसी का कथानक कहीं अविक प्रभावशाली है।

मानस के प्रतीक : कुछ विद्वानों ने मानस की कथा और पात्रों को प्रतीक मानकर इसके अन्य अर्थ भी प्रस्तुत किये हैं। डा० बलदेव प्रसाद मिश्र ने अपने 'भारतीय संस्कृति' नामक ग्रन्थ में सीता को समृद्धि और राम तथा रावण को

क्रमशः रमणीयता और भयानकता का प्रतीक माना है। समृद्धि तो रमणीयता के साथ ही कल्याणकारिणी हो सकती है। उसका भयानक प्रकृति से सम्बन्ध क्षणिक हो सकता है, स्थायी नहीं। इस प्रकार सीताहरण की कथा को उन्होंने संस्कृति और सभ्यता के संघर्ष का इतीक माना है।

इसके अतिरिक्त यह कथा अम्युदय और निःश्वेस की सिद्धि का भी प्रतीक है क्योंकि कथा दो मुनियों के संकेतों पर केन्द्रित है। एक तो विश्वामित्र के और एक अगस्त्य के। विश्वामित्र यदि अम्युदय के प्रतीक हैं तो अगस्त्य निःश्वेस के क्योंकि इन्हीं के आदसों से राम ने क्रमशः सीता को प्राप्त किया और विश्वकल्याण के लिए राक्षसों का संहार किया है।

ताडका, मन्थरा और शूर्पणखा के चारों ओर घूमने के कारण यह कथा एक प्रकार से क्रोध (ताडका), लोभ (मन्थरा) और काम (शूर्पणखा) आदि की ही कथा है। गीता में कहा भी गया है—

‘त्रिविधं नरकस्थेयं द्वारं नाशनमात्मनः।

कामः क्रोधश्च लोभश्च तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥’

इस प्रकार कथा स्पष्ट रूप से क्रोध, लोभ और काम पर विजय प्राप्त करने की साधना की प्रतीक बन जाती है।

पौराणिक-चरित-महाकाव्यत्व : ‘रामचरितमानस’ हिन्दी का अत्यन्त गरि-मापूर्ण अनुपम, पौराणिक-चरित-महाकाव्य है। प्रथम अध्याय में उक्त महाकाव्य चरितकाव्य एवं पौराणिक काव्य के समस्त उदात्त लक्षणों का उसमें दर्शन दिया जा सकता है।

आचार्य दण्डी के काव्यलक्षण का हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं।^{११९} वहीं हमने यह भी बताया है कि साहित्यदर्पणकार विष्णनाथ प्रायः उनके मत के ही अनुयायी है। उन्होंने कुछ और नवीन बातों का उल्लेख कर दिया है, यथा—‘सर्गौ छष्टाधिक। इह’ आदि। यदि सर्गों की संख्या बानी बात को उपेक्षित कर दिया जाय तो मानस हिन्दी का ही नहीं भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य ठहरता है। यह सर्गबद्ध रचना है, इसके प्रारम्भ में लम्बा मंगलाचरण है, इतिहास प्रसिद्ध रामकथा का उसमें अपने दृष्टिकोण से प्रतिपादन है, चतुर्वर्ग की प्राप्ति-विशेषतः मोक्ष के माधन भक्ति की सिद्धि उससे होती है, इसके नायक मर्यादा-पुरुषोत्तम अगवान् राम परम उदात्त हैं, नगर आदि के अमुचित कथानकोपयोगी वर्णन है, इसमें अलंकारों का सुन्दर गुम्फन है, विस्तृत कथानक है, सर्गान्त में छन्द बदले हुए हैं।

जहाँ तक आधुनिक आलोचकों द्वारा मान्य महाकाव्य के लक्षणों का प्रश्न है^{१११२} वे भी समुचित रूप में 'मानस' में घटित होते हैं। उसका उद्देश्य महान् है, एक आदर्श राम-राज्य की स्थापना उसका लक्ष्य है; उसकी प्रेरणा अधर्म पर धर्म की विजय है; उसकी कलापूर्णता अमन्दिग्ध है जिनका हम आये सकेत देंगे। उसका गुरुत्व, गाम्भीर्य और महत्त्व अनेक मनीषियों द्वारा मौलिमानाओं से लालित है। युग-जीवन का समग्र चित्रण उसके 'कलिधर्म-निरूपण' आदि में प्राप्त होता है। उसका कथानक सुमम्बद्ध, व्यापक एवं सजीवनी शक्ति में परिपूर्ण है। यह काव्य आज भी भारत को चेतन बनाने वाला है। इसके नायक महत्त्वपूर्ण तथा आदर्श हैं, अन्य पात्र भी महाकाव्योचित गरिमा में परिपूर्ण हैं। इसकी शैली बेजोड़ तथा रम्यजनना मार्मिक है।

यह महाकाव्य के 'पौराणिक चरितकाव्य' भेद का प्रतिनिधित्व करता है। मानस के अतिरिक्त हिन्दी में दूसरा पौराणिक चरितमहाकाव्य नहीं दिखाई देता। प्रथम अध्यायोक्त लक्षणों के अनुसार पौराणिक काव्य के लक्षण मानस में पूर्णतया मिलते हैं। इसमें काव्यात्मकता और धार्मिकता का सामंजस्य है। जहाँ एक ओर वैष्णवभक्ति का प्रचार है (यथा 'नाथ भगति भक्ति सुखदायनी' 'भक्ति प्रयच्छ रघु-पुंगव ! निर्भर ! मे आदि) वहाँ दूसरी ओर काव्यप्रतिभा का प्रदर्शन भी। 'वर्णा-नामवंसङ्घानां रसानां छन्दसामपि। मंगलानां च कर्तारो बन्धे बाणी-विनायकी।'—कहने वाले भक्त कवि की काव्य-प्रतिभा असंदिग्ध मानी जानी चाहिए। इसमें चार वक्ता-श्रोताओं की सुसंबद्ध योजना है। शिव-पार्वती, काकभुशुडि-गरुड, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज तथा तुलसी-सन्तगण इसके चार वक्ता-श्रोता हैं। इसका प्रधान रसशान्त (या भक्ति) है, शेष रस अंग है। इसकी आधिकारिक कथा में अवतार मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम का चरित्र निबद्ध है, साथ ही समयानुसार अनेक उपाख्यान भी संक्षिप्त रूप में निबद्ध हैं यथा—मुतीक्षणादि के उपाख्यान। समुद्र-लंघनादि अलौकिक, अतिप्राकृत और अतिमानवीय शक्तियों, कार्यों तथा घटनाओं का समावेश है क्योंकि राम तो 'विधि हरि संभु नचावनहारे' है। हनुमान के शब्दों में उनकी सर्वसाधकता का कथन इस प्रकार किया गया है:—

“ता कहें प्रभु कुछ भयम नहि जा पर तुम धनुकूल।

प्रभु प्रताह बड़बानलहि जाहि सकैं लख तुल ॥” (सुन्दरकाण्ड)
अपने धर्म की प्रशंसा उत्तरकाण्ड तथा अन्य स्थलों पर भी देखी जा सकती है। सूक्तियों का भी प्राचुर्य है। काव्य का माहात्म्य-कथन है। वंशोत्पत्ति, वंशावलि और

स्तुति आदि की योजना है। संक्षेपतः यह सफल पौराणिक चरित-महाकाव्य है।

रामचरितमानस का महत्त्व : 'रामचरितमानस' जहाँ तुलसी की सबसे बड़ी रचना^{११९३} एक हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है^{११९४} वहीं समूची राम-काव्य-परम्परा में अप्रतिम संजीवनदायक एक सुदृढ़ ग्रन्थ है। यही कारण है कि उसके अनेक अनुवाद और अनेक टीकाएँ अब तक हो चुकी हैं और देश-विदेश में उस पर अनेक आलोचनाएँ लिखी गयी एवं लिखी जा रही है।^{११९५} उसका महत्त्व अनेक दृष्टियों से है। वह उच्चकोटि का काव्यग्रन्थ है, आदर्श संस्कृति का सदेशदाता है, दार्शनिक मनन-चिन्तन का स्रोत है, मर्यादा का परम प्रतीक है, लोकमगल की भावना का आगार है, मर्यादा और समन्वय का अभूतपूर्व निदर्शन है तथा भारतीय धर्मप्राण जनता का कण्ठहार है।

'रामचरितमानस' तुलसी की मधुकरी वृत्ति का परिणाम है। वह 'छहो शास्त्र सब ग्रन्थन को रस' है। तुलसीदास ने नाना स्रोतों से कथा के जीवन-कणों को एकत्र करके उन्हें अपने अगाध व्यक्तित्व के सागर में मिलाकर एकरस कर दिया। जीवन-कण अपनी लघु सीमा अथवा निश्चित परिधि का अतिक्रमण करके सागर

११९३. रामनरेश त्रिपाठी : तुलसी और उनका काव्य, पृ० १०६।

११९४. डा० अम्बुनाथसिंह हिन्दी-महाकाव्य का स्वर्ण-विकास।

११९५. डा० रामनरेश त्रिपाठी ने 'तुलसी और उनका काव्य' के पृ० १६१ से १६४ तक 'रामचरितमानस' के इन अनुवादों का उल्लेख किया है :—संस्कृत अनुवाद (बनभद्रप्रसाद शुक्ल द्वारा सम्पादित, स० १९६८, नवनिखिल प्रेस, मखनऊ), गोविन्दगोपालजी-कृष्ण गोविन्द-रामायण एवं खरियार के राजा और विष्णुसिंह, बाबू रामप्रसाद बोंहिरा और पंडित स्वप्नेश्वर दास के द्वारा किये गये उड़िया अनुवाद, श्री मदनमोहन श्रीधरी द्वारा 'त्रिपदी' छन्द में किया गया एवं श्री सतीशचन्द्र शर्म मुक्त द्वारा किया गया बंगला अनुवाद, प० छोटा लाल चन्द्रशंकर शास्त्री का गुजराती अनुवाद एवं एक० एस० पाउज का अंग्रेजी अनुवाद। अनेक टीकाओं के परिचय के लिए देखिए, वही पृ० १६४। १६९। इन टीकाओं का नामोल्लेख मात्र किया जा रहा है—जानी सतसिंह (पंजाबी, श्री दरबार साहब, अमृतसर) की टीका मानन-भाव-प्रकाश, वैजनाथजी कूर्मवशी की टीका, प० शिवलाल पाठक की टीका, श्रीदेवीशर्मा (काण्डविज्ञा) स्वामी की टीका, श्रीमन्महाराज द्विजराज काशीराज ईश्वरीप्रसादनाथयसिंह बरगढ़, जी० सी० आर्ष० की टीका, परमहंस प्रसादमान हंसबाबावनस श्रीजानकीरमणचरण-सरोहराजहंस श्रीगीतारामाय हरिहरप्रसादजी की टीका, मुन्शी मुकदेबलाल (मैनपुर निवासी) की टीका, महन्त श्रीरामचरणदासजी (अयोध्या-निवासी) की टीका, प० रामेश्वर भट्ट की टीका, श्रीरामप्रसादचरण (कनक-भवन, अयोध्या) की टीका, प० बिनायकराम (जबलपुर) की टीका, स्व० बाबू यशमसुन्दरदास, बी० ए० की टीका, प० महावीरप्रसाद मालवीय की टीका, श्रीजनकमुतामरण श्रीतलासहाय साहन्त की टीका। इनके अनिश्चित मोतीसाल बनारसीदास के यहाँ से विजयानन्द त्रिपाठी की टीका भी निकली है।

की असीम गरिमा में पर्यवसित हो गये। नाना पुष्पों से गृहीत रस मधुमक्खी के प्रभाव से मधु बन गया।^{११६६} डा० राजपति दीक्षित के शब्दों में 'तुलसी ने अपनी भक्ति को उत्तरोत्तर दृढ़ करने तथा रामचरित का मर्म समझने के लिए अधिक से अधिक प्राचीन राम-साहित्य-रूप रत्नाकर का भावपूर्वक शोध किया और अपनी सद्ग्राहिता के अनुसार मनोवांछित सारभूत रचनोपकरण-रत्नों को ग्रहण किया और उन्हें अपने दिव्य प्रकाश और मौलिकता की शान पर चढ़ाकर विशेष सुसंस्कृत रूप देकर अपने नूतन राम-साहित्य में सन्निविष्ट किया।^{११६७} 'मानस' तुलसी के गम्भीर अध्ययन का परिणाम है। 'वाल्मीकि-रामायण', 'अध्यात्मरामायण', 'श्रीमद्भागवत', 'प्रसन्नराघव' और 'हनुमन्नाटक' के अनिरिक्त सस्कृत के दो सौ से अधिक ग्रन्थों के श्लोकों को भी चुन-चुनकर उन्होंने उनका रूपान्तर करके 'मानस' में रच दिया है।^{११६८} ऐसे स्थानों पर तो तुलसीदास के मस्तिष्क की महिमा देखते ही बनती है, मानो संस्कृत के दो-ढाई सौ ग्रन्थों के लान्दा श्लोकों पर उनका एक-छत्र सम्प्राद की तरह अधिकार था और वे जिसे जहाँ चाहते थे, उसे वही बुला लेते थे।^{११६९}

'मानस' का काव्य-शिल्प भी उच्चकोटि का है। क्या कथानक, क्या चरित्र, क्या रस-भाव और क्या कलापक्ष, सभी में एक विचित्र संतुलन और मौलिक संयोजन है। 'रामचरितमानस' बृहदाकार रचना ही नहीं, वह सुचिन्तित एवं सुनियोजित रचना भी है।... मन्दिर-निर्माण-कला में जिस प्रकार तोरण-द्वार, अर्द्धमण्डप, मण्डप, अन्तराल और गर्भगृह की योजना होती है और गर्भगृह के देवपीठ के ठीक ऊपर आमलक पर कलश की स्थापना रहती है, उसी प्रकार का सुयोजित वास्तु-वैभव में मानस में मिलेगा।^{११७०} 'मानस' में तुलसी की सन्दर्भ-कला चरमकोटि की है। डा० राजपति दीक्षित के शब्दों में—“वे (तुलसी) ऐसे शिरमौर कविरूप

११६६. श्रीधरामहः मानस का काव्यशिल्प, पृ० २२७।

११६७ डा० राजपति दीक्षित. तुलसीदास और उनका युग, पृ० ३४६।

११६८ कुछ उदाहरण 'नूतनी और उनका काव्य' के पृ० १२४-१४९ पर श्रीरामनरेश त्रिपाठी ने दिये हैं। पृ० १४९ पर ग्रन्थों के कुछ नाम भी दिये हैं यथा—अग्निपुराण, अद्भुत रामायण, अग्निज्ञानसाकुन्तल, आनन्द-वृन्दावन, कथा-सरित्सागर, कामन्दकीय-नीतिसार, किरा-तार्जुनीय, मांगनीविव, वाणक्य-नीति, नक्षत्रम्, नाटक-वचरत्न, नैषध, चारामर-स्मृति, पुण्य-सूक्त, चाराम-पुराण, चरित्र-सहित, ब्रह्मांडपुराण, बालरामायण, विदग्धमुक्तावली, मत्स्यपुराण महाविर्माणित्य, महावीरचरित, महिम्नस्तोत्र, याज्ञवल्क्यस्मृति, छद्मामल, वामनपुराण, शिव-पुराण, शिशुपालवध, स्कन्दपुराण, श्रुतबोध, हरिवंशपुराण, हारीतस्मृति आदि।

११६९. रामनरेश त्रिपाठी : तुलसी और उनका काव्य, पृ० १२४।

११७०. डा० रामरत्न भट्टनागर : मध्ययुगीन वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास, पृ० १२९।

पट्टहार हैं जिन्होंने अपने कौशल से विविध कथास्वरूप भौक्तिकों का ऐसा अनूठा संग्रहण किया है किया है कि उनके अपूर्व संयोग से अनर्घ 'मानस' रूप हार निर्मित हो गया।^{११७१} मानस के उपक्रम में नवीनता और प्रीति है जिसके कारण राम-साहित्य में इसका अत्यन्त मौलिक योगदान है। इसके उपक्रम के विषय में डा० राजपति दीक्षित के शब्द द्रष्टव्य हैं—'यद्यपि प्राचीन रामायणों का प्रभाव 'मानस' पर किसी न किसी प्रकार अवश्य पड़ा है तथापि 'मानस' के उपक्रम की विशेषता किसी रामायण या अन्य आर्ष ग्रन्थ में नहीं मिलती। इसकी प्रमुख नवीनता इस बात में है कि इसमें महाकाव्योचित उपक्रम के विधान के साथ भक्ति-तत्त्वों का ऐसा कलात्मक संग्रहण किया गया है कि उपक्रम की समाप्ति के पश्चात् पाठक अनायास ही अपने समक्ष महाकाव्य एवं भक्ति दोनों का एक ही द्वार उद्घाटित देखता है।'^{११७२} इसके अनिरुद्ध वर्ण-अर्थ-रस-छन्द आदि का सौष्ठव तो दर्शनीय है ही।

'रामचरितमानस' के सदृश आदर्श भारतीय संस्कृति का सदेश देने वाला और कोई ग्रन्थ राम-काव्य-परम्परा में नहीं दिखाई देता। मैक्फी के अनुसार 'हिन्दुओं के धार्मिक सिद्धान्तों और उनकी संस्कृति का सर्वोच्च सुन्दर चित्र जैसा रामायण में मिलता है वैसा शायद अन्यत्र किसी ग्रन्थ में न होगा।' प्रत्येक चरित्र आदर्श प्रस्तुत करता दिखाई देता है। एक अव्यवस्थित और कुनीतिपूर्ण समाज में उत्पन्न होकर तुलसी ने उसे सुव्यवस्थित और सुनीतिपूर्ण बनाने के लिये मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र के चरित्र का गुणगान किया एवं रामराज्य की कल्पना करके समाज के समक्ष एक उदात्त आदर्श प्रस्तुत किया। यदि कोई व्यक्ति भारतीय संस्कृति के आदर्श रूप का एक ही स्थान पर अध्ययन करना चाहता है तो उसे 'मानस' का मनन कर लेना चाहिए।

'मानस' का महत्त्व इस दृष्टि से भी है कि यह लोक-हृदय का काव्य है। इसमें लोक की भाषा है, लोक की संस्कृति है और लोक-मंगल की भावना है। डा० रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में—'रामचरितमानस आदि से अन्त तक माधुर्य से ओतप्रोत है। हर एक प्रकार की सुख रखने वालों के लिए उसमें यथेष्ट सामग्री है। एक लम्बे मार्ग में कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ पथिक को दूर तक शान्ति की छाया न मिले, व्यास से व्याकुल होना पड़े। रास्ते भर मधुर सोते प्रवाहित हैं, सद्चिचारों की शीतल छाया वर्तमान है। 'मानस' को बार-बार पढ़ने से भी जी नहीं ऊबता। जिस प्रकार हम चन्द्रमा को लाखों बरसों से देखते आ

११७१. तुलसीदास और उनका युग, पृ० ३४७

११७२. वही, पृ० ३४७-३४८।

रहे हैं, पर जब उसे देखते हैं तभी वह नवीन लगता है और कभी बासी नहीं लगता इसी प्रकार 'मानस' को चाहे जितनी बार पढ़िए, उसमें जो नहीं उचटता। उसका कारण यह है कि तुलसीदास ने जो कुछ लिखा है, उसमें हमारे निर्य-
नैमित्तिक जीवन का प्रतिबिम्ब है। इससे हम उसे अपना समझ कर पढ़ते हैं और बार-बार उसका रस लेकर भी तृप्त नहीं होते।^{११०१} उत्तर प्रदेश और बिहार में 'मानस' इतना लोकप्रिय काव्य है कि उसकी बहुत-सी चौपाइयाँ और दोहे कहावतों में स्थान पा चुके हैं शिक्षित और अशिक्षित नागरिक और ग्रामीण सभी श्रेणियों के लोग बिना किसी प्रयास के उनका प्रयोग साधारण बोलचाल में किया करते हैं।^{११०२} इस प्रकार की लोक-हृदय रञ्जनी कुछ सूक्तियाँ प्रस्तुत है :

'परहित सरिस धरम नहि भाई। पर पीडा सम नहि अधमाई॥'

'जहाँ मुमति तहँ सम्पति नाना। जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना॥'

'धिनु सतोष न काम नसाही। काम अछत मुख सपनेहुँ नाही॥'

'निज सुख बिन मन हाँइ कि धीरा। परस कि होई बिहीन समीरा॥'

'परद्रोही कि होई निहसंका। कामी पुनि कि रहइ अकलका॥'

'बायस पालिय अति अनुरागा। होइ निरामिय कबहुँ कि कागा॥'

'साधु चरित सुभ सरिस कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू॥'

'को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मते चनुराई॥'

'बढ़ भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग अनि देहि बिधाना॥'

'राकापति षोडश उर्बाहि, तारागन समुदाय।

सकल गिरिन्ह दव लाइये, रवि बिन राति न जाय॥' आदि

'रामचरितमानस' का महत्त्व उसके लोकविश्रुत समन्वय की दृष्टि से भी बहुत है। पारस्परिक वैमनस्य के युग में लड़खड़ाते हुए हिन्दू-जीवन को समन्वय भावना के द्वारा स्थायित्व प्रदान करने के हेतु तुलसी ने जो प्रयत्न किया है वह वस्तुतः अविस्मरणीय है। उनकी दस समन्वय-बुद्धि के विषय में डा० हजारि-प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं:—'तुलसीदास के काव्य की सफलता का एक और रहस्य उनकी अपूर्व समन्वय-शक्ति में है। उन्हें लोक और शास्त्र दोनों का बहुत व्यापक ज्ञान प्राप्त था। उनके काव्य-ग्रन्थों में जहाँ लोक-विधियों के सूक्ष्म अध्ययन का प्रमाण मिलता है, वही शास्त्रों के गम्भीर अध्ययन का भी परिचय मिलता है लोक और शास्त्र के इस व्यापक ज्ञान ने उन्हें अभूतपूर्व सफलता दी। उसमें केवल लोक और शास्त्र का समन्वय ही नहीं है, वैराग्य और गार्हस्थ्य का, भक्ति

११०३. तुलसी और उनके काव्य, पृ० १४९।

११०४. तुलसी और उनके काव्य, पृ० १५८।

और ज्ञान का, भाषा और संस्कृत का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का, भावावेग और अनासक्त चिन्तन का, ब्राह्मण और चाण्डाल का, पण्डित और अपण्डित का समन्वय 'रामचरितमानस' के आदि से अन्त तक दो छोरों पर जाने वाली परा-कोटियों को मिलाने का प्रयत्न है।^{११७५} हिन्दी-साहित्य कोश में मानस का महत्त्व निर्धारण करते हुए अन्वर्थ ही लिखा गया है:—“ 'रामचरितमानस' की अद्वितीय लोकप्रियता तथा चिरस्थायी प्रभाव को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर भारत के सांस्कृतिक तथा धार्मिक इतिहास में विक्रम संवत् की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना 'रामचरितमानस' की रचना ही है। इतना तो निश्चित है कि किसी भी देश में ऐसा कोई भी काव्यग्रन्थ नहीं मिलता जो 'रामचरितमानस' की भाँति शताब्दियों तक जनता का जीवन अनुप्राणित करने में समर्थ हुआ हो। इस सामर्थ्य का रहस्य यह है कि तुलसीदास की प्रतिभा ने 'रामचरितमानस' में काव्य-सौन्दर्य, भक्ति तथा लोक-संग्रह का अपूर्व समन्वय किया है। मानव-हृदय को मोहित करने की शक्ति रामकथामात्र में पहले से ही विद्यमान थी, तुलसीदास ने इस कथानक को इस कौशल से प्रस्तुत किया है कि कथा-प्रवाह, मार्मिक स्थलों की पहचान, मर्यादित शृंगार, पात्रानुकूल भाषा एवं चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'रामचरितमानस' हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ काव्य ग्रन्थ माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त इसमें दास्यभक्ति का दिव्य रूप प्रतिपादित किया गया है। उपास्य राम का शील, सकोच और सहृदयता मनुष्यमात्र को आकर्षित करने में समर्थ है, किन्तु तुलसी ऐश्वर्यबोध इस प्रकार बनाये रखते हैं कि भक्तों में श्रद्धा का भाव प्रधान ही रह जाता है। साथ-साथ लोक-संग्रह का ध्यान रखकर तुलसी समस्त मानव जीवन का आदर्श प्रस्तुत करते हुए पारिवारिक तथा सामाजिक कर्तव्यों का इतना प्रभावशाली चित्रण प्रस्तुत करते हैं कि 'रामचरितमानस' उत्तर भारत का नैतिक मेरुदण्ड सिद्ध हुआ है।”^{११७६}

पद्मपुराण और रामचरितमानस

पद्मपुराण और रामचरितमानस—दोनों ही अनादि काल से प्रवाहित होने वाली रामकथा-मन्दार्कनी के दो सुन्दर तीर्थों के रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत होते हैं। यदि एक जैन धर्मावलम्बियों के लिए आदरणीय धर्म-ग्रन्थ है तो दूसरा प्रत्येक

११७५. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी - “मफनता का रहस्य”। राधाकृष्ण-मूल्यांकन-ग्रन्थ-माला में, डा० उदयभानुसिंह द्वारा सम्पादित 'तुलसीदास' के पृष्ठ २१७ पर।

११७६. हिन्दी-साहित्य-कोश, भाग १, पृ० ९७५।

भक्तिमार्गी के लिए माननीय भक्ति-ग्रन्थ; यदि एक जैन धर्म का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संस्कृत काव्य-ग्रन्थ है तो दूसरा हिन्दू-धर्म का सर्वप्रधान हिन्दी-काव्य-ग्रन्थ। दोनों अपने युग की परिस्थितियों की उपज हैं। रविर्षेण ने पद्मपुराण की रचना जिन परिस्थितियों में की थी उनका उल्लेख प्रस्तुत ग्रन्थ के तृतीय अध्याय में किया जा चुका है। यहाँ तुलसी के समय की परिस्थितियों का उल्लेख करके दोनों की परिस्थितियों का तुलनात्मक विवेचन किया जा रहा है।

तुलसीकालीन राजनीतिक परिस्थिति अच्छी नहीं थी। गोरवामी तुलसीदास जी का प्रादुर्भाव-काल १५वीं श० ई० का अन्त अथवा १६वीं श० ई० का प्रारम्भ था। भारतीय इतिहास के अनुसार उस समय पठानों (लोदीवंश) के पर लडखड़ा चुके थे और मुगलों का भारतीय शासन-क्षेत्र में पदार्पण हो चुका था। मुगल साम्राज्य के बीजारोपण के समय दिल्ली का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो चुका था; बड़े-बड़े सूबों में पृथक्-पृथक् राजा थे; छोटे-छोटे जिले—यहाँ तक कि प्रत्येक शहर या किले का स्वामित्व किसी बड़े सरदार या घगने के हाथों में था। उनके ऊपर कोई अधिकारी नहीं था। यह छोटे-छोटे राजाओं, मुल्क-अतबैफ़ या कार्यकारी अधिकारियों (फ़ैशन किंग्ज) का समय था।^{११००} १५२६ ई० में बाबर ने टोलाहीम लोदी को परास्त किया।^{११०१} और पर्याप्त सघर्ष के फलस्वरूप १५३० ई० तक दिल्ली पर शासन किया। उसके बाद हुमायूँ का और सन् १५५६ से १६०५ तक अकबर का राज्यकाल रहा। हुमायूँ को राजपूतों से कड़ा लोहा लेना पड़ा, फिर भी उसे शान्ति न मिली। वस्तुतः मुगल-साम्राज्य का स्वर्णयुग अकबर का शासन-काल ही था। अकबर को ही मुगल-साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक एवं सघटनकर्त्ता कहा जा सकता है। उसके विषय में भी यह नहीं मूलना चाहिए कि उसे भी हिन्दुस्तान को अपने आधिपत्य में लाने के लिए बीस वर्ष तक भीषण सघर्ष करना पड़ा। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी मृत्यु के समय तक उसका प्रयास सब प्रकार से पूर्ण हो चुका था।^{११०२} उसका अधिकांश जीवन पठानों, राजपूतों, मरहटों, दक्षिण के तैमूर और कन्नड़ नायकों, गांडों तथा बंगालियों से युद्ध करते हुए व्यतीत हुआ। किन्तु अकबर का प्रयास अधिकांश सफल रहा। कितने ही राजाओं ने उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। सन् १५६२ में ही आमेर के राजा बिहारीमल ने नवीन सम्राट् के दरबार में पधारकर अत्यन्त हर्ष प्रकट करते हुए अपनी भेंट उपस्थित की

११००. डा० स्टेनली लेनपूल : मिडीयल इण्डिया अण्डर मुहमडेन रून, पृ० १८१।

११०१. स्मिथ : अकबर—दी ग्रेट मुगल, पृ० ११।

११०२. स्टेनली लेनपूल : पृ० २३८।

थी। सम्राट् ने उनका कन्यारत्न सहर्ष ग्रहण किया।^{११८०} इसके पूर्व भी अकबर रुक्मा तथा सलीमा से विवाह कर चुका था। ये दोनों भी राजपूत सलनाएँ थीं।^{११८१} अकबर का हरम और भी कितनी ही हिन्दू नारियों से भरा था।^{११८२} अकबर के ही नहीं, जहाँगीर के हरम में भी राजा उदयसिंह, बीकानेर के राजा, राय रायसिंह, राजा मानसिंह के ज्येष्ठ पुत्र, जगतसिंह और रामचन्द्र बुन्देला आदि की बेटियाँ पहुँच गयी थीं।^{११८३} इससे स्पष्ट है कि हिन्दुओं की विषयता उस समय परिस्थितियों के कंसे चक्र में पड़ी हुई थी। राजाओं में अपवाद-स्वरूप महाराणा प्रताप जैसे देश-धर्म पर मर मिटने वाले विरल ही थे।

राजाओं का क्षत्रियत्व जिलुप्त होने लगा था एवं हिन्दू-राजाओं तथा प्रजा का पतन होने लगा था। अनुकरण और व्यक्तिगत सुख-विलास को ही सब कुछ मान लेने वाले अधवा शक्तिहीन होकर पराधीनता स्वीकार कर लेने वाले हिन्दू शासकों में आत्मभिमान के स्थान पर विलासिता ने घर कर लिया था। प्राचीन हिन्दू राजाओं की प्रजावत्सलता उनके आचार-विचार, उनकी धर्मनिष्ठा आदि के उदात्त सिद्धान्त लुप्त हो चले थे।

राजकीय परिवर्तनों के इस काल में अधिकार-लिप्ता तथा प्राप्त शक्ति के दुरुपयोग के फलस्वरूप न कोई नियम रह गया था, न मान-भर्यादा का कोई मूल्य ही था। शासन का प्राप्ति करने के लिए परस्पर लड़ाई-झगड़े उस युग की विशेषता थी। क्या राजा, क्या प्रजा—सभी का जीवन स्थिरता और सुरक्षा से होन था। उस समय कुछ भी स्थायी न था।^{११८४} ऐसी अधिकार लिप्ता और मार-काट की स्थिति में जन-कल्याण की बात भला किसे सूझती? स्वयं मुगलों का शासन सैनिक-शासन के रूप में चल रहा था। वह प्रजा के प्रति किसी प्रकार का नैतिक उत्तरदायित्व स्वीकार नहीं करता था। शासन का लक्ष्य सकीर्ण और भौतिक था। स्मिथ और मूरलेण्ड जैसे इतिहासकारों ने यह स्वीकार किया है कि पठानों और जहाँगीर के काल में लोगों को कठोर दण्ड दिया जाता था और उनका सिर उतार लेना, उन्हें फाँसी चढ़ा देना या उनकी खाल चिचवाकर उन्हें मरवा देना प्रायः साधारण बात हो गयी थी।

डा० भगीरथ मिश्र के शब्दों में तत्कालीन 'राजनीतिक परिस्थिति की

११८०. वही, पृ० २४१।

११८१. वही, पृ० २४१।

११८२. रामचरित दीक्षित : कुलमीवास और उनका युग, पृ० २।

११८३. प्रो० बेनीप्रसाद : 'हिस्ट्री ऑफ़ जहाँगीर', पृ० ३०।

११८४. मूरलेण्ड : 'जहाँगीरस इण्डिया', पृ० ५६।

विशेषताओं का संक्षिप्त निर्देश इस प्रकार से किया जा सकता है—

- (१) राजकीय परिवर्तन बड़ी शीघ्रता से चल रहे थे।
- (२) इस राज्य परिवर्तन में अधिकांश अधिकारलिप्ता और शक्ति ही प्रेरक थी। कोई नियम मर्यादा या आदर्श विद्यमान न थे। भतीजा चचा का, पिता पुत्र का और भाई भाई का वध कर या बन्दी कर राज्य पर अपना अधिकार जमा लेता था।
- (३) राजा और शासक प्रायः अशिक्षित, अहम्मन्य विलासी और क्रूर थे। शासन को अपने अधिकार में रखने की ओर वे अधिक मचेन थे, जन-कल्याण की ओर नहीं।
- (४) अकबर के पूर्ववर्ती राजाओं के अस्त-व्यस्त और अव्यवस्थित शासनकाल में कोई भी सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति न हुई थी।^{१८१}

उपर्युक्त बातों का तुलसी के 'मानस' पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनके मन में प्रतिक्रियास्वरूप भारतीय रघुवंशी राजाओं—जो अत्यन्त प्रजावत्सल, त्यागी, वीर और गुणसम्पन्न थे—का आदर्श शासन जागृत हुआ। अतः इन परस्पर लड़ते-भगड़ते और अपने मंग-सम्बन्धियों का रक्त बहाते राजाओं के सम्मुख उन्होंने राम के परिवार का आदर्श रखा, जहाँ पिता की आज्ञा-वश एक राज्य का अधिकारी पुत्र वनवास ग्रहण करता है और उसी का दूसरा भाई वध-मर्यादा और भ्रातृप्रेम का पालन करता हुआ राज्य को ठुकरा देता है और बड़े भाई के आने तक केवल उसे घरोहर रूप में रखता है। इस आदर्श को सामने रखकर उन्होंने अपने युग में रामराज्य की स्थापना करनी चाही। रामराज्य की उच्च धारणा रखने वाले तुलसी को तत्कालीन राजाओं की अधिष्ठा और क्रूरता कितनी खटकती थी, यह उनके स्वीकृत भरे शब्दों में प्रकट है—

“नृप पाप परायण धर्म नहीं। करि वण्ड बिडम्ब प्रजा नित ही ॥”

अथवा

“गोड, गँवार नृपाल कनि, यवन महा महिपान।

माम न दाम न भेद कनि, केवल दण्ड करान ॥” (मानस)

रविवेण और तुलसी के समय की राजनीतिक परिस्थितियों का अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों कवि ऐसे काल में हुए हैं जिसके पहले और बाद में अन्धकार रहा। हर्ष से पहले कोई ऐसा प्रतापी राजा रविवेण के काल में नहीं था और अकबर से पहले तुलसी के काल में। हर्ष के बाद भारत में

एक अराजकता सी फैल गयी और अकबर के बाद भी मुगल-साम्राज्य की नींव हिलने लगी। रविषेण और तुलसी दोनों ही कवियों के काल में प्रतापी राजा हुए। हर्ष के बाद सम्राट्-पद की योग्यता धारण करने वाला अकबर ही कहा जा सकता है।

किन्तु रविषेण का काल तुलसी के काल से कहीं अधिक सम्पन्न था। उनके समय में भारतीय राजा शासक थे जब कि तुलसी के समय में विदेशी राजा भारत के शासक थे। रविषेण के समय में भारतीय राजा स्वतन्त्र थे किन्तु तुलसी के समय में प्रायः विवश और परतन्त्र। रविषेण के काल में अत्याचार और अव्यवस्था उतनी नहीं थी जितनी तुलसी के काल में। यही कारण है कि जहाँ रविषेण पर तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थ प्रभाव अधिक पड़ा है वहाँ तुलसी पर पड़ा प्रभाव आदर्श को जन्म देता है।

तुलसी के काल की सामाजिक स्थिति मुगल काल की सामाजिक परिस्थिति ही है। मुगल-काल में हमारे देश में एक महान परिवर्तन हुआ था। फल-स्वरूप देश की सभी परिस्थितियाँ एकदम बदल गयी थी। उस समय समाज का ढाँचा कुछ और था तथा व्यावहारिक स्थिति कुछ भिन्न थी। वर्ण-व्यवस्था तो तुलसी के युग में थी परन्तु प्रत्येक वर्ण अपने कर्त्तव्य भूल चुका था। ऊँच-नीच का भेद-भाव खूब चलता था। यद्यपि आश्रमों की व्यवस्था नहीं थी फिर भी साधु-सन्त्यासियों और योगियों का आदर होता था। ब्राह्मणों ने अपने मुख्य कर्त्तव्यों के अतिरिक्त अन्य पेशे मुख्य रूप से अपना लिये थे। वे पाण्डित्य तक करने लगे थे। नित्य-कर्म तक नहीं करते थे। क्षत्रियों का भी यही हाल था। उनमें जाति-अभिमान और बीरता शोध नहीं थी। राजा होकर भी वे प्रजा का चूसते थे। वैश्य लोभी हो गये थे। उन्हें अपने धन के सामने देश तथा धर्म की भी चिन्ता नहीं रह गयी थी। शूद्रों का तो अभिमान इतना प्रबल हो चला था कि वे अकारण ब्राह्मणों की निन्दा करने लगे थे। इस प्रकार चारों वर्णों की दशा शोचनीय थी।

पारिवारिक जीवन में भी केवल दिखावे के लिए ही मर्यादा रह गयी थी। स्त्रियों के लिए परिवार में अनेक बन्धन थे, स्वतन्त्रता उन्हें बिल्कुल नहीं थी। वे पुरुष के आश्रित रहती थी। मुगलों और पठानों की कामुकता एवं मौढ्यपिपामा ने स्त्रियों को एक वासनात्मक आकर्षण एवं विलासात्मक महत्त्व दे रखा था। जनसाधारण में तो नहीं परन्तु अभिजात वर्गों में बहुपत्नी की प्रथा भी थी। अकबर और जहाँगीर के दरबारों में तो सैकड़ों और हजारों की संख्या में सुन्दरियाँ थी। अन्य अधिकारी वर्ग भी अनेक स्त्रियाँ रखने में गौरव का अनुभव करते थे। इससे विलासिता का ही अनुमान होता है। जब शासक ही विलासी और धनप्रिय हो

तो प्रजा का क्या हाल रहा होगा ? यह सोचना कठिन नहीं है ।

समाज में ऐसे व्यक्ति कम थे जो सुखपूर्वक अपना निर्वाह करते थे । उनमें केवल राजाओं या बादशाहों के कुछ कृपापात्र ही कहें जा सकते हैं । शेष जनता निर्धन और उत्साहहीन थी । प्रायः प्रत्येक मनुष्य का परिश्रम राजाओं अथवा अधिकारीवर्ग के विलास की सामग्री जुटाने में ही लगता था । साधारण मनुष्य का जीवन सदैव आतंक, दुर्दशा और घन के अभाव में ही बीतता था । कृषि के साधनों की कमी थी । इसी कारण उर्वरा होते हुए भी भूमि से उपज कम होती थी । मूरलैण्ड ने 'जहाँगीर इण्डिया' के अनुवाद में लिखा है कि किसानों को यदि मिर्चाई आदि के साधन मिल जाते तो उस समय उनकी पैदावार लगभग दुगुनी हो सकती थी । वास्तविकता यह थी कि उन दिनों बादशाहों को लूट-खसोट और बेगार आदि लेने की अधिक लालसा रहती थी । वे किसानों की दशा की ओर कम ध्यान देते थे । उधर धनिक-वर्ग भी अपना जीवन प्रमोद में बिताता था । किसान और दूसरे साधारण मनुष्य के लिए तो केवल दुःख और अभाव ही रह गये थे, इसी कारण समाज में दरिद्रता, आचरणहीनता, आत्मविश्वास का अभाव, जीवन के प्रति वैराग्य और अतिशय दुर्दशानुभूति आदि आ गये थे ।

यद्यपि पूर्ववर्ती शासन से अपेक्षाकृत अकबर का शासन अच्छा था फिर भी वह सन्तोषजनक नहीं था उस समय कई बार दुर्भिक्ष पड़े थे । देश में हाहाकार मच गया था । सन् १५५६ और १५७३-७४ में जो भयानक अकाल पड़े थे उनकी स्मृति से भी हृदय कांपने लगता है ।^{१९८९} इस समय मनुष्य-मनुष्य तक को खाने लगा था ।^{१९९०} चारो ओर सूना ही सूना दिखाई देता था । शासकों को क्या पड़ी थी कि वे ऐसे अकाल या महामारी के समय अपनी प्रजा की रक्षा करते । अबुल-

११८६. दे० इनिशट एण्ड डीमन ; हिस्ट्री आफ इन्डिया एण्ड टाउन्ड बाइ इदम जॉन हिस्टो-रियन्स भाग ५ में पृ० ६८६ पर उद्धृत 'लवकान' ।

इसी प्रकार १५५८ में ३-४ मास तक एक अकाल पड़ा जिसका उल्लेख इमृन-फात्रन ने अपनी फारसी की पुस्तक 'अकबरनामा' में पृ० ६९५ पर म किया है ।

(डा० एम० एम० कुलथेण्ट डेवलयमेण्ट आफ ट्रेड एण्ड इण्डस्ट्री अण्डर को मुगल १५२६-१७०७ से उद्धृत)

११८७. दे० रेंकिंग ; बदायूनी का अंगरेजी अनुवाद पृ० ५४०-५५१ । इनिशट . बान्बूम ५, पृ० ६९०-४९१ ।

डा० एस० एस० कुलथेण्ट : डेवलयमेण्ट आफ ट्रेड एण्ड इण्डस्ट्री अण्डर दी मुगल्स (१५२६ १७०७ ई०) पृ० ३२ ।

फजल ने 'आइने-अकबरी'^{११८८} में इन दुर्भिक्षों का संक्षेप में वर्णन कर दिया है। इन विपत्तियों को तो दैविक कहकर ही शासक लोग बात ढाल देते थे।

समाज की मर्यादा भी एक-दम छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। कोई किसी की नहीं सुनता था। किसान को खेती के साधन प्राप्त नहीं थे तो भिखारी को भीख नहीं मिलती थी। वणिक् के लिए व्यापार नहीं थे तो नौकर को नौकरी नहीं थी। सभी लोग अपनी-अपनी जीविका के लिए चिन्तित थे। एक दूसरे से यही कहते थे कि क्या करें कहाँ जाएँ? दरिद्रता-रूपी रावण ने सभी को दबा रखा था। कुछ लोग शाही नौकरी की तलाश करने लगे थे। इस प्रकार दाम-वृत्ति धीरे-धीरे अपना प्रभाव दिखाने लगी थी।

१७ वें शतक के उत्तरार्द्ध में मुंशीगिरि में हिन्दुओं की संख्या खूब बढ़ी। टोडरमल ने ऐलान किया था कि सभी मरकारी काम फारसी में किया जाय। फलस्वरूप सभी हिन्दू कर्मचारियों को फारसी सीखनी पड़ी। १७ वे शतक में कितने ही सामन्त और राजा अपने फारसी पत्र लिखवाने के लिए हिन्दू मुणियों को रखते थे और इस प्रकार उनकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी।^{११८९} हरकरन इतबारखानी (मन् १६२४ के बाद) प्रसिद्ध मुंशी, जिनका उपनाम चन्द्रमान था, जाति के ब्राह्मण थे।^{११९०} फारसी इन दिनों जीविकोपार्जन का उसी प्रकार साधन थी जिस प्रकार अंग्रेजों के शासन काल में अंग्रेजी।

प्रत्येक सामन्त की मृत्यु पर उसकी सम्पत्ति हड़प लेने की प्रथा के कारण न जाने कितने हिन्दुओं का उच्छेद हो रहा था। सरदार के मरते ही उसकी भूमि शासक की हो जाती थी और उसका फल यह होता था कि अनेकानेक परिवार अनाथ हो जाते थे। उन्हें भीख माँगने के अतिरिक्त और कोई मार्ग न सूझता था।^{११९१} सरदार के जीवनकाल में भी भूमि-अपहरण प्रणाली का समाज-घातक परिणाम होता था। सरदार लोग गुलछरें उड़ाते और नैतिक पतन के गर्त में गिरते थे। वे यही सोचते थे कि हमारे बाद जब हमारे परिवार को कुछ मिलना ही नहीं है तो उसे हम ही क्यों न उड़ा लें। इसी धारणा के कारण इस प्रथा ने देश के अनेक परिवारों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

११८८ डा० एस० एस० कुलथेप्ट ने अपने ग्रंथ 'इवलपमेण्ट आफ़ ट्रेड एंड इण्डस्ट्री अण्डर द मोगल (१५२६-१७०७ ई०)' के पृ० ३२ पर 'आइने अकबरी' का मूल पाठ अंगरेजी अनुबाव के साथ दिया है।

११८९. सरयधुनाथ सरकार : मुगल ऐडमिनिस्ट्रेशन, पृ० २२७।

११९०. वही, पृ० २२८।

११९१. वही, पृ० १६४।

किसानों से लगान बसूल करने वाले कर्मचारी उन्हें लूटा करते थे। कितने ही अन्यायपूर्ण कर लगाये गये थे जिन्हें देते-देते किसान तंग आ गये थे। उधर अकाल और महामारी भी थे। फलस्वरूप कितने ही लोग अन्न के बिना तड़प कर मर जाते थे।^{११९२} जहाँगीर के काल में सन् १६१६ से १६२४ तक महामारी का भयानक प्रकोप रहा था।^{११९३} यह लाहौर से चली थी और सरहिन्द, दिल्ली आदि होती हुई अन्तर्वेद तक पहुँची थी।

इस प्रकार तुलसी के युग की सामाजिक परिस्थिति अत्यन्त भयानक एवं निराशापूर्ण थी, यद्यपि बाद में कुछ सुधार होने लगा था। हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के त्यौहारों को आनन्दपूर्वक मनाने लगे थे।^{११९४} भारतीय भाषाओं ने अरबी-फारसी के शब्द भी अपना लिये थे। मुगल-साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् समाज को कुछ शान्ति अवश्य मिली थी परन्तु तुलसी तो राम-राज्य चाहते थे। उसकी वहाँ झलक भी कहाँ थी ?

बहिःसाध्य के आधार पर रविषेण और तुलसी के समय की सामाजिक परिस्थितियों का उपयुक्त विवेचन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि रविषेण के समय सामाजिक स्थिति अपेक्षाकृत कहीं अच्छी थी। न तो इस समय भारतीय समाज विदेशियों से शासित था और न यहाँ भुखमरी आदि आपत्तियाँ थी। रविषेण के काल में चारों वर्ण ठीक काम कर रहे थे जबकि तुलसी के काल में चारों संकट में थे। पहले के काल में स्त्रियों का सम्मान था, दूसरे के काल में वे विवश और परवश थी। पहले का युग समृद्धि का युग था, दूसरे का मकट का। इसीलिए पहले ने सम्पन्न समाज को देखकर एक प्रौढ साहित्यिक ग्रन्थ की रचना की और दूसरे ने विपन्न समाज को देखकर लोक-रक्षक भगवान् का चरित गाया !

तुलसीकालीन धार्मिक परिस्थिति का परिचय प्राप्त करने के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि हम उससे पूर्ववर्ती परिस्थितियों को भली-भाँति समझ लें क्योंकि मुगलकालीन धार्मिक परिस्थितियों का मूल बहुत पूर्व का ठहरता है। गोस्वामी जी से पूर्व, देश के उत्तरी एवं दक्षिणी भागों की धार्मिक परिस्थितियाँ भिन्न थी। इसका कारण कुछ राजनीतिक हलचलों को माना जा सकता है। दक्षिण भाग एक तो विदेशियों के आक्रमणों से मुक्त रहा है, दूसरे उस भाग की जनता को एक धार्मिक परम्परा सहज ही प्राप्त हो गयी है।

११९२ हिस्ट्री ऑफ़ जहाँगीर, पृ० १२३।

११९३. वही, पृ० २१४। स्मिथः अकबर दी ग्रेट मुगल, पृ० ३९।

११९४. हिस्ट्री ऑफ़ जहाँगीर, पृ० १००।

वैदिक ज्ञान, उपासना और कर्मकाण्ड आदि में ही वाद की सब धार्मिक परम्पराएँ चली थी। उपनिषद् और वेदान्त ज्ञान और चिन्तन की उत्कृष्ट अवस्था के ही स्रोतक हैं। इसका वास्तविक रूप हम शंकराचार्य के माध्य में देखते हैं। यज्ञों के बलि-विधान के विरुद्ध ही बौद्ध और जैन आदि धर्म खड़े हुए थे। वर्णाश्रम-व्यवस्था के कारण अभिजात वर्ग के लोग निम्न जानियों से घृणा करने लगे थे। इसी कारण बौद्ध आदि धर्मों की ओर नीची श्रेणी के लोग अधिक आकृष्ट हुए। मनुष्य मात्र की समता का सिद्धान्त सबको अच्छा लगना ही था। इसी का प्रतिपादन शंकराचार्य के वेदान्त में भी मिलता है, परन्तु उनके इस मायावाद या अद्वैतवाद में जन साधारण के लिए भक्ति या उपासना को अवकाश नहीं था। दक्षिण में उपासना पर ही अधिक बल दिया जाता था। फलस्वरूप दक्षिण में शंकराचार्य के सिद्धान्त का विरोध खड़ा हुआ। शंकर के अद्वैतवाद को वहाँ नागार्जुन का शून्यवाद ही बताया गया और उन्हें एक प्रकार से 'प्रच्छन्न बौद्ध' बताया गया। यद्यपि चिन्तन के क्षेत्र में अद्वैतवाद सर्वोपरि माना गया परन्तु भाव-क्षेत्र के लिए वह कोई सामग्री न दे सका। उसमें व्यावहारिकता और दैनिक उपयोगिता की कमी थी। अतः उसकी प्रतिक्रियास्वरूप वेदान्त-सूत्रों की व्याख्याएँ अनेक विद्वानों ने कीं। रामानुजाचार्य, विष्णुस्वामी, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य और बल्लभाचार्य आदि दार्शनिक लोक-भवतो ने लोक-जीवन के उपयुक्त उनकी व्याख्याएँ प्रस्तुत की जिनमें यथासम्भव प्रचलित लोक-व्यवस्था से पूरा-पूरा मेल-जोल बैठाया गया। इस प्रकार भक्ति की एक सुदृढ़ दार्शनिक पृष्ठभूमि बन गयी थी। दक्षिण की इस भक्ति का प्रचार आगे चलकर उत्तर भारत में भी हुआ। उत्तर भारत के भक्ति-प्रचारकों में तुलसीदास भी एक थे।

उत्तर भारत की धार्मिक परम्पराएँ दक्षिण से कुछ भिन्न थी। दक्षिण में न तो बौद्धधर्म का प्रभाव था और न इस्लाम की ही पहुँच थी। इस कारण वहाँ की परम्पराओं के अनुसार धर्म प्रगति कर रहा था, परन्तु उत्तर भारत में बौद्ध-धर्म और इस्लाम की अड़चनें विद्यमान थी। बौद्ध-धर्म के साथ ही जैन-धर्म भी अनेक शाखाओं में बँट गया था। दोनों में ही साधना और सदाचार की कमियाँ आ चुकी थी। फिर भी इन दोनों में समता का भाव एक आकर्षण की वस्तु थी। फलस्वरूप योगमार्गी साधकों ने इनकी कुछ बातें लेकर अपने नये-नये सम्प्रदाय खड़े कर दिये। कोई सिद्ध कहलाये और कोई नाथ। सभी ने निरजन ब्रह्म-ज्योति-दर्शन, अलख, अनहद-नाद-श्रवण, कुण्डलिनी-जागरण तथा समाधि आदि को अपनाया। इस प्रकार पतंजलि द्वारा पूर्वकाल में बताया गया योग-मार्ग कई रूप धारण करके सामने आया। पहले तो इस मार्ग में ज्ञान की प्रधानता थी परन्तु

धीरे-धीरे साधना और क्रिया को महत्त्व दिया जाने लगा। कुछ ने तो बिलकुल तांत्रिक रूप ही ले लिया। इस प्रकार हीनयान, महायान, वज्रयाम्बर, दिगम्बर आदि के अतिरिक्त अनेक उपभेद भी बन गये।

इनके ही समान सिर्गुण सन्त मत भी था। इसके प्रवर्त्तक कबीर माने जाते हैं। कबीर का सन्त-मत प्रायः कुछ विभिन्न मतों का सम्मिश्रण ही है जिसमें सिद्ध-नाथ-सम्प्रदाय, रामानन्द का भक्ति-सम्प्रदाय, सूफीमत और इस्लामी-मत आदि सभी मिल गये हैं। तुलसी और कबीर यद्यपि दोनों ही रामानन्दजी के शिष्यों में माने जाते हैं परन्तु इनमें से एक ने सगुण मार्ग अपनाया तो दूसरे ने निर्गुण का प्रचार किया। तुलसी और कबीर में एक यह भी अन्तर था कि कबीर की नीति स्वधनात्मक थी जब कि तुलसी की नीति प्रायः मडनात्मक ही मिलती है। कबीर ने तो रुद्रियो का स्वर्णन और ज्योति-दर्शन की बात बिलकुल नाथ-सम्प्रदाय और सिद्धों की भाँति कही है। साथ ही कबीर ने रामानन्द की भक्ति-पद्धति और गम नाम को प्रमुख आधार माना है। भक्ति को उन्होंने सर्वोपरि स्थान दिया है। कबीर की इस भक्ति में सूफी प्रेम-साधना के भी दर्शन होते हैं। वास्तव में कबीर सूफी थे। जायसी और कबीर में यह था अन्तर कि जायसी 'बाशरा सूफी' थे और कबीर 'बेशरा सूफी'। प्रेम की मस्ती का जो वर्णन कबीर ने किया है वह सूफी प्रभाव ही है। इस प्रकार कबीर ने मिली-जुली भक्ति-पद्धति को ही अपनी उपासना का आधार बनाया था। आगे चलकर कबीर-पथ की दो शाखाएँ हो गयी— (१) मूरत-गोपाली और (२) धर्मगोपाली। अधिकतर कबीरपथी दूसरी के ही अनुयायी थे। धर्मगोपाली शाखा के प्रवर्त्तक धर्मदास थे। इन शाखाओं के अतिरिक्त अन्य गौण शाखाएँ बन गयी थी यथा— ज्ञानीपथ, ताकसारी पथ, सत्य-कबीर, नाम-कबीर, दान-कबीर, मंगल-कबीर, हम-कबीर और उदासिका कबीर आदि।^{११९५}

तुलसी के ममकालीन दादूदयाल ने दादू-पथ चलाया था। अकबर इनसे बड़ा प्रभावित हुआ था। फलस्वरूप अकबर ने सिक्के पर से अपना नाम हटवाकर उसकी जगह एक ओर तो 'जल्मे जलानहू' और दूसरी ओर 'अल्ला हो अकबर' लिखाया था।^{११९६} दादू के भी अनेक शिष्य थे—मुन्दरदास (बीकानेर नरेश), सुन्दरदास (कवि एवं साधक) जगजीवनदास और रज्जब आदि। १७वीं शती में मल्लूकासी पथ भी विद्यमान था।^{११९७} नानक-पथ, साधो-पथ आदि

११९५. मिडिल मिस्ट्रीसिज्म आक इण्डिया, पृष्ठ ११६।

११९६. वही, पृष्ठ १११।

११९७. वही, पृष्ठ १५४।

अन्य अनेक पंथ भी विद्यमान थे ।

कबीर आदि के समान ही सूफी लोग भी अपना प्रचार करते थे । पहले-पहल सूफियों का प्रभाव पंजाब और सिन्ध पर पड़ा था ।^{११९०}(अ) ११^{वीं} शतक में लाहौर में सूफी-धर्म का खूब प्रचार हुआ था । फिर चिश्तीवंश के सूफियों का भारत में बहुत प्रभाव बढ़ा । मुईउद्दीन चिश्नी का नाम सूफीमत के प्रचारकों में विशेष रूप से लिया जाता है । पुष्कर इनका केन्द्र था । वहाँ तो आज तक भी कुछ ब्राह्मण ऐसे हैं जो अपने को 'हुसैनी' कहते हैं । इसी परम्परा में शकरगंज का भी नाम आता है । इन्होंने 'इमामशाही पंथ' चलाया था । इसके अतिरिक्त 'मुहंरावर्दी-पंथ' का भी कम प्रभाव नहीं था । चिश्तीवंश की 'कादिरि शाखा' भी उल्लेखनीय थी । दाराशिकोह इसी का अनुयायी था । १६वीं और १७वीं शती में इस शाखा का उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा था । अकबर के दरबार में भी सूफीमत का आदर होता था । सूफीमत का इतना प्रचार हो चला था कि १७^{वें} शतक के मध्य भाग में मुहम्मद शाहदुल्ला नामक सूफी प्रचारक को कुछ लोग विष्णु का अवतार मानकर पूजने को प्रस्तुत थे ।^{११९८} निर्गुण की इस उपासना पद्धति के अतिरिक्त, दूसरी ओर सगुण शाखा भी चल रही थी ।

स्वामी बल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित सगुण भक्ति की कृष्ण-भक्ति-शाखा में अनेक पुष्टिमार्गी भक्त सामने आते हैं जिनमें सूरदास अग्रगण्य थे । इनके अन्य साथी भक्तों के अतिरिक्त मीरा का नाम भी उल्लेखनीय है । उबर रामानन्द द्वारा प्रवर्तित सगुण-मार्ग में कृष्णदास पनहारी और अनन्तानन्द आदि सामने आये । इसी परम्परा में अन्नदास और तुलसीदास का नाम भी आता है । कबीर ने निर्गुण पथ का आश्रय इस कारण लिया था कि मुसलमान शासकों द्वारा मन्दिरों और मूर्तियों को तोड़ डालने के कारण जनसाधारण में मूर्तियों के प्रति आस्था नहीं रह गयी थी । साथ ही अवतारवाद की भावना के लिए भी गुजाइश नहीं थी । क्योंकि जो भगवान् अपने भक्तों के लिए अवतार लेते हैं वे अपनी दुर्दशा देखकर भी अवतार न ले सके ! इससे जनता की धारणा निराशामय बन चुकी थी । फिर विशुद्ध वातावरण को शांत करने के लिए हिन्दू-मुस्लिम-येक्य की आवश्यकता थी । फलस्वरूप कबीर ने इस्लाम वालों की भाँति मूर्ति और अवतार का विरोध तो किया परन्तु ईश्वर की सत्ता स्वीकार की । उसने हिन्दुओं की मूर्तियों का ही नहीं, अपितु मुसलमानों के रोड़े, नमाज और मस्जिदों तक का खण्डन किया । इसी कारण कबीर-पंथ उच्च श्रेणी के लोगों को कभी स्वीकार्य नहीं हो सका ।

^{११९७}(अ). वही, पृष्ठ ११ ।

^{११९८}. मिडिल मिस्ट्रीसिज्म ऑफ इण्डिया पृ० ३२ ।

उसमें तो केवल निम्न श्रेणी के लोग ही पहुँचे। तुलसी के युग तक आते-आते कबीर की प्रतिमा क्षीण हो चुकी थी, साथ ही उसका पंथ भी अनेक शाखा-उपशाखाओं में बँट चुका था।

उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि तुलसी के समय में अनेक पंथ चल पड़े थे। उन्होंने कहा भी है : 'बंभिन्ह निज मति कल्पि कर प्रकट कौन्ह बहु पंथ।'।

मन्दिरों की भी काफी दुर्दशा हो चुकी थी। कुछ तो मुसलमान शासकों ने तोड़ गिराये थे, जो शेष थे उनमें अनाचार का बोधवाला था। तीर्थों की भी इसी प्रकार दुर्दशा थी। शाहजहाँ के शासनकाल में बनियर ने भारत की यात्रा की थी। उसने जगन्नाथपुरी के मन्दिर और मेले का जो वर्णन किया है उसका वर्णन कास्टेबल एवं स्मिथ की 'बनियर्स ट्रेवल्स इन द्दी मुगल इण्डिया' के पृष्ठ ३०४ पर देखा जा सकता है। इस पुस्तक के अन्य स्थलों पर भी जगन्नाथपुरी के अन्ध-विश्वास, ढोंग और व्यभिचार के नग्न चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। बनियर ने योगियों का भी बड़ा नग्न वर्णन किया है। वह लिखता है—“विचित्र मुद्रा में आसीन, नग्न और काले लम्बी अटा और विशालनालूनधारी योगी को देखकर जैसा भय लगता है वैसा कदाचित् नरक को भी देखकर न लगेगा।” लेखक ने ऐसे ही अन्ध अनेक योगियों का वर्णन किया है। १३ वीं और १४ वीं शती के ऐसे ही योगियों का उल्लेख मार्कोपोलो ने भी किया है। ये खड़े निष्ठुर और पाखण्डी होते थे, नग्न ही इधर उधर घूमा करते थे, शरीर पर भस्म लगाते थे। इन्नबतूता के वर्णन से जान पड़ता है कि लोग इन्हे सिद्ध समझते थे। इस प्रकार तुलसीकालीन विभिन्न मत और सम्प्रदाय पाखण्ड और अनाचार तक फैलाने लगे थे।

तुलसी का मार्ग न तो इन सबके खण्डन के लिए था और न किसी दार्शनिक सिद्धांत के प्रतिपादन के लिए ही। उन्होने तो उदासीन और निराशापूर्ण वातावरण में आशा और आकर्षण की आवश्यकता का अनुभव किया था। इस आकर्षण को वे धार्मिक चेतना के रूप में उत्पन्न करना चाहते थे। फलस्वरूप वे अपने दृष्ट राम का ऐसा चरित्र लेकर सामने आये जिसमें लोक-जीवन को प्रेरित करने की सारी शक्ति और विशेषताएँ विद्यमान थी। उन्होंने हमें लोकधर्मयुक्त दर्शन दिया। इस प्रकार धार्मिक पृष्ठभूमि तुलसी के दृष्टिकोण का निर्माण करती हुई एक आवश्यकता की पूर्ति करने को उन्हें प्रेरित करती है। इन परिस्थितियों के बीच रखकर ही हम तुलसी की रचनाओं का ठीक-ठीक महत्त्व आँकने में समर्थ हो सकते हैं। उन्होने अपने 'रामचरितमानस' में अपने समय की सभी कमियों की पूर्ति की चेष्टा की, विभिन्न प्रश्नों के सही उत्तर दिये और पथभ्रष्ट लोगों को सुमार्ग दिखाया।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जहाँ रविवेण के काल में ब्राह्मण धर्म, जैन धर्म और बौद्धधर्म ही प्रधान रूप से भारत में व्याप्त थे वहाँ तुलसी के काल में इनके अतिरिक्त विविध सम्प्रदायों और धर्मों का भी अस्तित्व था। जहाँ रविवेण का युग हिन्दू-धर्म के चरमोत्कर्ष को धारण करने वाला था वहाँ तुलसी का युग हिन्दू-धर्म की अवनति देखकर व्याकुल था। रविवेण के काल में भारतभूमि में उत्पन्न धर्म ही राजधर्म थे जबकि तुलसी के काल में विदेशी धर्म भी भारत के राजधर्म थे। तुलसी के काल में भारत में बाहरी धर्म भी अपना प्रचार करने लगे थे एवं इससे देश को पर्याप्त धक्का लगा क्योंकि धार्मिक विद्वेष का पर्याप्त सूत्रपात होने लगा था। हाँ, इतना अवश्य है कि तुलसी के युग में भक्ति-आन्दोलन मूब चला जिसका धार्मिक परिस्थितियों के निर्माण में अद्भुत योगदान रहा। भाव यह है कि रविवेण के काल की धार्मिक परिस्थितियों की अपेक्षा तुलसी-कालीन धार्मिक परिस्थितियाँ पर्याप्त बिगड़ी हुई और चुनौती देने वाली थी।

तुलसीकालीन साहित्यिक परिस्थिति का विवेचन करते समय हमें ज्ञात होता है कि तुलसी से पूर्व अनेक कवि 'प्राकृतजन-गुणगान' कर चुके थे। वीर-गाथाकाल के कवियों ने प्रेम और वीरता से पूर्ण रचनाएँ की थी। चन्द, नरपति-नाल्ह और जगनिक आदि कवि अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा करके ही रह गये। जनसाधारणके लिए उनका इतना उपयोग न था। उन ग्रन्थों की अत्युक्तियाँ एवं अतिशयोक्तियाँ भी उन्हें अस्वाभाविकता की ओर अधिक ले जाती दिखाई देती हैं। 'रासो' नामक ग्रन्थों की घटनाएँ प्रायः इतिहास से मेल नहीं खाती। उनमें तो केवल तत्कालीन राजाओं के पारस्परिक युद्ध और शौर्य-प्रदर्शन या किसी कुमारी के अपरण का ही वर्णन मिलता है।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ ऐसी भी रचनाएँ होती थी जिनका उद्देश्य केवल कामुकता को जगाना ही होता था। ऐसी रचनाएँ प्रायः बादशाहों और नवाबों के दरबारों में ही चलती थी। विजय, बघाई, विवाह, राज्यतिलक और जन्म-दिवस सम्बन्धी रचनाएँ भी दरबारों में पढ़ी जाती थी। इन रचनाओं पर कवियों को इनाम मिलते थे। किसी ने चार पंक्तियों की कविता पढ़कर हाथी प्राप्त कर लिया था तो किसी ने गौ। एक कविता पर दस हजार रुपये के इनाम के मिलने का उल्लेख मिलता है जिसमें केवल यही बात कही गयी है कि जहाँगीर के सामने सिलाने गये तेंतुबे ने किस प्रकार जंगली भैंसे पर प्रहार किया।^{१९९}

इस्लाम के प्रचार के लिए कुछ मुसलमान सूफी भक्त प्रेम-कहानियाँ लिख

रहे थे। उनमें मलिक मुहम्मद जायसी, कुतुबन, मन्नन और उसमान आदि उल्लेखनीय हैं। इनके पात्र साधारण राजा-रानी होते थे परन्तु उनके माध्यम से वे ईश्वर की ओर संकेत किया करते थे। पद्मावत, मृगावती, मधुमालती और चित्रावली आदि रचनाओं में इन कवियों ने इसी प्रकार की प्रेमकथाएँ लिखी हैं। इन सभी में विरह को प्रधानता दी गयी है। कहानी के बीच-बीच में ये कवि इस्लाम धर्म-सम्बन्धी बातें भी कहते चलते हैं। हिन्दू-मुस्लिम-गकता भी इन कवियों का एक उद्देश्य था।

इसी के साथ निर्गुणपंथ भी चल रहा था। इसमें कबीर, दादू, सुन्दर, मलूक, नानक और रैदास आदि सन्तकवि पदों की रचना कर रहे थे। ये सभी जाति-पाति के विरुद्ध थे। नीति सभी की खण्डनात्मक थी। कबीर की रचनाएँ 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें सबद, रमैनी और साखी—तीनों का संग्रह है। निर्गुण-साहित्य निराकार ब्रह्म का मार्ग प्रशस्त कर रहा था और हिन्दू-मुस्लिम गकता के लिए प्रयत्नशील था। बाह्य आडम्बरो को इन सभी निर्गुणपंथियों ने फटकारें सुनायी हैं। इन लोगों में साहित्यिक ज्ञान की कमी थी। केवल एक सुन्दरदास ही पढ़े-लिखे व्यक्ति थे। शेष सब सन्त ही थे। उन्होंने सत्संग से जो भी सुना या पाया, उसे ही वे कह गये।

तत्कालीन मुगल-शासन की ओर से भी साहित्यिक प्रगति में सहयोग दिया जा रहा था। अबुल फजल और फैजी अकबर के समय के उत्कृष्ट विद्वानों में से थे। अबुल फजल-कृत 'आइने-अकबरी' और 'अकबरनामा' सद्दश फारसी के श्रेष्ठ ग्रन्थ भी इसी युग की रचनाएँ हैं। फैजी फारसी का मर्मज्ञ कवि और संस्कृत का अच्छा ज्ञाता था। निजामुद्दीन अहमद ने 'तबकाले-अकबरी' और 'अब्दुल बदायूनी' ने 'मुंतख़बुततबारी' की रचना भी इसी समय की थी।^{१२००} बादशाह ने अथर्ववेद, महाभारत, रामायण, पञ्चतन्त्र आदि अनेक संस्कृत ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद कराया था।^{१२०१} एक विशाल पुस्तकालय की भी स्थापना की गयी थी, जिसमें २४ हजार हस्तलिखित ग्रन्थ विद्यमान थे। फारसी के अतिरिक्त हिन्दी में भी बहुत कुछ लिखा जा रहा था। अकबर स्वयं ब्रजभाषा की कविता का प्रेमी था। वह स्वयं ब्रजभाषा में कविता भी लिखता था। अब्दुर्रहीम खान-खाना जैसे उसके कुछ अधिकारी भी काव्यरचना करते थे। अन्य दरबारी कवियों में महापात्र, नरहरि बन्दीजन, महाराजा टोडरमल, महाराज बीरबल,

१२००. भारतवर्ष का इतिहास, पृ० २५७-५८।

१२०१. वही, पृ० २५८।

गंग, मनोहर कवि, केशवदास, होलराय और पुहकर कवि आदि उल्लेखनीय हैं।^{१२०१} ये कवि प्रायः शृंगार और नीति या कमी-कमी बीर रस की कविता लिखा करते थे। सैयद मुबारक अली ने तो नायिका के अलक और तिल पर भी 'अलक-शतक' और 'तिल-शतक' तैयार कर डाले थे। इस समय की बीरता की कविताओं में केवल अपने आश्रयदाता की चाटुकारिणा ही मिलती है। रहीम के अतिरिक्त सभी कवियों की नीति की रचनाएँ विशेष महत्वपूर्ण नहीं कही जा सकतीं। इस प्रकार अकबर के दरबारी कवियों ने प्रायः मुक्तक रचनाएँ ही लिखीं। कुछ लोगों ने प्रबन्ध-काव्य भी लिखे। केशवदास ने 'बीरसिंह देखचरित', 'अहोरीर-असमयक चन्द्रिका' और 'रामचन्द्रिका' की रचना की थी। पुहकर कवि ने 'रसरतन' लिखा था।^{१२०२}

इस प्रकार तुलसी के युग में अनेक प्रकार की रचनाएँ लिखी जा रही थीं। तुलसी ने अपने युग की प्रचलित सभी शैलियों में साहित्य रचना की है। तुलसी के युग में प्रचलित शैलियाँ इस प्रकार थीं—(१) कविता-छप्पय-पद्यति—इस पद्यति को बीरगाथा-काल के कवियों ने अपनाया था। उन्होंने अपने आश्रयदाताओं की बीरता की प्रशंसा इन्हीं छन्दों में की थी। तुलसी ने अपने राम की बीरता आदि के प्रसंगों में इन्हीं छन्दों को अपनाया है। इनके उदाहरण उनकी कवितावली में देखे जा सकते हैं। (२) तिष्ठ, नाथ और सत कवियों की साक्षी-पद्यति—यह उपदेश प्रधान है और इसमें दोहे लिखे गये हैं। तुलसी की 'वैराग्य-मन्दीपनी', 'रामाज्ञा-प्रघन' तथा 'दोहावली' में यही शैली अपनायी गयी है। (३) सूफी कवियों की दोहा-चौपाई-पद्यति—इसका प्रयोग जायसी, कुतुबन और मभन आदि प्रेममार्गी कवियों ने किया है। इसी पद्यति का प्रयोग तुलसी ने अपने 'राम-चरितमानस' में किया है। (४) कविता-संबंधा-पद्यति—गग और नरहरि आदि कवियों ने इस पद्यति में ही लिखा है। तुलसी की कवितावली में इस पद्यति का भी दर्शन होता है। (५) पद-पद्यति—पदों का प्रयोग कृष्ण-भक्त कवियों सूर और अष्टछाप के अन्य कवियों ने किया था। तुलसी ने इस पद्यति का प्रयोग गीतावली, कृष्णगीतावली और विनयपत्रिका में किया है। इन पदों में भाव-गाम्भीर्य और काव्य-सौन्दर्य दोनों का मणि-कांचन-संयोग दिखाई देता है। (६) लोकगीत-पद्यति—लोक में प्रचलित अनेक गीतों ने भी तुलसी को प्रभावित किया था। ये गीत मांगलिक उत्सवों पर गाये जाते थे। उन्होंने पार्वती-मंगल, जानकी

१२०२. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३२३।

१२०३. वही, पृ० ३२३।

मगल, रामलला नहछू और कहीं कवितावली तथा गीतावली तक में इन लोक-गीतों को अपनाया है। पुत्रोत्सव का सोहर 'नहछू' के समय गाया गया है। कवितावली में कहीं-कहीं 'भूलना' नामक लोक-छन्द का भी प्रयोग किया गया है।

इन प्रचलित पद्धतियों के अतिरिक्त तुलसी ने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्यों की रचना की है। विनयपत्रिका जैसी गीतिकाव्य की रचना एक आश्चर्यजनक कृति है। वास्तव में जन-रुचि का ध्यान रखकर ही तुलसी ने इन विविध शैलियों में राम का चरित्र प्रस्तुत किया है।

रविषेणकालीन और तुलसीकालीन साहित्यिक परिस्थितियों में कुछ साम्य और कुछ अन्तर है। साम्य इतना है कि दोनों के काल में संस्कृत और हिन्दी के अनुपम काव्य रचे गये। यदि एक ओर संस्कृत में दण्डी, बाण, सुबन्धु आदि ने अपनी रचनाओं के रूप में अनन्वय अलंकार के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं तो दूसरी ओर तुलसी ने भी। दोनों कवियों के समय में कलापक्ष का उत्थान हुआ। किन्तु रविषेण के काल में स्वच्छन्द साहित्यिक परम्परा का जैसा बृहण हुआ वैसा तुलसी के काल में नहीं। रविषेण के काल में प्रौढ़ अभिनन्दनीय थी किन्तु तुलसी के काल में 'भाषा-नवन्वय' की आवश्यकता पड़ने लगी थी। रविषेण के काल में हम अपनी भाषा पढ़ने के लिए लान्घाणित रहते थे किन्तु तुलसी के काल में दूसरे देश की भाषा पढ़ने को विवश। रविषेण के काल में महाकाव्यों के प्रणयन और मनन का पर्याप्त अवसर था, तुलसी के काल में प्रायः मुक्तकों की रचना एवं श्रवण का अवकाश। भाव यह है कि रविषेणकालीन साहित्यिक परिस्थितियाँ अधिक स्वस्थ थीं।

उपयुक्त परिस्थितियों में दोनों कवियों ने अपने-अपने ग्रन्थों का प्रणयन किया है। निश्चय ही अपने समय की परिस्थितियों ने उनकी रचनाओं को पर्याप्त प्रभावित किया है।

रविषेण और तुलसी के समय की परिस्थितियों का तुलनात्मक परिचय देने के अनन्तर हम 'पद्मपुराण' और 'रामचरितमानस' की विविध दृष्टियों से तुलना करना औपयिक समझते हैं। पद्मपुराण के विविध पक्षों पर यथासम्भव विस्तार के साथ प्रस्तुत ग्रन्थ के दशम अध्याय तक लिखा जा चुका है। एकादश अध्याय के प्रारम्भ में तुलसी से पूर्व रामकाव्य-परम्परा की संक्षिप्त चर्चा के साथ रामचरितमानस का प्रकृतीपयोगी संक्षिप्त परिचय दिया जा चुका है। आगे हम पद्मपुराण और मानस की विषयवस्तु, पात्र एवं चरित्र-चित्रण, भावपक्ष, कलापक्ष, धर्म और सस्कृति की दृष्टि से तुलनात्मक समीक्षा करेंगे।

पद्मपुराण और मानस की विषयवस्तु : पद्मपुराण और मानस दोनों में ही राम की कथा कही गयी है। अतः स्वाभाविक है कि दोनों के कथानक में कुछ

साम्य भी दृष्टिगत हो। किन्तु कथा कहने वाले दोनों कवियों का दृष्टिकोण एवं परम्परा पृथक्-पृथक् है, अतः दोनों के ग्रन्थों की विषयवस्तु में वैषम्य भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है, जिसका परिचय वक्ष्यमाण सामग्री के माध्यम से दिया जा रहा है।

साम्य : आचार्य रविशेष और गोस्वामी जी ने अपने-अपने ग्रन्थों को प्रायः समान रूप से ही प्रारम्भ किया है। दोनों ने धूमधाम से लम्बा भंगलाचरण सज्जन-गुणकीर्तन, अमिथा अथवा व्यजना से दुर्जन-निन्दा एवं आत्म-विनय का प्रदर्शन किया है।

दोनों ने रामचरित के माहात्म्य का व्याख्यान किया है। दोनों के लिए राम-कथाकार नम्र हैं। दोनों की ही रामकथाओं का उपस्थापन प्रश्न या शंका के उत्तर में हुआ है। वक्ता या श्रोता का संवाद अनवरत चलता रहता है।

दोनों ग्रन्थों में रावण के दो भाई (भानुकर्ण या कुम्भकर्ण एवं विभीषण) एवं एक बहिन (शूर्पनखा या चन्द्रनखा) हैं। दोनों में रावण का वीरत्व और दशाननत्व सिद्ध है। सिद्धि-प्राप्ति के हेतु रावण, कुम्भकर्ण एवं विभीषण की तपस्या का वर्णन है जिसके फलस्वरूप उन्हें सिद्धि या वरदान प्राप्त होते हैं। मयसुता मन्दोदरी से रावण का विवाह, युद्ध द्वारा रावण की लंका-विजय, रावण का पुष्पक-नाभ, रावण-मारीच-सम्बन्ध, इन्द्र, वरुण आदि अनेक प्रतापी पात्रों और अन्य राजाओं पर रावण की विजय एवं उसका भक्त रूप दोनों ग्रन्थों में वर्णित है। सहस्रकिरण (सहस्रार्जुन) की जल-क्रीड़ा, उससे रावण को क्रोध एवं उससे युद्ध का दोनों में उल्लेख है। अनेक राजाओं से रावण के युद्ध एवं उन्हें जीतने का दोनों में वर्णन है।

दोनों काव्यों में, दशरथ अयोध्याधिपति है। उनके राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न-य चार पुत्र हैं। राम कौशल्या के, लक्ष्मण सुमित्रा के एवं भरत कैकेयी के पुत्र हैं। जनक मिथिला के राजा है; उनकी पुत्री सीता से राम का विवाह होता है; इसके लिए धनुष-गम्बन्वी शर्त है जिसे अनेक राजाओं एवं राजकुमारों ने केवल राम ही पूरा कर पाते हैं। सीता-सहित राम के अयोध्या लौटने पर आमोद-प्रमोद होता है, नगरी की सज्जा होती है। दशरथ अपने वाढ्क-व्य-आगमन पर राम का अभिषेक करना चाहते हैं किन्तु कैकेयी (केकया) इस समय राजा द्वारा पूर्वकाल में प्रतिश्रुत वर माँग कर भरत को राज्य दिलाती है एवं राम-लक्ष्मण-सीता वन को जाते हैं। भरत अपनी माता के इस कृत्य का विरोध करता है। लक्ष्मण भी इस काण्ड पर क्षुब्ध दिखाई देते हैं। वनगमन-वेला में राम का माता से विदा माँगना एवं उसे प्रबोध देना, रामरहित अयोध्या की उदासी एवं नागरिकों

की पीड़ा सजीव रूप में वर्णित है। राम का लक्ष्मण एवं सीता के साथ वनगमन एवं भरत का राम-माता के पास आकर परिदेवन दोनों काव्यों में उपनिबद्ध है।

दोनों काव्यों में, भरत वनवासी राम को लौटाने के निमित्त जाते हैं। भरत की माता भी इस समय उनके साथ होती है। राम किसी भी प्रकार लौटना स्वीकार नहीं करते एवं भरत को ही शासन-संचालन के लिए कहते हैं। वन-भ्रमण करते हुए राम-लक्ष्मण-सीता चित्रकूट पर जा पहुँचते हैं, अनेक मुनियों के दर्शन करते हैं, दण्डक-वन में प्रवेश करते हैं। दोनों ग्रन्थों में, रावण की बहिन राम-लक्ष्मण पर मुग्ध होकर उन्हें मोहित करना चाहती है, राम अपने को विवाहित कह कर छुटकारा पा लेते हैं और उसे लक्ष्मण के पास भेजते हैं जिस पर लक्ष्मण उसका निरस्कार करते हैं, वह भयंकर रूप धारण कर उनको त्रस्त करने का प्रयास करती है जो निष्फल होता है। रावण-भगिनी अपने निरस्कार से त्रर-दूषण को परिचित करानी है जिससे क्रुद्ध त्रर-दूषण का राम-लक्ष्मण से युद्ध होता है एवं राम-लक्ष्मण विजयी होते हैं। रावण की बहिन अपने अपने भाई (रावण) को राम-लक्ष्मण के अविनय का परिचय देकर उनके विरुद्ध उसे भड़काती है एवं सीता सुन्दरी का परिचय देती है। रावण सीता को चुरा लेना चाहता है। दोनों में—एक भाई सीता की रक्षा के निमित्त उसके पास रहता है और दूसरे भाई के सकेत पर उसकी सहायता के लिए जाता है। इधर एकाकिनी सीता को पाकर रावण उसका हरण कर लेता है एवं राम-लक्ष्मण एक दूसरे को देखकर सीता के बिपत्ति-ग्रस्त होने की आशका करते हैं।

दोनों ग्रंथों में, रावण सीता को विमान पर चढ़ाकर लका ले जाता है, मार्ग में सीता को बचाने के निमित्त जटायु रावण से संघर्ष करना है किन्तु पराजित होता है और सीता विलाप करती जाती है। लका के उपवन में सीता को अशोक वृक्ष के नीचे स्थान दिया जाना है, जहाँ वह रावण के प्रेम-प्रस्ताव को ठुकरा देती है।

दोनों ग्रंथों में, राम-लक्ष्मण के लौटने पर उनकी व्याकुलता एवं वन की शून्यता के साथ भयंकरता का वर्णन है। जटायु द्वारा सीता-हरण की सूचना, जटायु की मृत्यु, राम का मार्मिक एवं विस्तृत विलाप, जगल-जंगल भटकना एवं प्रकृति से सीता की सुधि पूछना-दोनों ग्रंथों में निबद्ध है।

रावण का सीता के प्रति बारम्बार प्रेम-प्रस्ताव, लोभ-भय-दर्शन एवं बल-वैभव में राम लक्ष्मण का अपनी अपेक्षा लघुत्व-प्रतिपादन दोनों ग्रंथों में है। इसी प्रकार सीता की रावण को बार-बार फटकार, तिनके की ओट में उसे धिक्कारना मन्दोदरी का रावण को समझाना एवं सीता को ससम्मान लौटाने की राय देना,

रावण का क्षणभर के लिए हाँ में हाँ मिला कर फिर अपनी पर आ जाना, सीता को अपने प्रेमपाश में बाँधने के लिए उसका विविध यत्न करना एवं सीता की अपने व्रत से अडिगता उभयत्र है।

दोनों ग्रंथों में, किष्किन्धपुरवासी सुग्रीव बालि का भाई है। सुग्रीव के साथ युद्ध करके उसका प्रतिद्वन्द्वी उसका राज्य और पत्नी छीन लेता है। निराश सुग्रीव राम की शरण नेता है। उसके साथ हनुमान, अगद आदि अनेक पात्र राम के निकट आते हैं। पत्नीहरण-रूप समान विपत्ति से प्रस्त राम-सुग्रीव की मैत्री होती है जिससे दोनों के द्वारा परस्पर सहायता की प्रतिज्ञा होती है। राम-सुग्रीव की विपत्ति दूर करने का वचन देते हैं और सुग्रीव सीता की खोज कराने का। सुग्रीव का अपने प्रतिद्वन्द्वी से युद्ध होता है एवं उसे चोट लगती है। राम उन दोनों में पहने यह नहीं पहचान पाते कि कौन असली सुग्रीव है और कौन प्रतिद्वन्द्वी? बाद में किसी प्रकार से पहचानकर अपने बाण से सुग्रीव के प्रतिद्वन्द्वी को मार देते हैं। निःसपत्न सुग्रीव राज्य और पत्नी का लाभ कर विलासप्रस्त हो जाता है एवं सीता-खोज के प्रति प्रमादी हो जाता है। इस पर उसे प्रबुद्ध करने के लिए राम लक्ष्मण को भेजते हैं। लक्ष्मण सुग्रीव को डाँटते हैं जिस पर वह उनकी क्षामद करके क्षमा याचना करता है एवं उनके आदेशानुसार सीता-न्वेषण के लिए वानर-वीरो को चतुर्दिक् प्रस्थापित करता है। अनुचरों द्वारा सीता की लंका में स्थिति जानकर हनुमान को लंका भेजा जाता है, परिचय के लिए राम उन्हें अपनी अँगूठी देते हैं। समुद्र-तट पर एक पात्र (विद्याधर या सम्पाति) उन्हें सीता-विषयक परिचय देता है।

समुद्र पार कर हनुमान का लंका-प्रवेश, लंकाजी या लंकामुन्दरी से भेंट एवं उससे युद्ध, उसका हनुमान का शुभचिह्न बनना, हनुमान का विभीषण-गृह-गमन एवं उससे आनिध्य-लाभ, उसके द्वारा अशोकवृक्षतर्नास्थित सीता का ज्ञान प्राप्त कर उसका उपवन-गमन, बिरहिणी सीता की दशा देखकर हनुमान का दुःखी होना एवं अँगूठी गिराना, अँगूठी देखकर सीता का हर्ष-विषाद, सीता-हनुमान-परिचय, सीता के राम-लक्ष्मण की कुशल पूछने पर हनुमान द्वारा राम के वियोग का मार्मिक वर्णन, सीता द्वारा अपनी व्यथा का वर्णन एवं राम-लक्ष्मण के प्रति अपनी विपत्ति दूर करने का गद्गद, हनुमान द्वारा उपवन-विध्वंस, रक्षक-भर्दन, अनेक योद्धाओं का संहार, हनुमान के निग्रहार्थ इन्द्रजित् का उपवन में आगमन, दोनों का मयंकर युद्ध, इन्द्रजित् द्वारा पाश फेंकना और हनुमान का जान बूझकर उसमें फँसना, पाशबद्ध हनुमान का रावण की सभा में उपस्थापन, हनुमान-रावण-संवाद, जिसमें रावण को सम्मार्ग पर चलने की सलाह दी गयी, सीता को लौटाने की

कहा गया तथा राम के पराक्रम का परिचय दिया गया, क्षुब्ध रावण का हनुमान को मारने एवं अपमानित कर नगर में घुमाने का आदेश और हनुमान का सबको डराकर एवं लंका में त्राहि-त्राहि मचाकर सीता की चूडामणि लेकर लौटना उभयत्र वर्णित है।

लकानिवृत्त हनुमान (अथवा हनूमान) का राम-लक्ष्मण-सुग्रीव आदि द्वारा मत्कार, उससे सीता की व्यथा-कथा एवं संदेह सुनकर राम की भावविभोरता एवं उसे गले लगाना, राम-सुग्रीव आदि के द्वारा मिलकर सीता को लौटाने के हेतु लका पर चढ़ाई, बानर-सेना-प्रस्थान पर शुभ शकुन एवं मार्ग में नल द्वारा समुद्र की समस्या का हल होना—ये विषय दोनों ग्रंथों में हैं।

विभीषण द्वारा बारम्बार प्रबुद्ध किये जाने पर भी रावण का न मानना, उसका राम के पक्षपाती विभीषण पर क्रोध एवं उसका लकानिर्वासन, विभीषण का राम की सेना में उपस्थित होना, प्रथम साक्षात्कार में ही राम का विभीषण को परम सम्मान-दान एवं उसके लकाधिपतित्व का विचार, युद्ध का प्रारम्भ, कई दिन युद्ध चलना, सायंकाल को युद्ध-विराम, हनुमान-मेघनाद-युद्ध, कुम्भकर्ण का शरीर देखकर बानर-सेना का भयभीत होना, विभीषण-रावण-युद्ध, रावण द्वारा विभीषण पर शक्ति-प्रहार एवं राम द्वारा उसका वचाव, दम्भजित-लक्ष्मण-युद्ध, लक्ष्मण का शक्ति प्रहार में मूर्च्छित होना, मूर्च्छित लक्ष्मण के चिकित्सक द्वारा रात-रात में ही औषध-प्रबन्ध की अनिवार्यता का प्रतिपादन अन्यथा लक्ष्मण के जीवन की सदिशता का कथन, शक्ति-मूर्च्छित भाई की दशा देखकर रामद्वारा अत्यन्त मार्मिक करुण विलाप, व्याकुल राम की विभीषण-विषयक चिन्ता, हनुमान द्वारा औषध लाना, हनुमान-भरत का अयोध्या में साक्षात्कार, औषध आ जाने पर लक्ष्मण का प्रकृतित्व होना एवं युद्धार्थ सन्नद्ध होना—ये विषय भी उभयत्र हैं।

युद्ध-विराम होने पर रावण की गिरि-साधना, अंगद द्वारा उसमें अनेक प्रकार से विघ्नोपस्थापन, रावण का पुनः क्रोध, उसका सीता के पास जाकर एतबार फिर प्रेम-प्रस्ताव, सीता द्वारा उसका पूर्ण प्रत्याख्यान, राम-लक्ष्मण के साथ रावण का भीषण युद्ध, रावण के लिए अपशकुन तथापि उसका मायायुद्धादि करना एवं अन्त में युद्धस्थल में मारा जाना, उसकी मृत्यु पर मन्दोदरी का करुण मार्मिक विलाप, मृत रावण का क्रिया-कर्म, लका के सिंहासन पर विभीषण का अभिषेक, सीता-राम-मिलन, विभीषण द्वारा राम-लक्ष्मण को लकागमन का निमन्त्रण तथा उनके प्रति कृतज्ञता—ये विषय उभयत्र निबद्ध हैं।

इसी प्रकार राम का सीता-लक्ष्मण सहित अयोध्या के लिए प्रस्थान, उनका

मार्ग में सीता को अनेक स्थान दिखाना, उनके साथ हनुमान-सुग्रीवादि का भी आना, आकाश से ही उन्हें अयोध्या की सजावट का दिखाई देना, अयोध्यावासियों को दूत द्वारा रामागमन की सूचना, नगर से बाहर ही राम का बिमान से उतारना, भरत आदि द्वारा उनकी अगवानी, राम-लक्ष्मण-सीता का सबसे मिलन (विशेषतया माताओं से), अयोध्या के वैभव-समृद्धि का वर्णन, राम का अभिषेक एवं राम का हनुमान सुग्रीव आदि सहायकों को ससम्मान विदा करना, राम-राज्य-वर्णन एवं प्रजा जनों की सुसम्पन्नता दोनों ग्रंथों के विषय हैं।

साथ ही सीता की अग्नि-परीक्षा का भी दोनों ग्रन्थों में वर्णन है।

किंतु 'पद्मपुराण' और 'मानस' की विषयवस्तु में साम्य की अपेक्षा वैषम्य अधिक दृष्टिगत होता है। श्रमण-संस्कृति और वर्णाश्रम-व्यवस्था के विश्वासी रविवेण और तुलसीदास ने अपने-अपने ग्रंथों में अपनी-अपनी परम्पराओं में अपनी बुद्धि और प्रतिभा के अनुसार कुछ जोड़ा है एवं कुछ घटाया है पद्मपुराण की कथा यद्यपि बाल्मीकि-रामायण से पर्याप्त प्रभावित है और तुलसी भी आदिकवि के ऋणी हैं तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि दोनों की कथा एक ही है। दोनों कवियों का दर्शन एक दूसरे का विरोधी है। एक वेदनिंदक है तो दूसरा वेदविश्वासी; एक राम को महापुरुष, और अपने कर्म के द्वारा मोक्ष प्राप्त करने वाला 'भ्रष्ट' प्राणी मानता है तो दूसरा उन्हें मर्यादापुरुषोत्तम के साथ भगवान् भी मानता है जिसने धर्म के हेतु अवतार ग्रहण किया है। राम के इस चरित्र को निबद्ध करते समय दोनों कवियों के दृष्टिकोण ही 'पद्मपुराण' और 'मानस' की विषयवस्तु के वैषम्य के हेतु है।

'पद्मपुराण' की विषयवस्तु का विस्तृत विवेचन पीछे किया जा चुका है^{१२०४} जिसके साथ 'मानस' की विषयवस्तु का मिलान करने पर दोनों में पुष्कल वैषम्य की प्रतीति होती है। 'पद्मपुराण' में सर्वप्रथम महावीर-वदना है तो 'मानस' में बाणी-विनायक की।^{१२०५} इसके बाद 'पद्मपुराण' में कुलकरो तथा तीर्थंकरों की वदना है तो मानस में भवान्-शकर, गुरु, कबीरवर, कपीश्वर-उद्भवस्थिति-सहारकारिणी क्वेशहारिणी, सर्वश्रेयस्करी, रामवल्लभा,^{१२०६} सीता आदि की। यद्यपि आरंभ में ही यह प्रतिभासित होने लगता है कि दोनों कवि किसी महाकाव्य के प्रणयन की तैयारी कर रहें हैं फिर भी मानस के मंगलाचरण का जो

१२०४. प्रस्तुत ग्रन्थ का चतुर्थ अध्याय।

१२०५. वर्णनामधर्मसंधाना रसाना छन्दसार्थापि।

मंगलाना च कर्तारी बन्दे बाणीविनायकी ॥ (मानस, बाग, ० श्लोक १)

१२०६. मानस, बागकाण्ड, श्लोक २-५।

प्रभाव पड़ता है वह पद्मपुराण के मंगलाचरण का नहीं। मानस के आरम्भ में पर्याप्त विस्तार के साथ विभिन्न देवी-देवताओं, महात्माओं, ऋषि-मुनियों, संतों, असंतों, राम-नाम, सगुण और निर्गुण आदि की बंदना के साथ अन्त में 'सौव-राजस्य' जान कर समस्त जग को करबद्ध प्रणाम किया गया है जिसका पाठक पर व्यापक और गंभीर प्रभाव पड़ता है। 'पद्मपुराण' के मंगलाचरण में शाब्दिक चमत्कार के साक्षात्कार होते हैं तो मानस के मंगलाचरण में कवि की लोक-व्यापी दृष्टि के। इसके बाद 'पद्मपुराण' में राम-कथा की भूमिका के रूप में उपस्थापित राजा 'श्रेणिक' का महावीर के समवरण में जाकर धर्मोपदेश सुनना तथा रात्रि को वानर-राक्षसों के विषय में संदिग्धचित्त होकर अगले दिन प्रातः काल गौतम गणधर से राम कथा सुनना आदि मानस में नहीं है। 'मानस' में याज्ञ-वल्क्य-भारद्वाज, शिव-पार्वती और काक भुशुडि-गरुड़ के वार्तालाप-प्रसंग से रामकथा कहलायी गयी है। 'मानस' के नारद-मोह, शिव-पार्वती-विवाह एवं मनु-शतरूपा के उपाख्यान 'पद्मपुराण' में नहीं है। 'पद्मपुराण' में प्रदत्त राक्षस वंश और वानर-वंश का विस्तृत परिचय मानस में नहीं है। 'मानस' में रावण, कुम्भकर्ण, सूपनखा तथा विभीषण के जन्म से ही राक्षस-वंश का परिचय मिलता है। वहाँ इनके पूर्वजन्म की कथा कही गयी है जिसके अनुसार प्रतापमानु रावण बनता है, अरिमर्दन कुम्भकर्ण और धर्मरुचि विभीषण। 'मानस' में विभीषण रावण का सीतेला भाई है, सगा नहीं। 'मानस' के वानरवशी हनुमान, सुग्रीव, आदि बदर ही हैं, विद्याधर नहीं। पद्मपुराण में रावण के मुख का हार में प्रति-बिम्ब पड़ने के कारण उसका नाम 'दशानन' पड़ता है किन्तु 'मानस' में रावण के दस मुख ही बताये गये हैं। 'पद्मपुराण' में वर्णित दशानन आदि भाइयों की विद्या-सिद्धि एवं अनेक स्त्रियों की प्राप्ति, रावण के प्रति उपरम्भा की आसक्ति तथा रावण की अपने ऊपर अननुरक्त परकीया नारी के अनुपभोग की प्रतिज्ञा आदि का 'मानस' में कोई संकेत नहीं है। 'मानस' में खर और दूषण दो पात्र हैं जबकि पद्मपुराण में खर-दूषण एक ही व्यक्ति का नाम है।

'मानस' के खरदूषण का सुग्राव से कोई संबंध नहीं है जबकि 'पद्मपुराण' का खरदूषण सुग्रीव का 'पटाक जीजा' निकलता है। 'पद्मपुराण' में समागत अजना-पवनजय-प्रसंग और हनुमान् की उत्पत्ति की कथा 'मानस' में नहीं आयी है, वहाँ तो हनुमान केवल पवनसुत के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं जो अखंड बाल ब्रह्मचारी रहकर श्रीराम की सेवा को अपना कर्तव्य समझते हैं।

पद्मपुराण का 'दशरथ-जनक-काल-निर्बन्धन' वृत्तांत मानस में नहीं है। पद्मपुराण में दशरथ की चार रानियों का उल्लेख है जबकि मानस में तीन का।

मानस में 'पुत्रेष्टिदयशोथ पायस' के प्रभाव से दशरथ को संतान प्राप्ति होती है जबकि पद्मपुराण में ऐसा कुछ नहीं है। भामंडल का वृत्तांत मानस में नहीं है। वहाँ सीता के किसी भाई की चर्चा नहीं है। राम-सीता का विवाह शिवधनुष की प्रत्यंचा चढ़ाने पर होता है, म्लेच्छ-दमन के कारण नहीं। पद्मपुराणमें सीता-राम के विवाह के साथ लक्ष्मण और भरत का विवाह वर्णित है जबकि मानस में श्रीराम के तीनों भाइयों के विवाहों का उल्लेख है। 'मानस' में भरत के शोक का प्रसंग नहीं आया है। इसी प्रकार मानस में वर्णित सीता-राम-विवाह से पूर्व की घटनाएँ—यथा राम-लक्ष्मण का विद्वामित्र के साथ जाना, ताड़का-सुबाहु को मारना, अहल्या का उद्धार करना, मिथिला के स्वयंवर में तमाशा देखने जाना, वाटिका में पुष्प-चयन करते हुए सीता-साक्षात्कार करना, लक्ष्मण-परशुराम-संवाद, बारात-आगमन तथा रामविवाहोत्सव आदि पद्मपुराण में नहीं हैं।

पद्मपुराण में दशरथ के वैराग्य के कारणरूप में उपस्थित बृद्ध कचुकी का प्रसंग मानस में नहीं आया है। कैकेयी के वर्याचन के प्रसंग में भी अंतर है। 'मानस' में यह प्रसंग विस्तृत भूमिका के साथ आया है। देवमभा में सरस्वती को राम-वन-गमन संपादन के लिए भेजा जाता है। वह मथरा की बुद्धि बदल देती है—“गई गिरा मति फेरि।” मथरा कैकेयी को भरती है। कैकेयी कोप-भवन में जाकर पड़ जाती है। दशरथ उसे मनाते हैं। उस समय वह दो वर मांगती है; एक में वह भरत का राज्याभिषेक और दूसरे में वह राम का वन-गमन मांगती है। दशरथ राम-वन-गमन का वर देने में हिचकिचाते हैं। पद्मपुराण में एक ही वर मांगा गया है। पद्मपुराण में कैकेयी 'वन-वास' का वर नहीं मांगती, केवल भरत के लिए राज्य मांगती है। पद्मपुराण में दशरथ भरत को राम-वन-गमन से पूर्व ही राज्य दे देते हैं। राम वन जाने में पूर्व भरत से राज्य करने का अनुरोध करते हैं और उसे अपनी ओर से निश्चित भी करते हैं—“न करोमि पृथिव्यां ते कांचित् पीडां गुणालय” किंतु मानस में भरत के ननिहाय में लौटने पर उन्हें अभिषेक समर्पित किया जाता है। पद्मपुराण में, जब सीता भी राम के साथ चलने का अनुरोध करती हैं तो राम कहते हैं कि मैं दूसरे नगर को (वन को नहीं) जा रहा हूँ, तुम यही रहो प्रिये त्वं तिष्ठ चात्रैव गच्छाम्यहं पुरान्तरम्—किंतु मानस में वे स्पष्ट बताते हैं कि मैं वन जा रहा हूँ और तुम हंसगामिनी होने के नाने वन जाने के योग्य नहीं हो। पद्मपुराण में दशरथ खड़े से टिके हुए मूर्च्छित हो जाते हैं जिससे उन्हें कोई मूर्च्छित नहीं जान पाता, मानस में उनकी मूर्च्छा का सब को पता है। वन-प्रस्थान का वृत्तांत भी दोनों ग्रंथों में अंतरयुक्त है। पद्मपुराण में अपने पीछे आने वाले प्रजाजनों को धोखा देने के लिए सायं समय वनगामी

राम-लक्ष्मण-सीता जिन-मंदिर में टिक कर रात में मंदिर के पश्चिम द्वार से दक्षिण दिशा की ओर चल पड़ते हैं, तथा शबरी नदी को पार कर जाते हैं, किंतु प्रजाजन उसे पार नहीं कर पाते और उनमें से अनेक तो लौट जाते हैं एवं अनेक दीक्षित हो जाते हैं। मानस में ऐसा नहीं है। यहाँ तो पहले तमसा के तट पर राम-लक्ष्मण-सीता विश्राम करते हैं फिर गंगा को केवट की नाव से पार करते हैं। यहाँ केवट-प्रसंग और ग्राम-वधुओं के मामिक प्रसंग से कथानक में अत्यन्त चारुत्व आ गया है।^{१२००} यहाँ मुमन्त्र जब लौटकर अयोध्या आता है और राम को नला मकने का वर्णन करता है तो दशरथ प्राण ही छोड़ देते हैं। मानस में भरत-मिलाप-प्रसंग में लक्ष्मण एवं निषादराज भरत के साथ युद्ध करने के लिए उद्यत हो जाते हैं परन्तु बाद में भरत का सद्भाव देखकर उसमें मोहार्दपूर्वक मिलते हैं। पद्म-पुराण में ऐसा नहीं हुआ है।

पद्मपुराण में समागत बज्रकर्ण और सिंहोदर का वृत्तान्त, कल्याणमाला का प्रसंग, कपिल ब्राह्मण की कथा, वनमाला-लक्ष्मण-विवाह-प्रसंग, अतिवीर्य का वृत्तान्त, देशभूषण-कुलभूषण के उपसर्ग का राम-लक्ष्मण द्वारा दूरीकरण आदि वृत्तान्त मानस में नहीं है, और मानस के कुछ प्रसंग—यथा जनक का सपरिवार चित्रकूट में आगमन, भरत का पादुका लाना, जयन्त की दुष्टता और सीता के चरण में चोब मारना, अनसूया द्वारा सीता को पातिव्रत्यघर्मोपदेश, शरभंगश्रुति-प्रसंग, वन्य ऋषियों की अस्थियों का देखकर राम की प्रतिज्ञा—‘निसिञ्चरहीन करौं महि भुज उठाइ प्रन कौन, पद्मपुराण में नहीं है। पद्मपुराण में सीताहरण का हेतु शंबूक-वध है जबकि मानस में शूर्पनखा का नाक-कान काटना। पद्मपुराण का रत्नजटी और विराधित का प्रसंग भी ‘मानस’ में नहीं है और मानस का शबरी-मिलन, कबंध उद्धार, विराध-वध और पम्पासरोवर-गमन पद्मपुराण में नहीं है। पद्मपुराण में रावण की वियोगजन्य दुरवस्था को देखकर विवश होकर मन्दोदरी सीता के पास रावण का दौत्य सम्पादन करती है और उसे रावण के प्रति अनु-रक्त करने की चेष्टा करती है किन्तु मानस में मन्दोदरी सीताकाभी रावण को धिक्कारती है तथा सीता को लौटा देने के लिए उससे कहती है। मानस में राम का सुग्रीव से परिचय हनुमान कराते हैं, वे ही पहले विप्ररूप में राम-लक्ष्मण का परिचय प्राप्त करते हैं और फिर सुग्रीव के पास उन्हे ले आते हैं। सुग्रीव राम को सीता के चिह्न देता है और राम अपनी प्रतिज्ञानुसार बालि को मारते हैं। पद्म-

१२०० पद्मपुराण में तपोवन की स्थिती राम-लक्ष्मण को देखकर मतवाली हो जाती है जबकि ‘मानस’ की ग्राम-वधुएँ सार्विकता से मुग्ध।

पुराण में राम साहसगति विद्याधर का वध करते हैं, वहाँ बालि-वध की चर्चा नहीं है। पद्मपुराण में वर्णित कोटिशिला का लक्ष्मण के द्वारा उठाया जाना, हनुमान् द्वारा अपने नाना को परास्त करना, राम को गन्धर्वकन्याओं की प्राप्ति, लंकासुंदरी और हनुमान् का विवाह आदि प्रसंग मानस में नहीं हैं। मानस का हनुमान् समुद्र को लाँचकर लंका जाता है, विमान में बैठकर नहीं। बीच में सुरसा उसकी परीक्षा लेकर उसे आशीर्वाद देती है। मार्ग में वह समुद्रवासिनी छायाग्राहिणी निशिचरी (सिंहिका) का वध करना है और मैनाक का स्पर्श करता है। यहाँ लंकासुंदरी से हनुमान् के युद्ध और बाद में दोनों के विवाह की चर्चा नहीं है अपितु लकिनी नामक निशिचरी का हनुमान् के मुष्टि-प्रहार से वध होता है। मानस में मयंक-ममान रूप धारण कर हनुमान् का लंका-प्रवेश होता है, पद्मपुराण में असली रूप में। पद्मपुराण में सीता को हनुमान् के द्वारा अँगूठी दिये जाने पर मन्दोदरी उपस्थित है जिसे हनुमान् फटकार लगाता है किन्तु मानस में इस अवसर पर त्रिजटा ही प्रधानतः उपस्थित है, मन्दोदरी असोक-वन में नहीं आती। पद्मपुराण में हनुमान् लंका का ध्वंस करता है, जबकि मानस में वानर होने के कारण राक्षसों द्वारा जलायी गयी अपनी पूँछ से लंका का दहन करता है। पद्मपुराण में रावण को समझाते हुए विभीषण को इन्द्रजित् सापमान टोकता है, और विभीषण को फटकारता है जिस पर रावण उसे खड्ग से मारने को तत्पर हो जाता है और विभीषण भी एक खम्भा उखाड़कर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाता है, बाद में मंत्रियों द्वारा बीच-बचाव किये जाने पर वह तीस अक्षौहिणी सेना के साथ राम से जा मिलता है किन्तु मानस में न तो इन्द्रजित् उसे टोकता है न ही विभीषण सेना के साथ राम से मिलता है। मानस में रावण को जब विभीषण समझाता है और सीता को राम के पास लौटाने का निवेदन करता है—मोरे कहे जानकी बीज तव गवण मम पुर बसि तपसिन्हु कैं प्रीती कहकर चरण प्रहार से उसे अपमानित करना है और विभीषण सचिव को सग लेकर नभ-पथ से जाकर राम से मिलता है जहाँ कि राम उसे 'लकेय' कहकर उसका अभिषेक करते हैं—जो संरति सिव रावनिहि बीन्हि बिये बस माथ । सोइ संपदा विभीषनहि सकुचि बीन्हि रघुनाथ ॥ मानस का विभीषण चरण-प्रहार का प्रतिशोध नहीं लेता, बस इतना भर कहता है—“तुम पितु सरिस भले मोहि मारा । राम भजे हित नाथ तुम्हारा ।” मानस में समुद्र (सागर) को नल-नील बाँधते हैं जबकि पद्मपुराण में नल बेलम्बरपुर के स्वामी समुद्र नामक राजा को परास्त करता है। पद्मपुराण में रावण की सभा में अंगद के द्वारा चरण रोपने का प्रसंग नहीं है। मानस में अंगद राम का दौत्य संपादन करने के लिए रावण के पास जाता है और उसकी सभा में “मैं तब बसन तोरिबे

सायक ।” आदि कहकर उसका अपमान करता है; वह रावण को चुनौती देता है कि कोई भी योद्धा उसका पैर उठा दे किन्तु सब हार मानते हैं। वह रावण के मुकुट उठाकर आकाश में फेंक देता है और अपने पैर उठाने वाले रावण को श्री राम के पैर पकड़ने की सलाह भी देता है। मानस में अंगद द्वारा भानुकर्ण (कुम्भकर्ण) के अधोवस्त्र खोलने की घटना भी नहीं आयी है। पद्मपुराण में उल्लिखित राम-लक्ष्मण को सिंहवाहिनी-गरुडवाहिनी विद्याओं की प्राप्ति, रावण द्वारा लक्ष्मण पर शक्ति का प्रहार, शक्तिनिह्न लक्ष्मण को देखने के लिए रावण का राम को अनुमति दे देना आदि प्रसंग मानस में नहीं है। मानस में मेषनाद के द्वारा लक्ष्मण को शक्ति लगनी है, रावण के द्वारा नहीं। पद्मपुराण में वर्णित विशाल्या का वृत्तान्त, लक्ष्मणनक्षत्री गमाचार प्राप्ति कर भरत द्वारा राक्षसों के विरुद्ध साकेत में युद्ध की तैयारी आदि के वृत्तान्त ‘मानस’ में नहीं हैं। यहाँ तो लक्ष्मण-मूर्च्छा पर हनुमान सुषेण नामक वैद्य को पकड़ लाते हैं। सुषेण लक्ष्मण को देखकर द्रोणगिरि से सजीवनी बूटी लाकर देने पर ही लक्ष्मण के प्राण बचने की बात कहता है। हनुमान द्रोणपर्वत से सजीवनी लेने जाते हैं। बीच में रावण की प्रेरणा से राक्षस कालनेमि हनुमान को रोकने का व्यर्थ प्रयास करता है और मारा जाता है। हनुमान पर्वत पर जाकर सजीवनी बूटी को नहीं पहचान पाते और पर्वत को ही उखाड़कर नेजी से उड़ चलते हैं। जब वे अयोध्या के ऊपर से उड़कर जाते हैं तो भरत आशंकावश उनके पैर में बिना फलक का बाण मार देते हैं। हनुमान ‘राम’ कहते हुए नीचे आ जाते हैं और भरत के पूछने पर सारा वृत्तान्त सुनाते हैं। भरत उन्हें अपने बाण पर बिठाकर शीघ्र ही लंका भेजने का प्रस्ताव रखते हैं किन्तु वे स्वयं उड़कर सूर्योदय से पूर्व लंका में आ जाते हैं। लक्ष्मण की चिकित्सा के उपरान्त हनुमान सुषेण को उसके घर पहुँचा देते हैं। मानस में कुम्भकर्ण रावण के प्रयत्नों से जागता है और उसकी सीताहरण के लिए भर्त्सना करता है और सीता को लौटाने के लिए रावण को सलाह देता है। उसकी दृष्टि में विभीषण अधिक प्रिय है क्योंकि उसने राम की शरण ले ली है परन्तु मदिरापान और मांस-भक्षण करके वह आपे से बाहर हो जाता है और वानर-सेना पर टूट पड़ता है। वानर उसके भूषराकार शरीर में घुस-घुसकर नाक-कान से बाहर निकलते हुए दिखाई देते हैं। पद्मपुराण में कुम्भकर्ण (भानुकर्ण) मदिरापानादि नहीं करता और राम का विरोधी है। वह रावणविमुख विभीषण को प्यार भी नहीं करता। पद्मपुराण में समागत मृगांक आदि मंत्रियों के द्वारा रावण को समझाया जाना तथा रावण का दूत को इशारे से राम के पास भेजना और दूत का वहाँ रावण के पक्ष का समर्थन एवं भामंडल का क्रुद्ध होकर उसे मारने को उद्यत हो जाना आदि मानस

में नहीं है। बहुकपिणी-विद्या-साधक रावण की माला का अंगद के द्वारा तोड़ दिया जाना एवं उसकी स्त्रियों की दुर्दशा किया जाना आदि भी मानस में कुछ अन्तर के साथ वर्णित हैं। मानस का रावण यज्ञ करता है, जिसे लक्ष्मण, हनुमान आदि भंग करते हैं। मानस में इन्द्रजित् (मेघनाद) भी यज्ञ करता है किन्तु उसका भी यज्ञ भंग कर दिया जाता है और भग्नयज्ञ मेघनाद का आगे चलकर लक्ष्मण के हाथों वध हो जाता है। इसी प्रसंग में राम-लक्ष्मण नागपाश से भी बाँधे जाते हैं, जिन्हें गफड छुड़ाता है। पद्मपुराण में रावण अपने किये को बुरा स्वीकारता है तथा पश्चात्ताप करता है। वह अपने को धिक्कारता है तथा एक बार राम-लक्ष्मण को जीवित पकड़कर अपने सम्मान को अक्षुण्ण रखने हुए सीता को उन्हें लौटा देने की भी सोचता है किन्तु मानस में वह सीता को लौटाने की नहीं सोचता, न ही वह अपने किये पर पश्चात्ताप करता है। पद्मपुराण में रावण का लक्ष्मण के हाथों वध होना है जबकि मानस में विभीषण के द्वारा रावण की नाभि में अमृत कुण्ड होने के रहस्य को उद्घाटित किये जाने पर राम रावण की नाभि पर अग्नि बाण चलाकर उसका वध करते हैं। पद्मपुराण में इन्द्रजित् मेघ-वाहन और कुम्भकर्ण छोड़ दिये जाते हैं और वे दीक्षा ले लेते हैं। मगदोदरी चन्द्रनखा आदि भी आधिका बन जाती हैं। किन्तु मानस में इन्द्रजित् और कुम्भकर्ण का वध होता है। पद्मपुराण में रावण-वध के अनन्तर राम लका में प्रवेश करते हैं, सीता का आलिंगन करते हैं तथा कई दिनों तक विभीषण का आतिथ्य स्वीकार करके लंका में आनन्द मनाते हैं किन्तु मानस में राम लका में प्रवेश ही नहीं करते, आनन्द मनाने की तो बात ही दूसरी है। वे सुग्रीवादि को भेजकर विभीषण का राजतिलक करा देते हैं और सीता को लाने के लिए विभीषण एवं हनुमान को ही भेजते हैं, स्वयं नहीं जाते। विभीषण एवं हनुमान सीता को पालकी में लाना चाहते हैं किन्तु सीता की वानरदर्शनोत्सुकता देखकर राम उन्हें सीता को पैदल ही लाने को कहते हैं। सीता की अग्नि-परीक्षा होती है। अग्नि स्वयं सीता को राम तक पहुँचाता है। पद्मपुराण में नागद के मुख से अपनी माता की दयनीय दशा को सुनकर राम अयोध्या जाने के लिए उत्सुक होते हैं किन्तु विभीषण की विनम्र प्रार्थना पर १६ दिन लंका में और एक जाते हैं, किन्तु मानस में राम भरत की दशा पर विचार करते हुए तुरन्त अयोध्या के लिए लौट पड़ते हैं। हनुमान उनके आने की सूचना भरत को अयोध्या में देते हैं। मानस की विषयवस्तु राम के अयोध्या-प्रत्यवर्त्तन राम-राज्य-वर्णन तथा भक्ति-ज्ञानादि के विवेचन के साथ ही समाप्त हो जाती है; इसमें वाल्मीकि रामायण के सदृश आगे की कथा नहीं चलती; अतः पद्मपुराण और मानस की इससे आगे की विषयवस्तु की तुलना

का अवकाश ही नहीं रह जाता।

इस विवेचन से 'पद्मपुराण' और 'मानस' की विषयवस्तु का साम्य-वैषम्य स्पष्ट हो चुका है जिसका कारण दोनों कवियों का दृष्टिकोण ही है। यदि अष्टम बलभद्र राम के चरित्र को वर्णित करके रविषेण जैनधर्म की भावनाओं को पाठकों तक पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं तो तुलसी 'बिधि हरि संभु नचाबनहारे' ब्रह्मरूप राम का चरित्र वर्णित करके राम-भक्ति का प्रचार करने का प्रयत्न करते हैं। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए दोनों कवियों ने अपने ढंग से वस्तु-योजना की है।

अब हम दोनों रचनाओं की प्रबन्धात्मकता पर किञ्चित् विचार करेंगे।

'पद्मपुराण' की विषयवस्तु का प्रारंभ पौराणिक ढंग के आख्यानों को लेकर हुआ है। आधिकारिक कथा—राम की कथा—तो बहुत बाद में आती है। राक्षस-वंश एवं वानर-वंश के परिचय, अनेक राजाओं की वंशावलिओं एवं क्षेत्र-काल आदि के वर्णनों के कारण मुख्य कथा तक पहुँचने में कुछ अडचन का सामना करना पड़ता है। किन्तु मानस का प्रारंभ हमें सीधे राम-कथा पर ले जाता है। नारद-मोह, शिव पार्वती, भानुप्रताप आदि के प्रसंगों के कुछ देर बाद ही रामावतार हो जाता है और मुख्य कथा तेजी से चल देती है। इस प्रकार जहाँ 'पद्मपुराण' में मुख्य कथा से 'टेलीफोन' मिलाने में पाठक को कई एक्सचेजों से लाइन जोड़नी पड़ती है, वहाँ 'मानस' में 'डाइरेक्ट सिस्टम' से ही काम चल जाता है।

कथानक की गति का जहाँ तक प्रश्न है 'मानस' अधिक सफल है। इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि 'पद्मपुराण' में कथानक गतिशील नहीं है। है अवश्य, किन्तु मानस जितना नहीं। मार्मिक प्रसंगों की पहिचान दोनों कवियों को है। यदि तुलसी ने राम-लक्ष्मण का जनकपुरी-दर्शन, राम-सीता-साक्षात्कार, धनुष-यज्ञ, राम-विवाह, राम-वन-गमन, ग्राम-वधू-प्रसंग, भरत-राम-मिलन, सीताहरण के समय राम-विलाप, लक्ष्मण-शक्ति, राम-रावण-युद्ध और राम-राज्य आदि मार्मिक प्रसंगों को पहिचाना है तो रविषेण ने भी अपनी कथा के अनुसार धनुषोत्सव, अनेक स्थलों पर तरुणों को देखकर नारियों के भावालाप, राम-विलाप, अंजना-पनञ्जय-वियोग, राम-लक्ष्मण-प्रेम, सबणाकुश-युद्ध आदि अनेक मार्मिक प्रसंगों को दृष्टि में रखा है। अन्तर इतना है कि तुलसी ने मार्मिक प्रसंग भावुकता के साथ कथानक में घुला मिला रखे हैं जबकि रविषेण उनके आगे-पीछे जैनधर्म का स्पष्ट या मूक सम्बोधन देने लगते हैं।

जैसे वर्णनों में 'मानस' बहुत आगे है। 'पद्मपुराण' एक विशालकाय ग्रंथ होने के कारण प्रत्येक बात का सांगोपांग वर्णन देता है, 'मानस' थोड़े में बहुत

कहता है। यद्यपि रविषेण ने भी कही-कही एक-दो पक्तियों से ही काम चला लिया है, यथा—“ती विधाय यथायोग्यमुपचार ससीतयोः। रामलक्ष्मणयोर्माता माता-पुत्री यथागन्म्।”^{११२०८} तथापि अधिकांश उसने लम्बे वर्णन ही किये हैं। रविषेण को किंगी बात के वर्णन का अवसर मिलने पर उनकी लेखनी से सांगोपांग वर्णनो की झड़ी लग जाती है। तुलसी तो रावण-विजय पर राम को तुरन्त ही लौटा देते हैं; किन्तु रविषेण उन्हें पूर्ण विलास का आनन्द देकर ६ वर्ष बाद लौटाते हैं। भला राम-लक्ष्मण को अपनी माताएँ बिलकुल ही याद नहीं रही! मानग ने मार्मिक प्रसंगों के अनिरिक्त शेष सभी वर्णन चलते हुए है यथा—आगे चले बहुरि रघुराया। ऋष्यमूक परबत नियराया ॥ रविषेण यदि इस बात को कहते तो पहले रघुराज के विशेषण आते, फिर ऋष्यमूक पर्वत के और फिर निकटता के।

अन्येक वर्णनों के त्याग में प्रायः दोनो कवि जागरूक हैं। उन वर्णनों को प्रायः उन्होंने नहीं किया है जिनमें पाठक की उत्सुकता नष्ट हो। इसीलिए वर्णनों के आरोह विस्तृत है और अवरोह अत्यन्त संक्षिप्त। यथा—रावण की अनेक राजाओं पर विस्तृत चढ़ाई एवं संक्षिप्त प्रत्यावर्तन (पद्म०) राम की विशद वारान तथा संकेतात्मक जनकपुरी-स्वागत (मानस)।

मर्यादावादी होने के नाते तुलसी ने अप्रिय प्रसंगों की स्थिति अपने काव्य में अभिधा से नहीं होने दी; यहाँ केवल संकेत ही दिये गये हैं यथा—‘मरम बचन जब सीता बोला’ किन्तु ‘पद्मपुराण’ की व्यास शैली में सब कुछ कहा गया है; यथा—लक्ष्मण का भरत का दशरथ को धिक्कारना आदि।

निरर्थक भ्रावृत्ति से बचाव ‘मानस’ में अधिक है। ‘पद्मपुराण’ में दो-तीन बार तो ‘रामकथा’ का विवरणात्मक परिचय है; यथा—हनूमान् द्वारा सीता के समक्ष एवं नारद द्वारा लव-कुश के समक्ष किन्तु तुलसी ऐसे प्रसंगों का ‘आदिहु ते सब कथा सुनाई’ आदि कहकर संकेतात्मक परिचय ही देते हैं।

प्रासंगिक कथाओं की संगति दोनों ग्रंथों में हुई है। ‘पद्मपुराण’ और ‘मानस’ में सुग्रीव और हनूमान् की कथा प्रासंगिक मानी जा सकती है। यह कथा दोनों ग्रंथों में अधिकारिक कथा के साथ अन्त तक चलती है ‘पद्मपुराण’ और ‘मानस’ में सुग्रीव और हनूमान् अन्त तक राम के मित्र, सेवक और सहायक बने रहते हैं। सुग्रीव को राज्य-प्राप्ति और स्त्री-प्राप्ति होती है और हनूमान् को ‘पद्मपुराण’ में पत्नी-राज्य-सम्मान-प्राप्ति और ‘मानस’ में रामभक्ति-प्राप्ति होती है।

जहाँ तक उपाख्यानों का सम्बन्ध है—दोनों ग्रंथों में अनेक उपाख्यान आवे हैं। पद्मपुराण के उपाख्यानों की चर्चा पीछे की जा चुकी है।^{१२०९} मानस के प्रमुख उपाख्यान ये हैं:—

नारद-मोह, प्रतापभानु-कथा, मनु-गतरूपा-उपाख्यान, शिव-पार्वती-विवाह-कथा, याज्ञवल्क्य-भरद्वाजोपाख्यान, गृह-निषाद-कथा, कालनेमि-कथा, जटायु-उपाख्यान, मारीच-कथा और बालि-कथा, काकभृशुण्डि-उपाख्यान, केवट-प्रसंग तथा शबरी-कथा। इनके अनिरिक्त कुछ उपाख्यानों का केवल नामनिर्देश ही किया गया है। इनमें मुवेलपर्वत, शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र, नहुष, ययाति, मगर, रन्तिदेव, पृथुराज, अजामिल, मुनीक्षण, वाल्मीकि, जाम्बवान्, नल, नील, लोमश, जय-विजय, कश्यप-अदिनि, जलंधर-बाणामुर, अगस्त्य, अम्बरीष, अन्धतापस, कद्रु, गज, कैकेयी, गणिका, अजामिल, व्याध, गीध, गरुड, गंगावतरण, चित्रकेतु, चन्द्रमा, तपस्विनी, ताडका, त्रिशकु, दण्डक, दुदुभि, दुर्वासा, परशुराम, प्रह्लाद, बनि, वेन, ययाति, रावण, राहु, विराध, विद्वामित्र, शृगी, सहस्रबाहु, सीता को नारद का आशीर्वाद, सुरनाथ इन्द्र और हिरण्यकशिपु आदि के उपाख्यान आते हैं। उत्तरकाण्ड में 'शूद्रभक्त' के उपाख्यान का भी संकेत कवि ने किया है।

इन उपाख्यानों पर दृष्टिपान करने पर सहज ही ज्ञात हो जाता है कि पद्म-पुराण के उपाख्यान मानस के उपाख्यानों से कहीं अधिक हैं। पद्मपुराण के उपाख्यान कहीं-कहीं मुख्य कथा की गति में बाधा डालते हैं किन्तु मानस के उपाख्यान आधिकारिक कथा से बिलकुल सम्बद्ध हैं। वे ऐसे नहीं हैं कि उन्हें मुख्य कथा में बाहर की वस्तु माना जाय। या तो वे कथा की पुष्टि करते हैं या किसी पात्र के चरित्र-निर्माण में महयोग देते हैं; या तो रामावतार की भूमिका में सहायक होते हैं या भक्ति का महत्त्व प्रतिपादन करते हैं। साथ ही इनकी सक्षिप्तता भी इन्हें सरस और रोचक बना देती है। 'पद्मपुराण' के उपाख्यानों के समान इनकी 'अति' नहीं है।

जहाँ तक कथानक के उपसंहार का प्रश्न है—दोनों कवियों ने अपने दृष्टि-कोण से विषयवस्तु का निर्वहण करने की चेष्टा की है। रविचरण ने 'पद्मपुराण' की विषयवस्तु का निर्वहण 'भवोक्ति' और 'परिनिवृत्ति' नामक अधिकार में किया है।

'मानस' के कथानक का उपसंहार 'उत्तरकाण्ड' में देखा जा सकता है। पार्वती की सन्देश-निवृत्ति के साथ मानस का कथानक समाप्त होता है—'नाथ कृपा मम गत संदेहा। इस काण्ड में कवि ने राम द्वारा पुष्पक को कुबेर के पास भेजना,

लक्ष्मण का कैकेयी से बार-बार मिलना, राम-राज्याभिषेक, सुग्रीव-विभीषण आदि की बिदा, राम-राज्य वर्णन, सन्त-असन्त के लक्षण नीति-उपदेश, शिव-पार्वती-संवाद, काक-भृशुण्डि-कथा, राम-महिमा-वर्णन, कलि-वर्णन, शूद्रभक्त-कथा, ब्राह्मण-महिमा, काक-भृशुण्डि के काक होने की कथा, ज्ञानभक्ति-विवेचन, मानस के अधिकारी तथा पाठ-माहात्म्य का वर्णन और पार्वती की सन्देह निवृत्ति का वर्णन किया है। 'मानस' की विषय-वस्तु का आरम्भ सन्देह या शका में ही होता है। पार्वती को राम के ब्रह्मत्व में सन्देह होता है जिसका दूरीकरण शिव करते है। उधर गरुड को राम की सर्वशक्तिमत्ता पर शका होती है जिसका समाधान काक-भृशुण्डि करने हैं—'राम ब्रह्म व्यापक जग माही।' कवि का मुख्य उद्देश्य राम की ब्रह्मता प्रतिपादन करना एवं दूसरा उद्देश्य भक्ति की महत्ता प्रतिपादन करना ही था। इन उद्देश्यों का पूर्णतया निर्वाह मानस की समाप्ति तक हो जाता है। किन्तु कथानक—केवल कथानक—की दृष्टि से हम विचार करते है तो इसके कथानक को पूर्णतया 'पूर्ण' कहते हुए सकोच सा होता है। राम-राज्य के पश्चात् क्या हुआ? लक्ष्मण, सीता, सुग्रीव, विभीषण, हनुमान, अगद, शत्रुघ्न, भरत, जनक, कैकेयी और स्वयं राम का क्या हुआ? उनका अन्त कैसे कब और कहाँ हुआ? ये प्रश्न लटकते ही रह जाते है। वस्तुतः मानस में विषयवस्तु की अपेक्षा उद्देश्य का ही निर्वाह है। हमें यह कहना ही पड़ता है कि विषयवस्तु के उपसहार की दृष्टि से 'पद्मपुराण' 'मानस' से आगे है।

निष्कर्ष : 'पद्मपुराण' और 'मानस' की विषयवस्तु में साम्य भी है, वैषम्य भी। दोनों में अनेक उपाख्यान तथा प्रासङ्गिक कथाएँ हैं किन्तु 'पद्मपुराण' के उपाख्यान कहीं-कहीं पाठक को मुख्य कथा से दूर कर देते है। मार्मिक प्रसंगों की दोनों कवियों को पहिचान है किन्तु मानस में इनकी अधिक भावपूर्ण योजना है। 'मानस' की विषयवस्तु छोटी होने के कारण अधिक संगठित है, 'पद्मपुराण' की विषय-वस्तु कहीं-कहीं उपदेश दान आदि से बिखर सी गयी है। हाँ, विषय-वस्तु-सम्बन्धी पूर्णता 'पद्मपुराण' में शत प्रतिशत है, 'मानस' इस दृष्टि से शिथिल है। 'पद्मपुराण' की प्रतिनायक-सम्बन्धी विषयवस्तु अधिक प्रभावशाली है। 'मानस' में 'राम की कथा' की गरिमा अधिक है, 'पद्मपुराण' में उतनी उदात्त भावना उनके प्रति नहीं उत्पन्न होती। पद-पद पर सीता के स्तनों का वर्णन, उनकी कामोद्दीपकता एवं राम-लक्ष्मण के अनक स्त्रियों से 'शोक' में विवाहों के वर्णनों को देखकर उनके प्रति भारतीय दृष्टिकोण वाले पुरुषों की थ्रद्धा जैसी भावना वैसे रूप में नहीं उठती जैसी 'मानस' के श्रीराम के चरित्र को पढ़कर उनके प्रति। फिर भी अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार दोनों कवियों ने अपने ग्रन्थों की विषयवस्तु को सफल बनाये

की चेष्टा की है और वे सफल हुए भी हैं।

पद्मपुराण और रामचरितमानस के पात्र तथा चरित्र-चित्रण : पद्मपुराण और मानस के पात्रों की तुलना करते समय हमें ज्ञात होता है कि यद्यपि मानस में पात्रों की संख्या पद्मपुराण से अधीन भी नहीं है तथापि मुख्य कथानक के पात्र प्रायः उसके समान ही हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'मानस' के पात्रों का वर्गीकरण करते हुए इनके तीन वर्ग बनाते हैं—सात्त्विक, राजस, एवं तामस। तीनों प्रवृत्तियों के अनुसार चरित्र विधान करने से दो प्रकार के चित्रण हम गोस्वामी जी में पाते हैं आदर्श और सामान्य। आदर्श चित्रण के भीतर सात्त्विक और तामस दोनों आते हैं। राजस को सामान्य चित्रण के भीतर लिया जा सकता है। इस दृष्टि से सीता, राम, भरत, हनुमान और रावण आदर्श चित्रण के भीतर आयेगे तथा दशरथ, लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव और कंकैयो सामान्य चित्रण के भीतर। आदर्श चित्रण में हम या तो यहाँ से वहाँ तक सात्त्विक वृत्ति का निर्वाह पायेगे या तामस का। प्रकृति भेद सूचक अनेकरूपता उसमें न मिलेगी। सीता, राम, भरत और हनुमान सात्त्विक आदर्श हैं, रावण तामस आदर्श है।^{१२१०}

स्पष्टता की दृष्टि से पद्मपुराण के पात्रों के सदृश मानस के पात्रों को भी सात भागों में विभक्त किया जा सकता है—

१. राम-पक्ष के पुरुष पात्र—दशरथ, राम, भरत, शत्रुघ्न और लव-कुश।

२. राम-पक्ष के स्त्री पात्र—कौशल्या, सुमित्रा, कंकैयी, सीता मन्थरा, शबरी और अनसूया।

३. रावण-पक्ष के पुरुष पात्र—रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण मेघनाद और अक्षकुमार।

४. रावण-पक्ष के स्त्री पात्र—मन्दोदरी और त्रिजटा।

५. प्रासंगिक कथाओं के पुरुष पात्र—नारद, जटायु, हनुमान, बालि, सुग्रीव अगद, सम्पाति और जनक।

६. प्रासंगिक कथाओं के स्त्री पात्र—तारा, मुनोचना।

७. पौराणिक महापुरुष—वसिष्ठ, विश्वामित्र, परशुराम, काक-भुशुडि आदि।

यदि पुरुष और स्त्री का भेद हटा दिया जाय तो इन पात्रों को अप्रतिष्ठित तीन वर्गों में रखा जा सकता है—१. राम-पक्ष के पात्र ३. रावण-पक्ष के पात्र एवं ३. प्रासंगिक कथाओं के पात्र। इसके अतिरिक्त और भी कुछ गौण पात्रों का मानस में उल्लेख है। यह स्पष्ट है कि पद्मपुराण और मानस में अनेक सामान्य

पात्र है। कुछ पात्रों के नामों में अन्तर है। पद्मपुराण में अनंगलवण और मदन-कुश जिन्हें मिलाकर लवणाकुश कहा गया है, मानस में लव और कुश हैं। पद्मपुराण में राम की माता का नाम अपराजिता है जब कि मानस में कौशल्या। पद्मपुराण में रावण की बहिन का नाम चन्द्रनखा है, मानस में सूर्पनखा (शूर्पनखा)। पद्मपुराण में लकासुन्दरी एक राजकुमारी है और मानस में लकिनी एक राक्षसी है।

‘पद्मपुराण’ और ‘मानस’ के दशरथ के चरित्र में पर्याप्त अन्तर है। पद्मपुराण के दशरथ हमारे सामने नवयौवन से भूषित वपु के साथ प्रस्तुत होते हैं जबकि मानस के दशरथ हमारे सामने वृद्ध राजा के रूप में आते हैं। पद्मपुराण के दशरथ का श्वशुरकुमार के वध से कोई संबंध नहीं है जबकि मानस के दशरथ के साथ श्वशुरकुमार के वध की कथा जुड़ी हुई है। पद्मपुराण के दशरथ वृद्ध कचुकी की अवस्था को देखकर वैराग्य धारण करते हैं जबकि मानस में अपने चौधपन को देखकर वे राज्य का भार राम को देना चाहते हैं। मानस के दशरथ सच्चे रघुवर्षी हैं जिनका नियम है—‘प्राण जाइ पर बचन न जाई’। वे कैकेयी को वर दे देते हैं और राम-प्रियोग में उनके प्राण शरीर छोड़ देते हैं। मानस के दशरथ राम-भक्त हैं, पद्मपुराण के दशरथ जिन-भक्त। पद्मपुराण के दशरथ केकया के वर मांगने पर सज्जाशून्य नहीं होते, वे परम धैर्यशाली और विवेकशील हैं। वे स्वयं भरत को शासन संभालने को कहते हैं। किन्तु मानस के दशरथ में मोह की मात्रा अधिक है और वे सोचबस उत्तर नहीं दे सकते। पद्मपुराण में वे दीक्षा ले लेते हैं जबकि मानस में राम-विरह में प्राण ही त्याग देते हैं। जहाँ पद्मपुराण में दशरथ का चरित्र आदर्शवादी है वहाँ मानस में मनोवैज्ञानिक।

पद्मपुराण और मानस दोनों में ही राम नायक हैं। पद्मपुराण में उनका नाम ‘पद्म’ भी है जबकि मानस में नाम एक ही है—राम जिसके विशेषण अनेक हो सकते हैं। पद्मपुराण के राम ६००० रानियों के स्वामी, विलासी तथा मोह से युक्त हैं किन्तु मानस के राम एतदुत्तरीश्रम, तपस्वी तथा मोहघ्न हैं। मानस के राम का चरित्र कठिन है आदर्श है। डॉ० मानाप्रसाद गुप्त के शब्दों में ‘किसी भी भाँति की वास्तविक प्रतिभा में कभी भी जिन उदात्त गुणों की कल्पना की होगी, कदाचित् उन सबका एक आदर्शतम रूप हमें राम के चरित्र में समाहित मिलता है। उन्हें एक अत्यन्त भव्य शरीर गठन प्राप्त है। किन्तु इससे कहीं अधिक प्रभावोत्पादक है उनकी दृढ़ता, उनकी शोभनीयता, उनकी कृतज्ञता, उनकी निष्कलुष-हृदयता, उनका दृढ़ निश्चय, उनका अदम्य उत्साह, उनकी अन्तःकरण की पवित्रता, उनकी सुशीलता और सबसे अधिक उनका निष्ठावान व्यक्तित्व। अव्यवस्था अनैतिकता, अधार्मिकता और नास्तिकता के स्थान पर व्यवस्था, नैतिकता और

आस्तिकता का संस्थापन करने के लिए एक ऐसे ही पूर्ण चरित्र की ईश्वर के रूप में दिव्य कल्पना कीजिये और यही तुलसीदास के पूर्ववर्ती भारतीय साहित्य के राम हैं। इसी पूर्ण चरित्र में—जैसे और भी पूर्णता भरने में उनकी प्रतिभा नीन होती है।^{१२११} पद्मपुराण के राम के समान ही मानस के राम का व्यक्तित्व भी बहुत आकर्षक है। उनका सौन्दर्य वर्णनातीत है। करोड़ों कामदेवों को लजानेवाले राम की शक्ति भी अतुल है और उनका दील भी। पद्मपुराण में भी राम अपरिमित शक्ति के पूज और दील के भंडार हैं। पद्मपुराण में ब्रह्मावर्त धनुष को चढ़ाकर एवं मानस में शिव-धनुष को तोड़कर राम अपनी शक्ति का परिचय देते हैं तथा पिता की आज्ञा मानकर वे वन के लिए प्रस्थान कर देते हैं। पद्मपुराण के राम की शक्ति का प्रमाण म्लेच्छों को परास्त करने में तथा अनेक युद्धों में पराक्रम का प्रदर्शन करने में मिलता है तो मानस के राम की शक्ति का अलौकिक प्रताप यह है कि 'भृकुटि बिलास सुखि लय होई।' राम तेज बल बुधि की बिपुलाई को सेस सहस्र सत भी नहीं गा सकते हैं। वे दुर्द्धर्ष रावण के सहर्ता हैं। बचपन से ही ताड़का और मारीच जैसे दुष्टों का दमन करने वाले हैं। पद्मपुराण के राम रावण का वध नहीं करने। रावण का वध वहाँ लक्ष्मण के हाथों होता है। इसका कारण जैनों की यह मान्यता है कि नारायण के हाथों प्रतिनारायण का वध होता है, बलदेव के हाथों नहीं। राम बलदेव है, लक्ष्मण नारायण और रावण प्रतिनारायण। पद्मपुराण के राम का चरित्र लक्ष्मण के चरित्र के सामने दब सा गया है जबकि मानस के राम के चरित्र की व्याप्ति समस्त कथानक में है। पद्मपुराण के राम में यद्यपि अरुणागतवत्सलता, कलापारगतता, पत्नी-प्रेम, मातृ-भक्ति आदि गुण हैं, किन्तु उनमें मानस के राम जैसी मर्यादा और लोकरक्षकता नहीं है। मानस के राम मर्यादापुरुषोत्तम होने पर भी भगवान् है। यही कारण है कि पद्मपुराण के राम जहाँ जैनियों के कर्म-गिद्वान्न के आधार पर स्वयं तपस्या करके अन्त में कैवल्य प्राप्त करते हैं और अनेक मासारिक स्थितियों से गुजरते हुए मोक्ष सिद्ध करते हैं वहाँ मानस के राम अपनी लीला दिखाने के लिए सासारिक कृत्यों को करते हैं जिन का लक्ष्य है—धर्म की रक्षा। उनके दशरथ-पुत्र होने में संदेह नहीं, किन्तु उनके पूर्ण ब्रह्म होने में भी प्रश्नवाचक चिह्न नहीं लगता। वे 'ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता, व्यापक, अजित, अनादि अनन्ता' हैं; वे 'सज्जन, पीरा' हरण करने वाले हैं; वे 'गो द्विज धनु देव हितकारी' तथा 'मानुष तनु धारी' 'कृपासिधु' हैं; वे खल-व्रात के भंजक तथा जनरंजक हैं, वे वेद-धर्म रक्षक

हैं; वे धर्मतरु के मूल हैं, विवेक जलधि के पूर्णन्दु हैं, वैराग्याम्बुज के भास्कर हैं, अबघनध्वांत और मोह के नाशक हैं; शरणागतवत्सलता, कृतज्ञता, मुण्डज्ञता, समचित्तता, सत्यसंधता, दीनोद्धारकता तथा एक आदर्श आराध्य में सम्भावित समस्त सद्गुणों के वे आस्पद हैं। वे ब्रह्माशुभुफणीन्द्रसंख्य, वेदान्तवेद्य, विष्णु और जगदीश्वर हैं।

यद्यपि तुलसीदास की दृष्टि से अनेक कवियों द्वारा आलोचित शूर्पनखा की नाक काटना, बालि को छिपकर मारना आदि राम के कार्यकलाप लोककल्याण के लिए उचित बैठते हैं तथापि पहले मानना पड़ेगा कि मानस के राम इन विवादस्पद कार्यों से बचाये नहीं जा सके जब कि पद्मपुराण के राम इन प्रसंगों से साफ बचे हुए हैं। पद्मपुराण में राम अयोध्या में सीता की कड़ी अग्नि परीक्षा लेते हैं तथा लोकापवाद से भयभीत होकर अपने मन में उसकी शुद्धता जानते हुए भी उसे छोड़ देते हैं किन्तु मानस में तुलसी इस प्रसंग तक अपनी कथा बढ़ने ही नहीं देते। 'पद्मपुराण' के राम अन्त में केवली होते हैं, जबकि 'मानस' के राम का अन्त चित्रित ही नहीं हुआ है।

जहाँ तक लक्ष्मण का प्रश्न है, दोनों ही ग्रन्थों में वे विशिष्ट पात्रों में परिगणित हैं। पद्मपुराण में वे अष्टम नारायण हैं और मानस में वे शेषावतार किन्तु पद्मपुराण में उनकी महत्ता राम से भी अधिक है। पद्मपुराण में वे श्यामलवर्ण हैं जब कि मानस में गौरवर्ण। पद्मपुराण में वे ही रावण का वध करते हैं तथा अधिक क्रियाशील हैं जब कि मानस में वे राम के अनुचर के रूप में ही चित्रित हैं। उनका स्वतन्त्र अस्तित्व मानस में उभरकर नहीं आता। मानस के लक्ष्मण दृढ़, निर्भय, उत्सही, निष्कपट, तेजस्वी और शक्तिशाली हैं; वे 'शिवधनु' को उठाकर तोड़ने की क्षमता रखते हैं; वे ब्रह्माण्ड को कच्चे घड़े सदेश फाड़ सकते हैं, किन्तु ये सारे काम वे अपने अग्रज श्रीरामचन्द्रजी की प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिए ही करना चाहते हैं, अपने लिए वे स्वतन्त्र रूप से कुछ नहीं करते मानो उन्होंने अपना जीवन श्रीराम के चरणकमलों में समर्पित कर दिया है। 'मानस' के लक्ष्मण की उग्रता और अमहिम्नुता और कभी-कभी कुछ खटकने वाली निर्भयता भी, जिसका प्रमाण परशुराम-संवाद और भरत-मिलाप-प्रसंग में मिलता है, उनके अनन्य राम प्रेम से दब जाती है। वे वन में रहकर परम सयमी ब्रह्मचारी का जीवन बिताते हुए राम की सेवा करते हैं। किन्तु पद्मपुराण के लक्ष्मण का अस्तित्व राम के चरित्र का पुच्छभूत नहीं है, उनका अस्तित्व राम के समानांतर चलने वाला स्वतन्त्र अस्तित्व है। पद्मपुराण के लक्ष्मण परमविलासी और अनेक रानियों के स्वामी हैं, वे चंचलचित्त युवक हैं, जिसका प्रमाण राम के द्वारा चन्द्र-

नखा को लौटाये जाने पर उसके विषय में उनकी उत्सुकता से मिलता है। पद्म-पुराण के लक्ष्मण एक वीर सामंत योद्धा के रूप में अनेक राजाओं को विजित करते हैं किन्तु मानस में ऐसा कोई प्रसंग नहीं आता। पद्मपुराण में लक्ष्मण सागरा-वर्त धनुष को चढ़ाते हैं जब कि मानस में वे धनुष नहीं चढ़ाते हैं। यहाँ तो राम-चन्द्र के रहते वे धनुष तोड़ना पसंद नहीं करते। मानस के लक्ष्मण की सन्तान की कोई चर्चा नहीं है जब कि पद्मपुराण में उनके दो सौ पचास पुत्र^{१२१२} हैं। पद्म-पुराण के लक्ष्मण मरकर नरक जाते हैं, जबकि मानस में उनके नरक-गमन की कोई चर्चा नहीं है।

भरत का चरित्र पद्मपुराण और मानस दोनों में ही आदर्श रूप में चित्रित है। मातृप्रेम भरत के चरित्र का बहुचर्चित बिन्दु है, किन्तु पद्मपुराण में भरत का चरित्र इतना मार्मिक नहीं है जितना मानस में। पद्मपुराण में भरत के ने गिने-बुने काम हैं—दीक्षा का विचार, राम के समझाने पर राज्यग्रहण, भामंडल आदि से लक्ष्मण-शक्ति का समाचार सुनकर अयोध्या में रण-सज्जा और अन्त में दीक्षा धारण करना। 'मानस' के भरत मदा राम के ध्यान में मग्न हैं और उनके चरित्र से जुड़े हुए प्रधान कार्य हैं—गृह-मिलन, चित्रकूट-यात्रा श्रीराम की चरणपादु-काओं को राज्यमिहामन पर स्थापित कर उनके प्रतिनिधि के रूप में शासनकार्य देखना तथा सजीवनी बूटी ले जाते हुए हनुमान को बाण मारकर गिराना तथा वस्तुस्थिति का ज्ञान होने पर उन्हें अपने बाण पर बिठाकर लंका भेजने की बात कहना आदि। माता को बिकारना और कट्टु शब्द कहना भी मानस के भरत के राम-प्रेम को ही व्यक्त करते हैं। पद्मपुराण के भरत राम के अयोध्या से चलने के समय अयोध्या में ही उपस्थित है जबकि मानस के भरत ननिहाल में। मानस के भरत यदि राम-वन-गमन के समय अयोध्या होते तो शायद वे राज्य ही न सँभालते, भले ही लक्ष्मण की तरह वन को चल पड़ते, अस्तु। पद्मपुराण के भरत की तरह मानस के भरत एक सौ पचास स्त्रियों के स्वामी नहीं है। सीता के साथ भरत की क्रीड़ा की तो तुलसीदास कल्पना भी नहीं कर सकते जब कि रविवर्षण ने बड़े मनोयोगपूर्वक भरत की अपनी भाभियों के साथ जल क्रीड़ा का चित्रण किया है। कुल मिलाकर देखने पर दोनों ही ग्रंथों में भरत को एक विशेकी पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है किन्तु तुलसी के भरत के चरित्र में किसी प्रकार की कमी नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "उनके चरित्र में कई अमूल्य सम्भावनाओं का योग मिलता है। भरत के हृदय का विश्लेषण करने पर उनमें

लोकमीलता स्नेहादंता व्यक्ति और धर्मप्रवणता का मेल पाने हैं ।”^{१२१३}

शत्रुघ्न का व्यक्तित्व दोनों ग्रन्थों में किसी विशिष्ट स्थान का अधिकारी नहीं है। पद्मपुराण में वे दशरथ की सुप्रभा रानी से उत्पन्न हैं और मानस में सुमित्रा से। मानस में वे कैकेयी की करतूतों से क्रुद्ध होकर मथुरा के कूबर पर लात मारते हैं किन्तु भरत के कहने से छोड़ देते हैं। इस कांड से उनके राम-प्रेम और अन्याय का विरोध करने की प्रवृत्ति की व्यञ्जना मानी जा सकती है। पद्मपुराण में मथुरा का प्रसंग है ही नहीं। पद्मपुराण में मधुसुन्दर के साथ युद्ध करने से उसकी वीरता की सिद्धि की जा सकती है। मानस के शत्रुघ्न क्रोधी प्रकृति के हैं, जब कि पद्मपुराण के शत्रुघ्न प्रायः शांत प्रकृति के हैं, जो अन्त में संसार के आकर्षण से विमुख होकर श्रमण हो जाते हैं।

जहाँ तक लक्ष और कुश का सम्बन्ध है, मानस में उनके नाम का संकेत मात्र है और उन्हें विजयी विनयी और गुणों का भंडार कहा गया है।^{१२१३} (अ) किन्तु पद्मपुराण में उनके (लवणांकुश के) चरित्र का विकास भी दिखलाया गया है। पद्मपुराण की मुख्य कथा के वे सक्रिय पात्र हैं जबकि मानस की कथा में वे केवल संकेतित पात्र हैं।

पद्मपुराण और मानस दोनों में राम की माता पुत्रवत्सला है। पद्मपुराण में उसका नाम अपराजिता है और मानस में कौशल्या है। मानस की कौशल्या अपने औरस पुत्र राम के साथ अन्य रानियों से उत्पन्न तीनों पुत्रों को भी परम स्नेह करती हैं। वनगमन के समय वह एक विचित्र स्थिति में हैं क्योंकि एक ओर तो उसके सम्मुख पति के सत्य वचन की श्रद्धा का प्रदन है दूसरी ओर पुत्र-वियोग। राम के लिए उसका आदेश उसकी बुद्धिमत्ता, शिष्टता और मर्यादा का द्योतक है। वह कहती है “यदि पिता ने वनवास दिया है तो माना की आज्ञा प्रधान मानकर तू वन मत जा; यदि पिता और माना दोनों ने कहा है तो चला जा, तेरे लिए वन भी सी अयोध्याओं के समान हो।” मानस की कौशल्या के चरित्र का उसकी सादगी, श्रद्धा, शिष्टता एवं मर्यादा में अधिक प्रभाव पड़ता है। पद्मपुराण की अपराजिता तो पहले एक स्वार्थी स्त्री सी लगती है; वह इसलिए राम के साथ जाना चाहती है क्योंकि—

“पिता नाथोऽथवा पुत्रः कुलस्त्रीणामभी गतिः ।

पितातिक्रान्तकान्ते मे नाथो दीक्षासमुत्सुकः ॥

१२१३(अ) दुःसुत सुन्दर सीमा जाए। लक्ष कुश वेद पुराणन गाए ॥ दोउ विजयी विनयी गुन मन्दिर। हरि प्रतिनिधि मानहुँ अति सुन्दर ॥ मानस उत्तर कांड २४ ।

जीवितस्य त्वमेवैकः साम्प्रतं मेऽवलम्बनम् ।

त्वयापि रहिता साहं वद गच्छामि कां गतिम् ॥^{१२१४}

पद्मपुराण की सुमित्रा सुबन्धुतिलक की मित्रा रानी से उत्पन्न पुत्री और दशरथ की रानी है। इसका नाम 'कैकेयी' है और चेष्टाओं के कारण सुमित्रा भी।^{१२१५} लक्ष्मण इसके पुत्र हैं। मानस में सुमित्रा लक्ष्मण और शत्रुघ्न की माता है एवं दशरथ की कनिष्ठ रानी है। वह गम्भीर, तेजस्विनी एवं भक्त है। लक्ष्मण को राम के साथ वन भेजते समय उन का सिद्धांत यही है—“पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुत होई ॥^{१२१६}

भरत की माता का नाम पद्मपुराण में कैकेयी है और मानस कैकेयी। पद्म-पुराण में वह निखिल-कला-पारगत, वीरांगना, बुद्धिमती एवं मनोविज्ञान की पारखी है। मानस में भी वह अपूर्वमौन्दर्यशालिनी है। पद्मपुराण में वह भरत के दीक्षा लेने के इरादे को बदलने के लिए दशरथ से उसके लिए राज्य मांगती है, वह राम को वन भेजने के प्रति अभिनिवेदिनी नहीं है और वह राम को लौटाने भी जाती है किन्तु मानस की कैकेयी मथुरा के द्वारा बहकायी जाने पर कुटिल हो जाती है एवं दो बरों का माँगकर भरत के लिए राज्य और राम के लिए वनगमन दुन्ही राजा से स्वीकार करा लेती है। वह स्वाधीनभर्तृका एवं स्वार्थ से प्रेरित एक कुटिल नारी के रूप में हमारे सामने उपस्थित होती है। पद्मपुराण में वह अपने किये पर पश्चात्ताप करती है और राम को बहुत मनता है किन्तु तुलसी ने उसे अपने अपराध-प्रकाशन का समय भी नहीं दिया। कभी उसके ग्लानि से गलने की बात कही है और कभी अयोध्या प्रत्यावर्तन पर राम-लक्ष्मण के कैकेयी से बार-बार मिलने का सकेत करके कैकेयी को तुलसी ने अधिष्ठातृ किया है। भाव यह है कि पद्मपुराण की कैकेयी के प्रति रविवेण का दृष्टिकोण प्रतिबद्ध और कटु नहीं है जैसा कि मानस की कैकेयी के प्रति तुलसी का है।

पद्मपुराण में शत्रुघ्न की माता सुप्रभा है किन्तु 'मानस' में सुप्रभा नाम की कोई रानी नहीं है। शत्रुघ्न और लक्ष्मण एक ही रानी के पुत्र हैं।

पद्मपुराण और मानस दोनों में ही सीता जनक की पुत्री और राम की पत्नी हैं। वह अनिष्ट सुंदरी एवं पतिव्रता है। तुलसी ने एक आदर्श मर्यादित नारी के रूप में उन्हें चित्रित किया है। सखियों के साथ पुष्प वाटिका में श्रीराम को देखकर पुलकित जल नयन से युक्त सीता का प्रेमाधिनय, सौंदर्य एवं सज्जाशीलता

१२१४. पद्म० ३१।१७७, १७८

१२१५. पद्म० २२।१७५

१२१६. मानस, अधोष्ठा ४७/१

साक्षात्कृत होती है। स्वयंवर के समय राम में मन ही मन अनुरक्त किंतु गुरुजन संकोच से आक्रांत सीता की शालीनता दृष्टिगोचर होती है। विदा के अवसर पर वे भारतीय कन्याओं की भांति अपने माता-पिता एवं सखियों के गले लग-लगकर रोती है। वनवास के समय वे कैकेयी की आज्ञा से वनोचित वस्त्र धारण कर अपने पति का अनुगमन करती हैं। उस राजबधू को पति के साथ वन भी राज-महल प्रतीत होता है। चित्रकूट में वे अपनी सास तथा अन्य गुरुजनों की मन से सेवा करती हैं। वे आतिथेयता सत्कार का अनुपम उदाहरण हैं। रावण को भिक्षा देती हैं। अशोकवाटिका में हम उनकी निर्भयता एवं पति-धर्मपरायणता का साक्षात्कार करते हैं। हनुमान से बातें करते हुए उनकी बुद्धिमत्ता और सावधानता व्यक्त होती है। तुलसी ने उनमें दाम्पत्य-प्रेम और सव्य-सर्वक भाव की भक्ति का सुन्दर सामंजस्य दिखाया है। भाव यह है कि मानस की सीता पुत्री, बधू, पुत्रवधू, भाभी आदि अनेक रूपों में हमारे सम्मुख आदर्श उपस्थित करती है। एक स्थान पर सीता का चरित्र कुछ हल्का-सा दिखाई देता है जबकि वे लक्ष्मण को सद्विध दृष्टि से देखती हुई उससे 'मरम बचन' बोलती है। किंतु यह स्थल सकेतात्मक ही है।

तुलसी की सीता उद्भवस्थितिसहारकारिणी जगज्जननी है और रविषेण की सीता एक भूमिगोचरी राजा की पुत्री। यही कारण है कि मानसकार ने उन्हें परम मर्यादित एवं आदर्श रूप में देखा है जबकि पद्मपुराणकार ने उन्हें अधिक मनोवैज्ञानिक रूप में चित्रित किया है। मानस में उनका रूप-वर्णन सकेतात्मकता के साथ किया गया है जबकि पद्मपुराण में उनके स्तनादि का अनेक स्थानों पर खुला वर्णन किया गया है। तुलसी की सीता रामभक्त है जबकि रविषेण की जिन-भक्त। अपने-अपने दृष्टिकोण से दोनों का ही सीता-चित्रण जोर का है। साहित्यिक दृष्टि से रविषेण आगे है और मर्यादावादी सांस्कृतिक दृष्टि से तुलसी।

पद्मपुराण में रावण का चरित्र अत्यधिक उदात्त तथा उज्ज्वल रूप में चित्रित किया गया है। वह अष्टम प्रतिनारायण है जिसके अपने सिद्धान्त हैं। मानस का रावण एक राक्षस है जिसका कार्य ससार को कष्ट देना है। पद्मपुराण में राम और रावण की लड़ाई सत्य और प्रतिसत्य की लड़ाई है जबकि मानस में सत्य और असत्य की। रविषेण ने रामकथा को रावणपक्षीय पात्रों की ओर से देखने का प्रयत्न किया है, जबकि बाल्मीकि और तुलसी ने राम-कथा को रामपक्षीय पात्रों की ओर से देखा है। तुलसी रावण के प्रति उदार नहीं हैं क्योंकि वह अधर्म का प्रतीक है, वह तपस्या करके भी यही वर माँगता है कि 'हम काहू के मारे न

भारे"; वह कोई धर्म का आचरण नहीं करता। यद्यपि उसकी सुख-सम्पत्ति, सुत, सेना, सहायक, जय, प्रताप, बल, बुद्धि और बड़ाई नित्य नूतन बढ़ती जाती है किंतु वह "ध्रुवमुपचितो मुह्यति सलः" के अनुसार ब्राह्मण-भोजन-यज्ञ-हवन में बाधा डलवाता है। उसकी यह आज्ञा है—सुनहु सकल रजनीञ्च जूषा। हमरे बेरी विविध बरूषा ॥ ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सकल रिपु जाहिं पराई ॥ तिन्ह कर मरण एक विधि होई। कहहुं बुझाइ सुनहुं अब सोई ॥ द्विज भोजन, मल, होय सराधा। सबकं जाइ करहु तुम बाधा ॥^{१२१७}

वह अनेक राजाओं को अपने अधीन करता है तथा अनेक किन्नर, देव, यक्ष, गंधर्व, नर एवं नागों की कन्याओं से विवाह कर लेता है।^{१२१८} गो-ब्राह्मणधन धर्म-ध्वंसी रावण के पापों का कोई ठिकाना नहीं है। वह निशाचर है, कपटवेश धारण करके सीता-हरण करता है तथा जटायु को घायल करके सीता को लका के अशोक-वन में छोड़ देता है जहाँ उसे वह भनेक भय दिखाता है। वह अपार अभिमानी है। राम की ब्रह्मता का आभास प्राप्त कर लेने पर भी तथा विभीषण और मदोदरी आदि के समझाने पर भी वह सीता को लौटाने के लिए उद्यत नहीं होता और अपनी हठधर्मिता पर अटल रहकर भगवान् राम के हाथों युद्ध में मारा जाता है। राम-भक्ति भी उसके मन के अन्दर देखी जा सकती है जबकि राम को भगवान् समझकर वह हठपूर्वक उनसे बैर करके मरना चाहता है। अपनी आद्या शक्ति सीता का ध्यान करने के कारण भगवान् उसे मरणांश परात अपना घाम देते हैं।

पद्मपुराण का रावण सुंदर, रमणीयाकृति तथा मनोहर है जबकि मानस का भयंकर। पद्मपुराण के रावण के एक मुख तथा दो बाहु हैं, दशाननत्वं तो उसे हार में प्रतिबिम्ब दिखाई देने से प्राप्त होता है जबकि मानस के रावण के दस मुख तथा वीस भुजाएँ हैं।

दोनों का रावण शूरवीर तथा विजेता है किन्तु पद्मपुराण का रावण अत्याचारी नहीं है; वह किसी गो-ब्राह्मण का हन्ता नहीं है जैसा कि मानस का रावण है। पद्मपुराण के रावण के रूप-शील-सौन्दर्य के वशीभूत होकर अनेक कन्याएँ उसे वरती हैं तथा वह भी राजा से अनेक कन्याओं से रमण करता है जबकि 'मानस' का रावण पराजित राजाओं की कन्याओं से विवाह करता है (जो कि विवशता का ही परिचायक है।)

१२१७. मानस, बाल कांड १८१।२-४

१२१८. मानस, बाल कांड १८५।२(ख)।

पद्मपुराण का रावण विनयी, सहिष्णु, प्रजापालक, धर्माधर्मविवेकी, गम्भीर नीतिज्ञ तथा उदात्त है जबकि 'मानस' का अविनयी, असहिष्णु, प्रजोन्धेदक, अधर्मी अभिमानी तथा निकृष्ट। पद्मपुराण का रावण सच्चा मनोयोगी साधक है जो 'बहुरूपिणी' विद्या सिद्ध करके ही उठता है, चाहे वानर उसे कितना ही कष्ट दें किन्तु मानस का रावण यज्ञ-विध्वंस पर बौखला उठता है तथा सिद्धि नहीं कर पाता। पद्मपुराण के रावण द्वारा युद्धभूमि में शक्तिनिह्न लक्ष्मण को देखने की राम को अनुमति देना तथा कुम्भकर्ण को वरुण की स्त्रियों को बन्दी बनाने पर फटकार देना—आदि कार्य ऐसे हैं जिनके समान किसी कार्य का 'मानस' के रावण में सद्भाव नहीं दिखाई देता।

मंक्षेप में पद्मपुराण का रावण अधिः उदात्त है, वह अपने वंश का नाम करने वाला है तथा मानस का रावण पुलस्त्य ऋषि के वंश-रूपी चन्द्र का कल्क।

मानस का कुम्भकर्ण भूधराकार है। वह तगाड़े आदि बजाये जाने पर उठता है। उठते ही रावण को मीताहरण के लिए बुरा-भना कहता है और राम-भक्त विभीषण की प्रशंसा करता है किन्तु मदिगपान और माम-भक्षण करके वह आपे से बाहर होकर गर्जना करता है। वह रणधीर है और वानर-सेना में ब्राह्म-ब्राह्मि मचा देने वाला है। वह अपने मुष्टि-प्रहार से हनुमान को चक्कर खिला देता है। इसी प्रकार के अनेको विकट काम करना हुआ वह राम के द्वारा मारा जाना है। किन्तु पद्मपुराण में कुम्भकर्ण मारा नहीं जाता, वह केवल बन्दी बनाया जाना है। और मुक्त होने पर दीक्षा ले लेता है। पद्मपुराण में वह शीनवान् है और अनत-बल केवली की शरण में उसने नित्यप्रति जिनेन्द्र-वन्दना करने की प्रतिज्ञा की है।

विभीषण का चरित्र दोनों कवियों ने अपनी-अपनी व्याख्याओं से सँवारने का प्रयत्न किया है। घर के भेदी लका डहाने वाले विभीषण के देशद्रोह और भ्रातृ-द्रोह को 'मानस' में रामभक्त का पट्ट देकर परिमार्जित कर लिया गया है किन्तु पद्मपुराण में कुछ काल के लिए वह इन दोषों से मुक्त नहीं होता। मानस में विभीषण के द्वारा दशरथ-जनक-हत्या का प्रयास, रावण के साथ खम्भा उखाड़ कर लड़ने की ओषभरी सज्जा तथा अयोध्या का नवनिर्माण आदि चित्रित नहीं है। हाँ, राम के द्वारा उसको 'लकेश' कहा जाना दोनों ग्रन्थों में वर्णित है। राम के परामर्शदाता के रूप में वह दोनों ग्रन्थों में चित्रित है। रावण-वध के बाद वह दोनों ग्रन्थों में दुःखी होता है।

पद्मपुराण और मानस में रावण के इन पुत्रों का उल्लेख हुआ है—मेघबाहन, इन्द्रजित् और प्रक्षकुमार। पद्मपुराण में पहले दो आते हैं और मानस में बाद के दो। अक्षकुमार का तो हनुमान के द्वारा वध होता है और मेघनाद हनुमान-बन्धन

और लक्ष्मण-शक्ति का कारण है। वह सच्चा वीर और पत्नीव्रत है। पद्मपुराण में मेघवाहन और इन्द्रजित् की चर्चा है। इन्द्रजित् हनुमान् को बाँधकर रावण के सामने लाता है। वह विभीषण को भी खरी-खोटी मुनाता है किन्तु युद्ध में उसका लिहाज भी करता है।^{१२१} पद्मपुराण में इन्द्रजित् मारा नहीं जाना, बन्दी बनाया जाता है और अन्त में दीक्षा ग्रहण करता है।

खर-दूषण दोनों ग्रन्थों में छोटा-सा चरित्र है। पद्मपुराण में खरदूषण एक ही पात्र है जबकि मानस में 'खर' और 'दूषण' नामधारी दो पात्र हैं। पद्मपुराण का खरदूषण रावण का बह्नोंई है। वह चन्द्रनखा का हरण करता है तथा लक्ष्मण से युद्ध करता हुआ मारा जाता है। मानस में खर और दूषण रावण के भाई लगते हैं जिनका राम से युद्ध होता है इस युद्ध से उनका भगिनी-प्रेम स्पष्ट होता है।

मानस की मन्दोदरी राम भक्त के रूप में हमारे सामने आती है। वह सदैव रावण को समझाती हुई ही दिखाई देती है। वह बार-बार कहती है कि रावण को सीता राम के पास वापस भेज देनी चाहिए। जब राम के बाण से रावण का मुकुट और मन्दोदरी के ताटक गिरते हैं, तभी वह इसे अपशकुन समझकर रावण को समझाने लगती है। वह राम के विश्वरूप का भी वर्णन करती है। रावण-मरण पर किये गये विलाप में भी वह राम को 'अग्न जगनाथ', 'हरि' और 'निरामय ब्रह्म' कहकर पुकारती है। इस पात्र के चरित्र में एक और भी बात मिलती है और वह है उसकी रावण के प्रति भावना। मन्दोदरी कई बार रावण को नीच तक कह देती है। पद्मपुराण की मन्दोदरी का चरित्र मानस की मन्दोदरी से कहीं ऊँचा है। वह अपने पति को 'नीच' आदि नहीं कहती। राम-भक्ति के अनन्य पक्षपाती तुलसी रावण को उसके अभिन्न परिवर्तनों से भी अनादृत कर असत् की सर्वत्र गर्हणा दिखाना चाहते थे किन्तु रविषेण ऐसा नहीं करता। 'मानस' की मन्दोदरी राम की ब्रह्मता में ही उनमग्न रह जाती है किन्तु पद्मपुराण की मन्दोदरी का चरित्र चन्द्रनखा-हरण-प्रसंग, मन्दोदरी-सीता-संवाद, रावण-मन्दोदरी-संवाद तथा दीक्षा-ग्रहण आदि के समय निरंतरता दिखाई देता है। जब रावण के लिए रविषेण की उदात्त भावना है तो मन्दोदरी के प्रति क्यों न होनी?

१२११. वानर सेना का ध्वंस करके इन्द्रजित् ने विभीषण को सामने आया देखकर इस प्रकार बिचार किया है—

“नातस्यास्य च को भेदो म्यायो यदि निरीदयते ।

ततोऽभिमुखमेतस्य नावस्थातुं प्रणम्यते ॥ (पद्म०, ६०।१२३)

रावण की बहिन का नाम पद्मपुराण में चन्द्रनखा है और मानस में सूर्यनखा । बचवटी में धूमती हुई वह राम लक्ष्मण से विवाह की प्रार्थना करती है । राम उसे लक्ष्मण के पास और लक्ष्मण राम के पास भेजते हैं । बाद में लक्ष्मण उसके नाक और कान काट देते है जिससे वह खरदूषण और रावण के पास शिकायत करती है । यद्यपि दोनों ग्रन्थों में ही उसे कुटिल दिवाया गया है तथापि उसका चरित्र पद्मपुराण में अधिक विस्तृत, मनोवैज्ञानिक एवं युक्तिपूर्ण है ।

‘मानस’ में ‘त्रिजटा सीता से महानुभूति रखने वाली राक्षसी के रूप में चित्रित है । पद्मपुराण में उसकी चर्चा नहीं है । पद्मपुराण की लंकामुन्दरी और मानस की लंकिनी मे पर्याप्त अन्तर है । पद्मपुराण की लंकामुन्दरी वीरांगना और भावुक बाला है जबकि मानस की लंकिनी एक निश्चिरी है जिसका वध हनुमान करते है जिसे वह अपना अहोभाग्य समझती है क्योंकि रामदूत के मुष्टिप्रहार से उसकी गति हो जाती है । पद्मपुराण और मानस के हनुमान के चरित्र मे आकाश-पाताल का अन्तर है । पद्मपुराण में हनुमान विलासी है किन्तु मानस मे वे अखण्ड ब्रह्मचारी रामभक्त । पद्मपुराण के हनुमान् खर-दूषण हंता राम के प्रति क्रुद्ध भी हो जाते है किन्तु मानस मे ऐसी सम्भावना भी नहीं की जा सकती । पद्मपुराण के हनुमान् का रावण और सुग्रीव से सम्बन्ध है किन्तु मानस के हनुमान का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है । मानस के हनुमान परम रामभक्त, चतुर, वीर, शक्तिशाली, बन्दर, और विकट योद्धा है । वे सुरसा के मुख से निकलकर अपनी चतुरता का, समुद्रलघन, लंका दहन, द्रोण गिरि-आहरण आदि से वीरता और शक्तिमत्ता का, अक्षकुमार, इन्द्रजित् और रावणादि के साथ युद्ध करने मे अपने योद्धृत्व का एवं सीता और राम के साथ वार्तालाप से अपने विनय का परिचय देते हैं । वे निर्भीक, विवेकी, जितेन्द्रिय तथा धार्मिक है । विभीषण उनका स्वागत करता है । ‘एक प्रकार से हनुमान का चरित्र दास्यभक्ति का प्रतीक है । राम की आज्ञास्वता और विवेक, भरत का वैराग्य और रामभक्ति, लक्ष्मण का शौर्य और रामसेवा, रावण का पौरुष और प्रवण्डता कुम्भकर्ण का शैर्य और घड़क और निज का बुद्धिचातुर्य, अतुल बल और मनोजब इन गुणों का समीकरण गोस्वामी जी के हनुमान हैं ।’

बालि, दोनों ग्रन्थों में सुग्रीव का बड़ा भाई है । पद्मपुराण में वह मुनि हो जाता है । मानस का बालि मायावी दैत्य का वध करता है तथा बाद में वह सुग्रीव का शत्रु बन जाता है वह तारा के समझाने पर भी नहीं मानता और सुग्रीव से युद्ध करता है । अन्त मे वह राम द्वारा ताड़ वृक्ष की ओट से मारा जाता है और मरते-मरते अंगद को श्रीराम के हाथ सौंप जाता है । स्पष्ट है कि मानस

के बालि का चरित्र अधिक मार्मिक है।

सुग्रीव का चरित्र प्रायः दोनों ग्रंथों में एक सा ही है। वह बालि का अनुज है। पद्मपुराण में वह साहसगति विद्याधर के द्वारा उपद्रुत होता है एवं राम की सहायता लेता है जबकि मानस में वह बालि का विरोधी है एवं उससे भयभीत है। राम के द्वारा अपने विरोधी का वध कर दिये जाने पर वह प्रमाद कर बैठता है, किंतु लक्ष्मण के क्रोध से रास्ते पर आ जाता है और श्रीराम की सहायता करता है।

शंख का उल्लेख उभयत्र हुआ है और चरित्र भी प्रायः समान ही है। उसका कार्य राम की सेवा करना और रावण को अपमानित करना है किन्तु पद्मपुराण में यह सुग्रीव का पुत्र है जबकि मानस में वाली का। पद्मपुराण में वह योद्धा, साहसी, मुन्दर, प्रभावक और रसिक है। वह रावण की स्त्रियो की दुर्दशा करता है किन्तु रावण के विद्या सिद्ध कर लेने पर भाग खड़ा होता है जिससे उसकी चतुरता भी सिद्ध होती है। सुग्रीव के दीक्षा लेने पर वह राजा होता है।

मानस का अगद बनवान् है। वह उद्दण्ड भी है और रावण को बुरा भला कहता है। पैर जमाकर खड़ा होने में वह एक आतंककारी व्यक्तित्व का प्रकाशन करता है। मेघनाद का यज्ञ-भंग करने में भी वह सबसे आगे है। रावण-वध के बाद राम का वह विशेष स्नेह-भाजन बन जाता है और उनके गले का हार प्राप्त करता है।

जनक दोनों ही ग्रंथों में सीता के पिता और राम के स्वसुर है किन्तु इनके परिचय और चरित्र में पर्याप्त अन्तर है। पद्मपुराण के जनक के साथ विभीषण से आतंकित होकर दशरथ सहित कौतुकमगल नगर में भाग जाने की कथा जुड़ी हुई है जबकि मानस में ऐसी कोई घटना जनक से सम्बद्ध नहीं है। मानस के जनक विदेहराज है और योगियो के भी योगी है। सीता-स्वयम्बर के समय वे शिव-घनुष को चढ़ाने की शर्त पर अपनी पुत्री सीता के विवाह की घोषणा करते हैं। राम के द्वारा घनुर्भंग किये जाने पर वे परम आनन्दित हैं। वे अतिथि-सत्कार-कर्ता, विनीत और वात्सल्य के अवतार हैं। वारात के लिए अनेक सुविधाओं का प्रबन्ध करने, दशरथ के साथ प्रेम से मिलने, सीता की विदा के समय आँखों में आँसू भर लाने और तपस्वी वेष में पुत्री तथा जामाता को देखकर विह्वल हो जाने आदि से उपर्युक्त तथ्य पुष्ट होता है। वे राजर्षि हैं। इस प्रकार जनक संतानप्रेमी, आत्माभिमानी, सरल, विनयी, आदर्श मित्र, राजा, स्वसुर और पिता के रूप में उपस्थित हुए हैं। मानस के जनक अधिक विद्वान् और आध्यात्मिक हैं।

जाम्बवान् दोनों ग्रंथों में हनुमान् को लंका जाने की राय देता है और एक

परामर्शदाता के रूप में चित्रित किया गया है।

जटायु दोनों ग्रन्थों में रावण का विरोधी, यथाशक्ति पराक्रमी एवं राम सीता का सहायक मित्र होता है। मानस में उसका अधिक मार्मिक चित्रण हुआ है जब कि पद्मपुराण में उसके चरित्र को बुद्धिसंगत बनाने का ही प्रयत्न किया गया है। राम के द्वारा उसे दिव्य शरीर की प्राप्ति होती है।

पद्मपुराण में सुतारा सुग्रीव की पत्नी है किन्तु मानस की तारा बालि की पत्नी और अगद की माना है। वह बालि को राम के विरुद्ध न लड़ने का परामर्श देती है और बालि की मृत्यु पर विनम्र करती है। राम उसे उपदेश देते हैं। मानस में उसके चरित्र का अधिक विकास हुआ है।

पौराणिक महापुरुष पात्रों में नारद का नाम उल्लेखनीय है। दोनों ही ग्रन्थों में नारद का चरित्र महत्वपूर्ण है। पद्मपुराण का नारद कथा से संबंधित तथ्यों को उधर से उधर पहुँचाता है और मानस का नारद राम को अवतार के लिए विवश करता है। दोनों का अपना-अपना महत्त्व है।

मानस में कुछ ऐसे पात्र हैं जो कि पद्मपुराण में नहीं आते जैसे मंथरा, शबरी, अनसूया, संपति, बसिष्ठ, विद्वामित्र, जित, निषाद, काकभुङ्गि और सुलोचना आदि। इनका कोई विशेष चरित्र-चित्रण नहीं हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन से रविषेण और तुलसी के चरित्र-चित्रण-कौशल का परिचय हमें मिला जाता है। चरित्र-चित्रण के मूल मंत्र मनोविज्ञान का ज्ञान दोनों को है। फिर भी अपने अपने दृष्टिकोण के अनुसार एक ने कुछ पात्रों को अधिक सुन्दरता के साथ चित्रित किया जाता है तो दूसरे ने अन्य पात्रों को। रविषेण ने पृथ्वी, रावण, सीता, लवणाकुश, मन्दोदरी, लकामुन्दरी और हनुमान् आदि का चरित्र बड़े मनोयोग और विस्तार के साथ चित्रित किया है। उसने रावण की तो कायापलट ही कर दी है जिसका परिचय पीछे दिया जा चुका है। मानस में राम, दशरथ, भक्त, कीसल्या, सुमित्रा, कुमकर्ण, इंद्रजित्, जनक और नारद उल्लेखनीय पात्र हैं जिनके चरित्र-चित्रण में तुलसी ने पर्याप्त मनोवैज्ञानिक दक्षता से काम लिया है। मक्षेपण, राम-पक्ष के चरित्रों को तुलसी ने अधिक निम्नारा है और रावण-पक्ष के चरित्रों को रविषेण ने, जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि दोनों कवि पात्रों के चरित्र के सफल चित्रे हैं।

पद्मपुराण और रामचरितमानस का भावपक्ष : जहाँ तक भावसम्पदा का प्रश्न है दोनों कवि उसके धनी हैं किन्तु तुलसी का मर्यादावादी दृष्टिकोण उन्हें बहुत कुछ सांकेतिक शैली के वर्णनों के लिए प्रेरित करता रहा है। पद्मपुराण का संयोग शृंगार स्वच्छन्द, उन्मुक्त एवं विस्तृत है जब कि मानस का संयोग शृंगार पूर्ण मर्यादित एवं

सूक्ष्म, क्यों कि तुलसी मर्यादा पुरुषोत्तम की रति का अतिरंजित वर्णन करके 'इदं पित्रोः संभोगवर्णनमिवात्यंतमनुचितम्' नहीं सुनना चाहते थे और न अपने दृष्ट को इतरजनसाधारण बनाना चाहते थे जबकि रविवेण को इसकी कोई चिन्ता न करके एक उच्च कोटि का साहित्यिक तथा आकर्षक पौराणिक काव्य प्रस्तुत करना था। रविवेण अंजना और पवनंजय के सम्भोग का वर्णन करते समय दोनों के आलिंगन का, पवनजय के द्वारा अंजना को निनिमेष देखने एवं मुख-चुम्बन से पूर्व उसके चरण, कर, नाभि, स्नान, ठोड़ी, कनगटी एवं नेत्रों के चुम्बन करने का, अधर-पान का, अंजना के नीवीविमोचन का, सम्भोग के समय 'छोड़ो' 'छहरो' 'पकड़ लो' (निष्ठा मुच, गृहाण) आदि शब्दों का, अधरप्रहण पर अंजना के सीत्कार का, अंजना के जघनस्थल पर पवनंजय के द्वारा किये गये नवक्षतों का तथा अन्य अनेक चेष्टाओं का खुला वर्णन करते हैं जबकि तुलसी राम और सीता के पुष्प-वाटिका-मिलन का वर्णन करते समय बड़ी व्यञ्जनापूर्ण शैली में राम और सीता के, पारम्परिक अनुराग का परम मर्यादिन और मनोरम चित्रण करते हैं—

ककन किकनि तूपुर धुनि सुनि । कहत लखन मन रामु हृदयें गुनि ॥

मानहुँ भदन दुहुभी दीन्ही । मनसा बिम्ब बिजय कहैं कीन्ही ॥

अम कहि फिरि चितन तेहि ओरा । सिय मुख मसि भए नयन चकोरा ॥

भाग बिलोचन चारु अचचल । मनहुँ मकुचि निमि तजै दिगंचल ॥

देखि सीय सोभा मुखु पावा । हृदयें सराहत बचनु न आवा ॥

जनु विरचि सब निज निपुनाई । विरचि बिस्व कहैं प्रगटि देखाई ॥१२०॥

यह प्रसंग शृंगार की दृष्टि में सर्वश्रेष्ठ है किन्तु इसमें मांकेतिता और सूक्ष्मता अधिक है जोकि पद्मपुराण के संभोग-वर्णन में नहीं है।

वियोग-वर्णन दोनों ग्रन्थों में समयानुसार हुए हैं। मानस के अरण्यकाण्ड में सीता के विरह में राम की दशा^{१२१} एवं सुन्दरकाण्ड में राम के विरह में सीता

१२२० मानस, बालकाण्ड, २३०

१२२१ आश्रम देखि जानकी हीना । भाग बिकल जन प्राकृत दीना ॥
हृद गुनबानि जानकी सीता । रूप मील व्रत नेम पुनीता ॥
नखिमन समुझाए बहु भानी । पुष्टन बनें लना तरु पाती ॥
हे खग मृग ? मधुकर श्रेणी । तुम्ह देखी सीता भृगुनयी ॥
खंजन सुक कपोत मृग सीता । मधुप निकर कोकिला प्रवीणा ॥
कुद कली दाहिम दामिनी । कमल मरद ससि अहिधामिनी ॥
बहने पाम मनोज धनु हस्ता । गज केहरि निज मुनत प्रसंता ॥
धीकल कनक कदवि हरपायी । नेक न सक मकुच मन माही ॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आज । जगै सकल पाद जनु राज ॥
किम सहि जान अनख नांदि पाही । प्रिया बेगि प्रकटसि कस नाही ॥
गहि बिधि श्रीव्रत विलपन स्वामी । मनहुँ महा विरही अति कामी ॥

की दशा वियोग-वर्णन के उदाहरण के रूप में लिये जा सकते हैं। पद्मपुराण और मानस के वियोग-वर्णनों की तुलना करने पर कहा जा सकता है कि तुलसी ने “जानु प्रीतिरम एतनेहि माँही” जैसे व्यजनापूर्ण वाक्यों से वियोग की मार्मिक व्यजना करके अपनी भाषा की समासशक्ति को और कल्पना की समाहारशक्ति का परिचय दिया है जब कि रविवेण ने कविसमयक्यातियों तथा अन्य साहित्यिक मान्यताओं का उपयोग करने हुए अपने विस्तृत वर्णन-कौशल का परिचय दिया है।

यद्यपि पद्मपुराण के समान मानस में भी अन्य रसों की अपेक्षा हास्य रस की अभिव्यक्ति अत्यल्प हुई है, तथापि नारद-प्रसंग, शिव-वाराण, लक्ष्मण-परशुराम-सवाद, अगद-रावण-सवाद तथा विवाह के अवसर पर भर्थादित हास्य की अभिव्यक्ति हुई है। यद्यपि हास्य की अभिव्यक्ति की दृष्टि से तुलसी कुछ आगे है किन्तु इस रस के लिये रुमान दोनों कवियों का नहीं है।

पद्मपुराण और मानस के करुण रस के अभिव्यजन के विषय में भी वही निष्कर्ष दिया जा सकता है जो वियोग के विषय में। मानस में करुण रस का माक्षान्कार, राम-वन-गमन पर दशरथ की दशा,^{१२२} लक्ष्मण-मूर्च्छा पर राम-विलाप^{१२३} तथा कुछ अन्य वर्णनों में होता है। मानस के इन प्रसंगों में अनुभावादि के, थोड़े से बहुत कहने की शैली में, कारुणिक दृश्य उपस्थित किये गये हैं जबकि पद्मपुराण के करुण रस के प्रसंगों में अनुभावाद को सागोपाग वर्णित किया गया है। जहाँ मानस में—“करहि बिलाप अनेक प्रकारा। परहि भूमि तल बारहि बारा ॥” कहकर शोक की व्यजना कर दी गयी है वहाँ पद्मपुराण में अनेक प्रकार के विलाप और भूमिपात आदि का वर्णन किया गया है।

रौद्र-रस की व्यजना दोनों ग्रन्थों में अवसरानुसार हुई है। मानस के धनुष-यज्ञ में, जनक के “बीर बिहीन मही मैं जानी” कह देने पर तमके हुए लक्ष्मण की उक्ति^{१२४} में रौद्र रस की अभिव्यजना हुई है। रौद्र रस के चित्र खींचने में रविवेण और तुलसी दोनों ही सफल हुए हैं किन्तु रविवेण विस्तारवादी प्रतीत होते हैं जबकि तुलसी संक्षेपवादी।

१२२—आसन सन विभूषन हीना। परेउ भूमितल निपट मनीना ॥

नेइ उमासु मोच एहि भाँती। सुरपुर ते जनु छैसैउ जबाती ॥

तेन मोच भरि छिनु-छिनु छानी। जनु जरि पछ परेउ मपाती ॥

राम-राम कह राम गनेही। पुनि कह राम सखन बेदेही ॥

(मानस, अयोध्याकाण्ड, १४८)

१२२३ मानस, लङ्काकाण्ड, ६०-६१

१२२४ मानस, वासकाण्ड, २५३

वीर रस की अभिव्यक्ति में पद्मपुराण मानस से पर्याप्त आगे है। विविध युद्धों के दौरान रणबाँकुरे वीरों के उत्साह एवं उनकी वीरता की चेष्टाओं का वर्णन करते समय लगता है कि मानो रविषेण युद्धस्थल में किसी मंचान पर बैठे हो और उस युद्ध को उन्होंने फिल्मा लिया हो जिसका प्रदर्शन हमारे सामने हो रहा है। जब रविषेण हमारे सामने वीरों की उभितयाँ प्रस्तुत करते हैं तब लगता है मानो रविषेण ने उन्हें टैप रिकार्ड कर लिया हो। इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि मानस में वीर रस की सफल अभिव्यक्ति नहीं हुई। जटायु-रावण-युद्ध तथा किष्किन्धाकाण्ड-सुन्दरकाण्ड-लकाकाण्ड के अनेक प्रसंगों में वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है। अयोध्याकाण्ड में भरत को आते हुए देखकर शक्ति निपादराज की उक्ति में उसका उत्साह देखते ही बनता है।^{१२२५}

मानस में भरत के अयोध्या-प्रवेश पर अयोध्या की भयानकता एवं युद्ध की भयानकता के वर्णन^{१२२६} के अवसर पर भयानक रस की अभिव्यक्ति हुई है किन्तु पद्मपुराण में रावण के द्वारा कैलाश के कम्पन के वर्णन में हा-हा-हुँ-ही-आदि शब्दों से जो साक्षात् भय की अभिव्यक्ति होती है वैसी अभिव्यक्ति मानस में अपेक्षाकृत कम है। वस्तुतः कठोर रसों की अभिव्यक्ति में तुलसी रविषेण की समता नहीं कर सकते।

बीभत्स रस की अभिव्यक्ति के अवसर पद्मपुराण में अधिक है। मानस के लकाकाण्ड में भी उसके अवसर आये हैं। युद्ध में बहने वाली रुधिर की नदी, गीघो के द्वारा आँत खींचने, जोगिनियों के द्वारा खप्पर में खून भरने एवं गीदड़ों के द्वारा कट-कट करके हड्डी खाने आदि के वर्णन में बीभत्स रस की व्यञ्जना हुई है।^{१२२७}

१२२५ हाँटु मँजाइल राकह घाटा । डाउह सकल करि के दाटा ॥
मनमुख मोह भरत मन लेऊँ । जिवन न सुखमि उलग्न देऊँ ॥
मम मरनु पुनि सुखमि नीग । राम काजु छन भगु सरीग ॥
भरत भाइ नुपु मे जन नीचु । बडे भाग अम पाडय मीचु ॥
म्यामि काज करिहउ रन रागे । अस धर्मान्हउ भुवन दग चारी ॥
नजई प्राण रघुनाथ निहोरे । दुह' राध मूढ मोक्ष मारे ॥

(मानस, अयोध्याकाण्ड, १९०-१९१)

१२२६ देखिग, मानस, लङ्काकाण्ड ८७

१२२७. मञ्जहि भूत पिशाच बेताला । प्रमथ महा छोटिग कराला ॥
काक कंक लै भुजा उड़ाही । एक ते छीनि एक लै खाही ॥

×

×

×

अद्भुत रस के अवसर मानस में अनेक आये हैं। विशेषकारणपर राम तो 'कर्तुमकर्तुमग्यचाकर्तुं समर्थ' हैं, फिर भला उनके चरित्र से सम्बद्ध कथानक में अद्भुतता क्यों न होनी ! बचपन में राम का विराट् रूप-दर्शन (बाल० २०१-२०२), देवताओं की उपस्थिति (उत्तर० ७८-८०), पुष्पवर्षा, प्रकृति पर राम का अनुशासन, हनुमान के ममुद्रलघनादि लोकोत्तर कृत्य, शिवधनुर्भंग आदि अनेक प्रसंग इसके उदाहरण हैं। श्रीराम का विराट्-रूप-दर्शन-प्रसंग उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

देखरावा मातहिं निज अद्भुत रूप अखड ।

रोम-रोम प्रति लागे कोटि-कोटि ब्रह्मांड ॥

अगनित रवि ससि सिव चतुरानन । बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन ॥

काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ । सोउ देखा जो सुना न काऊ ॥

देखी माया सब बिधि गाढी । अति सभौन जोरे कर ठाढ़ी ॥

देखा जीव नचावइ जाही । देखी भगति जो छोरइ ताही ॥

तन पुलकित मुख बचन न आवा । नयन मूढ़ि चरननि सिख नावा ।

बिसमयवन देखि महनारी । भग बहुरि सिमुरूप खरारी ॥^{१२२८}

शांत रस की अभिव्यक्ति भगत की आत्मग्लानि, दशरथ की आत्मसंतुष्टता, कैकेयी की आत्मग्लानि आदि प्रसंगों में हुई है। पद्मपुराण में शांत रस की अभिव्यक्ति के स्थलों में विरादना और वर्णनात्मकता अधिक दृष्टिगोचर होती है किन्तु मानस के शांत रस के प्रसंगों में साक्षिपत्ता अधिक है।

जिम प्रकार पद्मपुराण में जिनेन्द्र की भक्ति के अनेक प्रसंग भक्तिरस के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हुए हैं उसी प्रकार मानस में भी रामभक्ति और शिव-भक्ति के सूचक स्थलों में भक्ति रस का उन्मेष दिखायी पड़ता है। निर्भर भक्ति के प्रार्थी तुलसी ने अनेक पात्रों के द्वारा की गयी स्तुतियों में तथा काशो के आरम्भ में दिये गये श्लोकों में भक्ति रस की कलकलनिर्नादिनी और शीतलतादायिनी धारा प्रवाहित की है। तुलसी की अहंनुकी भक्ति की जो भात्मिकता तथा सहज

सर्वार्थ गीध और नष्ट भग । जनु वसी नेनस चिन दग ॥

बहु बट बहाइ बड़ खग आसी । जनु नावहि नेनहि मरि माही ॥

आगिन भरि-भरि खप्पर सचहि । भूत पिताच बधू नम नचहि ॥

×

×

×

जबुक निकर कटकट कट्टहि । सोस परे महि जय जय दोलहि ॥

(मानस, लङ्काकाण्ड, ८७।१-५)

भावुकता है वह पद्मपुराण की जिनपूजा-प्रचाराभिव्यक्तिनी भक्ति में नहीं है। तुलसी ने हृदय खोलकर रख दिया है, जबकि रविवेण ने हृदय के साथ अपने मस्तिष्क को भी अपने लक्ष्य के प्रति जागरूक रखा है।

मानस में राम-लक्ष्मणादि की बालक्रीड़ा^{१२१} कौशल्या-भरत-भेट तथा चित्रकूट में जनक-सीता-भेट आदि प्रसंगों में वात्सल्य रस की अभिव्यक्ति हुई है। वियोग-वात्सल्य की अभिव्यक्ति, सीता के पितृगृह से विदा होने के प्रसंग में, हुई है।^{१२२}

जिस प्रकार पद्मपुराण में रसादि में परिगणित रमाभास आदि के उदाहरण मिलते हैं, उसी प्रकार मानस में भी उनके उदाहरण मिलते हैं।

मानस में नियंगत रति का सकेत वहाँ मिलता है जहाँ कि कामदेव की माया फैलने पर जलचर और थलचर पशु-पक्षी भी कामवश हो जाते हैं।^{१२३} प्रताप-भानु के प्रति अभिव्यक्त कपटमुनि के प्रेम को भावाभास के उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है।^{१२४} भावोदय और भावशान्ति की स्थिति वहाँ देखी जा सकती है जहाँ कि क्रोधी परशुराम का क्रोध शान होता है एवं विरमय उदित होता है। सीता द्वारा मुद्रिका देखने पर हर्ष और विषाद की एक साथ अनुभूति किये जाने पर भाव-संधि देखी जा सकती है। भावशबलता का उदाहरण राम के डम कथन में पाया जा सकता है—

१२२०. बान चरित हरि बहु बिधि कोन्हा । अरि अनद दासन्ह कहँ दोन्हा ।

भाजन करत बोन जब राजा । नहि आबत तजि बान समाजा ॥

कौमल्या जब बानन जाई । दुमुकु-दुमुकु प्रभु चान्हि पराई ॥ आदि

मानस, बालकाण्ड, २०२-२०३

१२३०. पुनि पुनि मि नन माखिन्ह बिनपाई । बान बन्धु त्रिमि धेनु लनाई ।

बधु समेन जगक नव आये । प्रेम उमगि लाचन अन छाये ।

सीम बिनोकि धीरता भागी । रहे कहावत परम बिरागी ॥

सींहि रायें उर लाद जानकी मीठी । महा मरजाद ग्यानकी ।

मानस, बालकाण्ड, २३६-२३७

१२३१. पशु पक्षी नम जल धन चारी । अप काम नस समथ बिसारी ।

मदन अन्ध व्याकुल सब लोका । निगि विनु नहि अवलोकिहि कोका ॥

मानस, बालकाण्ड, २४३

१२३२. सुनु महीस अमि नीति जहँ तहँ नाम न कहहि गुण ।

मोहि तोहि पर अति प्रीति सोइ बलुरता बिचारि तब ॥

मानस, बालकाण्ड, १६३

“सकट न दुखित देखि मोहि काऊ । बधु सदा तब मुदुल सुभाऊ ।
मम हिन लागि तजेहु पिनु माता । सहेउ विपिन हिम आतप बाता ॥”

(मानस ६।६०।२)

यहाँ लक्ष्मण के विषय में राम के मति, शका, विषाद, निश्चय आदि भाव एक साथ प्रकट हुए हैं।

समस्त रस-व्यजना पर दुःखापात करने पर एक बात स्पष्ट सामने आती है कि रविषेण शास्त्रस्थितिसंपादन के शौकीन है, इसीलिए उनके रस-व्यजना के स्थल विस्तृत हैं और कहीं-कहीं उनमें कुछ बोझिलता भी आ गयी है जबकि मानस में व्यजना से और साकेतिकता से रसाभिव्यक्ति हुई है। मानस के मगलाचरण में ‘रसानां’ का ध्यान में रखने वाले तुलसी का रसाभिव्यजना भले ही विपुल विभावादि के सप्रवेश वाली न हो किन्तु है बड़ी मार्मिक।

कल्पना-वैभव के यद्यपि दोनों ही कवि धनी हैं तथापि रविषेण ने अपने कल्पना-वैभव का प्रदर्शन विषद रूप में किया है और तुलसी ने पाठकों की कल्पना की परीक्षा लेने के लिए अपनी कार्यावली प्रतिभा को सूक्ष्म एवं मार्केतिक रूप में ही प्रस्तुत किया है।

पद्मपुराण और मानस दोनों ही ग्रन्थों में विचारतत्त्व अनुस्यूत हैं। पद्मपुराण जिन-दीक्षा पर केन्द्रित है तो रामचरितमानस भक्ति के सिद्धांत पर।

‘नातापुराण नेगमागमसम्मत रघुनाथगाथा-निबन्ध’ तुलसी के व्यापक-गंभीर अध्ययन एवं निर्भर भक्ति का परिणाम है जिसका मूल विचार है श्रेय और प्रेय की सिद्धि के लिए आदर्श रामराज्य की स्थापना, जो समस्त प्रचलित मत-मनातरो के सद्गुणों का समन्वय करना दिव्यार्प देता है। राम दैवी प्रवृत्ति के प्रतीक हैं और रावण अधर्म का। अधर्म के ऊपर धर्म की विजय दिव्याकर समार में कल्याण का प्रसार करना ही मानस का दर्शन है। राम तुलसी के आराध्य हैं, वे परब्रह्म हैं; वे ‘ब्रह्मायम्भुफणी-प्रमंथ्य वेदान्तबेश विभु जगदीश्वर’ हैं, वे सर्वदा पुरुषोत्तम भगवान् हैं, जो अपनी आद्या शक्ति के साथ सर्वव्यापक हैं।—‘व्यापक अजित अनादि अनन्त’ ‘गीय राम मय मय जग जानी’। उनकी भक्ति ‘सकल सुख-दायिनी’ है, उसका ज्ञान में भी बहकर स्थान है। मायायय जीव को अज्ञाना-घकार-ध्वसनाथ भक्ति-रूपी मणि ग्रहण करनी चाहिए।^{१२३}

तुलसी का विचार है कि समार में जब-जब धर्म की हानि होती है। एवं अभिमानी अधम अमुर बढ़ते हैं, तब तब प्रभु शरीर धारण करके सज्जनों की

पीडा हरते हैं। वे पतितपावन, दीनोद्धारक, शरणागनवत्सल, मर्यादाशक्त, जग-
रंजन, खल-भंजन तथा भक्त-प्रेमवर्ण हैं।

इस प्रकार मानस का विचारतत्त्व पर्याप्त स्फुट है। बालकाण्ड का आदि
और उत्तरकाण्ड का अन्त तो विचार-मणियों का आकर ही है; अतएव 'बाल
का आदि उत्तर का अन्त। जो जाने सो पूरा सन्त'—आभाणक प्रचलित है।
मानस में ज्ञान-विज्ञान-दर्शन-आकरणादि शास्त्र का विचारतत्त्व के परिवर्द्धन में
पर्याप्त योग है। अधिक क्या, वर्णाश्रम-धर्म के समस्त आदर्श विचारों की प्राप्ति
मानस में होती है जिसकी पूर्ण व्याख्या पर्याप्त स्थान-सापेक्ष है।

दोनों ग्रन्थों के विचारतत्त्व पर विचार करने के अनन्तर स्पष्ट प्रतीत होता
है कि 'पद्मपुराण' का विचारतत्त्व अपनी पृथक् सत्ता रखता है, वह क्या पढ़ते
समय यदि छोड़ भी दिया जाय तो कोई हानि नहीं होती, जबकि 'मानस' का
विचारतत्त्व कथा में घुला-मिला है। दूसरे शब्दों में 'पद्मपुराण' के विचार और
भावना का 'निलतण्डुल' सम्बन्ध है जबकि 'मानस' के उन दोनों का 'तीरक्षीर-
सम्बन्ध' है। कभी-कभी तो लगता है कि रविप्रेम ने जैन-सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का
प्रचार करना मुख्य मान लिया है और राम-कथा कहना गौण, किन्तु मानसमें
ऐसा नहीं है। वहाँ पद-पद पर दूसरे के मन का खण्डन या अपने धर्म की दुहाई
नहीं दी गयी है। वहाँ तो साकेतिक शैली में सूक्ष्मता के साथ भाव-माला में
विचारमणि ग्रथित किये गये हैं। किसी भी धर्म या सम्प्रदाय को मानने वाला
मानस को पढ़े, उसे आनन्द ही आएगा किन्तु 'पद्मपुराण' को यदि वैदिक
धर्मानुयायी पढ़ें तो उसे ऐसे श्लोक पढ़कर आनन्द नहीं आएगा जिनमें ऋषियों
की निन्दा हो, यज्ञ को पातक की मजा प्रदान की हो, वेद को कुग्रन्थ कहा हो
तथा अहिंसावादियों के द्वारा ऐसी कठोर वाणी का प्रयोग किया गया हो—

‘भृगुर्गङ्गाजिग वाह्निः कपिलाऽत्रिविदस्तथा ।

अन्ये च बहवोऽज्ञानाज्जाता वल्कलतापसाः ॥

स्त्रिय दृष्ट्वा कुचित्तास्ते पुंस्त्रिंशद्वाप्राप्ताः ।

पिदधुर्मोहसछन्नाः कोपीनेन नराधमाः ॥१२२६

एक नहीं, ऐसे अनेक उदाहरण पद-पद पर आते हैं, जिन्हें पढ़कर जैन-
आचार्यों की इस घोर साम्प्रदायिकता पर हँसा भी आने लगती है। 'पद्मपुराण'
के विचार-तत्त्व के स्थलों पर जब पारिभाषिक शब्दों की बाढ़ आती है, अनु-
प्रेक्षाओं के वर्णन चलते हैं, स्वर्गों के नाम चलते हैं, 'अजैयंष्टव्यम्'—आदि पर

जटिल शास्त्रार्थ चलते हैं तो सहृदय पाठक एक बार तो त्राहि-त्राहि कर उठता है, किन्तु मानस में ऐमा नहीं है; वहाँ रसभारा विच्छिन्न नहीं होती। इसका कारण स्पष्ट है कि पद्मपुराण की रचना प्रतिक्रियात्मक तथा आर्य-परम्परा की खण्डयित्री है जबकि मानस की रचना समन्वयेच्छा एवं लोकनिर्माणेच्छा से प्रेरित भक्ति का फल।

पद्मपुराण और मानस का कलापक्ष : पद्मपुराण और मानस पौराणिक शैली के काव्य हैं। पद्मपुराण की शैली के विषय में सप्तम अध्याय में लिखा जा चुका है। जहाँ तक मानस की शैली का प्रश्न है, इसमें साहित्यिक अवधी के साथ-साथ ब्रजभाषा, छत्तीसगढ़ी, खड़ी बोली और अरबी-फारसी के भी कुछ शब्दों का प्रयोग हुआ है। यह एक अतिमज्जुल भाषा-निबन्ध है। काण्डारम्भ के समय सस्कृत के छन्द प्रयुक्त हुए हैं। राम-कथा के अतिरिक्त अनेक प्रासंगिक कथाओं की कवि ने अच्छी संगति बैठायी है। कवि ने पाठक को भक्ति की ओर उन्मुख करने का सफल प्रयास किया है। मुख्य छन्द-दोहा-चौपाई है। अलंकार अत्यन्त स्वाभाविक हैं। डाक्टर माताप्रसाद गुप्त के शब्दों में—गुलसीदास की अनुपम शैली का सौन्दर्य उसकी शृङ्गता, उसकी सुबोधता, उसकी सरलता, उसकी चारुता, उसकी रमणीयता, उसके लालित्य और उसके प्रवाह में है, और ये गुण 'रामचरितमानस' में चरम उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं। 'रामचरितमानस' की शैली सरल तथा आठम्बरविहीन है। कवि उसे किसी ऐसी वस्तु से सजाने का प्रयास नहीं करता जो पाठक के ध्यान को काव्य की दृष्टि से हटा सके। यह स्वाभाविक तथा स्वतःप्रवर्तित है। शब्द बिना किसी सतर्क प्रयास के कवि के मस्तिष्क में अपने आप आते हुए प्रतीत होते हैं। उसमें एक अद्भुत प्रवाह है। कवि के विचारों का शृङ्खला का—जिनको वह प्रायः पूर्वापर क्रम से पाठक के सम्मुख रखता है—समझने में बहुधा कठिनाई नहीं होती है। उसकी वाक्य-रचना इतनी सीधा है कि उसको समझने के लिए किसी प्रकार के अन्वय की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसकी शैली गुलिलित तथा सुचारु है। प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर आवश्यक प्रतीत होता है। शब्द छोटे हैं और समास निर्माण की ओर कोई प्रयास परिष्कृत नहीं होता और ध्वनि-सकलन ऐसा है जो श्रोता के कानों को कही भी कर्कश प्रतीत नहीं होता होता। प्रधान रूप से 'मानस' की की शैली की विशेषता ये है।^{१२१}

पद्मपुराण और रामचरितमानस दोनों ही पौराणिक शैली के काव्य हैं

किन्तु दोनों की शैली में पर्याप्त अन्तर है। पहला संस्कृत भाषा में लिखित है तो दूसरा प्रधानतः अवधी में; पहले में अनुष्टुप् छन्द प्रधान है तो दूसरे में दोहा-चौपाई; पहले में धार्मिकता कविता पर हावी है तो दूसरे में वह उसमें घुली-मिली, पहले में अभिधा के द्वारा लम्बे वर्णन हुए हैं तो दूसरे में व्यंजना के द्वारा छोटे; पहले में अलंकारों का पूर्ण प्रकर्ष एवं चमत्कार है तो दूसरे में स्वाभाविक सन्निवेश। मानस की शैली सरल है तथा पद्मपुराण की प्रौढ़; पहले के लिए सहृदय भक्त पाठक अपेक्षित है और दूसरे के लिए सहृदय विद्वान्।

पद्मपुराण और रामचरितमानस दोनों के ही कर्ताओं का भाषा पर पूर्ण अधि-कार है। पद्मपुराण की भाषा पर साहित्यिक दृष्टि से विचार सप्तम अध्याय में किया जा चुका है। जहाँ तक मानस की भाषा का प्रश्न है, यद्यपि उसमें यत्रवचित् बघेली, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी (तहर्बा, जहर्बा) बुंदेलखंडी (जानब) राजस्थानी, (मेला), गुजराती (जूनधनु) मराठी, खड़ी बोली (तब किया) अरबी, फारसी (गरीबनिबराजू तथा माहिब) प्राकृत-अपभ्रंश (खप्परिन्ह, खग्ग, जल्लुज्ज, जुज्जहि) के शब्दों का प्रयोग हो गया है तथापि उसमें प्रधानतः संस्कृत, ब्रजभाषा तथा अवधी ही प्रयुक्त हुई हैं। संस्कृत का प्रयोग, कविता के प्रारम्भ^{१२३५} और अन्त^{१२३७} के लिए, कांडों के आदि में मंगलाचरण^{१२३८} के लिए तथा ब्राह्मणो^{१२४१} और देवताओं के मुख से भगवान् की स्तुति के लिए हुआ है।

मानस की संस्कृत के विषय में एक बात कह देनी उचित है कि यह संस्कृत कहीं-कहीं हिन्दी का रूप धारण कर गयी है यथा—

१२३५. वर्णानामर्थसंधाना रमाना छन्दसामपि ।

मंगलाना च कर्तागे वन्दे बाणीविनायकी ।

(मानस, बालकाण्ड भारम्भ १)

१२३७. पुण्य पापहर मदा शिथकर विज्ञानभक्तिप्रद

मायासाहसनापह सुविमल प्रेमाम्बुपुरं शुभम् ।

श्रीमद्रामचरितमानसमिव भक्त्वावगाहन्ति ये

ते समारपतगघोरकिण्ठदहन्ति नो मानवा ॥ (मानस, ७।१३०।२)

१२३८. मूल धर्मनगाविकेकजलधे . पूर्णन्दुमानन्द

बैराग्याम्बुजभास्कर ह्यधधनध्वान्तापह तापहम् ।

मोहाभोधरपुनपाटनविधौ स्व.सम्भव शाकर

वन्दे ब्रह्मकुल कलाकलमन श्रीरामभूप्रियम् ॥१॥ (अरण्यकांड, आरभ श्लोक १)

१२३९. नमामोऽमीशाननिर्धाररूप विभुव्यापकं ब्रह्मवैदरूपम्,

(ब्राह्मणकुल शिवस्तुति) (उत्तरकाण्ड, १०७।१-८)

‘स्फुरन्मौलिकल्लोलिनी चालङ्गा ।

लसद्भालबालेन्दु कण्ठे भुजङ्गा ॥’

×

×

×

चिदानन्दसन्दोह मोहापहारी, ।

प्रसीद प्रसीद प्रभो ! मन्मथारी ॥^{१२४०}

यहाँ शिवजी के विशेषण विशुद्ध संस्कृत के रूप नहीं है। इसी प्रकार अन्य अनेक उदाहरण लिये जा सकते हैं।

ब्रजभाषा का उपयोग कविता की गति के लिए नहीं हुआ है और न इसके द्वारा किसी तथ्य या घटना का प्रकाशन ही हुआ है। केवल पूर्ववर्ती वृत्ति में वर्णित कथावस्तु को भव्यता देने के लिए तथा उसकी भव्य पुनरावृत्ति के लिए ही ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। विविध ‘छन्द’ इसके प्रमाण हैं। उदाहरण के लिए अबधी की चौपाइयों के बाद आये इस छन्द को लिया जा सकता है—

‘केहरि नाद भालु कपि करही । डगमगाहि दिग्गज चिक्करही ॥

चिक्करहि दिग्गज डोल महि गिरि लाल सागर भरभरे ।

मन हरष समगंधर्व मुर मुनि नाग किनर दुख टरे ॥

कटकटहि मर्कट विकट भट बहु कोटि कोटिन्ह घाबही ।

जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुनगन गावही ॥^{१२४१}

किन्तु मानस की ब्रजभाषा पूर्ण विशुद्ध नहीं है।

‘मानस’ की सर्वप्रधान भाषा अबधी है जिसमें समस्त कथानक कहा गया है। जिस अबधी के ग्रामीण रूप को अनेक स्फुरियों ने काव्यभाषा बनाया था, उसे ही तुलसी ने परिमार्जित साहित्यिक रूप दिया। मानस की भाषा के विषय में डा० गोविंदराम का कथन द्रष्टव्य है—‘तुलसी की भाषा का सौन्दर्य उसकी सरलता, सुबोधता और लालित्य पर अवलम्बित है। मानस की भाषा प्रवाहमयी, परिष्कृत और आडम्बरहीन है। उसमें स्वाभाविकता और सजीवता है। वाक्य-रचना मीठी-मादी और सरल है। वाक्यों में शब्द यथास्थान जड़े हुए प्रतीत होते हैं। उनके अर्थ को समझने में कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती। भाषा और भाव दोनों में सुन्दर सामंजस्य दिखाई देता है। विषय के अनुसार मानस की भाषा कही सरल, कही मधुर और कही ओजस्विनी दिखाई देती है। विविध रसों और भावों को व्यक्त करने की उसमें पूर्ण क्षमता है। लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग भी मानस में यथास्थान हुआ है। इसके प्रयोग से भाषा में मर्यादा सजीवता और

१२४० मानस, उत्तर० १०७ दोहे के बाद ।

१२४१ मानस, सुन्दर० ३४ के बाद ।

व्यावहारिकता आ गयी है। मानस की भाषा साहित्यिक होकर भी सरल, सहज और जनमुलभ है। उसमें वह वेग और प्रवाह है जो कि एक जीवित भाषा में होना चाहिए। मानस की भाषा की इस सरलता और सुबोधता के कारण ही तुलसी भारतीय जनता के हृदय में स्थान बना सके हैं।^{१२४२} कोमल प्रसंगों में तुलसी की भाषा जैसे नाचती चलती है यथा—

‘कंकन किकिनि नूपुर बुनि सुनि । कहत लखन सन रामु हृदय गुनि ॥’^{१२४१}
परन्तु वही युद्ध आदि के कठोर प्रकरणों में कठोर हो जाता है :—

‘बोल्सहि जो जय जय मुंड रंड प्रचंड सिर बिनु धावही ।
खप्परिन्ह लग अलुखि जुझहि सुभट भटन्ह डहावही ॥
बानर निसाचर निकट भईहि रामबल दपित भए ।
संग्राम अंगन सुभट सोबहि राम सर निकरहि हए ॥’^{१२४४}

इस प्रकार तुलसी की भी भाषा को अवसरानुकूल साहित्यिक भाषा कहा जा सकता है जो कि एक महाकाव्य के लिए उपयुक्त होनी है।

दोनों ग्रंथों की भाषा पर विचार करने पर हमें ज्ञात होता है कि दोनों ही कवियों का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। यदि रविवेण ने अवसरानुकूल, भावाभिव्यञ्जिका, गतिशील, आत्मकारिक तथा मूर्तिविधायिनी विद्युद्ध साहित्यिक संस्कृत भाषा का प्रयोग किया है तो तुलसी ने अपने देश-काल के अनुसार जन-मनोऽवगाहिनी, अवमगदशिनी, संस्कृत-व्रज-महिता, भावाभिव्यञ्जनक्षमा साहित्यिक अवधी का। तुलना करके उनके उत्कर्षापकर्ष का कथन करना ही कठिन है क्योंकि दोनों अपने-अपने क्षेत्र में पूर्ण प्रभु तथा अद्वितीय हैं।

पद्मपुराण की छन्दोयोजना पर सप्तम अध्याय में विचार किया जा चुका है। मानस के मंगलाचरण में ‘छन्दसामपि’ कहने वाले तुलसा के छन्दोयोजना—कौशल में कोई संका ही नहीं होनी चाहिए। प्रबन्धानुरूप छन्दोयोजना के धनी तुलसी ने यद्यपि पुरातनपरम्पराप्राप्त दोहा-चौपाई छन्दों को प्रधान रूप में अंगीकार किया है तथापि प्रसंगानुकूल अन्य छन्द भी मानस में संयोजित किये हैं। इससे एक ओर प्रबंधकथा प्रवाह की मसृणता एवं क्षिप्रता अक्षुण्ण बनी रही है और दूसरी ओर स्थान-स्थान पर अभिनव छन्द-सौष्ठव से प्रबन्ध कलेवर की सुन्दर संचटना का संपादन भी हो गया है। दोहा, चौपाई, महित मानस में प्रयुक्त छन्द

१२४२ ‘हिन्दी के आधुनिक काव्य’ पृष्ठ ९५

१२४३ मानस, बाल २२९।१

१२४४. मानस, ल का. ८७ के बाद का छन्द

द्विविध हैं (अ) ग्यारह वर्णवृत्त एवं आठ मात्रावृत्त । वर्णवृत्तों में अनुष्टुप्^{१२४५} इन्द्रवज्रा^{१२४६} तोटक^{१२४७} नगस्वरूपिणी (प्रमाणिका)^{१२४८} भुजंगप्रयात^{१२४९} मालिनी^{१२५०} रथोद्धत^{१२५१} वसन्ततिलका^{१२५२} वंशस्थ^{१२५३} शार्दूलविक्रीडित^{१२५४} और स्रग्धरा^{१२५५} एवं मात्रावृत्तों में दोहा^{१२५६} सोरठा^{१२५७} चौपाई^{१२५८} तोमर^{१२५९} डिल्ला^{१२६०} त्रिमंगी^{१२६१} हरिगीतिका^{१२६२} और चौपड्या^{१२६३} प्रयुक्त हुए हैं । कुल मिलाकर मानस में १६ छन्द प्रयुक्त हुए हैं ।

इनमें अनुष्टुप्, शार्दूलविक्रीडित वसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा, मालिनी, वंशस्थ नगस्वरूपिणी, स्रग्धरा आदि छन्दों के द्वारा एक ओर तो महाकाव्य के प्रत्येक कांड के आदि में मंगलादि का विधान हुआ है दूसरी ओर इन तथा अन्य हरि-गीतिकादि छन्दों के द्वारा 'अवसानेऽन्यवृत्तकैः' वाले नियम का परिपालन भी । 'अनुष्टुप्' का प्रयोग ग्रन्थारम्भ, कथाविस्तार, धान्ति-उपदेष्टा और सर्वसाधारण-वृत्तान्त आदि के लिए किया जाता है । 'मानस' में अनुष्टुप् ग्रन्थारम्भ के लिए प्रयुक्त है । कवि ने शार्दूलविक्रीडित में प्रायः अपने अभीष्ट देव के शक्ति-शील-सौन्दर्य के चित्र खींचे हैं । मात्रिक छन्दों में ही कवि ने क्रम रखा है । दोहा और सोरठा प्रायः कथा-प्रवाह में विश्राम देते हैं । कही बेनीति प्रकट करते हैं तो कही दार्शनिक तथ्यों का प्रकाशन करते हैं । प्रायः कथाप्रवाह का निर्वाह आठ चौपाइयों के अन्तर दोहे या सोरठे के क्रम से ही हुआ है (यद्यपि यत्र-तत्रचित् इसके अपवाद भी हैं) । इसमें कथाप्रवाह में क्षिप्रता एवं गतिमत्ता बनी रही है । श्रुति, नाद और गीतों की अनेक विशेषताओं को चौपाई में निविष्ट कर कवि ने विभिन्न वातावरणों

-
१२४५ मानस, बालकांड, मगनाचरण, श्लोक १ १२४६ वही अयोध्याकांड, मगन १	
१२४६ वही, अयोध्याकांड, मगनाचरण, श्लोक ३ १२४७ वही, उत्तरकांड मगन १	
१२४७ वही, उत्तरकांड १००।१०२	१२४६ वही, बालकांड १ तथा अन्य अनेक
१२४८ वही, अरण्यकांड ३।१-१२	१२४७ वही, बालकांड ५ तथा अन्य अनेक
१२४९ वही, उत्तरकांड १०७	१२४८ वही, बालकांड १-८ आदि
१२४९ मुन्दरकांड मगनाचरण, ३	अनेक स्थान
१२४९ वही उत्तरकांड, मगनाचरण, २	१२४९ वही, अरण्यकांड १९
१२४९ वही, मुन्दरकांड, मगन, २	१२६० वही, " (१९) ख के परचात्
	का छन्द
१२४९ वही, अयोध्याकांड, मगन, २	१२६१ वही, बालकांड, २१० के बाद
	का छन्द
	१२६२ वही, बालकांड २३५ के बाद का
	छन्द
	१२६३ वही, बालकांड, १८४ के साथ
	का छन्द

का साक्षात् अंकन कर दिखाया है। चौपाई के अनन्तर परिमाण के अनुसार 'हरिगीतिका' छन्द का प्रयोग है जिसमें किसी भाव, व्यापार, दृश्य या परिस्थिति को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने का प्रयत्न हुआ है। प्रायः उल्लासमय वातावरण के वर्णन के लिए इसका प्रयोग हुआ है। स्तुतियों में तोटक एवं भुजंगप्रयात का सौन्दर्य निम्नरा है तो तोमर का उपयोगित्व युद्ध के वर्णनों में है।

'मानस' के छन्दोनिर्वाचन के वैशिष्ट्य का प्रकाशन श्री राजपति दीक्षित के शब्दों में इस प्रकार किया जा सकता है—“गोस्वामीजी की प्रबन्ध-धारा मानों उनके सम्स्कृत वर्णिकों के शुभ हिमशिलाखण्ड में प्रसृत होकर चौपाइयों की समभूमि में सहज स्वाभाविक गति में चलती है; मार्ग में दोहा-मोरटो के मोड़ पर विधाम करनी हुई, समय-समय पर प्रसंग एवं भावावेश रूप वायु के झकोरों से बिन्नोडित होकर अपनी मनमोहक लहरों में सजीव चित्र दिखाने के लिए हरि-गीतिका, चौपस्या, त्रिभंगी, प्रमाणिका, तोटक और तोमर आदि के क्षेत्र में अपनी डटलाहट दिखानी कल-कल नाद करनी हुई उत्तरोत्तर गमसागर में लीन हो जाती है।” १२६४

जहाँ तक छंदों की सख्या का प्रश्न है, पद्मपुराण में मानस से दुगुने से भी अधिक छंद प्रयुक्त हुए हैं। तुलसी ने किसी छंद का स्वतः निर्माण नहीं किया है जबकि रविशेष ने कुछ छंदों की कल्पना स्वतः भी की है। रविशेष ने ४२वें पर्व बहुत जल्दी-जल्दी छंद परिवर्तन किया है किन्तु तुलसी ने कहीं भी इतनी शीघ्रता से छंद नहीं बदले हैं।

अलंकारों के प्रयोग में रविशेष और तुलसी दोनों ही जागरूक हैं। दोनों ने ही प्रायः अप्रुथग्यत्ननिर्बल्य अलंकारों का प्रयोग किया है, यद्यपि एकाध स्थल पर रविशेष सायास अलंकारों की योजना में भी तत्पर दिखायी देते हैं। यदि रविशेष लक्षणालङ्कृती वाच्य कहकर अलंकारों के प्रति सचेष्टता को द्योतित करते हैं तो तुलसी 'आखर अरब अलङ्कृति नाना' के द्वारा अपने अलंकाराधिकार की व्यंजना करते हैं। पद्मपुराण के अलंकारों का सोदाहरण उल्लेख सप्तम अध्याय में किया जा चुका है। मानस में अनेक अलंकार प्रयुक्त हुए हैं किन्तु रूपक, उपमा एवं उत्प्रेक्षा तुलसी के अत्यन्त प्रिय अलंकार हैं। मानस का तो नाम ही रूपक अलंकार का उदाहरण है। प्रसिद्ध विद्वान् बी० ए० स्मिथ ने तुलसीदास की उपमाओं को कालिदास की उपमाओं से चारुतर स्वीकार किया है। मानस में प्रयुक्त मुख्य अलंकारों के नाम अधोलिखित हैं:—यमक, श्लेष, रूपक, अपह्नुति, दीपक, निदर्शना, व्यतिरेक, उपमा, उत्प्रेक्षा, विभावना, विषम, रूपकातिशयोक्ति, परिसंख्या,

अर्थापत्ति, यथासंख्य, प्रत्यनीक, स्वभाबोक्ति, अर्थातिरन्यास, कारणमाला आदि जिनके उदाहरण तुलसी के काव्य का परिचय देने वाले ग्रन्थों के लेखकों ने अनेक स्थानों पर दिये हैं। यहाँ हम स्थानानुरोध से उनके उदाहरण नहीं दे रहे हैं। संसृष्टि और संकर के भी अनेक उदाहरण तुलसी के मानस में प्राप्त होते हैं।

पद्मपुराण और मानस में प्रयुक्त अलंकारों की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि यद्यपि दोनों ही अलंकारों का सौन्दर्य दर्शनीय है किन्तु ग्रन्थों की पृथक् भाषा तथा काव्य-पद्धति में कुछ भेद होने के कारण अलंकार-योजना में भी अंतर है। पद्मपुराण के कर्ता ने अपने ग्रन्थ को संस्कृत-साहित्य का एक प्रौढ तथा आकर्षक ग्रन्थ बनाने के लिए लालायित होकर जहाँ अलंकारों के विस्तृत उदाहरण प्रस्तुत किये हैं वहाँ मानस के लोकसंग्रही कवि ने जनमानस तक मानस को पहुँचाने के लिए अलंकारों का सरल और संक्षिप्त प्रयोग किया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा भेदोंनों ही कवि परम सफल हैं। किसी की भी अचरोत्तरता सिद्ध नहीं की जा सकती, क्योंकि दोनों की काव्यभाषा, काव्यप्रणाली, काव्य परिस्थिति एवं मनोवृत्ति पृथक् है जिसके कारण अलंकार योजना में कहीं प्रौढि और कहीं सरलता का आश्रय लिया जा सकता है।

‘पद्मपुराण’ और ‘मानस’ दोनों ही पौराणिक काव्य हैं। पुराणों में वक्ता और श्रोताओं की शृंखलाएँ जुड़ती चली जाती हैं। पद्मपुराण के संवादों की चर्चा सप्तम अध्याय में की जा चुकी है जिनमें श्रेणिक-गणधर-संवाद आधारभूत है। ठीक इसी पद्धति पर मानस की प्रस्तावना में चार वक्ता-श्रोता दिव्यार्द्र पड़ते हैं। ‘मानस धर्मग्रन्थ भी है और काव्यग्रन्थ भी। इसीलिए उसमें धर्मग्रन्थ पुराणों की तरह शृंखलाबद्ध संवाद रखे गये हैं।’^{१२५५}

इनके अतिरिक्त भक्ति, ज्ञान और धर्म आदि पर आधारित और भी अनेक संवाद चलते हैं। कुछ संवाद कथा के भाग भी हैं। कुछ में सघर्ष और मनोविज्ञान सामने आता है तो कुछ परिस्थितिविशेष के चरित्रों एवं घटनाओं को गति देते हैं। कुछ संवादों के केवल निर्देश ही मिलते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि ये संवाद ज्ञान, कर्म और भक्ति आदि का निरूपण करने के लिए ही हैं क्योंकि काकभुशुण्डि भक्ति का, शिव ज्ञान का और याज्ञवल्क्य कर्मकाण्ड का प्रतिपादन करते हैं। परन्तु संवादों की योजना का उद्देश्य यह प्रतीत नहीं होता। बाल्मविकता यह है कि तुलसी ने अनेक श्रोता और वक्ताओं के माध्यम से नाना भाँति के तर्कों का समाधान कर दिखाया है। एक प्रकार के संवाद और भी मिलते हैं,

जैसे—‘सीता-जनसूया-संवाद’ तथा ‘राम-नारद-संवाद’। इनमें कवि के अपने ही दृष्टिकोण सामने आते हैं।’

कथा भाग को गति देने वाले संवादों को पं० विश्वनाथ मिश्र ने दो भागों में विभक्त किया है—(१) सभा-संवाद और (२) गोष्ठी-संवाद। सभा-संवादों में लक्ष्मण-परशुराम-संवाद, भरत-राम-सभा-संवाद, जनक-सभा-संवाद, हनुमान-रावण-संवाद और अंगद-रावण-संवाद मुख्य हैं। गोष्ठी-संवादों में मिथिला की सखियों का संवाद, मन्थरा-कैकेयी-संवाद, राम-सीता-संवाद, केवट-राम-संवाद, रावण-मन्दोदरी-संवाद और शूर्पणखा-राम-लक्ष्मण-संवाद आदि आते हैं। इन सभी के उदाहरण मानस में देखे जा सकते हैं। इन संवादों में कहीं-कहीं, किसी आलोचक की दृष्टि से, मर्यादा का उल्लंघन हो गया है यथा—अंगद-रावण-संवाद में।

पद्मपुराण और मानस के संवादों पर तुलनात्मक दृष्टि डालने पर ज्ञात होता है कि यद्यपि दोनों के कर्ताओं ने संवादों की योजना की है किन्तु इस क्षेत्र में रविवेण तुलसी से आगे हैं क्योंकि इनके संवाद मनोवैज्ञानिक और आकर्षणपूर्ण अपेक्षाकृत अधिक हैं।

जहाँ तक प्रकृति-चित्रण का प्रश्न है दोनों ग्रन्थों में अवसरानुसार उसे स्थान मिला है। पद्मपुराण के प्रकृति चित्रण का परिचय दिया जा चुका है। मानस में प्रकृति उद्दीपन, अलंकार और उपदेशदात्री के रूप में अधिक चित्रित हुई है। प्रकृति के स्वतन्त्र रूप को यहाँ अधिक स्थान नहीं मिला है। गोस्वामीजी ने प्रकृति-चित्रण करते समय प्रायः परम्परा का ही पालन किया है। संभवतः राम-भक्त तुलसी के पास प्रकृति का सूक्ष्म अन्वेषण करने का अधिक अवकाश नहीं था ! तभी तो ‘बूँद बरघात सहहि गिरि कंसे । लल के बचन संत सहि जैसे’ आदि उपदेशदायक रूपों में प्रकृति का चित्रण अधिक हुआ है। गरद-वर्णन, वर्षा-वर्णन तथा चित्रकूट-वर्णन आदि स्थल प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से रमणीय हैं।

जहाँ तक विविध वर्णनों का प्रश्न है दोनों ग्रन्थों में विविध वर्णन, अनेक अवसरों पर, किये गये हैं। ‘पद्मपुराण’ के वर्णनों की विशद सूची हम सप्तम अध्याय में दे चुके हैं। मानस के वर्णनों में कवि का आत्म-परिचय, जनकपुरी, अयोध्या तथा लंका नगरी का वर्णन, वर्षा और शरद् ऋतु का वर्णन, सन्ध्या, सूर्य, इन्दु और रजनी आदि के अत्यन्त सूक्ष्म तथा संक्षिप्त वर्णन, पम्पा-सरोवर-वर्णन, सीता-सौन्दर्य-वर्णन, जनकपुरी के नर-नारियों के भाबालापों का संक्षिप्त वर्णन, शिव-विवाह और राम-विवाह का वर्णन, राम-लक्ष्मण की शोभा का वर्णन, राम-भरत की यात्रा का वर्णन, निषाद की सेवा का वर्णन, अशोक-वाटिका-बिम्बस-वर्णन, खरबूषण-राम-मुठ, इन्द्रजित्-लक्ष्मण-मुठ, राम-कुम्भकर्ण-मुठ एवं राम-

रावण-युद्ध का वर्णन, दशरथ-राम-मन्दोदरी-मुलौचना के विलाप-वर्णन तथा सुतीक्ष्ण मुनि आदि के संक्षिप्त वर्णन प्रमुख हैं। 'रामचरितमानस' के विविष्ट वर्णनों में नगरी-वर्णन की दृष्टि से अयोध्या^{१२९६} और लंका^{१२९७} का वर्णन लिया जा सकता है। अयोध्या का वर्णन करते समय कवि ने ध्वजा, पताका, पट, चाभर, विचित्र बाजार, कनक-कलश, तोरण, मणिजाल, हल्दी, दूब, दधि, अक्षत आदि मांगलिक द्रव्य, छिड़काव, चौक पूरना, षोडश शृंगार युक्त दामिनी की छुति के समान भामिनियों, विधुवदनी, मृगसावकलोचनी एवं अपने स्वरूप से रति का मान भंग करने वाली पुरबनिताओं के द्वारा कोकिल को लजाने वाली बाणी के द्वारा मंगलगान, अनेक मांगलिक द्रव्यों से युक्त राजमवन, नगाड़े, बंदि-जनो के द्वारा विरुदावलि का गान, ब्राह्मणों के द्वारा वेद पाठ तथा दशरथ के भवन में रामजन्म पर उत्साहातिरेक प्रभृति का परिगणनात्मक शैली में वर्णन किया है। लंका का वर्णन करते समय कवि ने लंका-दुर्ग, चारों दिशाओं में समुद्र की परिखा, कनक-कोट, हाट, बायी, गज-बाजि-लच्चर, पदचर, रथ, निशाचरों, सैन्य, वन, बाग, उपवन, सर, कूप, बापी, नर, नाग, सुर एवं गंधर्वों की कन्याओं, शैलोपम देहधारी मत्स्यों के अखाड़ों में भिड़ने, कोटि यत्नो से नगर की रक्षा एवं निशाचरों के द्वारा अनेक पशुओं के भोजन आदि का वर्णन किया है।

ऋतु-वर्णन की दृष्टि से रामचरितमानस का वर्षा-वर्णन^{१२९८} एवं शरद-ऋतु-वर्णन^{१२९९} द्रष्टव्य है। इन वर्णनों में केवल वस्तु-परिगणन-प्रणाली का ही आश्रय न लेकर प्रकृति के उपदेशदायक रूप का विविध उपमाओं के माध्यम से चित्रण किया गया है। वर्षा ऋतु के एक-एक उपादान से किसी न किसी शिक्षात्मक तथ्य की संगति की गयी है। बारिद को देखकर भयूरों का नृत्य, घनों में दामिनी का दमकना, बरसते बादलों का भूमि के निकट हो जाना, पर्वतों का वर्षा की बूँदों के आघात को सहना, क्षुद्र नदी का भरकर चलना, भूमि पर गिरते ही पानी का मलिन हो जाना, सिमिट-सिमिटकर जल का तालाब में भर जाना, सरिता के जल का जलनिधि में पहुँचकर अचल हो जाना, हरित तृणों से संकुल भूमि में पंख का न सूँझ पड़ना, चारों दिशाओं में दादुरों की ध्वनि का फैलना, वृक्षों में अनेक नये पल्लवों का उद्गम, आक और जबास का पत्रहीन हो जाना, लोखने पर भी कही धूल का न मिलना, शस्थ से सम्पन्न पृथ्वी की शोभा, रात

१२९६ मानस, बाण० २९६-२९७

१२९७. वही, सुन्दरकाण्ड २-३

१२९८. देखिए, मानस, किष्किष्वाकाण्ड १३-१५

१२९९. वही " " १६-१७

के घने अँधेरे में खद्योतों का जमकना, महावृष्टि से क्यारियों का फूट बहना, चतुर किसानों के द्वारा बेड़ी का नलाना, चक्रशाक पक्षी का न दिखाई देना, ऊँसर में वर्षा होने पर भी नृण का न जमना, पृथ्वी का विविध जन्तुओं से संकुल होना, जहाँ-तहाँ पशुओं का घककर रह जाना, कभी प्रबल मास्त के प्रवाह से मेघों का इधर-उधर विलीन हो जाना एवं कभी दिन में निबिड़ अंधकार का होना और कभी सूर्य का प्रकट होना आदि अपने समानधर्मा शिक्षा-तथ्य की प्रस्तुति करते हैं। यहाँ तुलसी की भाषा की समास-शक्ति और कल्पना की समाहार-शक्ति के साथ उनका व्यापक अनुभव मुखर हो उठा है। इसी प्रकार वर्षा के बीतने पर शरद् ऋतु के आगमन का वर्णन चेतन और अचेतन प्रकृति के साधर्म्य का धोवन कराता है। इन वर्णनों में केवल वस्तुपरिगणन-प्रणाली का ही निर्वाह नहीं है, अपितु वस्तुओं के कार्य-कलाप का भी संक्षिप्त वर्णन हुआ है।

जिस प्रकार पद्मपुराण में अनेक जलस्थलों के वर्णन आये हैं उसी प्रकार मानस में भी जलाशयों के वर्णन आये हैं। उदाहरण के लिए मानस का पम्पा-सरोवर वर्णन^{१२७०} लिया जा सकता है। यदि वर्षा और शरद का वर्णन करते समय तुलसी ने दृष्टान्त एवं उपमाओं के सहारे प्रकृति के लोक-शिक्षक रूप को व्यक्त किया है तो पम्पा-सरोवर के वर्णन में उसने उत्प्रेक्षाओं का सहारा लेकर इस कार्य की सिद्धि की है। पद्मपुराण के समान ही मानस भी सौन्दर्य-वर्णनों से युक्त है किन्तु इसके सौन्दर्य वर्णन सांकेतिक, व्यंजना से परिपूर्ण एवं मर्यादित हैं। उदाहरण के लिए मानस के सीता-सौन्दर्य-वर्णन को लिया जा सकता है जो अपनी ध्वनिपूर्णता के लिए प्रसिद्ध है—

सिय सोभा नहि जाइ बलानी । जगबन्धिका रूप गुन लानी ॥
उपमा सकल मोहि लघु लागी । प्राकृत नारि अँन भनुरागी ॥
सिय बरनिध तेइ उपमा बेई । कुकवि कहाइ अजसु को लेई ॥
जौ पटतरिअ तीय सम सीया । जग अति जुबति कहाँ कमीया ॥
गिरा मुखर तन भरध भवानी । रति अति बुझित अतनु पति जानी ॥
विष बावनी बंधु प्रिय जेही । कहिअ रमा सम किनि बेदेही ॥
जौ छबि-सुधा पयोनिधि होई । परम रूपमय कच्छपु सोई ॥
सोभा रजु मंडक सिगारु । मर्य पानि पंकज निज माक ॥
एहि बिधि उपजै लखि अब सुन्दरता कुछ भूल ।
तबनि सकोच समेत छबि कहाँही सीय सम तूल ॥

बली सँभ लै सखी सयानी । नाचत गीत मनोहर बानी ॥
 सोह नवल तनु सुंदर सारी । जगत जननि अतुलित छवि भारी ॥
 भूवन सकल सुदेस सुहाए । अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए ॥
 रंगभूमि जब सिय पगु धारी । देखि रूप मोहे मर नारी ॥
 हरवि सुरन्ह दुंदुभी बजाई । बरवि प्रसून अपछरा गाई ॥
 पानि सरोज सोह जयमाला । अथचट चितए सकल भुषावाला ॥
 सीय चकित चित रामहि चाहै । भए मोहबस सब नरनाहै ॥
 मुनि समीप देखे दोउ भाई । लगे ललकि लोचन निधि पाई ॥

गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि ।

लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर धानि ॥१७१॥

यहाँ 'उपमा सकल मोहि लघु लागी' आदि व्यंजनापूर्ण वाक्यों से तथा 'औ छवि सुधा पयोनिधि होई' आदि यद्यर्थातिशयोक्ति के द्वारा जगज्जननी सीता के वर्णनातीत सौन्दर्य की व्यंजना की गयी है। पद्मपुराण में सीता का वर्णन करते समय रविषेण ने नख-शिख-वर्णन का आश्रय लिया है एवं व्यौरेवार प्रत्येक अंग का आलंकारिक वर्णन प्रस्तुत किया है जबकि तुलसी सीता के वर्णन के लिए उपमा देने को कुकवि की उपाधि का कारण मानते हैं।

श्रृंगारिक वर्णनों का जितना आधिक्य पद्मपुराण में है उतना मानस में नहीं; फिर भी कुछ स्थल ऐसे हैं जिनमें श्रृंगार के संयोग-पक्ष से सम्बद्ध वर्णन अत्यन्त भव्य रूप में निबद्ध हुए हैं। उदाहरण के लिए मानस का राम-सीता-मिलन का वर्णन लिया जा सकता है। सीता सखियों के साथ गिरिजा-पूजन के लिए जाती है। एक सखि, पुष्पवाटिका में राम-लक्ष्मण को देखकर सीता से उनके रूप-सौन्दर्य का वर्णन करती है। सीता प्रिय सखी के साथ राम-लक्ष्मण को देखने चलती है और सीता को देखकर श्रीराम लक्ष्मण से उसके अलौकिक सौन्दर्य का वर्णन करते हैं। इसके बाद सीता और राम के पूर्वराग का सांकेतिक, व्यंजनापूर्ण एवं उदात्त वर्णन हुआ है। १७२

इस वर्णन में पद्मपुराण के अञ्जना-पवनञ्जय-सम्भोग-वर्णन जैसी वर्णनात्मकता तथा पार्थिवता नहीं है, अपितु सूक्ष्म-सांकेतिकता तथा गम्भीर प्रभाववत्ता विद्यमान है। रविषेण, ऐसे स्थलों पर सांगोपांग वर्णन करके अमिथा के चमत्कार से मानो यह कहना चाहते हैं कि 'मैं वर्णन करते हुए छोटी-सी भी वस्तु को उपेक्षित नहीं करता' जबकि तुलसी व्यंजना का आश्रय लेकर यह बता देना चाहते हैं कि

‘वर्णनीय वस्तुओं का शब्दों के द्वारा वास्तविक वर्णन नहीं हो सकता, उसके लिए सहृदय की कल्पना अपेक्षित है।’ ‘बरनि न आई देखि मन मोहा।’, ‘स्याम गौर किमि कहौ बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी।’, ‘देखि सीय सोभा लुख पावा। हृदय सराहत बचन न आवा॥’, ‘सब उपमा कवि रहे कुठारी। केहि पद-तरौ बिबेह कुमारी॥’ आदि वाक्यों से उनकी व्यंजनात्मकता सिद्ध होती है। कहने का यह तात्पर्य बिल्कुल नहीं है कि रविवेण व्यंजना का आश्रय नहीं लेते। उन्होंने भी ‘यथा ब्रवीति वैदग्ध्यं, यथाज्ञापयति स्मरः। अनुरागो यथा निशा प्रवच्छति महोदयः॥ तथा तयो रतिः प्राप्ता बन्धयोर्बुद्धिमुत्तमाम्॥’ आदि वाक्यों से अनुभवैकगम्य का कही-कही सांकेतिक वर्णन किया है, किन्तु अधिकांशतः उन्होंने अभिधा के चमत्कार से युक्त ही संयोग-वर्णन किये हैं।

युद्ध-वर्णन मानस की अपेक्षा पद्मपुराण में अधिक सजीव और प्रभूत है। मानस के युद्ध वर्णनों में प्रायः वे सभी घिसी-पिटी बातें पायी जाती हैं, जो किसी औसत दर्जे के पौराणिक काव्य में मिलनी हैं। उसमें वीरों के नाम, अस्त्रों के नाम, एक-दूसरे को ललकारना, विविध माया फैलाना आदि तथ्यपरक वाक्यों की योजना अधिक है। पद्मपुराण जैसी बिम्बोत्पादकता मानस के युद्ध वर्णनों में नहीं है। मेघनाद-लक्ष्मण-युद्ध-वर्णन को उदाहरण के लिए लिया जा सकता है।^{१२७३} इस प्रसंग में कुछ स्थलों पर तो केवल तथ्यकथन है और कहीं-कहीं उपमादि अलंकारों से परिपुष्ट कुछ बिम्ब उभरते हैं।

संक्षेप में, पद्मपुराण और मानस के वर्णनों पर दृष्टिपात करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्णन करने में दोनों ही कवि निपुण हैं किन्तु जितने विविध, आलंकारिक तथा विस्तृत वर्णन पद्मपुराण में पाये जाते हैं उतने मानस में नहीं। भावालाप-वर्णनों में तो रविवेण ने कमाल ही कर दिया है जिसे देखकर बाण और दण्डी स्मृतिपथ में उतर आते हैं। एक-एक वस्तु के उन्होंने नये से नये ढंग से मुहूर्मुहूर्त वर्णन किये हैं। मानस में ऐसा नहीं है। इसका कारण स्पष्ट है। तुलसी ने मानस जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए लिखा था, काव्यमार्गियों में अपनी प्रौढ़ता दिखाने के लिए नहीं। दूसरे उन्होंने मर्यादा एवं लोकमंगल की भावना का पूरी तरह पालन किया है। अतः वे स्वच्छन्द वर्णन नहीं कर पाये। अतः एव जहाँ पद्मपुराण के वर्णन एक ही वस्तु का बारम्बार अग्नितक व्याख्यान करने वाले, आलंकारिक तथा स्वच्छन्द हैं वहाँ मानस के वर्णन अपुनश्चितपूर्ण, तीव्रगति-मय, संक्षिप्त, चित्रमय, स्वाभाविक, सांकेतिक, व्यंजनापूर्ण, सरल तथा मर्यादित। पद्मपुराण के वर्णन व्यास-शैली के हैं और मानस के समास-शैली के। इसका

कारण स्पष्ट है। तुलसी का ध्येय समस्त चराचर के उपास्य श्रीराम का चरित्र कथन करना था, अन्य वस्तुओं के सांगोपांग विवरण देने का उन्हें अवकाश नहीं था। इसीलिए श्रीराम से सम्बद्ध वर्णन कुछ विस्तृत हैं, शेष अति संक्षिप्त।

सारांश यह है कि रविवेण और तुलसीदास दोनों ही ने अपने ग्रन्थों को भाव-सम्पदा और कला-कौशल से सजाने की पूरी चेष्टा की है। दोनों कवि भावपक्ष और कलापक्ष से अपने ग्रन्थ को समृद्ध बनाने के लिए जागरूक हैं। पद्मपुराण के अन्तिम पर्व में रविवेण ने लिखा है कि इस ग्रन्थ में व्यंजनांत, स्वरांत, अर्थ के वाचक, शब्द, लक्षण, अलंकार, वाक्य, प्रमाण, छन्द, आगम आदि सब कुछ यहाँ विद्यमान है।^{१२०६} तुलसीदास ने भी मानस-रूपक की रचना करते समय काव्य से सम्बद्ध समस्त सामग्री के प्रयोग के प्रति अपनी जागरूकता प्रकट करते हुए लिखा है कि सुंदर चार सवाद इस मानस के चार घाट हैं; सप्त प्रबंध इसके सुंदर सोपान हैं, रघुपति की महिमा का वर्णन इस मानस में रहनेवाला अगाध जल है; राम और सीता के यश रूपी सुधोपम जल में उपमारूपी सुंदर लहरों का विलास होता है; चार चौपाई उस जल में रहनेवाली पुटकिनी हैं और सुंदर युक्तियाँ मणि और सीप के समान मुशोभित हैं, छन्द-सोरठा और सुन्दर दोहे इस मानस में खिलने वाले बहुरंगी कमल हैं जिनके मकरन्द और सुवास के रूप में अनुपम अर्थ एवं सुन्दर भाषा से युक्त सुन्दर भाव विद्यमान है, मुकुटों के पुज मज्जुल भ्रमरमाला के रूप में तथा ज्ञान और विराग के विचार हंसों के रूप में विद्यमान हैं; ध्वनि, अवरेव, कवित्व, गुण और जाति इस मानस में विचरण करने वाली मछलियाँ हैं। पुरुषार्थचतुष्टय, ज्ञान-विज्ञान के विचार, नवरस, जप, तप, योग और विराग इस मानस में विचरण करने वाले जलचर हैं। पुण्यात्माओं एवं सज्जनों के नाम के गुणगान विचित्र जल-विहगों के समान हैं। इसमें उल्लिखित सत्तों की सभा चारों दिशाओं में रहनेवाला अमराई के समान है और श्रद्धा वसंत ऋतु के समान छायाई हुई है। विविध विधानों से भक्ति का निरूपण, क्षमा, दया, और दम सता-विनान के समान हैं। दम, यम और नियम फूल के समान हैं एवं ज्ञान फल के समान है, जिनमें हरि के चरणों में प्रेम का रस समाया हुआ है। कथा के अनेक अपर प्रसंग बहुवर्णक शुक और पिक आदि विहगों के समान हैं।^{१२०७}

इन दोनों उल्लेखों से रविवेण और तुलसीदास के काव्य-वैभव के प्रति दत्ता-बधान होने का स्पष्ट साक्ष्य मिलता है। राम के चरित्र का वर्णन करने के माध्यम से दोनों ही कवियों ने अपने काव्यप्रणयनपटुत्व का अपने देश और काल के

अनुसार, सफल परिचय दिया है। इतना तो कहना ही पड़ेगा कि पद्मपुराण का कलापक्ष अधिक चमत्कारपूर्ण है क्योंकि रविवर्ष ने अपने समय में उपलब्ध प्रौढ़ काव्य-सरणि का यथेष्ट अनुसरण किया है एवं मानस का कलापक्ष स्वाभाविक और सरल क्योंकि इस 'भाषा-निबन्ध' का प्रणयन विद्वानों के साथ जन-साधारण के लिए भी किया गया है, भले ही शब्दों से 'स्वान्तःसुख' की बात कही गयी हो।

'पद्मपुराण' और 'मानस' दोनों ग्रन्थों का धार्मिक दृष्टि से भी महत्व है। पद्मपुराण के प्रतिपाद्य धर्म की चर्चा पीछे की जा चुकी है। यहाँ मानस के प्रतिपाद्य धर्म की संक्षिप्त चर्चा करके दोनों ग्रंथों की धार्मिक दृष्टि से तुलना की जा रही है।

'मानस' का मुख्य प्रतिपाद्य भक्ति है। 'धर्म और भक्ति का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। गोस्वामीजी इन दोनों में से प्रत्येक को दूसरे का पूरक मानते हैं। उनकी दृष्टि में भक्ति और धर्म में अंगांगिभाव सम्बन्ध है। किसी अंग के रुग्ण होने पर जैसे समस्त शरीर की विकलता को कोई नहीं रोक सकता, उसी प्रकार धर्म के किसी आडम्बर या अनाचार से भ्रस्त हो जाने पर भक्तिकाविकृत हो जाना भी अनिवार्य है। भक्ति का विमल और यथार्थ प्रकाश प्रस्फुटित हो और उससे विश्व का अभ्युदय होता रहे, इसके लिए नितान्त आवश्यक है कि साधक की उपासना किसी प्रकार के अनाचार से पकित और रहस्य से आवृत न हो—यह बात गोस्वामी जी मली भीति जानते थे, इसी से इन्होंने इनको रामोपासना में रंजमात्र भी स्थान नहीं दिया, प्रत्युत इन्हे मिटाने का प्रयास किया है।^{१२७६}

'मानस' के अनुसार धर्म के क्षेत्र में आडम्बर घातक है। उसके अनुसार मन की निर्मलता के बिना भगवत्प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती।^{१२७७} मानस में नैतिक भाविक और बौद्धिक आधार पर धर्म की स्थापना की गयी है। नैतिक का सम्बन्ध हमारे उन सभी कार्यों में है जो परस्पर व्यवहार के लिए आवश्यक है। भाविक तत्त्व की प्रधानता हमारे उन सभी कृत्यों में रहती है जिनमें हमारी अन्तर्बृत्तियों को भी मूल-खेलने का अवसर मिलता है। इष्टानिष्ट परिणाम की ओर दृष्टि रखकर साधक-बाधक तर्क-वितर्कों का मन्थन करके जो कार्य किया जाता है वह बौद्धिक कोटि में आता है।^{१२७८} तुलसी ने जिस व्यापक धर्म का निर्देश किया, वह उनका कोई व्यक्तिगत नया धर्म न था। वह प्राचीन भारत का सनातन

१२७६. डा० राजपति दीक्षित: तुलसीदास और उनका युग, पृ० ७६

१२७७. 'मानस' ३।४३।५

१२७८. ६० डा० राजपति दीक्षित: तुलसीदास और उनका युग, पृ० ८३-८४।

धर्म ही है जो मनुष्य मात्र के लिए सामान्य धर्म के नाम से अनधिकाल से चला आ रहा है ।^{१२७९} नाना-पुराण-निगमागम के अध्ययन से उनके सारभूत धर्म को ही मानस में तुलसी ने प्रस्तुत किया है ।

‘मानस’ में धर्मपालकों के प्रति अपार आस्था प्रदर्शित की गयी है ।^{१२८०} उसके अनुसार, धर्मशील के पीछे समस्त सुख सम्पत्ति उसी प्रकार दौड़कर आती है जिस प्रकार समुद्र के पीछे सरिताएँ ।^{१२८१} परम पुरुषार्थ का प्रथम सोपान भी धर्म ही है^{१२८२} । धर्म की महिमा के विषय में ‘मानस’ वैसे ही विचार देता है जैसे कि प्राचीन ब्राह्मण-धर्मग्रन्थ ।^{१२८३}

‘मानस’ में धर्म-भावना का स्वरूप उसी प्रकार निदिष्ट है जैसा कि मनु-स्मृति, रामायण, महाभारत, भागवत आदि में कथित है ।^{१२८४} धर्म के अवयव ये हैं—शीर्ष, धैर्य, सत्य, शील, विवेक, दम, परहित, क्षमा कृपा, समता, ईशभक्ति, विरति, सन्तोष, दान, बुद्धि, श्रेष्ठज्ञान, अचल पवित्र मन, सम, यम, नियम, विप्र-गुरुपूजन आदि ।^{१२८५} मनुष्यमात्र इन गुणों को ग्रहण करने का अधिकारी है । इस व्यापक धर्म के विरोधी दुर्गुण ही अधर्म हैं और निन्दनीय हैं । धर्म के सभी अवयव प्रशंसा के पात्र हैं ।

‘मानस’ के अनुसार—सत्य सभी सुकृतों का मूल है और उसके समान वृत्तों धर्म नहीं है ।^{१२८६} शील बड़े भाग्य से प्राप्त होता है ।^{१२८७} मनोनिग्रह परम आवश्यक धर्मांग है । बिना मन को वश में किये मनुष्य परम लक्ष्य को कदापि नहीं प्राप्त कर सकता । ईश्वर को मन की शुद्धता बड़ी प्यारी होती है ।^{१२८८}

असत्य के समान कोई पातक का पुज नहीं है ।^{१२८९} ऐसे पातक और अधर्म से प्राणि मात्र को बचना चाहिए । पर-नारी को चीथ के चाँद के समान छोड़ देना चाहिए, उसे नहीं देखना चाहिए ।^{१२९०}

१२७९. वही, पृ० ८७

१२८०. मानस, २।९।३, ४

१२८१. वही, १।२९।२, ३

१२८२. वही, ३।१५।१

१२८३. वे० मनुस्मृति, ४।२४।१

१२८४. द० महाभारत, शान्ति ० २७।१५५, राज० १०।१।१०, १२

मनुस्मृति, ६।२२, १०।६३

याज्ञवल्क्यस्मृति, १।१२२

महाभारत, शान्ति०, ६०।७

भागवत, ७।११।१२

१२८५. मानस, ६।७९।५-११

१२८६. वही, २।२७।६, २।९।५

१२८७. वही, ७।८९।६

१२८८. वही, १।२३।१५,

१२८९. वही, २।२७।५

१२९०. वही, ५।३७।५, ६

‘मानस’ के अनुसार हिंसा पाप है।^{१२९१} आसुरी प्रकृति वाले व्यक्ति ही सर्वभूत-द्रोहरत होते हैं। परद्रोह परम गंहित पाप है।^{१२९२} परोपकार परम धर्म है।^{१२९३} परहित-व्रत-परायण को संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।^{१२९४} परोपकार धर्म है और परपीड़न अधमता—“परहित सरिस वरम नहि भाई। परपीड़ा-सम नहि अथमाई ॥ निरभय सकल पुरान वेद कर। कह्यो तात जानहि कोबिब नर ॥”^{१२९५} दया का स्थान भी धर्म में अत्युच्च एवं उदात्त है।^{१२९६}

‘मानस’ के अनुसार, वैष्णवधर्म का अहिंसावाद सर्वोच्च माना गया है। धर्म के कठिन विधि-विधानों की अपेक्षा राम-नाम जप सरलतम है।

मानस के अनुसार—भक्ति अति सुखदायिनी है। रामभक्त होने के लिए शिव की भक्ति भी अनिवार्य है।^{१२९७}

सनातन धर्म की वर्णाश्रम-व्यवस्था एवं उसमें प्रतिष्ठित नियम, व्रत, उपवास, स्वाध्याय, यज्ञ, पूजा-पाठ, स्नान-ध्यान, तिलक-मुद्रा-प्रभृति धर्म के बाह्य स्वरूपों के प्रति भी ‘मानस’ में आस्था प्रकट की गयी है और भूलकर भी इनकी निन्दा नहीं की गयी है। संक्षेप में, ‘मानस’ में उस धर्म का प्रतिपादन किया गया है जो भक्ति-प्रधान लोक-धर्म कहा जा सकता है।

‘पद्मपुराण’ और ‘मानस’ का धार्मिक दृष्टि से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि दोनों में ही मानव कल्याण के लिए धर्म का विधान किया गया है पद्मपुराण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य-युक्त जैन-धर्म का एडवोकेट है और मानस वर्णाश्रम-व्यवस्था का। विचार करने पर दोनों ही धार्मिक दृष्टियाँ कल्याणकारी हैं और अपने युग की आवश्यक उपज हैं। किन्तु ये धर्मदृष्टियाँ एक दूसरे से भिन्न मानी जाती रही है। यही कारण है कि रविवर्षेण और तुलसी-दोनो की धार्मिक विचारधाराएँ भिन्न हैं। जहाँ ‘पद्मपुराण’ यज्ञादि का खण्डन करता है वहाँ ‘मानस’ उनका पोषण। जहाँ ‘पद्मपुराण’ का धर्म व्यावहारिक दृष्टि से अधिक कठिन है वहाँ ‘मानस’ का धर्म लोक-धर्म होने के कारण अधिक सुगम और ग्राह्य। ‘पद्मपुराण’ के धर्म को समझने के लिए दार्शनिक पृष्ठभूमि अपेक्षित है, ‘मानस’ के धर्म के अनुसरण के लिए सरल हृदय। ‘पद्मपुराण’ में ब्राह्मण धर्म की मिथ्यादर्शन के रूप में निन्दा करके अपने धर्म की प्रतिष्ठा की गयी है, ‘मानस’

१२९१. वही, १।१८३, १।१८०-१८४,

१२९२. वही, १।१८३।५

१।१८०।१

१२९३. वही, १।८३।१, २

१२९४. वही, ३।३०।९

१२९५. वही, ७।४०।१, २

१२९६. वही, ७।१११।१०

१२९७. वही, १।१०३।५

में धर्म की प्रतिष्ठा करके अधर्म की निन्दा की गयी है। 'पद्मपुराण' का आदर्श धर्म है—कट्टर, कठोर जैनधर्म और 'मानस' का लोक-धर्म, जिसकी समाज में रहकर सरलता से साधना की जा सकती है। 'पद्मपुराण' का धर्म प्रचार की भावना से युक्त है और 'मानस' का धर्म सुचारु का भावना से।

साहित्य और संस्कृति एक दूसरे के पूरक और स्मारक होते हैं। अतीत के गर्भ में बिलान होने वाली मानव की जिजीविषा की सहचर क्रियाओं का पुनर्दर्शन साहित्य के माध्यम से अनागत तक में होता रहता है और शब्द और अर्थ में छिपी चिरन्तन मूल वृत्तियों की प्रायोगिक कक्षाएँ जीवन में लगती रहती हैं। यही है साहित्य और संस्कृति का अम्योन्याश्रय-सम्बन्ध। 'पद्मपुराण' और 'मानस' सांस्कृतिक दृष्टि से भी हमें कुछ देते हैं। 'पद्मपुराण' में निविष्ट सांस्कृतिक सामग्री का परिचय पीछे दिया जा चुका है। यहाँ 'मानस' के सांस्कृतिक सूचना-दान का उल्लेख करके दोनों ग्रंथों के सांस्कृतिक पक्ष पर तुलनात्मक दृष्टि डाली जा रही है।

'रामचरितमानस' में संस्कृति : 'रामचरितमानस' में उपनिबद्ध संस्कृति आदर्श हिन्दू-संस्कृति है। यहाँ संस्कृति का यथार्थ रूप अधिकतर प्रस्फुरित नहीं हो सका है। मर्यादावादी एवं लोकसंग्रहवादी होने के कारण तुलसी ने मानस में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य क्षेत्रों में मर्यादा का आदर्श रखा है, अतः वहाँ तत्कालीन संस्कृति का यथार्थ दर्शन कठिन है। फिर भी व्यञ्जना से उन्होंने इसकी बहुत कुछ झलक दे दी है। डा० भगीरथ मिश्र के शब्दों में 'गोस्वामी तुलसीदास का काव्य लिखने का वास्तविक उद्देश्य लोक-जीवन का यथार्थ चित्रण करना नहीं था, बरन् उसके आदर्श की ओर संकेत करना था। इसलिए राम के चरित्र का वर्णन करने में प्रधान रूप में लोक-जीवन का यथार्थ चित्रण कही भी नहीं मिलता। साथ ही-साथ अपने काव्य सम्बन्धी आदर्श स्पष्ट करते हुए उन्होंने प्राकृत जन के गुणगान न करने का भी संकल्प प्रकट कर दिया है। ऐसी दशा में बहुत विस्तारपूर्वक पूर्ण व्यापक और यथार्थ तथा निरपेक्ष जन-जीवन के वर्णन की आशा हम कर भी नहीं सकते, किन्तु तुलसी का उद्देश्य अपनी काव्य-रचना में जन-जीवन-मुलभ वस्तुओं को देना है। इसलिए गीणरूप में प्रकारान्तरेण से लोक-जीवन की झलक हमें मिल जाती है। पर संस्कृति जीवन का आदर्श रूप प्रस्तुत करती है, अतः उसका चित्रण गोस्वामी जी के ग्रन्थों में 'राम-चरितमानस' के माध्यम से बराबर हुआ है।^{१२१८} भाव यह है कि पूर्वपक्ष के

अन्तर्गत संस्कृति के यथार्थ चित्रण की भूलक है और उत्तरपक्ष के अन्तर्गत आदर्श की। यहाँ हमें इस सांस्कृतिक चित्रण पर विचार करना है।

तुलसीदास ने 'मानस' में राजनीतिक आदर्शों को हमारे सम्मुख रखा है। उनके अनुसार जिस राजा के राज्य में प्रजा दुखारी हो वह राजा अवश्य ही नरक का अधिकारी है। इससे सिद्ध है कि तुलसी के समय राजा से प्रजा दुखी थी। 'नृप पाप परायण धर्म नहीं। कर बंड बिडंब प्रजा नितही ॥'^{१२९९}—से तत्कालीन राजाओं की अन्यायपरता ध्वनित होती है। 'रामराज्य' की कल्पना आदर्श राज्य की कल्पना है जहाँ राजा प्रजा का हितकारी होकर यह कहता है—

‘जो कछु अनुचित भाषी आई। लौ योहि बरनहु भय बिसराई ॥’

युद्ध आदि के वर्णनों से कोई विशेष निष्कर्ष नहीं निकलता। पारम्परिक बातें ही युद्ध के प्रसंगों में आती हैं।

समाज-व्यवस्था के विषय में पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। गोस्वामीजी ने वर्णाश्रम-व्यवस्था को आदर्श रूप में रखा है जो प्राचीनकाल से वेदशास्त्रा-नुमोदित रही है।^{१३००} वे ब्राह्मणों की बड़ी प्रशंसा करते हैं।^{१३०१} किन्तु यह सब आदर्श ही है। गोस्वामीजी के समय समाज का स्तर बहुत नीचे गिरा प्रतीत होता है। वर्णाश्रम-व्यवस्था विलुप्त-सी लगती है—‘बरन धर्म नहि आश्रम चारी। श्रुति बिरोधरत सब नर नारी ॥’ मानस के उत्तरकाण्ड में ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक की अव्यवस्था का संकेत है—

सूत्र द्विजन्ह उपदेसहि ग्याना। मेलि अनेक लैहि कुबाना ॥

सूत्र करहि जप तप बत दाना। बंठि बरासन कहहि पुराना ॥

बिप्र निरन्तर सोलुप कामी। निराचार सठ बुबली स्वामी ॥

गोस्वामीजी ने ऐसे विष्टुल समाज को सुशुल बनाने के लिए समन्वय की भावना वाली आदर्श संस्कृति प्रस्तुत की।

‘रामचरितमानस’ में वर्णित जानियों के तीन वर्ग किये जा सकते हैं—दिव्य जातियाँ (गन्धर्व, अक्षरा आदि), मनुष्य जातियाँ (ब्राह्मण, भाट, बंदी, मागध, मूत आदि) तथा वन्य जातियाँ (निषाद, कोल, किरात आदि)। इन जातियों के

१२९९. ‘मानस’ ७।१००।६।

१३००. वर्णाश्रम-व्यवस्था की प्राचीनता के लिए देखिये—ऋग्वेद १०।१०।१२-१३,

यजुर्वेद, २१।११-१२, अथर्ववेद १६।६।६-७, गीता ४।१३, भागवत २।५।३७। इनके अतिरिक्त ‘मनुस्मृति’ आदि ग्रन्थों में तो वर्णाश्रम धर्म की विषय व्यवस्था है ही।

१३०१. देखिये ‘मानस’ ३।३३।१, २१, ७।४।७-८, १०८।१३-१४, ४।१६।८, १।१६।४।

३६ आदि।

उल्लेख और वर्णन से उनकी संस्कृति का कुछ आभास मिलता है।^{११०२} मागध, बन्दी, और भाटों के विरुदावली-गान का उल्लेख है—

“बन्दी मागध सूतगन विरुद बदीह मति धीर ।

करहि निछावर लोग सब ह्य गय घन मनि धीर ।”^{११०३}

“कतहुं बिरिद बंदी उच्चरही ।”^{११०४}

“मागध सूत बिदुष बंदी जन ।”^{११०५}

“बन्दि मागधन्हि गुनगन गाए ।”^{११०६}

वन्य जातियों में उल्लेख तो बहुत सी जातियों का है जैसे कोल, किरात, भील, आदि परन्तु निषादों का चित्रण विशद रूप में मिलता है। निषादराज गुह ने अपनी जाति नीच बताई है—“मैं जनु नीच सहित परिवारा ।” निषाद मछली पकड़ते तथा शिकार खेलते थे। मछली पकड़ने का संकेत इस बात से मिलता है कि भरत को भेंट देने समय निषाद मछलियाँ भी भेंट करता है—“भीन-पीठ पाठीन पुराने । भरि-भरि बार कहारन्ह छाने ॥” प्रतीत होता है कि निषादों का जीवन कठोर था। उसमें कोमल भावनाओं के लिए कोई स्थान नहीं था। कठोर जीवन के साथ ही वह जाति इतनी नाच समझी जाती थी कि लोग उसकी छाया से भी घृणा करते थे—“लोक वेद सब भौनिहि नीचा । जासु छाँह छुइ लेइय सींचा ॥” (मानस २।१६३।२)

गोस्वामी जी ने आदर्श परिवार की कल्पना की है। उसमें उन्होंने दाम्पत्य-प्रेम, भ्रातृ-स्नेह, पिता-पुत्र का आदर्श सम्बन्ध, सास-बहू और ससुर का प्रेम, गुरु-भक्ति आदि सभी कुछ दिखाया है। इस आदर्श की व्यंजना यही है कि इस समय ऐसा प्रायः नहीं था। यदि यह सब होता तो वे ऐसा आदर्श उपस्थित क्यों करते ?

‘मानस’ के उत्तरकाण्ड में तत्कालीन आर्थिक दशा के संकेत भी मिलते हैं। ‘कलि बारहि बार अकाल परे’ से तत्कालीन दयनीय स्थिति की ध्वनि निकलती है। इसे सुधारने के लिए भा तुलसी आदर्श रामराज्य की कल्पना करते हैं जहाँ—

“मणि दीप राजहि भवन भ्राजहि देहरी बिदुम रची ।

मनि स्वयं भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत लखी ॥”^{११०७} आदि

१३०२ चन्द्रभान : रामचरितमानस में लोक वार्ता ।

१३०३. ‘मानस’ १।२६२

१३०४ वही, १।२९६-२९७ के बीच /

१३०५. वही, १।३००-३०१

१३०६. वही, १।३५७-३५८ के बीच ।

१३०७. मानस, उत्तर०, २६वें दोहे के बाद का छन्द ।

धार्मिक जीवन के संकेत भी मानस के उत्तरकाण्ड में मिलते हैं। धार्मिक आडम्बर और ढोंग समाज में अधिक फैल चुके प्रतीत होते हैं। धुने-जुलाहे धर्माचार्य बने लगे थे। 'भूँड मु'ँडाकर संन्यासी' होने वालों की भी कमी नहीं थी। तुलसी ने ऐसे धर्म को सुधारने के लिए लोकधर्म की स्थापना का।

संस्कृति का सर्वाधिक यथार्थ चित्रण 'मानस' में हमें विविध संस्कारों के प्रसंग में मिलता है। रामजन्म-संस्कार के अवसर पर लोक-संस्कृति का यथार्थ चित्रण हुआ है—

“नादीमुख सराय करि, जात करम सब कीन्ह।

हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहैं दीन्ह ॥”^{१३०८}

यहाँ 'जातकर्म' करने में उन समस्त लौकिक कृत्यों की ओर निर्देश है जो 'जन्ति' के समय स्त्री-समाज की ओर से होते हैं। आगे चलकर कवि ने नगर-वासियों के समारोह का वर्णन किया है। 'मंगलकलस' मंगलसूचक माना जाता था—

‘बूँद-बूँद मिलि चली लोगाई। सहज सिंगार किए उठि धाई ॥

कनक-कलस मंगल भरि धारा। गावत पैठहि भूप दुपारा ॥

करि भारति निबछावर करहीं ॥”^{१३०९}

नाम संस्कार भी जन्म-संस्कार की एक प्रमुख घटना है। वसिष्ठजी ने श्रीराम का नाम रखा है। आगे चूडाकरण आदि का उल्लेख है। दूसरा प्रधान संस्कार विवाह-संस्कार है। 'मानस' में दो विवाह प्रमुख हैं—पहला शिव-पार्वती-विवाह और दूसरा राम-सीता-विवाह। शंकर की बारात के नगर के निकट पहुँचने पर उसकी अगवान्ती की जाती है। वह प्रथा आज भी है। साथ ही 'परिछन' लेने की प्रथा भी है। पार्वती की माता 'परिछन' करने चलती है :—

‘अंनौ सुभ अररति सेंबारी। संग सुमंगल गावहि नारी ॥

कंचन धार सोह बर पानी। परिछन चली हरहि हरबानी ॥”^{१३१०}

मंगलगान के अतिरिक्त 'जेबनार' के समय 'गारी' का भी उल्लेख मिलता है। इन गारियों में नाम ले-लेकर परिहास किया जाता था—

‘नारि बूँद सुर जेबत जानी। लगी वेन गारी मृदु बानी ॥”^{१३११}

राम-सीता-विवाह में भी 'गारी' देने का उल्लेख है—

१३०८. मानस, १।१९३।

१३०९. मानस, १।१९३।२-३।

१३१०. वही, १।१५।१-२।

१३११. वही, १।१५।४।

मानस की लोक-संस्कृति में काने, कूबरे और खोरे कुटिल, कुचाली और अशुभ माने गये हैं। कैंकेयी मंथरा से कहती है—

‘काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।

तिय बिसेबि पुनि बेरि कहि भरत मातु मुसकान ॥’^{११२१}

छीक-सम्बन्धी-विश्वास का भी मानम में उल्लेख हुआ है। निषादराज बिस समय राम-मिलन के लिए चित्रकूट जाते हुए, भरत से मोर्चा लेने के लिए सन्नद्ध होता है, उस समय छीक होती है—

‘एतना कहत छीक भई बाएँ। कहेउ सगुनिअन्हि खेत सुहाए ॥

बूझ एक कह सगुन बिचारी। भरतहि मिलिह न होइहि हारी ॥’^{११२४}

‘शिष्टाचार और कलात्मक सजधज का जो वर्णन तुलसी ने किया है उसमें भी उनके यथार्थवादी और आदर्शात्मक दृष्टिकोण का समन्वय है। शिष्टाचार में व्यक्ति के परिवार के विभिन्न जातियों से व्यवहार और अभिवादन के प्रसंग हैं या व्यक्ति के समाज के विभिन्न व्यक्तियों के साथ के व्यवहार हैं। इसमें सामान्य-तया गुरु, मित्र, राजा, पुरोहित, सेवक, शत्रु आदि के वातावरणों के प्रसंग आते हैं। सुमन्त्र सचिव और राजा की बातचीत में तुलसी ने शिष्टाचार सम्बन्धी अभिवादन सूचक शब्द ‘जय जीव’ का प्रयोग किया है जैसे—

‘बेसि सचिव जयजीव कहि कीन्हैउ बण्ड प्रणाम ॥’^{११२५}

अथवा

‘कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए ॥’^{११२६}

यह ‘जयजीव’ एक विशिष्ट शब्द है। ‘जय’ तो अब भी प्रचलित है, पर ‘जय-जीव’ नहीं।^{११२७}

माताओं के द्वारा बच्चों के प्रयाण या बिलम्ब के बाद आगमन पर उनके शिर सूंघने का उल्लेख भी तुलसी ने किया है।

‘कलात्मक सज-धज के अनेक अवसर तुलसी द्वारा वर्णित रामचरित के भीतर आये हैं और सर्वत्र तुलसी की कलादृष्टि की बारीकी को स्पष्ट करते हैं। उन्होंने सकेत रूप से वस्तु, चित्र, नृत्य, संगीत, काव्य आदि कलाओं का उल्लेख किया है। परन्तु विशेष रूप से मोहक विवरण विवाह आदि संस्कारों में की गयी कलात्मक सजधज के हैं। तुलसी की कलासम्बन्धी सूझ का पूर्ण स्पष्टीकरण ‘राम-

११२३ वही, २।१४

११२४ वही, २।१४८

११२७ डा० भगीरथ मिश्र : तुलसी रसायन, पृ० १६३-६४।

११२४ वही, २।१११-२

११२६ वही, २।१।१

चरितमानस' में वर्णित जनकपुरी-सजावट के प्रसंग में हो जाता है।^{११९६}
यथा—

‘विधिहि बंदि सिन कीन्हु अरंभा । बिरचे कनक कदलि कर खंभा ॥

हरित मनिन्ह के पत्र कल, पद्मराग के कूल ।

रचना देखि विचित्र अति, मन बिरंचि के भूल ॥

बेनु हरित मनिमय सब कीन्हें । सरल सपरब परहि नहि चीन्हें ॥

कनक कलित अहिबेल बनाई । ललि नहि परइ सपरन सुनाई ॥

तेहि के रचि पचि बंध बनाए । बिच बिच मुकता बाम सुहाए ॥

मानिक मरकत कुलिस पिरोआ आदि ॥^{११९९}

शिव-पार्वती, वनदेवी-वनदेव, कुलदेवता आदि लोक देवताओं का भी तुलसी ने मानस में उल्लेख किया है। गिरिजा की सीता ने पूजा की है।^{११९०} गणेश की भी पूजा हुई है—‘आचास करि गुर गौरि गनपति मुदित विप्र पुजावहीं।’ कौशल्या ने वनदेवों की मनौती की है—‘पितु बनदेव भातु बनदेवी।’^{११९१} सीता भी वनदेवों में विश्वास रखती है—‘बनदेवी बनदेव उदारा।’^{११९२} पितरों की पूजा का भी संकेत है—‘देव पितर पूजे बिधि मीकी।’^{११९३}

‘मानस में भौगोलिक नाम ५० से अधिक नहीं हैं। कुछ नाम बार-बार आते हैं। अवध या उसके पर्यायवाची अवधपुर, अवधपुरी, अयोध्या, कोशल, कौशला, कौशलपुर, कौशलपुरी, रामपुर, रामपुरी या दशरथपुर—ये नाम सी से अधिक बार आये हैं। अकेले अयोध्याकाण्ड में अवध का नाम ५४ बार आया है। सुरसरी और उसके पर्यायवाची सुरसरिता देवसरि, देव-घुनी, विन्धुव-नदी और गंग या गंगा का नाम ५० बार से अधिक मिलता है। ३५ बार लंका, २६ बार हिमगिरि, २३ बार प्रयाग, १८ बार चित्रकूट, १६ बार सरयू, ११ बार यमुना, १० बार कैलाश, ८ बार मिथिला, ७ बार काशी और त्रिवेणी, ६ बार दण्डक और पंचवटी, ५ बार शृंगवेरपुर या सिंगरीर, ४ बार मन्दाकिनी, विन्ध्याचल और गोदावरी, ३ बार तमसा, गोमती, प्रवर्षणगिरि, त्रिकूट गिरि, अशोकवन और २ बार से कम कर्मनाशा, मेकलसुता, सई, नीलगिरि, सेतुबन्ध और सुबेल के नाम नहीं आये। प्रसंगानुसार नन्दि-ग्राम, बदरी-वन, नैमिष, केकयदेश, मग, मरु-देश, भालव, उज्जैन, सोननद, मानस, पम्पा-सरोवर, ऋष्यमूक, रामेश्वर आदि

११९८. डा० ज्योत्स्न मिश्र : तुलसी रसायन, पृष्ठ १६४।

११९९. मानस, २।२८७।१-२

११९०. वही, १।२२७।१-२

११९१. वही, २।५५-५६

११९२. वही, २।६५।१

११९३. वही, १।३५०।१

का नाम भी कम से कम एक बार तो आ ही गया है। कहीं-कहीं पौराणिक भूगोल के नाम भी आ गये हैं, सुमेरु, सरस्वती, सप्तद्वीप, भोगवती, अमरावती, मंदर, मैनाक, आदि। कई स्थलों में राजाओं आदि के नाम भौगोलिक नामों पर से बतलाए गये हैं। जैसे—अवधेश, अवधपति, कौशलेश, कौशलाधीश। 'लंकाकाण्ड' में तो कौशलाधीश की भरमार है। इसी प्रकार जनक के नाम मिथिलेश, तिरहुति-राज, विदेह और उनकी लड़की का नाम मैथिली, वैदेही आदि से कई स्थलों में सूचित किया गया है। रावण के लिए लंकापति, लंकेश आदि का प्रयोग किया गया है।^{१३३४}

'पद्मपुराण' और 'मानस' का सांस्कृतिक दृष्टि से अध्ययन करने के उपरान्त यह निष्कर्ष निकलता है कि जहाँ 'पद्मपुराण' भारत के मुल-शास्ति-वैभव-आदि से समन्वित संस्कृति का यथार्थ परिचय देता है वहीं 'मानस' आदर्श संस्कृति का रूप प्रस्तुत करता है। पहले में यदि 'क्या था' पर बल दिया गया है तो दूसरे में 'क्या होना चाहिए' पर। इसका यह आशय नहीं कि मानस में यथार्थ संस्कृति का रूप है ही नहीं। उसमें लोक संस्कृति का चित्रण पर्याप्त मात्रा में है परन्तु राजनीतिक रहन-सहन, स्थापत्यकला, व्यापार-व्यवस्था आदि का यथार्थ चित्रण 'पद्मपुराण' के सवृण नहीं है। जो कुछ भी इसका संकेत 'मानस' में मिलता है वह सुने गये के आधार पर ही है यथा—युद्धवर्णन आदि। इसलिए यह करने में कोई कोई संकोच नहीं करना चाहिए कि तत्कालीन भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने के लिए जितना महत्व 'पद्मपुराण' का है उतना 'मानस' का नहीं।

'पद्मपुराण' का 'रामचरितमानस' पर प्रभाव

'रामचरितमानस' पर 'पद्मपुराण' का प्रभाव अभी तक शब्दप्रमाण के आधार पर तो प्रतिपादित किया ही नहीं गया है, प्रत्यक्ष और अनुमान भी अभी तक मौन से ही हैं। हम प्रत्यक्ष और अनुमान के सहारे इस समस्या पर विचार करेंगे।

मानस के प्रारम्भ में आया 'मानापुराणनिगमागमसम्मत्तं यद्वासायणे निश्चितं क्वचिदगम्यतोऽपि'—श्लोक ही एक ऐसा श्रोत है जिसके आधार पर तुलसी के रामचरितमानस के उपजीव्य ग्रन्थों का अनुमान किया जा सकता है। 'मानापुराण' और 'क्वचिदगम्यतोऽपि'—शब्द (ही) कथंचित् 'पद्मपुराण' के मानस पर प्रभाव की बकालत कर सकते हैं क्योंकि 'पद्मपुराण' 'पुराण' संज्ञा

१३३४. 'तुलसी और उनका काव्य' पृ० १६९-१७० पर उद्धृत पुरातत्त्वज्ञ स्व० होरा-लाल शर्मा का एक नैब जो 'माधुरी' सं० १८६० आवण में छपा था।

वाला भी है और यदि 'पंचलक्षण पुराण' भेद में पद्मपुराण का अन्तर्भाव न हो सकता हो तो फिर उपर्युक्त सूची में 'अन्यतोऽपि' के अन्तर्गत यह आ सकता है।

केवल इन्हीं दो शब्दों के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि सम्भवतः तुलसी ने 'पद्मपुराण' को देखा हो।

दूसरी सरणि है प्रत्यक्ष दर्शन की। रविषेण और तुलसी के ग्रंथों में अनेक समानधर्मा पद्य आये हैं यथा—

‘आचारारणां विघातेन कुबुद्धीनां च सम्पदा ।

धर्मं ग्लानिपरिप्राप्तमुच्छ्रयन्ते जिनोत्तमाः ॥’^{१३३५} (रविषेण)

‘जब जब होइ धरम के हानी। बाढहि असुर अधम अभिमानी ।

तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा । हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा ॥’^{१३३६}
(तुलसी)

अथवा—

‘एवमुक्ता सती सीता पराधीनव्यवस्थिता ।

अन्तरे तुलमाधाय जगादावधिताक्षरम् ॥’^{१३३७} (रविषेण)

‘तुन धरि छोट कहति बड़ेही । सुमिरि अबधपति धरम समेही ॥’^{१३३८} (तुलसी)

इन समान उक्तियों से पद्मपुराण के मानस पर प्रभाव की बात कही जा सकती है। यह कहा जा सकता है कि ‘पद्मपुराण’ के आधार पर ‘मानस’ में ये उक्तियाँ लिखी गयी हैं। किन्तु वस्तुतः ऐसा कहना वस्तुस्थिति से मुँह मोड़ना है।

पहली बात तो यह है कि ये उक्तियाँ मानसकार ने रविषेण से नहीं ली हैं अपितु दोनों ने इन्हें किसी तीसरे ग्रन्थ से ही सीधे लिया है। उदाहरणार्थ उपर्युक्त ‘आचारारणां विघातेन’ एवं ‘जब जब होइ धरम के हानी’ आदि गीता के इन श्लोकों के रूपान्तर हैं :—

‘यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥’^{१३३९}

इसी प्रकार ‘अन्तरे तुलमाधाय और ‘तुन धरि छोट’ भी ‘वाल्मीकिरामायण’ अथवा ‘अध्यात्मरामायण’ का सीधा अनुकरण है :—

१३३५. पद्य०, ५।२०७

१३३७. पद्य०, ४६।११

१३३९. गीता, ४।७-८

१३३६. मानस, १।१२०।३-४

१३३८. मानस, ५।८।३

‘उद्यानामोमुक्षी भूत्वा विद्याय तुष्यन्तरे’ (अध्यात्म०)

‘तुष्यन्तरतः कृत्वा प्रत्युद्यत् शुचिस्मिता ।

निवर्तय मनो मत्तः स्वजने प्रियतां मनः ॥’^{११४०} (बाल्मीकि)

ऐसे स्थलों के कारण पद्मपुराण का मानस पर प्रभाव सिद्ध करना साहस ही होगा ।

दूसरी बात यह है कि जब हम किसी ग्रन्थ का किसी ग्रन्थ पर प्रभाव सिद्ध करते हैं तो हमारा आशय यह होता है कि उपजीव्य ग्रंथ का मनोयोगपूर्वक अनुकरण किया गया है । पद्मपुराण और मानस के विषय में ऐसा निर्णय कदापि नहीं दिया जा सकता । पद्मपुराण की कथावस्तु और पात्रों का पार्थक्य पीछे दिखाया जा चुका है । जब दोनों ग्रन्थों का ‘वस्तु’ तत्त्व ही पृथक् है तो फिर एक का दूसरे पर प्रभाव कैसा ? जैसा ‘अध्यात्मरामायण’ आदि ग्रन्थों का प्रभाव मानस पर है वैसा पद्मपुराण का तो त्रिकाल में भी सिद्ध नहीं किया जा सकता ।

इस प्रकार अनुमान और प्रत्यक्ष भी पद्मपुराण के मानस पर सीधे और यथावस्थित प्रभाव को सिद्ध नहीं कर पाते । हाँ, एक बात अवश्य कही जा सकती है कि संभवतः गोस्वामी जी ने पद्मपुराण को देखा होगा क्योंकि जैन कवि बनारसी उनके परिचितों में थे । यह भी कथंचित् कहा जा सकता है कि उन्होंने इसकी कुछ सूक्तियों को पढ़कर या सुनकर अपने मानस में उनके भाव की सूक्तियाँ रखी होंगी किन्तु यह पद्मपुराण का मानस पर प्रभाव नहीं, अपितु गोस्वामी जी की मधु-करी कृति का निदर्शन है । प्रभाव तो तब माना जाता जब वे मानस में पद्मपुराण के कथानक के किसी अंश को निविष्ट करते । उन्होंने लक्ष्मण-शक्ति पर अयोध्या की रणसज्जा तक का संकेत नहीं किया । यदि वे पद्मपुराण को आद्योपास्त ध्यान से पढ़ते तो कम-से-कम कुछ प्रसंगों को तो अवश्य वे मानस में स्थान देते । अयोध्या की रणसज्जा का प्रसंग तो उनके कथानक को और भी चाव बना देता और इसमें कोई सैद्धांतिक विरोध भी नहीं आता था । अतः पद्मपुराण के मानस पर यथावस्थित प्रभाव की चर्चा खपुष्पत्रोटन ही है । जो उक्तियाँ इन दोनों ग्रन्थों में समान भावों वाली मिलती हैं, वे प्रायः या तो ‘पुष्पाक्षरन्याय-सिद्ध’ मानी जानी चाहिएँ अथवा उनका स्रोत कोई तीसरा ही ग्रन्थ मानना चाहिएँ यथा—बाल्मीकिरामायण, गीता, पंचतन्त्र आदि । यहाँ हम कुछ ऐसे तुलनात्मक उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

१. रक्षिणे—‘सत्कथाश्रवणी यो च श्रवणी तौ मतौ मम ।

अन्यौ विदूषकस्येव श्रवणाकारधारिणी ॥

सञ्चेष्टावर्णना वर्णा वर्णन्ते यत्र मूर्धनि ।
 अयं मूर्धाग्र्यमूर्धा तु नालिकेरकरंकवत् ॥
 सत्कीर्तनसुधास्वादसक्तं च रसनं स्मृतम् ।
 अन्यच्च दुर्वचोषार कृपाण्डुहितुः फलम् ॥
 श्रेष्ठावोष्ठी च तावेव यौ सुकीर्तनवतिनी ।
 न शम्बूकास्यसंयुक्तजलीकापृष्ठसन्निभौ ॥
 दन्तास्त एव ये शान्तकथासंगमरंजिताः ।
 पोषाः सवलेष्मनिर्वाणद्वारबन्धाय केवलम् ॥
 मुख श्रेयःपरिप्राप्तेर्मुखं मुख्यकथारतम् ।
 अन्यत्तु मलसम्पूर्णं दन्तकीटाकुलं विलम् ॥
 वदिता योऽथवा श्रोता श्रेयसां वचसां नरः ।
 पुमान् स एव शेषस्तु शिल्पिकल्पितकायवत् ॥^{११४१}

तुलसी—‘जिन हरि कथा सुनहि नहि काना ।

सवन रध अहि भवन समाना ॥

० ० ०

जो नहि करई राम गुनगाना ।

जीह सो बादुर जीह समाना ॥^{११४४}

२. रत्नबेण—‘ससारे पर्यटन्नेष बहुयोनिसमाकुले ।

मनुष्यभावमायाति चिरेणात्यन्तदुःखतः ॥^{११४३}

तुलसी—‘बड़े भाग मानस तन पावा ।

सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ॥

साधन धाम मोच्छ कर द्वारा ।

पाइ न जेहि परलोक सँवारा ॥^{११४४}

३. रत्नबेण—‘प्रिय त्व तिष्ठ चात्रैव गच्छाम्यहं पुनस्तत्रम् ।

ततो जगाद साध्वी सा यत्र त्व तत्र चाप्यहम् ॥^{११४५}

११४१ पद्य०, १।२८-३४

११४२. मानस, १।११२।२, ६

ऐसे भाव भागवत में भी व्यक्त हुए हैं, यथा—

‘जिले बलोरुक्कमधिकमान् ये न मृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ।

जिह्वा ततो दाडुरिकेव सूत न बोधगायत्युक्तायगाथाः ॥’ (श्रीमद्भगवत, २।३।२०)

‘एवविद्बराहोष्ठद्वारैः सस्तुतः पुरुष. पशुः ।

न यत्कर्णेष्वपि वेतो जातु नाम गवाग्रजः ॥’ (वही, २।३।१९)

११४३. पद्य०, २।१६८

११४४. मानस, ७।४२।४

११४५. पद्य०, ३।१।८५

तुलसी—'आपन मोर नीक जौ बहह । बचन हमार मान गृह रहह ॥

० ० ०

प्राननाथ कसनायतन सुन्दर सुखद सुजान ।

तुम बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान ॥'११४६

प्राननाथ तुम बिनु जग माही ।

मो कहूँ सुखद कतहुँ कछु नाही ॥'११४७

४. रचिबेण—'वितस्य सकलं लोकं शशांककरनिर्मला ।

कीर्तिर्व्यवस्थिता माभूत् सैव सति मलीमसा ॥'११४८

तुलसी—'रिसि पुलस्ति जसु बिमल मयंका ।

तेहि ससि महुँ जनि होहु कलका ॥'११४९

५. रचिबेण—रन्ध्रं प्राप्य वने भीमे हा केनास्मि दुरात्मना ।

हरता जानकीं कष्टं हतो दुष्करकारिणा ॥

दर्शयंस्तामथोत्सृष्टां हरन् शोकमशेषतः ।

को नाम बान्धवत्व मे वनेऽस्मिन् परमेष्ठ्यति ॥

भो वृक्षाश्चम्पकच्छाया सरोजदललोचना ।

सुकुमाराहिका भीरुस्वभावा वरगामिनी ॥

चित्तोत्सवकरा पद्मरजोगन्धमुखानिला ।

अपूर्वा यौधिनी सृष्टिदृष्टा स्यात् काचिदंगना ॥

कथं निरुत्तरा यूयमित्युक्त्वा तद्गुणैर्हृतः ।

पुनर्मूर्छापरीतात्मा धरणीतलमागमत् ॥

० ० ०

भो भो महीवराधीश धातुभिविविधैश्चित ।

सूनुदंशरथस्य त्वां पद्माक्ष्यः पग्निपृच्छते ॥

विपुलस्तननम्रांगा बिम्बोष्ठी हसगामिनी ।

सन्निभत्वा भवेद् दृष्टा सीता मे मनसः प्रिया ॥

दृष्टादृष्टेति किं वक्षि ब्रूहि ब्रूहि न्व सा न्व सा ।

केवलं निगदस्येव प्रतिशब्दोऽयमीदृशः ॥

० ० ०

भूयो भूयो बहु व्यावन् क्षणनिश्चलविग्रहः ।

निराशतां परिप्राप्तः सूक्कारमुखराननः ॥'११५०

तुलसी—'आश्रम देखि जानकी हीना । भए विकल जस प्राकृत दीना ॥

हा गुनखानि जनकी सीता । रूप सील त्रत नेम पुनीता ॥

लछिमन समुझाए बहु भाँती । पूछत चले लता तरु पाँती ॥

हे लग मृग हे मधुकर श्वेनी । तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ॥

०

०

०

ऐहि बिधि लोजत बिलपत स्वामी ।

मनहुँ महा बिरही अति कामी ॥'११५१

६. रविचरण—'भस्मभावगते गेहे कूपखानश्रमो वृथा ।'११५२

तुलसी—'का बरपा जब कृपी सुखाने ।

७ रविचरण—'भवत्कीर्तिलताजालैर्जटिलं बलयं दिशाम् ।

मा धाक्षीदयशोदाबः प्रसीद स्थितिकोविद ॥

परदारभिलाषोऽयमयुक्तोऽतिभयकरः ।

लज्जनीयो जुगुप्स्यश्च लोकद्वयनिषूदनः ॥'११५३

तुलसी—'जो आपन चाहै कल्याना ।

सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना ॥

सो परनारि लिखार गोसाईं ।

तजउ चउथि के चद कि नाई ॥'११५४

८ रविचरण—'ता दुःखहेतवः सर्वा वैदेही हन्तुमुद्यताः ।'११५५

तुलसी—'भवन गमउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि बृन्द ।

सीतहि त्रास दिखावहि धरहि रूप बहु मंद ॥'११५६

९ रविचरण—'इत्युक्ते. रुदती सीता समाध्वास्थ प्रयत्नतः ।

यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा निरैसीताप्रदेशतः ॥'११५७

तुलसी—'जमकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि घोरजु दीन्ह ।

धरन कमल सिर नाइ कपि गबनु राम पहि कीन्ह ॥'११५८

१०. रविचरण—'ब्रूडामणिधिम चोढं दृढप्रत्ययकारणम् ।

१३५०. पद्य०, ४४।११४-१४९

१३५२. पद्य०, ४६।६९

१३५४. मानस, ५।३७।३

१३५६. बही, ५।१०

१३५८. बही, ५।२७

१३५१. मानस, ३।२९।१-८

१३५३. पद्य०, ४६।१२२-१२३

१३५५. बही, ५।३।१२३

१३५७. बही, ५।३।१७०

दर्शयिष्यसि नाथाय तस्यात्यन्तमयं प्रियः ॥'११९९

तुलसी—'चूडामनि उतारि तब दयऊ ।

हरष समेत पवनसुत लयऊ ॥'११९०

११. रविबेण—'उत्पाद्य वायुपुत्रोऽपि निःशस्त्रो धीरपुंगवः ।

सघातं तुंगवृक्षाणां शिलानां बारमक्षिपत् ॥'११९१

• • •
बभञ्ज त्वरितं कांश्चिदपरानुदमूलयत् ।

मुष्टिपादप्रहारेण पिपेषान्यान् महाबलः ॥'११९२

तुलसी—'चलेउ नाइ सिर पैठेउ बागा । फल खाएसि तरु तोरै लागा ॥

रहे तहाँ बहु भट रलबारे । कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे ॥

• • •
कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि घरि घूर ।

कछु पुनि जाइ पुकारे प्रभु मर्कट बल मूर ॥'११९३

१२. रविबेण—सर्वस्वेनापि यः पूज्यो यद्यप्यसकृदागतः ।

गुचिरादागतो द्रोही त्व निग्राह्यस्तु वर्तसे ॥

इमैर्निगदितैः क्रोधात् प्रहस्योवाच मारुतिः ।

को जानाति विना पुण्यैर्निग्राह्यः को विधेरिति ॥

स्वयं वुर्मतिना सार्द्धं मनेनासन्मृत्युना ।

इतो दिनैः कतिपयैर्द्रव्यामः क्व प्रयास्यथ ॥'११९४

तुलसी—'मृत्यु निकट आई खल तोही । लागेसि अधम सिखावन मोही ॥

उलटा होइहि कह हनुमाना । मतिभ्रम तोर प्रगट मै जाना ॥'११९५

१३. रविबेण—'इत्युक्तः क्रोधसरक्तः खड्गमालोक्य रावणः ।

जगाद दुविनीतांश्वं सुदुर्वचननिर्भरः ॥

त्यक्तमृत्युभयो बिभ्रत्प्रगल्भत्वं समाश्रितः ।

द्राक् खलीक्रियता मध्ये नगरस्य दुरीहितः ॥'११९६

तुलसी—'सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना । बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना ॥

सुनत बिहसि बोला दसकधर । अग भग करि पठइअ बंदर ॥'११९७

१३५९ बही, ५३।१६७

१३६०. बही, ५।२६।१

१३६१ पद्य०, ५३।१९४

१३६२. बही, ५३।१९८

१३६३ मानस, ५।१७।१४, १८

१३६४. पद्य०, ५३।२४२-२४३

१३६५. मानस, ५।२३।२

१३६६ पद्य०, ५३।२४६-२४७

१३६७. मानस, ५।२३।३, ५

१४. रबिबेण—'प्रमोदं जानकी प्राप्ता विषादं च मुहुर्मुहुः ।' १३६८
 ध्ययी हर्षविषादं च जनः सक्ताश्रुलोचनः ॥' १३६९

तुलसी—'हरण विषाद हृदय अकुलानी ।' १३७०

१५. रबिबेण—'प्रिया जीवति ते भद्रं त्येवमागत्य मावतिः ।
 वेदविष्यति मे साधुरिति चिन्तामुपागतम् ॥
 क्षीणमत्यभिराभागं क्षीयमाणं निरंकुशम् ।
 वियोगवह्निना मागं दावेनैवाकुलीकृतम् ॥

किन्तु त्वद्विरहोदारदावमध्यविबलितनी ।
 गुणौघनिम्नया बाला नेत्राम्बुकृतदुर्दिना ॥
 वेणीवध्वभ्युत्तिच्छायमूर्धजात्यन्तदुःखिता ।
 मुहुर्निःश्वसती दीनं चिन्तासागरवतिनी ॥' १३७१

तुलसी—'नाम पाहए दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट ।
 लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहि बाट ॥'
 'सीता कै अति बिपति बिसाला ।
 बिनहि कहैं भलि दीनदयाला ॥' १३७२
 'कस तनु सोस जटा एक बेनी ।' १३७३

१६. रबिबेण—'विस्तीर्णा प्रवरा सम्पन्महेन्द्रस्येव ते प्रभो ।
 स्थिता च रोदसी व्याप्य कीर्तिः कुन्ददलामला ॥
 स्त्रीहेतोः क्षणमात्रेण सेयं मागाः परिक्षयम् ।
 स्वामिन् सन्ध्याभरेखेव प्रसीद परमेश्वर ॥
 क्षिप्रं समर्प्यतां सीता तव किं कार्यमेतया ।
 दृश्यते न च दोषोऽत्र प्रस्पष्टः केवलो गुणः ॥' १३७४

तुलसी—'तात चरन गहि मागउं राखहु मोर दुलार ।
 सीता देहु राम कहूँ अहित न होइ तुम्हार ॥' १३७५

१७. रबिबेण—'नैषा सीता समानीता पित्रा तव कुबुद्धिना ।
 रक्षोभोगविलं लंकामेषानीता विषोषधिः ॥' १३७६

तुलसी—'तब कुल कुमुद बिपिन दुखदाई । सीता सीत निजा सभ आई ॥' १३७७

१३६८ पद्य०, ५३।२६७

१३७०. मानस, ५।१२।१

१३७२. मानस, ५।३०।५

१३७४. पद्य०, ५।९-११

१३७६. पद्य०, ५५।२५

१३६९. बही, ११३।२१

१३७१. पद्य०, ५४।५-२०

१३७३. बही, ५।७।४

१३७५. मानस, ५।४०

१३७७. मानस, ५।३५।३

१८. रक्षिणेन—'एवं प्रवदमानं तं क्रोधप्रेरितमानसः ।

उत्साय रावणः खड्गमुद्गतो हन्तुमुद्यतः ॥' ११०८

तुलसी—'अस कहि कीन्हैसि चरन प्रहारा ।' ११०९

१९. रक्षिणेन—'देवागमननिर्मुक्ते कालेऽतिशयवर्जिते ।

प्रनष्टकेवलोत्पादे हलचक्रवरोऽभिज्ञे ॥

भवद्विषमहाराजगुणसंघातरिक्तके ।

भविष्यन्ति प्रजा दुष्टा बन्धनोद्यतमानसाः ॥

निष्क्रीला निर्व्रताः प्रायः क्लेशव्याधिसमन्विताः ।

मिथ्यादृशो महाघोरा भविष्यन्त्यनुघारिणः ॥

अतिवृष्टिरवृष्टिश्च विषमा वृष्टिरीतयः ।

त्रिविधाश्च भविष्यन्ति दुस्सहाः प्राणघारिणाम् ॥

मोहकादम्बरीमत्ता रागद्वेषात्मभूतयः ।

नतितमूकराः पापा मुहुर्गर्वस्मिता नराः ॥

कुवाक्यमुखराः क्रूरा धनलाभपरायणाः ।

विचरिष्यन्ति सद्योता रात्राविव महीतले ॥

गोदण्डपथतुल्येषु मूढास्ते पतिताः स्वयम् ।

कुघर्मेषु जनानन्यान्पातयिष्यन्ति दुर्जनाः ॥

अपकारे समासक्ताः परस्य स्वस्य चानिष्टम् ।

ज्ञास्यन्ति सिद्धमात्मानं नरा दुर्गतिगामिनः ॥

कुशास्त्रमुक्ततृणकारैः कर्मम्लेच्छैर्मंदोद्धतैः ।

अनर्धजनितीत्साहैर्मोहसतमसावृतैः ॥

छेत्स्यन्ते सततोद्युक्तैर्मन्दकालानुभावतः ।

हिंसाशास्त्रकुठारेण भव्येतरजनाधिपाः ॥' ११००

'बर्मनन्दनकालेषु व्ययं यातेष्वनुक्रमात् ।

भविष्यति प्रचण्डोऽत्र निर्धर्मसमयो महान् ॥

दुःपाषण्डैरिदं जैन शासनं परमोन्नतम् ।

तिरोधायिष्यते क्षुद्रैर्जोभिर्भानुबिम्बवत् ॥

दमसानसदृशा ग्रामाः प्रेतलोकोपसाः पुरः ।

क्लिष्टा जनपदाः कुत्स्या भविष्यन्ति दुरीहिताः ॥

कुकर्मनिरतैः क्रूरैश्चौरैरिव निरन्तरम् ।
 दुःपाषण्डैरयं लोको भविष्यति समाकुलः ॥
 महीतलं खलं द्रव्यपरिमुक्ताः कुटुम्बिनः ।
 हिंसाक्लेशसहस्राणि भविष्यन्तीह सन्ततम् ॥
 पितरौ प्रति निस्नेहाः पुत्रास्तौ च सुतान् प्रति ।
 चौरा इव च राजानो भविष्यन्ति कलौ सति ॥
 सुखिनोऽपि नराः केचिन् मोहयन्तः परस्परम् ।
 कथाभिर्दुर्गतीषाभी रस्यन्ते पापमानसाः ॥
 नश्यन्त्यतिपायाः सर्वे त्रिदशागमनादयः ।
 कषायबहुले काले शत्रुघ्न समुपागते ॥
 जातरूपधरान् दृष्ट्वा साधून् व्रतगुणान्वितान् ।
 संजुगुप्सा करिष्यन्ति महामोहान्विता जनाः ॥
 अप्रशस्ते प्रशस्तत्वं मन्यमानाः कुचेतसः ।
 भयपक्षे पतिष्यन्ति पतंगा इव मानवाः ॥
 प्रशान्तहृदयान् साधून् निर्भर्त्स्य विहसोद्यताः ।
 मूढा मूढेषु दास्यन्ति कौचदन्नं प्रयत्नतः ॥
 इत्थमेतं निराकृत्य प्राह्वयान्य समागतम् ।
 यतिनो मोहिनो देव दास्यन्त्यहितभावनाः ॥१९८१

मुलसी—‘सो कलिकाल कठिन उरगारी । पाप परायन सब नर नारी ॥

कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रन्थ ।

दमिन्ह निज मति कल्पि करि प्रकट किए बहु पंथ ॥

भए लोग सब मोह बस लोभ ग्रसे सुभ कर्म ।

सुनु हरिजान ध्यान निधि कहउँ कछुक कलिधर्म ॥

बरन धर्म नहि आश्रम चारी । श्रुति बिरोध रत सब नर नारी ॥

द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन । कोउ नहि मान निगम अनुसासन ॥

मारग सोइ जा कहैं जोइ भाबा । पडित सोइ जो गाल बजाबा ॥

मिथ्यारभ दभ रत जोई । ता कहैं सत कहइ सब कोई ॥

सोइ सयान जो परधन हारी । जो कर दभ सो बड़ आचारी ॥

जो कह भूँठ मसखरी जाना । कलिजुग सोइ गुनबत बखाना ॥

निराचार जो श्रुति पथ त्यागी । कलिजुग सोइ म्यानी सो बिरागी ॥

जाकैं नख अरु जटा बिसाला । सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥

असुभ बेष भूषन करें भच्छाभच्छ जे खाहि ।

तेइ ओगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहि ॥

जे अपकारी चार, तिन्ह कर गोरव मान्य तेइ ।

भन कम बचन लवार, तेइ बकता कलिकाल महुँ ॥

नारि बिबस नर सकल गोसाईं । नाचहि नट मर्कट की नाई ॥

सूद्र द्विजन्ह उपदेसहि ग्याना । मेलि जनेऊ लेहि कुदाना ॥

सब नर काम लोभ रत कोधी । देव बिप्र श्रुति संत बिरोधी ॥

गुन भविर सुंदर पति त्यागी । भर्जहि नारि पर पुरुष जभागी ॥

सौभागिनीं बिभूषन हीना । बिषबन्ह के सिंगार नबीना ॥

गुर सिष बधिर अंध का लेखा । एक न सुनइ एक नहि देखा ॥

हरइ सिष्य जन सोक न हरई । सो गुर चोर नरक महुँ परई ॥

मातु पिता बालकन्ह बोलावहि । उदर भरै सोइ धर्म सिखावहि ॥

ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहि न दूसरि बात ।

कौड़ी लागि लोभ बस करहि बिप्र गुरु पात ॥

बादहि सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि ।

जानइ ब्रह्म सो विप्रवर आखि देखावहि डाटि ॥

पर त्रिय लंपट कपट सयाने । मोह द्रोह ममता लपटाने ॥

तेइ अमेदवादी ग्यानी नर । देखा मै चरित्र कलिजुग कर ॥

आपु गए अरु तिन्हहुं घालाहि । जे कहूँ सत मारग प्रतिपालाहि ॥

कल्प-कल्प भरि एक-एक नरका । परहि जे दूषहि श्रुति करि तरका ॥

जे बरनाथम तेलि कुम्हारा । स्वपच किरात कोल कलवारा ॥

नारि मुई गृह संपति नासी । मूढ़ मुड़ाइ होहि सग्यासी ॥

ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहि । उभय लोक निज हाथ नसावहि ॥

बिप्र निरच्छर लोलुप कामी । निराचार सठ बूषली स्वामी ॥

सूद्र करहि जप तप व्रत नाना । बैठि बरासन कहहि पुराना ॥

सब नर कल्पित करहि अचारा । जाइ न बरनि अनीति अपारा ॥

भए बरन सकर कलि भिन्नसेतु सब लोग ।

करहि पाप पावहि दुल भय रज सोक बियोग ॥

श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक ।

तेहि न चलहि नर मोह बस कल्पाहि पंथ अनेक ॥

बहु दाम संवारहि धाम जती । विषया हरि सीन्धि न रही बिरती ॥

तपसी धनवंत दरिद्र गृही । कलि कौतुक छात न जात कही ॥

कुलवंति निकारहि नारि सती । गृह जानहि बेरि निबेरि गती ॥
 सुत मानहि मातु पिता तब लौ । अबलानन दीक्ष नहीं जब लौ ॥
 समुरारि पिवारि लगी जब तैं । रिपुरूप कुटुंब भए तब तैं ॥
 नृप पाप परायन धर्म नहीं । करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं ॥
 धनवंत कुलीन मलीन अपी । द्विज चिन्ह जनेउ उधार तपी ॥
 नहि मान पुरान न बेदहि जो । हरि सेवक संत सही कलि सो ।
 कबि बूढ़ उदार दुनी न सुनी । गुन बूझक बात न कोपि गुनी ॥
 कनि बारहि बार दुकाल परै । बिनु अन्न खी सब लोग मरै ॥
 सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाखंड ।
 मान मोह मारादि मद व्यापि रहे बह्मांड ॥१३८२

२०. रबिबेण—‘अभिमानोन्नतिं त्यक्त्वा प्रसादय रघूत्तमम् ।

मा कलंकं स्ववंशस्य कार्पीर्योषिन्निमित्तकम् ॥’१३८३

तुलसी—‘रिषि पुनस्ति जसु बिमल मयंका ।

तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका ॥’१३८४

‘परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस ।’१३८५

२१. रबिबेण—‘क्व सौमित्रिः क्व सौमित्रिरिति गाढं समुत्सुकः ।

लोकोऽपि हि समस्तो मे प्रक्षयति प्रेमनिर्भरः ॥

रत्नं पुरुषवीराणां हारयित्वा त्वकामहम् ।

मन्ये जीवितमारमीयं हतं निहतपौरुषः ॥

कामार्थाः सुलभाः सर्वे पुरुषस्यागमास्तथा ।

बिबिधाश्चैव सम्बन्धा विष्टपेऽस्मिन् यथा तथा ॥

पर्यट्य पृथिवीं सर्वां स्थानं पश्यामि तन्ननु ।

यस्मिन्नवाप्यते भ्राता जननी जनकोऽपि वा ॥’१३८६

तुलसी—‘सुत बित नारि भवन परिवारा ।

होहि जाहि जग बारहि बारा ॥

अस बिचारि जिये जागहु ताता ।

मिलइ न जगत सहोदर भ्राता ॥

जैहुउँ अवध कौन मुहु लाई ।

नारि हेतु प्रिय भाइ गैबाई ॥

१३८२. मानस, ७।१७-१०१

१३८३. पद्य०, ६२।२६

१३८४. मानस, ५।२२।१

१३८५. बही, ५।३९५

१३८६. पद्य०, ६३।९, १०, १३, १४

बह अपजस सहतेउँ जग नाही ।
नारि हानि विशेष छति माही ॥^{११८७}

२२. रविबेण—‘अथवा वेत्ति नारीणां चेतसः को विचेष्टितम् ।

दोषाणां प्रभवो यासु साक्षाद्वसति मन्मथः ॥

चिक्छिन्नं सर्वदोषाणामाकरं तापकारणम् ।

विद्युद्वकुलजातानां पुसां पंकं मुदुस्यजम् ॥

अभिहृन्त्रीं समस्तानां बलानां रागसंश्रयाम् ।

स्मृतीनां परमं भ्रंशं मत्पस्वलनखातिकाम् ॥

विघ्नं निर्वाणसौम्यस्य ज्ञानप्रभवमूदनीम् ।

भस्मच्छन्नाग्निसंकाशां दर्भसूचीसमानिकाम् ॥

दृक्कमात्ररमणीयां ता निर्मुक्तमिव पन्नगः ।

तस्मात् त्यजामि वैदेही महादुःखजिहासया ॥^{११४८}

तुलसी—‘काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि ।

तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि ॥

मुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता । मोह बिपिन कहँ नारि बसता ॥

जप तप नेम जलाश्रय झारी । होइ शीघ्रम सोषइ सब नारी ॥

काम क्रोध मद भत्सर भँका । इन्हिहि हरषप्रद बरषा एका ॥

दुर्वासना क्रुमद समुदाई । तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई ॥

धर्म सकल सरसीरूह बृंदा । होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मदा ॥

पुनि ममता जवाम बहुताई । पनुहुइ नारि सिसिर श्रुतु पाई ॥

पाप उलूक निकर मुखकारी । नारि निबिड़ रजनी अंधियारी ॥

बुधि बल सील सत्य सब मीना । बनसी सम त्रिय कहँहि प्रबीना ॥

अवगुन मूल सुखप्रद प्रमदा सब दुख खानि ।

ताते कीन्ह निवारन मुनि में यह जियँ जानि ॥^{११९५}

२३. रविबेण—‘मुकृतस्य फलेन जन्तुरुच्चैः पदमाप्नोति सुसम्पदां निधानम् ।

दुरितस्य फलेन तत्तु दुःखं क्रुगतिस्थं समुपैत्ययं स्वभावः ॥^{११८९}

तुलसी—‘जहाँ सुभति तहँ संपति नाना ।

जहाँ क्रुमति तहँ बिपति निदाना ॥^{११९०}



परिशिष्ट

एक •	पद्मपुराण के सुभाषित
दो •	पद्मपुराण की प्रमुख वंशावलियाँ
तीन •	संकेतित ग्रन्थ-सूची

परिशिष्ट-१

पद्मपुराण के सुभाषित

- १ मत्तवारणसमुष्णे ब्रजान्त हरिणा ण्वि ।
प्रविशन्ति भटा युद्ध महामटपुरस्सरा ॥१।१६
- २ भास्वता भासितानर्थां सुखेनालोकते जन ।
सूचीमुखविनिर्मित् मण्य विद्यति सूत्रकम् ॥१।२०
- ३ व्यक्ताकारादिवर्णा वाग् लम्बिता या न सत्कथाम् ।
सा तस्य निष्फला जन्तो पापादानाय केवलम् ॥१।२३
- ४ वृद्धिं व्रजति विज्ञान यज्ञश्चरति निर्मलम् ।
प्रयाति दुरित दूर महापुरुषकीर्तनात् ॥१।२४ ✓
- ५ अल्पकालमिदं जन्तो शरीर रोगनिर्भरम् ।
यथास्तु सत्कथाजन्म यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥१।२५
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पुरुषेणात्मवेदिना ।
शरीरं स्यास्तु कर्तव्यं महापुरुषकीर्तनात् ॥१।२६
- ६ लोकद्वयफलं तेन लब्धं भवति जन्तुना ।
यो विद्यते कथा रम्या सज्जनमन्ददायिनीम् ॥१।२७ ✓
- ७ सत्कथाश्रवणी यौ च श्रवणी तौ भवौ मम ।
अन्यौ विप्लवकस्येव श्रवणाकारषारिणी ॥१।२८ ✓
- ८ सञ्चेष्टवर्णनां वर्णां वर्णान्ते यत्र मूर्च्छति ।
अथ मूर्च्छाश्चमूर्च्छा तु नालिकेरकरकवत् ॥१।२९
- ९ सत्कीर्तनमुपास्वावसक्तश्च रसनं स्मृतम् ।
अन्यञ्च कुर्वन्प्रोषादं कृपापुहितुं फलम् ॥१।३०
- १० श्रेष्ठावोष्ठी च तावेव श्री सुकीर्तनवर्तिनीः ।
न शम्बूकास्त्यसंभुक्तजलीकापृष्ठतन्मिमी ॥१।३१ ✓

११. दन्तास्त एव ये शान्तकषासंगमरञ्जिताः ।
शेषाः सश्लेष्मनिर्वाणद्वारबन्धाय केवलम् ॥ २।३२
१२. मुखं श्रेयःपरिप्राप्तेर्मुखं मुख्यकषारतम् ।
अग्न्यस्तु मलसम्पूर्णं दन्तकीटाकुलं विलम् ॥ २।३३
१३. वदिता योज्यवा श्रोता श्रेयसां वचसां नरः ।
पुमान् स एव शेषस्तु शिल्पिकल्पितकायवत् ॥ २।३४ ५
१४. गुणदोषसमाहारे गुणान् गृह्णन्ति साधवः ।
क्षीरवारिसमाहारे हंसाः क्षीरमिवाखिलम् ॥ २।३५
१५. गुणदोषसमाहारे दोषान् गृह्णन्त्यसाधवः ।
मुक्ताफलानि सत्यज्य काका मांसमिव द्विपात् ॥ २।३७ ✓
१६. अदोषामपि दोषाक्तां पश्यन्ति रचनां सत्ताः ।
रविमूर्तिमिवोलूकास्तमासदलकालिकाम् ॥ २।३७
१७. सरोजलागमद्वारजालकानीव दुर्जनाः ।
धारयन्ति सदा दोषान् गुणबन्धनवर्जिताः ॥ २।३८
१८. स्वभावमिति संखिन्त्य सज्जनस्मेततस्य च ।
प्रवर्तन्ते कषाबन्ध स्वार्थमुद्दिश्य साम्भवः ॥ २।३९
१९. सत्कथाश्रवणाद् यच्च सुखं सम्पद्यते नृणाम् ।
कृतिनां स्वार्थं एवासौ पुष्पोपार्जनकारणम् ॥ २।४०
२०. सम्मार्गे प्रकटीकृते हि रविणा कदवासवृष्टिः स्खलेत् ॥ २।४० ३
२१. मनुष्यमावभासाद्य सुकृतं ये न कुर्वते ।
तेषां करतलप्रप्लवामुत नाशमागतम् ॥ २।४१ ७ ✓
२२. सम्प्राप्तं रक्षितं द्रव्यं भुञ्जानस्वापि नो धामः ।
प्रतिवासरसंबुद्धगद्गभिर्निरिवर्तनात् ॥ २।४१ ७
२३. हिंसातः संसृतेर्मुखं दुःखं संसारसञ्जकम् ॥ २।४२ १
२४. प्रष्टव्या गुरवो नित्यमर्थं ज्ञातमपि स्वयम् ।
स तैर्निबन्धयमानोऽसौ क्वाति परमं सुखम् ॥ २।४२ २ ✓
२५. न विना पीठबन्धेन विद्यातुं सद्यः शक्यते ।
कषाप्रस्तावहीनं च वचनं छिन्नमूलकम् ॥ ३।२८
२६. साधौ तपोऽगारे प्रतालककृतविग्रहः ।
सर्वग्रन्थविनिर्मुक्तो दत्तं दानं महाफलम् ॥ ३।६९ ✓
२७. यद्यसाधीयते वस्तु दर्पणे, तस्य दर्शनम् ॥ ३।७२

२८. अस्मिन्निभुवने कृत्स्ने जीवानां हितमिच्छताम् ।
धारणं परमो धर्मस्तस्माच्च परमं सुखम् ॥४॥३५ ✓
२९. सुखार्थं चेष्टितं सर्वं तच्छ धर्मविमितकम् ।
एवं ज्ञात्वा यथा यस्मात् कुरुष्व धर्ममङ्गमम् ॥४॥३६
३०. वृष्टिर्बिना कुतो मेघैः स्व सस्यं बीजवर्जितम् ।
जीवानां च विना धर्मात् सुखमुत्पद्यते कथम् ॥४॥३७ ✓
३१. गन्तुकामो यथा पङ्क्तूँको वक्तुं समुद्यतः ।
अन्धो दर्शनकामश्च तथा धर्मादुते सुखम् ॥४॥३८
३२. परमाणोः परं स्वल्पं न ज्ञान्यन्नसो महत् ।
धर्मादन्यच्च लोकेऽस्मिन् मुहुर्भास्ति शरीरिणाम् ॥४॥३९
३३. न कल्पते । साधूनामीदृशी मित्रा या तदुद्देशसंस्कृता ॥४॥४०
३४. प्राणा धर्मस्य हेतवः ॥४॥४१
३५. अहो बत महाकष्टं जैनैश्वरमिदं व्रतम् ॥४॥४२
३६. प्राप्यते सुमहद् दुःखं जन्तुभिर्भवसागरे ॥४॥४३
३७. कष्टं यैरेव जीवोऽयं कर्मभिः परितप्यते ।
तान्येवोत्सहते कर्तुं मोहितः कर्ममायया ॥
आपातमात्रम्वेषु विषयद् दुःखदायिषु ।
विषयेषु रतिः का वा दुःखोत्पादनबुद्धिषु ॥
कृत्वापि हि चिरं सङ्गं धने कान्तासु बन्धुषु ।
एकाकिनैव कर्त्तव्यं संसारे परिवर्तनम् ॥
तावदेव जनः सर्वः प्रियत्वेनानुवर्तते ।
दानेन गृह्यते यावत्सारमेयशिषुर्वेषा ॥
इयता चापि कालेन को गतः सह बन्धुभिः ।
परलोकं कलत्रैर्वा सुहृद्भिर्बन्धुत्वेन वा ॥
नागभोगोपमा भोगा भीमा नरकपातिनः ।
तेषु कुर्यान्नरः सङ्गं को वा यः स्यात्सचेतनः ॥
अहो परमिदं चित्रं सद्भावेन यदाश्रितान् ।
लक्ष्मीः प्रतरयत्येव दुष्कृतं किमतः परम् ॥
स्वप्ने समागमो यद्वत्तद्वद् बन्धुसमागमः ।
इन्द्रचापसमानं च क्षणमत्रं च तैः सुखम् ॥
जलबुद्बुदवत्कायः सारेण परिवर्जितः ।
विधुस्तताविलासेन सदृशं जीवनं कथम् ॥४॥२२९-२३७ ✓

३८. महातरौ यथैकस्मिन्दुषित्वा रजनीं पुनः ।
 प्रजाते प्रतिपद्यन्ते ककुभो दश पक्षिणः ॥
 एव कुटुम्ब एकस्मिन् सङ्गमं प्राप्य जन्तवः ।
 पुनः स्वां स्वां प्रपद्यन्ते यति कर्मवशानुगाः ॥५।२६५-२६६
३९. बलवद्भूयो हि सर्वेभ्यो मृत्युरेव महाबलः ।
 जानीता निघन येन बलवन्तो बलीयसा ॥५।२६८
४०. फेनोर्मिन्द्रघनुःस्वप्नविद्युद्बुद्बुदसन्निभाः ।
 सम्पदः प्रियसम्पर्का विप्रहास्य शरीरिणाम् ॥५।२७०
४१. नास्ति कश्चिन्नरो लोके यो ह्यजेदुपमानताम् ।
 यथायममरस्तद्वदय मृत्युज्जिता इति ॥५।२७१
४२. येऽपि शोषयितुं शक्ताः समुद्रं ग्राहसङ्कुलम् ।
 द्युर्बुधां करयुग्मेन चूर्णं मेरुमहीधरम् ॥
 उद्धत्तुं शरणीं शक्ता असितुं चन्द्रभास्करी ।
 प्रविष्टास्तैर्ऽपि कालेन कृतान्तवदनं नराः ॥५।२७२-२७३
४३. मृत्योर्दुर्लङ्घितस्यास्य त्रैलोक्ये वशाता गते ।
 केवल व्युज्जिताः सिद्धा जिनधर्मसमुद्भवाः ॥५।२७४
४४. शोकं कुर्याद्विदुद्धात्मा को नरो भवकारणम् ? ५।२७६
४५. सङ्कल्प निन्दनं कृत्वा मृत्युमेति भवे भवे ॥५।२८३
४६. धिगिच्छामन्तवर्जिताम् ५।३०७
४७. मधुदिग्धासिधाराया लेहने कीदृश सुखम् ।
 रसनं प्रत्युतायाति शतधा यत्र खण्डनम् ॥५।३११
 विषयेषु तथा सौख्य कीदृश नाम जायते ।
 यत्र प्रत्युत दुःखानामुपर्युपरि सन्ततिः ॥५।३१२
४८. यथा स्वजीवितं कान्तं सर्वेषां प्राणिनां तथा ॥५।३२८
४९. दुर्लभं सति जन्तुत्वे मनुष्यत्वं शरीरिणाम् ।
 तस्मादपि सुरुपत्वं ततो जनसमुद्भवाः ॥
 ततोऽप्यार्यत्वसम्भूनिस्ततो विद्यासमागमः ।
 ततोऽप्यर्षजता तस्माद् दुर्लभो धर्मसङ्गमः ॥५।३३३-३३४✓
५०. परपीडाकर वाक्यं वर्जनीयं प्रयत्नतः ।
 हिंसायाः कारणं तद्वि सा च संसारकारणम् ॥५।३४१✓
 तथा स्तेयं स्त्रियाः सङ्गं महाद्रविणबाष्पनम् ।
 सर्वमेतत्परित्याज्यं पीडाकारणतां गतम् ॥५।३४२

५१. भवान्तरकृतेन तपोवलेन सम्प्राप्नुवन्ति पुरुषा मनुजेषु भोगान् ॥५॥४०५
 ५२. दुष्कर्मसक्तमतयः परमां लभन्ते निन्दं जना इह भवे मरणात्परं च ॥५॥४०६
 ५३. पापतमसो रवितां भजध्वम् ॥५॥४०६
 ५४. आचाराणां विधातेन कुवृष्टीनां च सम्पदा ।
 धर्मं ग्लानिपरिप्राप्तमुच्छ्रयन्ते जिनोत्तमाः ॥
 ते तं प्राप्य पुनर्धर्मं जीवा बान्धवमुत्तमम् ।
 प्रपद्यन्ते पुनर्मर्गं सिद्धस्थानाभिगामिनः ॥५॥२०६-२०७
 ५५. कालप्राप्तं नयं सन्तो युञ्जाना यान्ति तुङ्गताम् ॥६॥२५
 ५६. स्वभाव एव कन्यानां यत्परागरसेवनम् ॥६॥४३
 ५७. शुद्धाभिजनता मुख्या युगानां वरभाजिनान् ॥६॥४६
 ५८. स्वयमेव तु कन्यायै रोचते क्रियतेऽत्र किम् ? ६॥५०
 ५९. हा कष्टं क्षुद्रशक्तीनां मनुष्याणां विगुण्यति ॥६॥१४४
 ६०. मनोज्ञं प्रायशो रूपं धीरस्यापि मनोहरम् ॥६॥१६७
 ६१. कान्ताभिप्रायसामर्थात् सुरूपमपि नेष्यते ॥६॥१७१
 ६२. मङ्गलं यस्य यत्पूर्वं पुरुषैः सेवितं कुले ।
 प्रत्यवायेन सम्बन्धो निरासे तस्यं जायते ॥
 क्रियमाणं तु तद्भूक्त्या करोति शुभसम्पदम् ॥६॥१८६
 ६३. अभिमानेन तुङ्गानां पुरुषाणामिदं व्रतम् ।
 नमयन्त्येव यच्छत्रु द्विषिणे विगताशयाः ॥६॥१९५
 ६४. प्रायशो विषवल्लीव दृष्टा पूर्वैर्नृपद्युतिः ॥६॥२००
 ६५. पूर्वोपाजितपुण्यानां पुरुषाणां प्रवृत्ततः ।
 संजातासु न लक्ष्मीषु भावः सञ्जायते महान् ॥
 यथैव ताः समुत्पन्नास्तेषामल्पप्रयत्नतः ।
 तथैव त्यजतामेषां पीडा तामु न जायते ॥
 तथा कथञ्चिदासद्य सन्तो विषयजं सुखम् ।
 तेषु निर्वेदमागत्य बाञ्छन्ति परमं पदम् ॥६॥२०१-२०३
 ६६. यन्नोपकरणैः साध्यमास्त्रभायसं निरन्तरम् ।
 महदन्तेन निर्मुक्तं सुखं तत् को न बाञ्छति ? ६॥२०४
 ६७. लक्षणं यस्य यत्लोके स तेन परिकीर्त्यते ॥६॥२०८
 ६८. तपो हि श्रम उच्यते ॥६॥२११
 ६९. परां हि कुष्ठे प्रीतिं पूर्वापरितोषेनम् ॥६॥२१६
 ७०. आचार्ये प्रियमाणे यस्तिष्ठत्यन्तिकमोचरे ।

- करोत्याचार्यकं मूढः शिष्यतां दूरमुत्सृजन् ॥
 नासी शिष्यो न चाचार्यो निर्धर्मः स कुमार्गगः ।
 सर्वतो भ्रंशमायातः स्वचारात्साधुनिन्दितः ॥६।२६४-२६५
७१. अहो परममाहात्म्यं तपसो भुवनातिगम् ॥६।२६७
 ७२. मार्गोऽयमिति योगच्छेद् दिशामन्नाय मोहवान् ।
 प्राचीयसापि कालेन नेष्ट स्वान्नं स गच्छति ॥६।२७०
 ७३. धर्मस्य हि दया मूलं तस्या मूलमहिमनम् ॥६।२६६ ✕
 ७४. अन्यः कस्तस्य कथ्येत धर्मस्य परमो गुणः ।
 त्रिलोकशिक्षरं येन प्राप्यते मुक्तामुलम् ॥६।२६५
 ७५. अयं (मनुष्यभवः) हि दुर्लभो लोके धर्मोपादानकारणम् ॥६।३७६
 ७६. वाञ्छिते हि धरत्वेन कृष्टिश्चञ्चलता व्रजेत् ॥६।३६४
 ७७. बीजं युद्धस्य योषितः ॥६।४५०
 ७८. दारजातं पराभवम् ॥६।४६३
 ७९. शोको हि पण्डितैर्दुष्टः पिशाचो भिन्ननामकः ॥६।४८०
 ८०. कर्मणां विनियोगेन वियोगः सह कण्ठुना ।
 प्राप्ते तत्रापर दुःखं शोको यच्छति सन्ततम् ॥६।४८१
 ८१. अविधाय नराः कार्यं ये गर्जन्ति विरथकम् ।
 महान्तं लाभवं लोके शक्तियन्तोऽपि यान्ति ते ॥६।५४६ ✓
 ८२. प्रेक्षापूर्वप्रवृत्तेन जन्तुना सप्रयोजनः ।
 व्यापारः सततं कृत्स्नः शोकश्चायमनर्थकः ॥६।४८१
 ८३. प्रत्यागमः कृते शोके प्रेतस्य यदि जायते ।
 ततोऽन्यानपि सगृह्य विदधीत जनः शुचम् ॥६।४८३
 ८४. शोकः प्रत्युत देहस्य शोधीकरणमुत्तमम् ।
 पापानामयमुर्ध्वको महामोहप्रवेक्षणः ॥६।४८४
 ८४. (अ) नानुबन्धं (सत्कारं) त्यजत्यरिः ॥
 ८४. (आ) बलीयसि रिपी गुप्ति प्राप्य कालं नयेद् नुषः ।
 तत्र तावदवाप्नोति न निकारं (पा. विकारं)-मरातिकम् ॥६।४८४
 ८४. (इ) प्राप्य तत्र स्थितः कालं कुतश्चिद् द्विगुणं रिपुम् ।
 साधयेन्नहि भूतनामेकस्मिन् सर्वदा रतिः ॥६।४८६
 ८४. (ई) भग्नाः कितानुसर्तव्याः शयवो न ॥६।४८६
 ८४. (उ) अनुकम्पा हि कर्तव्या महता दुःक्षिते जने ॥६।४८८ ✓

८४. (ऊ) पृष्ठस्य दर्शनं येन कारितं कातरात्मना ।
जीमन्तुद्वयं तस्यान्वत् किमिहा किं ममस्त्वना ? ६।४६६
८४. (अ) मनुष्यजन्म नस्त्यम्बदुर्लभं यमसङ्कटे ॥६।५०३
८५. अभिप्रेत्य वधं शबोराहस्य जमिन द्विपम् ।
प्रस्थितः पौरव बिभ्रत्कथं भूयो विभ्रसंते ? ७।५०
८६. भटः किं विनिकसंते ? ७।५२
८७. 'असौ पलायितो भीतो वराक' इतिभाषितम् ।
कथमाकर्णयद्दीरो जनताया सुचेतसः ॥ ७।५६
८८. यत्नेन महताम्विष्य हन्तव्या लोककण्टकाः । ७।६६
८९. पक्षपातो भवत्येव योगिनापि सम्बन्धे । ७।६०
९०. ज्ञातव्येषु हि नारीणां प्रमाणं प्रियमानसाम् । ७।६४
९१. भवेदमृतवल्लीतो विषस्य प्रक्षयः कथम् ? ७।९७
९२. मूलं हि कारणं कर्म स्वकृपविनियोजने ।
निमित्तमात्रमेवास्य अगतः पितरौ स्मृतौ । ७।९९
९३. हेतुसमं फलम् । ७।२०२
९४. वितथ नैव आयते यतिभाषितम् । ७।२२०
९५. अवाप्तं मरणं पुसा स्वस्थानमश्लो बधम् । ७।२४०
९६. कुर्वन्त्याराधनं यत्नात्साधवस्तपसो यथा ।
आराधनं तथा कृत्यं विद्यायाः सम-योगजैः ॥ ७।२५४
९७. कापुरुषा एव स्वान्वन्ति प्रस्तुताशयात् । ७।२८०
९८. स्वसति प्रेम हि प्रायः पितृभ्यां सोदरे परम् । ७।३०३
९९. विद्या हि साध्यते पुत्राः ! स्वजनानां समृद्धये ॥ ७।३०४
१००. पुत्रा हि यदिताः पित्रोः प्ररोहा इव धारकाः । ७।३०६
१०१. निश्चयात् किं न लभ्यते ? ७।३१५
१०२. निश्चयोऽपि पुरोपासालम्ब्यते कर्मणः सितात् ।
कर्माण्येव हि यच्छन्ति निष्ठां दुःस्नानुभाषिनः ॥ ७।३१६
१०३. काले वानविमि शाने क्षेमे चायुःस्थिति क्षमम् ।
सम्यग्बोधिकला विद्या नाशब्दो लब्धुमर्हति ॥ ७।३१७
१०४. कस्यचिद्दशभिर्बर्षैर्विद्या मासेन कस्यचित् ।
क्षणेन कस्यचित्तिद्धिं यान्ति कर्मानुभाषतः ॥ ७।३१८
१०५. धरण्यां स्वपितु त्वागं कसेतु चिरमन्धसः ।
मञ्जस्वप्नु दिवापन्नं गिरेः पत्न्यु मस्तकात् ॥

- विचितां पञ्चतापीय्या क्रियां विप्रहृशोषिणीम् ।
 पुण्यैर्विरहितो जन्तुस्तथापि न कृती भवेत् ॥ ७।३१६-३२०
१०६. जन्ममार्गं क्रियाः पुंसां सिद्धिः सुकृतकर्मणाम् ।
 अकृतोत्तमकर्माणो यान्ति मृत्युं निरर्थकाः ॥ ७।३२१
१०७. सर्वादिरान्मनुष्येण तस्मादाकार्यसेवया ।
 पुण्यमेव सदा कार्यं सिद्धिः पुण्यैर्विना कुतः ॥ ७।३२२✓
१०८. पूर्वमवाजितेन पुरुषाः पुण्येन यान्ति श्रियम् ॥ ७।३२४
१०९. अग्नेः किं न कणः करोति विपुलं भस्म क्षणात् काननम् ? ७।३२४
११०. मत्तानां करिणा भिनत्ति निबहं सिंहस्य वा नार्मकः ? ७।३२४
१११. बोधं ह्याशु कुमुद्वतीषु कुस्ते घीतांशुरोचिर्लवः
 सन्ताप प्रणुदन् दिवाकरकरैरुत्पादितं प्राणिनाम् ।
 निद्राविद्रुतिहेतुभिश्च समये जीमूतमालामिभं
 ध्वान्तं दूरमपाकरोति किरणैरुद्योतमानो रविः ॥ ७।३२५
११२. कन्यानां यौवनारम्भे सन्तापान्निमसमुद्भवे ।
 इन्धनत्वं प्रपद्यन्ते पितरौ स्वजनैः समम् ॥ ८।१६
- एवमर्थं ददत्यस्या जन्मनोऽन्तरं बुधाः ।
 लोचनाञ्जलिभिस्तोयं दुःखाकुलितचेतसः ॥ ८।७
११३. कन्यानां देहपालने ।
 जनन्य उपयुज्यन्ते पितरो दानकर्मणि ॥ ८।१०
११४. भर्तृ छन्दानुवर्तिन्यो भवन्ति कुलबालिकाः ॥ ८।११
११५. प्रपद्यन्ते परिभ्रंशं कुलजा नोपचारतः ॥ ८।३१
११६. कं न कुर्वन्ति सज्जनाः दर्शनोत्सुकम् ? ८।४८
११७. सता हि कुलविद्येयं यन्मनोहरभाषणम् ॥ ८।४९✓
११८. प्रतिकूलसमाचारा न भवन्त्येव साधवः ॥ ८।५१✓
११९. नीयन्ते विषयैः प्रायः सत्त्ववन्तोऽपि बध्यताम् ॥ ८।७३
१२०. सङ्घोतापन्नपा तावद् दुःसहाः स्मरवेदना ॥ ८।१०७
१२१. शणाञ्जनं विमुक्तानां ताराणां कामिरूपता ? ॥ ८।११०
१२२. एकाकी पृथुकः सिंहः प्रस्फुरस्सितकेसरः ।
 किं वा नानयते ध्वंसं मूढं समददस्तिनाम् ॥ ८।१२७
१२३. आनन्दं पुत्रतो भाग्यत् प्रतिराशस्तत्र परम् ॥ ८।१५७
१२४. तिरस्त्वां मानुषाणां च प्रायो श्रीवोऽप्यसेव हि ।
 कृत्याकृत्यं न जानन्ति यदेकैः श्रेष्ठैः तु सद्भिः ॥ ८।१६६✓

- १२५ विस्मरन्ति च नो पूर्वं वृत्तान्तं वृद्धमानसा ।
जातायस्मपि कस्याम्बिभूतौ विदुस्समद्युतौ ॥८॥१७०
- १२६ को हि स्वकुलनिर्मूलं ध्वस्तहेतुक्रियां भजेत् ॥८॥१७१
- १२७ हृदयस्यैव नाभेन पिशाचेनेव चोदिता ।
हूता बाधि प्रवर्तन्ते यन्त्रदेहा इवावशा ॥८॥१८८
- १२८ अकीर्तिरुन्नवस्युर्वीलोके सुप्रबधे कृते ॥८॥१८९
- १२९ नहि गण्डूपदानं हन्तुं वैनतेय प्रवतते ॥८॥१९०
- १३० धिग् भृत्य दुःखनिमित्तम् । ८॥१९२
- १३१ धिग् कष्टं ससारं दुःखभाजनम् ।
चक्रवत्परिवर्तन्त प्राणिनो यत्र योनिषु ॥८॥२२०
- १३२ कृत्वा प्राणिवधं जन्तुर्मनोऽविषयाशया ।
प्रयाति नरकं भीमं सुमहादुःखसङ्कुलम् ॥८॥२२४
- १३३ यथैवदिवसं राज्यं प्राप्तं सवत्सरं बधम् ।
प्राप्नोति सदृशं तेन निश्चयं विषयं सुखम् ॥८॥२२५
- १३४ यक्षुः पक्ष्मपुटान् दृक्षन् विषं ननु जीवितम् ॥८॥२२६
- १३५ मत्तस्तम्बेरमारुह्यैव पङ्कलाग्रकरैर्नरैः ।
क्रियत मागणं शत्रोर्यं तु घमनिबधनम् ॥८॥२२८
- १३६ कुर्वाणो हि निजं कमं पुरुषो नैव लज्जते ॥८॥२३०
- १३७ वीर्यमक्षतकायानां शूराणां नहि बधते ॥८॥२३३॥
- १३८ वीराणां शत्रुमङ्गेन कृतत्वं न घनादिना ॥८॥२४२
- १३९ एतदर्थं न बाञ्छन्ति सन्तो विषयजं सुखम् ।
यथेतदध्रुवं स्तोकं सान्तरायं सदुःखकम् ॥८॥२४६
- १४० निमित्तमात्रतान्येषामसुखस्य सुखस्य वा ।
बुधास्तेभ्यो न कुप्यन्ति ससारस्थितिबेदिन ॥८॥२४८
- १४१ भव्यं करय न सम्मतं ? ॥८॥२६६
- १४२ मृदुं पराभवत्येष लाकं प्रखलचेष्टितम् ।
उदयुत्थाप्यमुखं कर्तुं नाभिवाञ्छति ककशे ॥८॥३३२
- १४३ परकार्येषु यो रतः ।
कार्ये तस्य कथं स्वस्मिन्नीदासीन्यं भविष्यति ? ८॥३७७
- १४४ निविशन् समागमसम्पदं प्रबलशत्रुसमूलविमर्दनम् ।
सकलविष्टपयामि यदा सितं भवति निर्मितनिर्मलकर्मजम् ॥८॥५३०

१४५. रिपव उग्रतरा विषयाङ्गवा अधमवन्ति भुक्स्त्रिस्तये स्मृतिम् ।
बहिरवस्त्रिस्तम्भुवणः पुनः सततमानमते यश्चमत्तरम् ॥८॥१५३१
१४६. इति विचिन्त्व न युक्तमुपासितुं विषयसमुपगमं पुनयेत्तः ॥
अमरमेति जमस्तमसा ततं न तु रणेः किरणैरवभासितम् ॥८॥१५३२
१४७. स्त्रीणां स्वाभाविकी ऋषा ॥८॥१५३५
१४८. कन्या नाम प्रभो ! देवा परस्माद्येष निवचन्वात् ।
उत्पत्तिरेव तासां हि तावृक्षी सार्वलौकिकी ॥८॥१५३२
१४९. हिसित्वा जन्तुसंचातं नितान्तं प्रियञ्जीवितम् ।
दुःखं कृतसुखाभिर्यं प्राप्नोते तेन को गुणः ? ॥८॥१५३१
१५०. अरवदृष्टदीयन्त्रसदृशाः प्राणधारिणः ।
शब्दभूवमहाकूपे भ्रमन्त्यत्यन्तदुःखिताः ॥८॥१५३२
१५१. क्व धर्मः क्व च संक्रोधः ? ॥८॥१५३२
१५२. इन्द्राणामपि सामर्थ्यमीदृशं नाथ नेक्ष्यते ।
यादृक् तपःसमृद्धिर्ना मुनीनामल्पयत्नजम् ॥८॥१५३३
१५३. पुण्यवन्तो महासत्त्वा भुक्तिसङ्गमीसमीपगाः ।
तारुण्ये विषयास्त्यक्त्वा स्थिता ये भुक्तिवर्त्मनि ॥८॥१५३२
१५४. जिनवन्दनया तुल्यं किमन्यद्विद्यते क्षुभम् ? ॥८॥१५३४
१५५. जितेन्द्रवन्दनातुल्यं कल्याणं नैव विद्यते ॥८॥१५३२
१५६. वदाति परिनिर्वाणमुखं या समुपासिता ।
जिनतया तया तुल्यं न भूतं न भविष्यति ॥८॥१५३६
१५७. असाध्यं जिनभक्तैर्यत्साधु तन्नैव विद्यते ॥८॥१५३५
१५८. आस्तां तावदिदं स्वरूपं व्याधाति भषजं सुखम् ।
मोक्षजं लभ्यते भक्त्या जिनानामुत्तमं सुखम् ॥८॥१५३७
१५९. एकया दशया कस्य कालो गच्छति सञ्जन !
विषदोजन्तरा सम्पत् सम्पदोजन्तरा विपत् ॥८॥१५३१✓
१६०. चिद्धमनोभवद्वेषितम् ! ॥८॥१५३३
१६१. महेच्छा हि तुष्यन्त्यानतिमाधतः ॥८॥१५३१
१६२. बलानां हि समस्तानां बलं कर्मकृतं परम् ॥८॥१५३६
१६३. प्रायो हि शीघ्रस्नेहात् परः स्नेहो न विद्यते ॥८॥१५३२
१६४. पराभिभवमग्रेण क्षयिकाणं कृतार्थता ॥८॥१५४७
१६५. स्वर्गं चित् श्रुतिमोक्षेन चित् देहं दुःखसाधनम् ॥८॥१५३३
१६६. प्रवयसां नृणाम् । प्रज्जया शोभते ॥८॥१५३५॥

१६७. नैव मृत्युविवेकवान् । शरद्भन इवाकस्माद्देहो नाशं प्रपद्यते ॥ १०१६६६
१६८. येन केनचिदुदात्तकर्मणा कारणेन रिपुजेतरेण वा ।
निर्मितेन समवाप्यते मतिः श्रेयसी न तु निष्कृष्टकर्मणा ॥ १०१७७
१६९. यः प्रयोजयति मानसं शुभे यस्य तस्य परमः स बान्धवः ।
भोगवस्तुनि तु यस्य मानसं यः करोति परमारि कस्य सः ॥ १०१७८
१७०. निसर्गोऽयं यदाप्तस्व पुरः शोको विवर्द्धते । ११३०
१७१. प्राणनाथपरित्यक्ता का वा स्त्री सुखमुच्छति ? ११५४
१७२. सत्यं वदन्ति राजानः पृथिवीपालनोद्यताः ।
ऋषयस्ते हि भाष्यन्ते ये स्थिता जन्तुपालने ॥ ११५८
१७३. यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ११७४ ✓
१७४. हिंसायज्ञमिमं घोरमाचरन्ति न ये जनाः ।
दुर्गतिं ते न गच्छन्ति महादुःखविधायिनीम् ॥ १११०४
१७५. कष्टं पश्यत नर्त्यन्ते कर्मभिर्जेन्तवः कथम् ? १११२३
१७६. यथा हि छदितं नान्नं भुज्यते मानुषैः पुनः ।
तथा त्यक्तेषु कामेषु न कुर्वन्ति मति बुधाः ॥ १११२६
१७७. दह्यमाने यथागारे कथञ्चिदपि निःसृतः ।
तत्रैव पुनरात्मानं प्रक्षिपेन्मूढमानसः ॥ १११३२
- यथा च विवरं प्राप्य निष्क्रान्तः पञ्जरान् खगः ।
निवृत्य प्रविशेद् भूयस्तत्रैवाज्ञानचोदितः ॥ १११३३
- तथा प्रव्रजितो भूत्वा यो यातीन्द्रियवश्यताम् ।
निन्दितः स भवेत्लोके न च स्वार्थं समश्नुते ॥ १११३४
१७८. प्राणिनो ग्रन्थसंगेन रागद्वेषसमुद्भवाः ।
रागात् सञ्जायते कामो द्वेषाज्जन्तुविनाशनम् ॥ १११३६
- कामक्रोधाभिभूतस्य मोहेनाक्रम्यते मनः ।
कृत्याकृत्येषु मूढस्य मतिर्न स्याद्विवेकिनी ॥ १११३७
- यत्किञ्चित्कुर्वन्तस्तस्य कर्मोपाजंयतोऽशुभम् ।
ससारसागरे घोरे भ्रमणं न विवर्तते ॥ १११३८
- एतान् संसर्गजान् दोषान् विदित्वाशु विपश्चितः ।
वैराग्यमधिगच्छन्ति नियम्यात्मानमात्मना ॥ १११३९
१७९. अरण्याभ्यां समुद्रे वा स्थितं वारातिपञ्जरे ।
स्वयंकृतानि कर्माणि रक्षन्ति न परो जनः ॥ १११४७ ✓

यः पुनः प्राप्तकालः स्वाञ्जन्यङ्गुलतोर्ध्वं सः ।

ह्रियते मृत्युना जीवः स्वकर्मवशात् गतः ॥ ११११४८

१८०. अक्षुब्धः क्रुद्धः प्रोक्त वचनं स्वाम्मलीमसम् ॥ ११११६६

१८१. सति सर्वज्ञतायोगे वक्ता हि सुतरा भवेत् ॥ ११११८५

१८२. गुणैर्वैर्णव्यवस्थितिः ॥ ११११६८

१८३. ब्राह्मण्यं गुणयोगेन न तु तद्योनिसम्भवात् ॥ १११२००

१८४. न जातिर्गहिता काचिद् गुणा. कल्याणकारणम् ॥ १११२०३

१८५. विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।

शुचि चैव वक्त्राके च पण्डिता. समदर्शिनः ॥ १११२०४

१८६. शास्त्रमुच्यते । तद्वि यन्मातृवच्छास्ति सर्वस्मै जगते हितम् । १११२०६

१८७. प्रायश्चित्तं च निर्दोषे वक्तु कर्मणि नोचितम् ॥ १११२१०

१८८. किञ्चिन्न कृत्यं प्राणिहिसया ॥ १११३००

१८९. अज्ञानेन हि जन्तूनां भवत्येव दुरीहितम् ॥ १११३०५

१९०. पुण्यसम्पूर्णदेहानां सौभाग्यं केन कथ्यते ? १११३११

१९१. नाम श्रुत्वा प्रणमति जनः पुण्यभाजा नराणाम् ॥ १११३८३ ✓

१९२. पुण्यबन्धे यतध्वम् ॥ १११३८३ ✗

१९३. ज्येष्ठो व्याघ्रसहस्राणां मदनो मतिबुद्धयः ।

येन सम्प्राप्यते दुःखं नरैरक्षतविग्रहैः ॥ १२१३३ ✓

१९४. प्रधानं दिवसाधीशः सर्वेषां ज्योतिषां यथा ।

तथा समस्तरोगाणां मदनो मूर्ध्नि वर्तते ॥ १२१३४

१९५. आमगर्भेषु दुःखानि प्राप्नुवन्ति चिरजनाः ।

ये शरीरस्य कुर्वन्ति स्वस्याविधिनिपातनम् ॥ १२१४८

१९६. अहो कष्टः ससारः सारवजितः ॥ १२१५०

१९७. पृथक् पृथक् प्रपद्यन्ते सुखदुःखकरी गतिम् ।

जीवाः स्वकर्मसपन्नाः कोऽत्र कस्य सुहृज्जनः ? १२१५१ ✗

१९८. विजिगीषुत्वं क्रियते दीर्घदर्शिनः ॥ १२१६४

१९९. समानं कथाति येनातः सखिशब्दः प्रवर्तते ॥ १२११००

२००. सख्यो हि जीवितसम्बन्ध परम् ॥ १२११०१

२०१. विषया भर्तुं संयुक्ता प्रमदा कुलबालिका ।

वैश्या च रूपयुक्तापि परिहार्या प्रयत्नतः ॥ १२११२४

२०२. लोकद्वयपरिग्रहः कीदृशो वद मानवः ? १२११२५

२०३. नरान्तरमुखकलेदपूर्वज्याङ्गविमर्दिते ।
उच्छिष्टभोजने भोक्तुं (भग्न !) बाञ्छति को नरः ? ॥ १२१२६
२०४. उदारा भवन्ति हि दयापराः ॥ १२१२७
२०५. प्राणिनां रक्षणे धर्मः श्रूयते प्रकटो भुवि ॥ १२१२८
२०६. उत्तिष्ठतो मुखं भक्तुमघरेणापि शक्यते ।
कण्टकस्यापि यस्तेन परिणाममुपेयुषः ॥ १२१२९
२०७. उत्पत्तावेव रोगस्य क्रियते ध्वसनं सुखम् ।
व्यापी तु बद्धमूलः स्यादूर्ध्वं स को त्रियोज्यवा ॥ १२१३०
२०८. जायते विफलं कर्माप्रेक्षापूर्वकारिणाम् ॥ १२१३१
२०९. भवत्यर्थस्य ससिद्धयै केवलं च न पौरुषम् ।
कर्षकस्य विना वृष्ट्या का सिद्धिः कर्मयोगिनः ? ॥ १२१३२
२१०. समानमहिमानानां पठतां च समादरम् ।
अर्थभाजो भवन्त्येके नापरे कर्मणां वशात् ॥ १२१३३
२११. प्रकृष्टवयसा पुसा धीर्यत्येवायवा क्षयम् ॥ १२१३४
२१२. हतानेककुरंगं किं शबरो हन्ति नो हरिम् ॥ १२१३५
- २१२(क). संश्रमे शस्त्रसम्पातजातज्ज्वलनजालके ।
वरं प्राणपरित्यागो न तु प्रतिनरानतिः ॥ १२१३६
२१३. प्राणानभिमुखीभूता मुखञ्चन्ति न तु सायकाम् ॥ १२१३७
२१४. नबेन प्राप्यते छंदं वस्तु यस्त्वल्पयत्नतः ।
व्यापारः परशोस्तत्र ननु (तात !) निरर्थकः ॥ १२१३८ ✓
२१५. तन्मुलेषु गृहीतेषु ननु शालिकलापतः ।
स्यामस्तुबपलामस्य क्रियते कारणाद्विना ॥ १२१३९
२१६. धिगतिचपलं मानुषमुखम् । १२१४०
२१७. रविरुचिकरं यान्तु सुकृतम् ॥ १२१४१
२१८. परमर्षिपसादं हि समीहन्ते नराधिपाः ॥ १२१४२
२१९. (किन्तु) मातेव नो शक्या त्यक्तुं जन्मबन्धनम् ।
सा हि क्षणाद्वियोगेन कुर्वते चित्तमाकुलम् ॥ १२१४३
२२०. जन्मभूमेः किमुच्यताम् ? १२१४४
२२१. धिग् विद्यागोचरैस्त्वर्थं विलीनं यदिति क्षणात् ।
शारदानामिवाब्दानां मृन्दमत्स्वन्तमुन्नतम् ॥ १२१४५
२२२. अथवा कर्मणामेतद्वैचित्र्यं कोऽप्यथा नरः ।
कतुं शक्नोति तेषां हि सर्वमन्यद्बलाधरम् ॥ १२१४६

२२३. कर्मणामुचितं तेषां जायते प्राणिनां फलम् ॥१३।६८
 २२४. हेतुना न विना कार्यं भवतीति किमद्भुतम् ? ॥१३।६९
 २२५. लोकत्रयेऽपि तन्नास्ति तपसा यन्न साध्यते ।
 बलानां हि समस्तानां स्थितं मूर्ध्नि तपोबलम् ॥१३।७२
 २२६. न सा त्रिवशनायस्य शक्तिः कान्तिर्धुतिर्वृत्तिः ।
 तपोधनस्य या साधोर्यथाभिमतकारिणः ॥१३।७३
 २२७. विधाय साधुलोकस्य तिरस्कारं जना महत् ।
 दुःखमत्र प्रपद्यन्ते तिर्यक्षु नरकेषु च ॥१३।७४ ✓
 २२८. मनसापि हि साधूनां पराभूतिं करोति यः ।
 तस्य सा परमं दुःखं परमेहं च यच्छति ॥१३।७५
 २२९. यस्त्वाक्रोशति निर्ग्रन्थं हन्ति वा क्रूरमानसः ।
 तत्र किं णयते वक्तुं जन्तौ दुष्कृतकर्मणि ॥१३।७६
 २३०. कायेन मनसा वाचा यानि कर्माणि मानवाः ।
 कुर्वन्ते तानि यच्छन्ति निकृष्टानि फलं ध्रुवम् ॥१३।७७
 २३१. साधोः सङ्गमनाल्लोके न किञ्चिद्दुर्लभं भवेत् ।
 बहुजन्मसु न प्राप्ता बोधिर्येनाधिगम्यते ॥१३।१०१ ✓
 २३२. प्रायेण महतां शक्तिर्यावृष्टी रौद्रकर्मणि ।
 कर्मण्येव विशुद्धेऽपि परमा चोपजायते ॥१३।१०८
 २३३. स्तोकमपीह न चाद्भुतमस्ति न्यस्य समस्तपरिग्रहसङ्गम् ।
 यत्क्षणतो दुरितस्य विनाशं ध्यानबलाज्जनयन्ति बृहन्तः ॥१३।१११
 २३४. अजितमत्युत्कालविधानादिन्धनराशिमुदारमशेषम् ।
 प्राप्य परं क्षणतो महिमानं किं न दहत्यनिलः कणमात्रः ॥१३।११२

(चतुर्दश पर्व में अनश्वबल केवली का उपदेश है। उसमें प्रायः विचारात्मक

पद्य ही हैं जिन्हें धार्मिक सुभाषित कहा जा सकता है।

उनमें कुछ यहाँ दिये जा रहे हैं।)

२३५. सुप्तमेतेन जीवेन स्थलेऽभ्रसि गिरी तरो ।
 गहनेषु च देशेषु भ्राम्यता भवसंकटे ॥१४।३६
 २३६. तिलमात्रोऽपि देशोऽसौ नास्ति यत्र न जन्मुना ।
 प्राप्तं जन्म विनाशो वा ससारावर्तपातिना ॥१४।३८
 २३७. सर्वं तु दुःखमेवात्र मुखं तत्रापि कल्पितम् ॥१४।४६

२३८. कृत्वा चतुर्गती नित्यं भवे भ्राम्यन्ति जन्तवः ।
अरुषट्पटीयन्मसमानस्वमुपायताः ॥१४१५०
२३९. सम्यग्दर्शनशक्त्या च प्रायन्ते मुनयो जनान् ॥१४१५५
२४०. दर्शनेन विबुधेन ज्ञानेन च यदन्वितम् ।
चारित्र्येण च तत्पानं परमं परिकल्पितम् ॥१४१५६
२४१. दानं निम्बितमप्येति प्रशंसां पात्रमेदतः ।
शुक्तिपीतं यथा बारि मुक्तीभवति निश्चयम् ॥१४१७७
२४२. अन्तरङ्गं हि संकल्पः कारणं पुण्यपापयोः ।
विना तेन बहिर्दानं धर्मः पर्वतमूर्धनि ॥१४१७९
२४३. वाणिज्यसदृशो धर्मस्तन्त्रान्धेष्वाल्पभूरिता ।
बहुना हि परामृतिः क्रियतेऽल्पस्य वस्तुनः ॥१४१८१
२४४. यथा विषकणः प्राप्तः सरसी नैव दुष्यति ।
जिनधर्मोद्यतस्यैव हिंसालेशो बृथोद्भवः ॥१४१८२
२४५. आशापाशवशा जीवा मुच्यन्ते धर्मबन्धुवा ॥१४१८०२ ✓
२४६. नैव किञ्चिदसाध्यत्वं धर्मस्य प्रतिपद्यते ॥१४१८२५ ✓
२४७. सारस्त्रिभुवने धर्मः सर्वेन्द्रियसुखप्रदः ।
क्रियते मानुषे देहे ततो बभूवता परा ॥१४१८५५ ✓
२४८. तृणानां सालयः श्रेष्ठाः पादपानां च चन्दनाः ।
उपलानां च रत्नानि भवानां मानुषो भवः ॥१४१८५६ ✓
२४९. पतितं तन्मनुष्यत्वं पुनर्दुर्लभसङ्गमम् ।
समुद्रसलिले नष्टं यथा रत्नं महागुणम् ॥१४१८५९
२५०. इहैव मानुषे लोके कृत्वा धर्मं यथोचितम् ।
स्वर्गादिषु प्रपद्यन्ते सर्वे प्राणभूतः फलम् ॥१४१८६०
२५१. न शीलं न च सम्यक्त्वं न त्यागः साधुगोचरः ।
यस्य तस्य भवान्मोक्षितरणं जायते क्वम् ॥१४१८२९
२५२. संसारसागरे भीमे रत्नद्वीपोऽबसुतमः ।
यदेतन्मानुषं क्षेत्रं तद्वि दुःखेन लभ्यते ॥१४१८३४ ✓
२५३. यथात्र सूत्रार्थं कश्चित् संचूर्णयेन्मणीन् ।
विषयार्थं तथा धर्मरत्नानां चूर्णको जनः ॥१४१८३६
२५४. स्वल्पं स्वल्पमपि प्राणैः कर्तव्यं सुकृतार्जनम् ।
पतद्भिन्विन्दुभिर्जिता महानद्यः समुद्रगाः ॥१४१८४४ ✓
२५५. वर्जनीया निष्ठाभुक्तिरनेकायमसंगता ॥१४१८०८ ✓

२५६. धर्मो मूलं सुखोत्पत्तेरधर्मो दुःखकारणम् ।
इति ज्ञात्वा भजेद्भर्ममधर्मं च विचर्जेत् ॥१४।३१०
२५७. आगोपालाङ्गनं लोके प्रसिद्धिभिदमागतम् ।
यथा धर्मेण शर्मेति विपरीतेन दुःखितम् ॥१४।३११✓
१५८. हुताशनशिक्षा पेया बद्धव्यो वायुरक्षुके ।
उत्क्षेप्तव्यो घराधीशो निर्ग्रन्थत्वमभीप्सता ॥१४।३६३
२५९. भवन्ति कर्माणि यदा शरीरिणां प्रयान्ति युक्तानि विमुक्तिभाविनाम् ।
तदोपदेश परम गुरोर्मुखादवाप्नुवन्ति प्रभव शुभस्य ते ॥१४।३८०
२६०. अत्यन्तव्याकुलप्रायः कन्यादुःख मनस्विनाम् ॥१५।२३
२६१. गमिष्यति पति इलाध्यं रमयिष्यति तं विरम् ।
भविष्यत्युज्जिम्ना दोषैरतिचिन्ता नृणां सुता ॥१५।२८
२६२. स्त्रीहेतोः किं न वेध्यते ? १५।३५
२६३. अथवा बचनज्ञानमस्पष्टमुपजायते ॥१५।५२
२६४. हुताशं विगलङ्गकम् ॥१५।१०१
२६५. मृदुचित्ताः स्वभावेन भवन्ति किल योषितः ॥१५।११२
२६६. अथवा सर्वकार्येषु साधनीयेषु विष्टये ।
मित्रं परममुज्जिम्ना कारण नाम्यदीक्ष्यते ॥१५।११०
२६७. कुटुम्बी क्षितिपालाय, गुरुवेऽन्तेवसन्, प्रिया ।
पत्यै, वैद्याय रोगार्तो, मात्रे शैशवसङ्गतः ॥१५।१२२
निवेद्य मुच्यते दुःखाद्यथात्यन्तपुरोरपि ।
मित्रादीन् नरः प्राज्ञः ॥१५।१२३
२६८. जीवितं ननु सर्वस्यादिष्टं सर्वशरीरिणाम् ।
सति तन्नाम्यकार्याणामात्मलामस्य सम्भवः ॥१५।१२७
२६९. इलाध्यसम्बन्धजस्तोषो बधूनामभवत्परः ॥१५।१५१
२७०. इतरस्यापि नो युक्तं कर्तुं नारीविपादनम् ॥१५।१७३
२७१. विचित्रा चेतसो वृत्तिर्जनस्यात्र न कुप्यते ॥१५।१७५
२७२. सन्देहविषमावर्त्ता दुर्भावग्रहसङ्कुला ।
दूरतः परिहर्तव्या पररक्ताङ्गनापगा ॥१५।१७६
२७३. कुभावगहनात्यन्तं हृषीकव्यालजालिनी ।
बुधेन नार्यरण्यानी सेवनीया न ज्ञातुचित् ॥१५।१८०
२७४. किं राजसेवनं शत्रुसमाश्रयसमागमम् ।
इत्थं मित्रं स्त्रियं चान्यसक्तां प्राप्य कुतः सुखम् ? १५।१८१

२७५. इष्टान् बन्धून् सुतान् दारान् बुधा मुञ्चन्त्यसक्तृताः ।
परामबबलाध्माताः क्षुद्रा नश्यन्ति तत्र तु ॥१५॥१८२
२७६. मदिरारागिणं वैद्यं द्विषं शिक्षाविवर्जितम् ।
अहेतुवैरिणं क्रूरं धर्मं हिंसनसङ्गतम् ॥१५॥१८३
मूर्खगोष्ठीं कुमर्यादं वेशं चण्डं शिषुं नृपम् ।
वनितां च परासक्तां सूरिदूरेण वर्जयेत् ॥१५॥१८४
२७७. अविदिततत्त्वस्थितयो विदधति यज्जन्तवः परेऽशर्म ।
तत्तत्र मूलहेतौ कर्मरवौ तापके दृष्टम् ॥१५॥२२७
२७८. अस्मत्प्रयतनासाध्यो गोचरो ह्येष कर्मणाम् ॥१६॥३०
२७९. नोदाराणां यतः कृत्ये मुच्यते चेतसा रसः ॥१६॥५४
२८०. भर्तापि तेजसा कृत्यं कुस्तेऽरुणसङ्गतः ॥१६॥६९
२८१. जगद्वाहे स्फुलिङ्गस्य किं वा वीर्यं परीक्ष्यते ? १६॥७६
२८२. रमणेन विमुक्तायाः पल्लवोऽप्येति खड्गताम् ।
चन्द्राशुरपि वज्रत्वं स्वर्गोऽपि नरकायते ॥१६॥११६
२८३. धिगस्मत्सदृशान् मूर्खान्प्रेक्षापूर्वकारिणः ।
जनस्य ये विना हेतु यत्कुर्वन्त्यसुखासनम् ॥१६॥१२१
२८४. निश्चित्य विहिते कार्ये लभन्ते प्राणिनः सुखम् ॥१६॥१२६ ✓
२८५. कर्मवशीकृतम् ।
जगत्सर्वमवाप्नोति दुःखं वा यदि वा सुखम् ॥१६॥१५९
२८६. ननु चन्द्रेण शर्वर्याः संगमे का न चारुता ? १६॥१६३
२८७. भवत्ययथवा काले कल्याण कर्मचोदितम् ॥१६॥१६५
२८८. क्षमाय दीर्घदक्षित्वं कल्पते प्राणधारिणाम् ॥१६॥२३२
२८९. कदाचिदिह जायते स्वकृतकर्मपाकोदयात्,
सुखं जगति संगमादभिमतस्य सद्रस्तुनः ।
कदाचिदपि संभवत्यसुभृतामसौख्यं परम्,
भवे भवति न स्थितिः समगुणा यतः सर्वदा ॥१६॥२४२
२९०. यत्रैव जनकः क्रुद्धो विदधाति निराकृतिम् ।
तत्र शेषजने काऽऽस्था तच्छब्दकृतचेष्टिते ॥१७॥६१
२९१. नेत्रे निमील्य सोढव्यं कर्म पाकमुपागतम् ॥१७॥८१
२९२. सर्वधामेव अन्तूनां पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः ।
कर्म तिष्ठति ॥१७॥८२

२९३. अप्सरःसतनेत्रालीनिलयीभूतविग्रहाः ।
प्राप्नुवन्ति परं दुःखं सुकृतान्ते, सुरा अपि ॥१७।८३
२९४. चिन्तयत्यन्यथा लोकः प्राप्नोति फलमन्यथा ।
लोकव्यापारसक्तात्मा परमो हि गुरुर्विधिः ॥१७।८४
२९५. हितक्षूरमपि प्राप्तं विधिर्नाशयति क्षणात् ।
कदाचिदन्यदा धत्ते मानसस्याप्यगोचरम् ॥१७।८५
२९६. गतयः कर्मणां कस्य विचित्रा परिनिश्चिताः ॥१७।८६
२९७. साधुवर्गो हि सर्वेभ्यः प्राणिभ्यः शुभमिच्छति ॥१७।१७१ ✓
२९८. भवे चतुर्गता भ्राम्यन् जीवो दुःखैश्चित्तः सदा ।
सुमानुषत्वमायाति शमे कटुककर्मणः ॥१७।१७५
२९९. यानि यानि हि सौख्यानि जायन्ते चात्र भूतले ।
तानि तानि हि सर्वाणि जिनभक्ते विशेषतः ॥१७।२०५
३००. रोगमूलस्य हि च्छाया न स्निग्धा जायते तरोः ॥१७।३३२
३०१. दुःखं हि नाशमायाति सज्जनाय निवेदितम् ।
महता ननु शौनीयं यदापदगततारणम् ॥१७।३३४ ✓
३०२. स्खलन्ति न विधातव्ये बनेऽपि गुणिनो जनाः ॥१७।३५७
३०२. सम्भवतीह भूधररिपुः पविरपि कुसुमं,
वह्निरपीन्दुपादशिशिरं पृथु कमलवनम् ।
खड्गलतापि चारुवनिता सुमृदुभुजलता,
प्राणिषु पूर्वजन्मजनितास्तुषिरितबलतः ॥१७।६०५
३०४. एष तपत्यहो परिदृढं जगदनवरतं
व्याधिसहस्ररश्मिकरो ननु जननरविः ॥१७।४०६
३०५. विवेकेन हि निर्युक्ता जायन्ते दुःखिनो जनाः । १८।४७ ✓
३०६. अपरीक्षणशीलाना सहसा कार्यकारिणाम् ।
पाश्चात्तापो भवत्येव जनानां प्राणधारिणाम् ॥ १८।६२ ✓
३०७. न त्वापन्नहितोन्मुक्ता महात्मानो भवन्ति हि ॥ १८।७९
३०८. उपायेभ्यो हि सर्वेभ्यो बशीकरणवस्तुनि ।
कामिनीसङ्गमुज्जिम्बत्वा नापरं विद्यते परम् ॥ १८।९९
३०९. किं शिवस्थानं कदाचित्त्वद्विधमाप्यते ? १९।११
३१०. पुण्यस्य पश्यतौदार्यं यदुद्भवति तद्वति ।
बहूनामुद्भवः पुंसां पतिते पतनं तथा ॥ १९।६८
३११. कर्मवैचित्र्याल्लोकोऽयं चित्रचेष्टितः ॥ १९।७९

३१२. पालिका मुग्धलोकस्य शत्रुलोकस्य नाशिका ।
गुह्यश्रुविणी चेष्टा ननु चेष्टा महात्मनाम् ॥ १६।८६
३१३. ग्रहणं ननु वीराणां रणे सत्कीर्तिकारणम् । १६।८७
३१४. द्वयमेव रणे वीरैः प्राप्यते मानशालिभिः ।
ग्रहणं मरणं वापि कातरैश्च पलायितुम् ॥ १६।९०
३१५. एकापि यस्येह भवेद् विरूपा
नरस्य जाया प्रतिकूलचेष्टा ।
रतेः पतित्वं स नरः करोति
स्थितः सुखे संसृतिधर्मजाते ॥ १६।१३१
३१६. विषयवशमुपेतैर्नष्टतत्त्वार्थबोधैः
कविभिरतिकुशीलैर्नित्यपापानुरक्तैः ।
कुरञ्चितगरहेतुग्रन्थबाग्बागुराभिः
प्रगुणजनमगौघो बध्यते मन्दभाग्यः ॥ १६।१३६
३१७. कुलानामिति सर्वेषां श्रावकाणां कुलं स्तुतम् ।
आचारेण हि तत्पूतं सुगत्यर्जनतत्परम् ॥ २०।१४०
३१८. असारं धिगिमां शोभां मर्त्यानां क्षणिकामिति ॥ २०।१६०
३१९. न पायेयमपूपादि गृहीत्वा कश्चिद्वृच्छति ।
लोकान्तरं न चायाति किन्तु तत्सुकृतेतरम् ॥ २०।१६६
३२०. कैलासकूटकल्पेषु वरस्त्रीपूर्णाकुक्षिषु ।
यद्वसन्ति स्वगारेषु तत्फलं पुण्यवृक्षजम् ॥ २०।१६७
३२१. शीतोष्णवासयुक्तेषु कुगृहेषु वसन्ति यत् ।
दारिद्र्यपङ्कनिर्मग्नास्तदधर्मतरोः फलम् ॥ २०।१६८
३२२. विन्ध्यकूटसमाकारैर्वारिणेन्द्रैर्नृजन्ति यत् ।
नरेन्द्राश्चामरोद्धूताः पुण्यशालेरिदं फलम् ॥ २०।१६९
३२३. तुरङ्गैर्यदल स्वर्गैर्म्यते चलचामरैः ।
पादातमध्यगैः पुण्यनृपतेस्तद्विचेष्टितम् ॥ २०।२००
३२४. कल्पप्रासादसङ्काशं रथमारुह्य यज्जनाः ।
व्रजन्ति पुण्यशैलेन्द्रात् श्रुतोऽसौ स्वादुनिर्भरः ॥ २०।२०१
३२५. स्फुटिताभ्यां पदाक्षिप्रभ्यां मलप्रस्तपटच्चरैः ।
भ्रम्यते पुरुषैः पापविषवृक्षस्य तत्फलम् ॥ २०।२०२
३२६. जज्ञं यदमृतप्रायं हेमपात्रेषु मुज्यते ।
स प्रभावो मुनिश्रेष्ठैरुक्तो धर्मरसायनः ॥ २०।२०३

३२७. देवाधिपतिता चक्रबुम्बिता यच्च राजता ।
लभ्यते भव्यशार्दूलैस्तद्विहासालताफलम् ॥ २०।२०४
३२८. रामकेशवयोर्लक्ष्मीर्लभ्यते यच्च पुङ्गवैः ।
तद्वर्मफलम् ॥ २०।२०५
३२९. सनिदानं तपस्तस्माद्वर्जनीयं प्रयत्नतः ।
तद्वि पश्चान्महाघोरदुःखदानमुशिक्षितम् ॥ २०।२१५
३३०. केचिद्गच्छन्ति मोक्षं कृत्वापुस्तपसः स्तोकपङ्कजैश्च केचित् ।
केचिद्भ्राम्यन्ति भूयो बहुभगवहनां संसृतिं निविरामाः ॥ २०।२४६
३३१. चक्रवत्परिवर्तन्ते व्यसनानि महोत्सवैः ।
शनैर्मायादयो दोषाः प्रयान्ति परिवर्द्धनम् ॥ २१।५६
३३२. शुभाशुभसमासकता व्यतिक्रमन्ति मामवाः ॥ २१।७१
३३३. जातस्य सुन्दरावश्यं मृत्युः प्रेतस्य सम्भवः ॥ २१।११३
३३४. मृत्युजन्मघटीयन्ममैतद् भ्रातृमृत्युनारतम् ।
विद्युत्तरङ्गदुष्टाहिरसनेभ्योऽपि चञ्चलम् ॥ २१।११४
३३५. स्वप्नभोगोपमा भोगा जीवितं बुद्धदोषमम् ॥ २१।११५
३३६. सन्ध्यारागोपमः स्नेहस्तारुण्यं कुसुमोपमम् ॥ २१।११६
३३७. परिहासेन किं पीतं नौषधं हरते कृजम् ॥ २१।११७
३३८. अर्थो धर्मश्च कामश्च त्रयस्ते तरुणोचिताः ।
जरापरीतकायस्य दुष्कराः प्राणधारिणः ॥ २१।१३६
३३९. कष्टमहो न शक्यते
विधिविनेतुं प्रकटीकृतोदयः ॥ २१।१४६
३४०. उत्सार्य यो धीषणमन्धकारं
करोति निष्कान्तिकमिन्दुबिम्बम् ।
असौ रविः पद्मवनप्रबोधः
स्वभन्तिमुत्सारयितुं न शक्तः ॥ २१।१४७
- तारुण्यसूर्योऽप्ययमेवमेव
प्रणश्यति प्राप्तजरोपसंगः ।
जन्तुर्वराको वरपाशबद्धो
मृत्योरवश्यं मुञ्चमभ्युपैति ॥ २१।१४८
३४१. धर्मं विनष्टे वद किं न नष्टम् ? २१।१५५
३४२. पश्य श्रेणिक ! संसारे संमोहस्य विचेष्टितम् ।
यन्नाभीष्टस्य पुत्रस्य माता गात्राणि खादति ॥ २१।१६३

- किमतोज्यस्परं कष्टं यज्जन्मान्तरमोहिताः ।
 बान्धवा एव गच्छन्ति वैरितां पापकारिणः ॥२२।१४
३४३. कर्मभूमिमिमां प्राप्य घन्यास्ते युवपुङ्गवाः ।
 व्रतपोतं समाहृष्ट तेरुयं भवसागरम् ॥२२।१११ ✓
३४४. अद्योगति(र्यतो) राज्यादत्यक्तादुपजायते ।
 सम्यग्दर्शनयोगात् गतिरुर्ध्वमसंशया ॥२२।१७
३४५. जीवितायाखिलं कृत्यं क्रियते (नाथ !) जन्तुभिः ।
 त्रैलोक्येशत्वलाभोऽपि (वद) तेनोज्ज्वलतस्य कः ? २३।३८
३४६. उपर्युपरि हि प्रायश्चलन्ति विदुषां धियः ॥२३।४५
३४७. जन्तुभ्यो यो ददात्यभयं नरः ।
 किं न तेन भवेद्दत्तं साधूना धुरि तिष्ठता ? २३।४६
३४८. यद्यत्र यावच्च यतश्च येन
 दुःखं सुखं वा पुरुषेण लभ्यम् ।
 तत्तत्र तावच्च ततश्च तेन
 सम्प्राप्यते कर्मवसानुगेन ॥२३।६२
३४९. दुःशिक्षितार्थमनुजैरकार्यं
 प्रवर्तते जन्तुरसारबुद्धिः ॥२३।६४
३५०. आशीविषाङ्गप्रभवोऽपि सर्प-
 रताक्ष्यस्य शक्नोति किमु प्रहर्तुम् ? २३।६०
३५१. क्वेभः मशङ्को मदमन्दगाभी
 क्व केसरी वायुसमानवेगः ? २३।६१
३५२. कालज्ञानं हि सर्वेषां नयानां मूर्धनि स्थितम् ॥२४।१००
३५३. अवस्थितं जगद्व्याप्य नृदेवकः कथं तमः ।
 सव्येष्टा चेद्भवेदस्य न मूर्तिररुणात्मिका ॥२४।१२८
३५४. दुराचारयुक्ताः परं यान्ति दुःखं
 सुखं साधुवृत्ता रविप्रलम्भभासः ॥२४।१३५
३५५. द्रविणोपार्जनं विद्याप्रहृष्टं धर्मसंग्रहः ।
 स्वाधीनमपि तत्रायो विदेशे सिद्धिमश्नुते ॥२५।४४
३५६. ज्ञानं सम्प्राप्य किञ्चिद् व्रजति परमतां तुल्यमन्यत्र यातं
 तावत्त्वेनापि नैति स्वचिदपि पुरुषे कर्मवैषम्ययोगात् ।
 अत्यन्तं स्फीतिमेति स्फटिकगिरितटे तुल्यमन्यत्र देशे
 यात्येकान्तेन नाशं तिमिरवति रवेरंशुवृन्दं खगौघैः ॥२५।५६

३५७. विद्याधर्मविगाहस्य जायतेऽह्नितात्मनाम् । २६।७
३५८. पुरा संसर्गतः प्रीतिः प्राणिनामुपजायते ।
प्रीतितोऽभिरतिप्राप्ती रतेविश्रम्भसम्भवः ॥
सङ्गावात्प्रणयोत्पत्तिः प्रेम्नैवं पञ्चहेतुकम् ।
दुर्मोचं वध्यते कर्म पातकैरिव पञ्चभिः ॥ २६।८-९
३५९. भीषितानां दरिद्राणामार्तानां च विशेषतः ।
नारीणां पुरुषाणां च सर्वेषां शरणं शृपः ॥ २६।२२ ✓
३६०. स्नेहस्य किमु दुष्करम् । २६।४२
३६१. आसौगिरिविलस्यस्य किं करोतु मृगाधिपः । २६।४९
३६२. दुःखितानां दरिद्राणां वञ्चितानां च बान्धवैः ।
व्याधिसंपीडितानां च प्रायो भवति धर्मधीः ॥ २६।६१
३६३. माता पिता च पुत्रश्च मित्राणि च सहोदराः ।
भक्षितास्तेन यो मांसं भक्षयत्यधमो नरः ॥ २६।७४
३६४. ननु रविकरसङ्गस्योचिता पक्षलक्ष्मीः । २६।१७१
३६५. न ह्याबूना विरोधेन क्षुम्यन्ति वरवारणाः ।
न चापि तुलदाहार्थं सम्प्लह्यति विभावसुः ॥ २७।३७
३६६. सद्य उत्पन्नो भूशमत्पोऽपि पावकः ।
कथं दहति विस्तीर्णं महद्भिः किं प्रयोजनम् ॥ २७।४०
३६७. बालः सूर्यस्तमो धोरं द्युतीर् ऋक्षगणस्य च ।
एको नाशयति क्षिप्रं भूतिभिः किं प्रयोजनम् ॥ २७।४१
३६८. सत्त्वत्यागादिवृत्तीनां क्षत्रियाणामियं स्थितिः ।
उत्सह्यते प्रयातुं यद्विहातुमपि जीवितम् ॥ २७।४३
३६९. अथवा क्षयमप्राप्ते जन्तुरायुषि नाश्नुते ।
मरणं गहनं प्राप्तः परं यद्यपि जायते ॥ २७।४४
३७०. स्व ननु कर्म पुसाम् ।
समागमे गच्छति हेतुभावं वियोजने वा सुजनेन साकम् ॥ २७।९३
३७१. शिशोर्विषफले प्रीतिर्निःस्वस्य बदरादिषु ।
ध्वाङ्गसस्य पादपे शुष्के स्वभावः खलु दुस्त्यजः ॥ २८।१४३
३७२. अत्यन्तविपुलः क्षारसागरः ।
न तत्करोति यद्वाप्यः स्तोकस्वादुपयोभृतः ॥ २८।१४६
३७३. अत्यन्तधनबन्धेन तमसा भूयसापि किम् ।
अत्येन तु प्रवीपेन जन्मते लोकचेष्टितम् ॥ २८।१४७

३७४. असंख्या अपि मातङ्गा मदिनः कुर्वन्ते न तत् ।
केशरी यत्किशोरः सन्धेन्द्रनिर्मलकेसरः ॥ २८।१४८
३७५. अहन्तस्त्रिजगत्पूज्याश्चक्रिणो हरयो बलाः ।
उत्पद्यन्ते नरा यस्यां सा कथं निम्बिता मही ॥ २८।१५४
३७६. वायसा अपि गच्छन्ति नभसा तेन किं भवेत् ।
गुणेष्वत्र मनः कृत्यमिन्द्रजालेन को गुणः ॥ २८।१६५
३७७. शरीरे सति कामिन्यो भविष्यन्ति मनीषिताः ॥ २८।१८४
३७८. ननु कर्माजितं पुरा ।
नतंयत्यखिलं लोकं नृत्ताचार्यो ह्यसौ परः ॥ २८।२०२
३७९. पद्मगर्भदलच्छाया साक्षाल्लक्ष्मीरिवोज्ज्वला ।
ईदृशी पुरुषुष्यस्य पुसो भवति भामिनी ॥ २८।२४५
३८०. यादृग् येन कृतं कर्म भुङ्क्ते तादृक् स तत्फलम् ।
न ह्युत्तान् कोद्वान् कश्चिदश्नुते शालिसम्पदम् ॥ २८।२६५
३८१. समवगम्य जनाः शुभकर्मणः फलमुदारमशोभनतोन्यथा ।
कुरुत कर्म बुधैरभिनन्दित भवत येन रवेरधिकप्रभाः ॥ २८।२७५
३८२. सर्वतो मरणं दुःखम् ॥ २९।२६
३८३. प्रसादध्वनिपर्यन्तप्रकोपा हि महास्त्रियः ॥ २९।२६
३८४. प्रणयादपराधेऽपि ननु तुष्यन्ति योषितः ॥ २९।३७
२८५. दयिते क्रियते यावत्कोपो दारुणमानसे ।
तावत्संसारसौख्यस्य विघ्नं जानीहि शोभने ॥ २९।३८
३८६. यत्प्राप्तव्यं यदा येन यत्र यावद्यतोऽपि वा ।
तत्प्राप्यते तदा तेन तत्र तावत्ततो ध्रुवम् ॥ २९।८३
३८७. असिधाराव्रतं जैनो जनांसक्तं निषेवते ॥ २९।६७
३८८. शक्नोति न सुरेन्द्रोऽपि विधातुं विधिमन्यथा ॥ ३०।२८
३८९. शासनस्य जिनेन्द्राणामहो माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३०।४७
३९०. करणं यदतिक्रान्तं मृतमिष्टं च बान्धवम् ।
हृतं विनिर्गतं नष्टं न शोचन्ति विचक्षणाः ॥ ३०।७२
३९१. कातरस्य विषादोऽस्ति दयिते प्राकृतस्य च ।
न कदाचिद्विषादोऽस्ति विक्रान्तस्य बुधस्य च ॥ ३०।७३
३९२. चरितं निरगाराणां क्षूराणां शान्तमीहितम् ।
शिवं सुदुर्लभं सिद्धं सारं क्षुद्रभयाबहम् ॥ ३०।८३
३९३. कुतः श्रद्धाविमुक्तस्य धर्मो धर्मफलानि च ? ३१।२०

३६४. पुण्येन लभते सौख्यमपुण्येन च दुःखिता ।
कर्मणामुचितं लोकः सर्वं फलमुपाप्नुते ॥३१॥७६
३६५. अहो कष्टं दुषष्ठं स्नेहवन्धनम् ॥३१॥६५
३६६. जन्तुरेकक एवायं भवपादपसङ्ख्ये ।
मोहान्धो दुःखविधिने कुरुते परिवर्तनम् ॥३१॥६६
३६७. अत्यंतं दुर्धरोद्दिष्टा प्रव्रज्या जिनसत्तमैः । ३१॥६७
३६८. मृत्युः प्रतीक्षते नैव बालं तरुणमेव वा ॥३१॥६८
३६९. गृहाश्रमे महावत्स ! श्रूयते धर्मसञ्चयः ।
अशक्यः कुनरैः कर्तुं कुरुते राज्यसंगतः ॥३१॥६९
४००. कामक्रोधादिपूष्यस्य का मुक्तिर्गृहसेविनः ॥३१॥७५
४०१. न करोति यतः पातं पित्रोः शोकमहोदधौ ।
अपत्यत्वमपत्यस्य तद्वदन्ति सुमेधसः ॥३१॥७६
४०२. न हि सागररत्नानामुत्पत्तिः सरसो भवेत् ॥३१॥७७
४०३. भ्राजते त्रायमानः सन् वाक्य तत्पितृकस्य यत् ।
लब्धवर्णरिदं भ्रातुर्भ्रातृत्वं परिकीर्तितम् ॥३१॥७८
४०४. स्वार्थं संसक्तनित्याशं धिक् स्वैर्यमनपेक्षितम् ॥३१॥७९
४०५. सर्वासामेव शुद्धीना मनःशुद्धिः प्रशस्यते ।
४०६. अन्यथालिङ्ग्यते पत्यमन्यथालिङ्ग्यते पतिः ॥३१॥८०
४०७. नानाकर्मस्थितौ त्वस्या को नु शोचति कोविदः ॥३१॥८१
४०८. असमाप्तेन्द्रियमुखं कदाचित्स्थितिसक्षये ।
पक्षी वृक्षमिव त्यक्त्वा देहं जन्तुर्गमिष्यति ॥३१॥८२
४०९. धिग्भोगान्भोगिभोगाभान् भङ्गु रान्भोतिभाविनः ॥३२॥५६
४१०. वियोगमरणव्याधिजराव्यसनभाजनम् ।
जलबुद्बुदनिःसारं कृतघ्नं धिक् शरीरकम् ॥३२॥६१
४११. भाग्यवन्तो महासत्त्वास्ते नराः दलाध्यक्षेष्टिताः ।
कपिभूभङ्गुरा लक्ष्मी ये तिरस्कृत्य दीक्षिताः ॥३२॥६२
४१२. धिक् स्नेहं भवदुःखानां मूलम् ॥ ३२॥६३
४१३. नहि भक्तेजिनेन्द्राणां विद्यते परमुत्तमम् ॥३२॥६४
४१४. हितं करोत्यसौ स्वस्य भूतानां यो दयापरः ।
दीक्षितो गृहयातो वा बुधो निर्मलमानसः ॥३३॥१०२
४१५. साहसं कुरुते किं न मानवो योषितां कृते ॥३३॥१०६

४१६. यथा किलाविनीतानां भृत्यानां विनयाहूतौ ।
कुर्वन्ति स्वामिनो यत्नं विरोधः कोऽत्र दृश्यते ॥३३।२१६
४१७. ननु योषित्सु कारुण्यं कुर्वन्ति पुरुषोत्तमाः ॥३३।२७३
४१८. प्रणम्य त्रिजगद्वन्द्वं जिनेन्द्रं परमं शिवम् ।
तुङ्गैर्न शिरसा तेन कथमन्यः प्रणम्यते ॥३३।२६५
४१९. मकरन्दरसास्वादलब्धवर्णो मधुव्रतः ।
रासभस्य पदं पुच्छे प्रमत्तोऽपि करोति किम् ? ३३।२६६
४२०. अपकारिणि कारुण्यं यः करोति स सज्जनः ।
मध्ये कृतोपकारे वा प्रीतिः कस्य न जायते ॥३३।३०६
४२१. प्रायो माङ्गलिके लोको व्यवहारे प्रवर्तते ॥३४।४३
४२२. श्रमणा बाह्याणां गावः पशुस्त्रीबालवृद्धकाः ।
सदोषा अपि शूराणां नैते बध्याः किन्नोदिताः ॥३५।२८
४२३. धिगू धिगू तोचसमासङ्गं दुर्बचःश्रुतिकारणम् ।
मनोविकारकरणं महापुरुषवर्जितम् ॥३५।३०
४२४. वरं तत्कले जीते दुर्गमे विपिने स्थितम् ।
परित्यज्यामिव ग्रन्थं विहृतं भुवने वरम् ॥
वरमाहारमुत्सृज्य मरणं सेविनु सुखम् ।
अवज्ञातेन नान्यस्य गृहे क्षणमपि स्थितम् ॥३५।३१-३२
४२५. अणुव्रतधरो यो ना गुणशीलविभूषितः ।
तं राम. परया प्रीत्या बाञ्छितेन समर्चति ॥३५।८०
४२६. धनवान् पूज्यते नित्यं यथादित्यो हिमागमे ॥३५।१८
४२७. द्रविणानीह पूज्यन्ते ॥३५।१५६
४२८. यस्यार्थस्तिस्य मित्राणि यस्यार्थस्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमाँस्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥३५।१६१
४२९. अर्थेन विप्रहीनस्य न मित्रं न महोदरः ।
तस्यैवार्थसमेतस्य परोऽपि स्वजनायते ॥३५।६२
४३०. सार्थो धर्मो यो युक्तो मो धर्मो यो दयान्वितः ।
सा दया निर्मला ज्ञेया मांसं यस्या न भुज्यते ॥३५।१६३
४३१. मांसाशनान्निवृत्तानां सर्वेषां प्राणधारिणाम् ।
अन्या मूलेन सम्पन्नाः प्रशस्यन्ते निवृत्तयः ॥३५।१६४
४३२. अनभिज्ञो विशेषस्य विशेषं कमवाप्तवान् ? ३५।१७१

४३३. अयमन्यच्च विवशो जनैः स्वकृतभोगिभिः ।
न योऽन्यगम्यते यत्र न स तत्र जनोऽर्च्यते ॥३५।१७२
४३४. सर्वेषामेव जीवानां धनमिष्टसमागमः ।
जायते पुण्ययोगेन यच्चात्मसुखकारणम् ॥३५।७८
४३५. योजनानां शतेनापि परिच्छिन्ने श्रुतान्तरे ।
दृष्टो मुहूर्त्तमात्रेण लभ्यते पुण्यभागिभिः ॥३६।७६
४३६. ये पुण्येन विनिर्मुक्ताः प्राणिनो दुःखभागिनः ।
तेषां हस्तमपि प्राप्तमिष्टवस्तु पलायते ॥३६।८० ✓
४३७. अरण्यानां गिरेर्मूँधिन विषमे पथि सागरे ।
जायन्ते पुण्ययुक्तानां प्राणिनामिष्टसङ्गमाः ॥३६।८१
४३८. सिंहे करीन्द्रकीलालपङ्कलोहितकेसरे ।
शान्तेर्गपि श्वावकस्तस्य कुस्ते करिपातनम् ॥३७।४४
४३९. किं तारा भान्ति भास्करे ? ३७।६४
४४०. जातो वशलतातोर्गपि मणिः सगृह्यते ननु ॥३७।६५
४४१. सहस्रारम्यमाण हि कार्यं व्रजति संशयम् ॥ ३७।६७
४४२. प्रस्तुतमत्यक्त्वा समारब्ध प्रशस्यते ॥३७।६८
४४३. कष्टमेककयोजार्त्ते विरोधे कारणं विना ।
पक्षद्वय मनुष्याणां जायते विवशक्षयम् ॥३७।७६
४४४. अज्ञाता एव ये कार्यं कुर्वन्ति पुरुषाद्भुतम् ।
तेऽतिदलाघ्या यथात्यन्तं निवृष्य जलदा गताः ॥ ३७।८१
४४५. चकासति रवौ पापलक्ष्मीदोषाकरस्य का ॥ ३७।१२२
४४६. को दोषः कर्मसामर्थ्याद्यदायान्त्यापदं नराः ।
रक्षया एव तथाप्येते दधतामतिमाधुताम् ॥ ३७।१४१
४४७. इतरोऽपि खलीकर्तुं साधूनां नोचितो जनः । ३७।१४२
४४८. महतामेव जायन्ते सम्पदो विषदन्विताः । ३७।१५०
४४९. पदक्षणा यैरपि क्षोणी पालितेय महानरैः ।
न तृप्तास्तेऽपि ॥ ३७।१५५
४५०. प्रभार्षं तपसः पश्य त्रिदशेष्वपि दुर्लभम् ॥३८।७
४५१. समस्तेभ्यो हि वस्तुभ्यः प्रियं जगति जीवितम् ।
तवर्धमितरत् सर्वमिति को नावगच्छति ॥३८।६६
४५२. वर्तिकाग्रहणे को वा बहुमानो गरुमतः ॥३८।१०२

४५३. ये जन्मान्तरसञ्चितातिसुकृताः सर्वसुभाजां प्रियाः
यं यं देशमुपव्रजन्ति विविधं कृत्यं भजन्तः परम् ।
तस्मिन् सर्वहृषीकशील्यचतुरस्तेषां विना चिन्तया
मृष्टान्नादिविधिर्भवत्यनुपमो यो विष्टये दुर्लभः ॥३८।१४२
४५४. भोगैर्नास्ति मम प्रयोजनमिमे गच्छन्तु नाशं खलाः
इत्येषां यदि सर्वदापि कुरुते निन्दामलं द्वेषकः ।
एतैः सर्वगुणोपपत्तिपटुभिर्यातोऽपि शृङ्ग गिरेः
नित्यं याति तथापि निजितरविदीप्त्या जनः सङ्गमम् ॥३८।१४३
४५५. कालं देशं च विज्ञाय नीतिशास्त्रविशारदः ।
क्रियते पौरुषं तेन न जातु क्षिपदाप्यते ॥३९।२२
४५६. निःसारमीहित सर्वं संसारे दुःखकारणम् ॥३९।३६
४५७. मित्राणि द्रविण दाराः पुत्राः सर्वे च बान्धवाः ।
सुखदुःखमिव सर्वं धर्मं एकं सुखावहः ॥३९।३७
४५८. नैव वारयितुं शक्यास्तपस्तेजोऽतिदुर्गमाः ।
त्रिदशैरपि दिग्बन्धनाः किमुतास्मादुर्गजैर्नैः ॥३९।१०३
४५९. करिबालककर्णान्तचपलं ननु जीवितम् ।
मानुष्यकं च कदलीसारसाम्यं विभर्त्यदः ॥३९।११३
४६०. स्वप्नप्रतिममैश्वर्यं सक्तं च सह बान्धवैः ॥३९।११४
४६१. धिगत्यन्ताशुचि देहं सर्वाशुभनिधानकम् ।
क्षणनश्वरमन्त्राणं कृतघ्नं मोहपूरितम् ॥३९।११७
४६२. शरीरसार्थं एतस्मिन् परलोकप्रवासिनि ।
मुष्णन्तः प्रसभं लोकं निष्ठन्तीन्द्रियदस्यवः ॥३९।१२०
४६३. रमते जीवनूपतिः कुमतिप्रमदावृतः ।
अवस्कन्देन मृत्युस्तं कदययितुमिच्छति ॥३९।१२१
४६४. मनो विषयमार्गेषु मत्तद्विरदविभ्रमम् ।
वैराग्यबलिना शक्यं रोद्धुं ज्ञानाङ्गुशश्रिता ॥३९।१२२
४६५. परस्त्रीरूपसस्येषु बिभ्राणा लोभमुत्तमम् ।
अमी हृषीकचतुरगा धृतमोहमहाजवाः ॥
शरीररथमुन्मुक्ताः पातयन्ति कुबर्मसु ।
चित्तप्रग्रहमत्यन्तं योग्यं कुरुत तद्दुष्कम् ॥३९।१२३-१२४
४६६. यद्यथा निमित्तं पूर्वं तद्योष्यं जायतेऽम्बुना ।
संसारवाससक्तानां जीवानां गतिरीदृशी ॥३९।१४२

४६७. किमधीर्तरिहानर्षग्रन्थैरीशसनादिभिः ।
एकमेव हि कर्तव्यं सुकृतं सुखकारणम् ॥३६।१४३
४६८. न शृणोति स्मरग्रस्तो न जिघ्रति न पश्यति ।
न जानात्यपरस्पर्शं न बिभेति न लज्जते ॥३६।२०८
४६९. आश्चर्यं मोहतः कष्टमनुतापं प्रपद्यते ।
अन्धो निपतितः कृपे यथा पुन्नगसेविते ॥३६।२०९
४७०. इह यत् क्रियते कर्म तत्परत्रोपभुज्यते ।
पुराकृतानां पुण्यानामिह सम्पद्यते फलम् ॥४०।३७
४७१. अस्माकमत्र वसतां बिभ्रतां सुखसम्पदाम् ।
अमी ये दिवसां गान्ति न तेषां पुनरागमः ॥४०।३८
४७२. नदीनां चण्डवेगानामायुधो दिवस्य च ।
वीवनस्य च सौमित्रे यद्गतं गतमेव तत् ॥४०।३९
४७३. स्त्रीवित्तहरणोद्युक्ताः किं न कुर्वन्ति मानवाः ॥४१।६२
४७४. दुष्टान्तः परकीयोऽपि ज्ञान्तेर्भवति कारणम् ।
असमञ्जसमात्मीयं किं पुनः स्मृतिमागतम् ॥४१।१०१
४७५. इदं कर्मविचित्रत्वाद् विचित्रं परमं जगत् ॥४१।१०५
४७६. तिर्यञ्चोऽपि ह्येते रम्यं पश्यकृतिरहितमनसा विन्दन्ति समीहितम् ॥४२।८१
४७७. यथावस्थितभावानां श्रद्धानां परमं सुखम् ।
मिथ्याविकल्पितार्थानां ग्रहणं दुःखमुत्तमम् ॥४३।३०
४७८. जनोऽविदिनपूर्वो यो जने बध्नाति सौहृदम् ।
अनाहूतश्च सामीप्यं व्रजति त्रपयोज्झितः ॥
अनादृतः प्रभूतं च भाषते शून्यमानसः ।
उत्पादयति विद्वेषं कस्य नासौ क्रमोज्झितः ॥४३।१०५-१०६
४७९. न्यायेन सङ्गतां साध्वी सर्वोपप्लवजजिताम् ।
को वा नेच्छति लोकेऽस्मिन् कल्याणप्रकृतिस्थितम् ॥४३।१०८
४८०. दधति परमशोकं बालवद् बुद्धिहीनाः ॥४३।१२२
४८१. किमिदमिह मनो मे किं नियोज्यं तद्विष्टं कथमनुगतकृत्यैः प्राप्यते शं मनुष्यैः ।
इति कृतमतिरुच्यैर्यो विवेकस्य कर्ता रविरिव विमलोऽशी राजते लोकमार्गे ॥
४३।१२३
४८२. म्वाबला बब पुमान् बली ॥४४।२०
४८३. धिगिदं शौर्यमस्माकं सहायान् यदि वाञ्छति ॥४४।३५
४८४. चित्रा हि मनसो गतिः ॥४४।६५

४८५. लोको हि परमो गुरुः ॥४४।७१
४८६. महाप्रकृष्टपूरस्य नवस्योदाररंहसः ।
तटयोः पातने शक्तिः केन न प्रतिपद्यते ॥४४।७६
४८७. न प्रसादयितुं शक्यः क्रुद्धः शीघ्रं नरेस्वरः ।
अभीष्टं लब्धुमथवा द्युतिर्वा कीर्तिरेव वा ॥
विद्या वाभिमता लब्धु परमोऽर्कक्रियाऽपि वा ।
प्रिया वा मनसो भार्या यद्वा किञ्चित् समीहितम् ॥४४।८६-८७
४८८. प्रतीक्षते हि तत्कालं मृत्युं कर्मप्रचोदितः ॥४४।१००
४८९. मानुषत्वं परिभ्रष्टं गृह्णते भवमच्छुटे ।
प्राप्तुमत्पदभुतं भूय प्राणिनाशुभकर्मणा ॥
त्रैलोक्यगुणवदरत्न पतितं निम्नगापती
लभेत क पुनर्धन्यः कालेन महताप्यलम ॥ ४४।१२३-१२४
४९०. अहो दुःखस्य चित्रता ॥४४।१४४
४९१. अहो दुःखार्णवो महान् ॥४४।१४५
४९२. प्रायोऽनर्था बहुत्वगाः ॥१४६
४९३. न ये भवप्रभवविकारमङ्गतेः पराङ्मुखा जिनवचनान्युगासते ।
वनीकृतान् शरणविवर्तजितानमून् तपत्यन् स्वकृतरविः सुदुस्सहः ॥४४।१५१
४९४. कृत्स्न विधिबश जगत् ॥४५।५२
४९५. शोको हि नाम कोश्र्येष विषभेदो महत्तमः ।
नाशयत्याश्रितं देहं का कथान्येषु वस्तुषु ॥४५।८१
४९६. जीबन् पश्यति भद्राणि धीरश्चिरतरादपि ।
ग्रही ह्रस्वमतिभेद्रं कृच्छादपि न पश्यति ॥४५।८३
४९७. औदासीन्यमिहानर्थं कुरुते परमं पुरा ॥४५।८४
४९८. अरण्यमपि रम्यत्वं याति कान्तासमागमे ।
कान्तावियोगदग्धस्य सर्वं विन्ध्यवनायते ॥४५।८९
४९९. यद्यप्याशा पूर्वकर्मानुभावात् सङ्गं कर्तुं जायते प्राणभाजाम् ।
प्राप्य ज्ञान साधुवर्गोपदेशाद् गन्त्री नाश सा रवेः शर्वरीव ॥४५।१०५
५००. राजते चारुभावानां सर्वयैव हि चारुता ॥४६।५
५०१. शक्नोति सुखधीः पातुं कः शिखामाशुशुभणे ।
को वा नागबधूमूर्ध्नि स्पृशेद् रत्नशलाकिकाम् ॥४६।२१
५०२. जगत्प्राग्बिहितं सर्वं प्राप्नोत्यत्र न संशयः ॥४६।३२
५०३. प्राणा मूलं सर्वस्य वस्तुनः ॥ ४६।६४

५०४. निवृत्तिरेकापि ददाति परमं फलम् ॥४६।५६
 ५०५. जन्तूनां दुःखमूयिष्ठभवसन्तिसारिणाम् ।
 पापान्निवृत्तिरल्पापि संसारोत्तारकारणम् ॥४६।५७
 ५०६. येषां विरतिरेकापि कुतश्चिन्नोपजायते ।
 नरास्ते जर्जरीभूतकलशा इव निर्गुणाः ॥४६।५८
 ५०७. कर्मानुभावतः सर्वे न भवन्ति समक्रियाः ॥४६।६२
 ५०८. भस्मभावज्जले गेहे कूपत्थानश्रमो वृथा ॥४६।६६
 ५०९. आत्मार्यं कुर्वतः कर्म सुमहामुखसाधनम् ।
 दोषो न विद्यते कश्चित्सर्वं हि सुखकारणम् ॥४६।७७
 ५१०. सज्जनस्याग्रे नूनं शोकः प्रवर्द्धते ॥४६।११४
 ५११. परदाताभिलाषोऽयमयुक्तोऽतिभयङ्करः ।
 लज्जनीयो जुगुप्स्यश्च लोकद्वयनिषूदनः ॥४६।१२३
 ५१२. धिक्शब्दः प्राप्यते योऽयं सज्जनेभ्यः समन्ततः ।
 सोऽयं विदारणे शक्तो हृदयस्य सुचेतसाम् ॥४६।१२४
 ५१३. यो ना परकलत्राणि पापबुद्धिनिषेवते ।
 नरकं स विशत्येष लोहपिण्डो यथा जलम् ॥४६।१२६
 ५१४. सर्वथा प्रातस्तथाय पुरुषेण सुचेतसा ।
 कुशलाकुशलं स्वस्य चिन्तनीयं विवेकतः ॥४६।१२०✓
 ५१५. चित्रं हि स्मरचेष्टितम् ॥४६।१८६
 ५१६. मन्त्रणीयं हि सम्बद्धं स्वामिने हितमिच्छता ॥४६।२११
 ५१७. उद्योगेन विमुक्तानां जनानां सुखिता कुतः ॥४७।११
 ५१८. नवोन्मुरागवन्धो हि चन्द्रो लोकस्य नाम्यदा ॥४७।१२
 ५१९. मन्त्रदोषमसत्कारं दानं पुण्यं स्वशूरताम् ।
 दुःशीलत्वं मनोदाहं दुर्मित्रेभ्यो न वेदयेत् ॥४७।१५
 ५२०. सद्भावं हि प्रपद्यन्ते तुल्यावस्था जना भुवि ॥४७।१७
 ५२१. अथवाश्रयसामर्थात् पुंसां किं नोपजायते ॥४७।२०
 ५२२. मद्यपस्यातिबुद्धस्य वेश्याव्यसनिनः शिषोः ।
 प्रमदानां च वाक्यानि जातु कार्याणि नो बुर्यैः ॥४७।६३
 ५२३. अत्यन्तदुर्लभा लोके गोत्रशुद्धिः ॥४७।६४
 ५२४. समानेषु प्रायः प्रं मोपजायते ॥४७।९१
 ५२५. भानसानि मुनीनां हि सुदिग्धान्यनुकम्पया ॥४८।४८
 ५२६. मोहो जयति पापिनाम् ॥४८।४५

५२७. शक्ति दधताग्रपि परां प्राप्यापि परं प्रबोधमारभ्ये ।
भवितव्यं नयरतिना रविरिव काले स यात्युदयम् ॥४८।२५०
५२८. क्षुद्रशक्तिसमासक्ता मानुषास्तावदासताम् ।
न सुरैरपि कर्माणि शक्यन्ते कर्तुमन्यथा ॥४९।७
५२९. स्वपाकादपि पापीयान् लुब्धकादपि निर्घृणः ।
असम्भाव्यः सतां नित्यं योज्ज्वलितो नराधमः ॥४९।१४
५३०. दुर्लभः सङ्गमो भूयः पूजितः सर्ववस्तुषु ।
ततोऽपि दुर्लभो धर्मो जिनेन्द्रवदनोद्गतः ॥४९।१०६
५३१. महात्मनामुन्नतगर्वदालिनो भवन्ति वश्याः पुरुषा बलान्विताः ॥५०।५४
५३२. अहो नो भवितव्यता ॥५१।२३
५३३. न मुनेर्वाक्यं कदाचिज्जायतेऽनृतम् ॥५१।३३
५३४. गुणान्वितैर्भवति जनैरलङ्कृता समस्तभूः शुभललितैः सुसुन्दरः ।
विना जन मनसि कृतास्पदं सदा व्रजत्यसौ गहनवनेन तुल्यताम् ॥५१।५०
५३५. पुराकृतादतिनिचितात्समुकटाज्जनः परा रतिमनुयाति कर्मणः ।
ततो जगत्सकलमिदं स्वगोचरे प्रवर्तते विधिरविणा प्रकाशते ॥५१।५१
५३६. राज्यविधौ स्थिताः ।
पित्रादीनपि निघ्नन्ति नराः कर्मबलेरिताः ॥५२।६४
५६७. अस्मिन् हि सकले लोके विहितं भुज्यते ॥५२।६५
५३८. कृत्यं प्रत्युपकारस्य बान्धवैरनुमोदितम् ॥५२।७५
५३९. चित्रमिदं परमत्र नृलोके, यत्परिहाय भृश रसमेकम् ।
तत्क्षणमेव विशुद्धशरीर जन्तुरुपैति रसान्तरतङ्गम् ॥५२।८४
५४०. उचित किमिदं कर्तुं यद्वास्यार्द्धपतिः स्वयम् ।
कुस्ते क्षुद्रवत्कटिचच्चोरण परयोषितः ॥५३।४
५४२. मर्यादानां नृपो मूलभाषणानां यथा नगः ।
अनाचारे स्थिते तस्मिन् लोकस्तत्र प्रवर्तते ॥५३।५
५४२. विमलं चरितं लोके न केवलमिहेष्यते ।
किन्तु गीर्वाणलोकेऽपि रचिताञ्जलिभिः सुरैः ॥५३।९
५४३. परार्थं यः पुरस्कृत्य पुनः स्व विनिगूहति ।
सोऽतिभीरुतयात्यन्तं जायते निकृतो नरः ५३।३९
५४४. परमापदि सीदन्तं जनं सन्धारयन्ति ये ।
अनुकम्पनशीलानां तेषां जन्म सुनिर्मलम् ॥५३।४०

५४५. हानिः पुण्यकारस्य न चात्मनि निर्दिष्टे ।
प्रकाश्ये गुरुतां याति जगति श्रीयंशस्विनी ॥५३।४१
५४६. विग्रहो निःप्रयोजनः ॥५३।८५
५४७. कार्यसिद्धिरिहाभीष्टा सर्वथा नयशालिभिः ॥५३।८५ ✓
५४८. घूराः सत्त्वयशोऽन्विताः ।
गुणोत्कटा न शंसन्ति घीराः स्वं स्वयमुत्तमाः ॥५३।९१ ✓
५४९. सुखं प्रसादतो यम्य जीव्यते विभवान्वितः ।
अकार्यं वाञ्छतस्तस्य दीयते न मतिः कथम् ॥५३।१०१
५५०. आहारम् भोक्तुकामस्य विज्ञातं विषमिश्रितम् ।
मित्रस्य कृतकामस्य कथं न प्रतिषिध्यते ? ५३।१०२
५५१. रविश्मिकृतोद्योतं मुपवित्रं मनोहरम् ।
पुण्यवर्द्धनमारोग्यं दिवाभुक्तं प्रशस्यते ॥५३।१४१
५५२. सहायैर्मृगराजस्य कुर्वन्तो मृगशासनम् ।
कियद्भिन्नपरैः कृत्यं त्यक्त्वा सत्त्वं सहोद्भवम् ॥५३।२००
५५३. चिह्नानि विटजातस्य सन्ति नाङ्गेषु कानिचित् ।
अनार्यमावरन् किञ्चिज्जायते नीचगोचरः ॥५३।२३६
५५४. मत्ताः केमग्निशरण्ये शृगालानाश्रयन्ति किम् ?
नहि नीचं समाश्रित्य जीवन्ति कुलजा नराः ॥५३।२४० ✓
५५५. को जानाति विना पुण्यनिग्राह्यः को विधेरिति ॥५३।२४२
५५६. या येन भाविता बुद्धिः शुभाशुभगता वृद्धम् ।
न सा शक्यान्यथाकर्तुं पुरन्दरसमैरपि ॥५३।२४७
५५७. निरर्थकं प्रियशतैर्दुर्मती दीयते मतिः ॥५३।२४२ ✓
५५८. विहितेन हृतो हतः ॥५३।२४८
५५९. प्राप्ते विनाशकालेऽपि बुद्धिर्जन्तोविनश्यति ।
विधिना प्रेरितस्तेन कर्मपाकं विचेष्टते ॥५३।२४९
५६०. इति सुविहितवृत्ताः पूर्वजन्मन्युदाराः
सकलभुवनरोधिब्याप्यकीर्तिप्रधानाः ।
अभिसरपरिमुक्ताः कर्म तत्कर्तुमीशाः
अनयति परमं तद्विस्मयं दुर्विचिन्त्यम् ॥५३।२७३
५६१. भजत सुकृतसङ्गं तेन निर्मुच्य सर्व
विरसफलविधायि क्षुद्रकर्म प्रयत्नात् ।

भवत परमसौख्यास्वावलोकप्रसक्ताः

परिजितरविभासो जन्तवः कान्तलीलाः ॥५३।२७४

५६२. यं यं देशं विहितसुकृताः प्राणभाजः श्रयन्ते,

तस्मिस्तस्मिन् विजितरिपवो भोगसङ्गं भजन्ते ।

न ह्येतेषां परजनमतं किञ्चिदापद्युतानाम्

सर्वे तेषां भवति मनसि स्थापितं हस्तसक्तम् ॥५४।७६

५६३. तस्माद् भोगं भुवनविकटं भोक्तुकामेन कृत्यः,

इलाध्यो धर्मो जिनवरमुखादुद्गतः सर्वसारः ।

आस्तां तावत्क्षयपरिचितो भोगसङ्कोऽपि मोक्षम्

धर्मादस्माद् व्रजति रवितोऽप्युज्ज्वलं भव्यलोक ? ॥५४।८०

५६४. यदर्थं मत्तमातङ्गमहावृन्दान्धकारिणि ।

पतद्विविधशस्त्रौघे सङ्ग्रामेऽयन्तभीषणे ॥

हत्वा शत्रून् समुद्वृत्तास्तीक्ष्णया खड्गधारया ।

भुजेनोपाज्यते लक्ष्मीः सुकृच्छ्राद् वीरसुन्दरी ॥

सुदुर्लभिवं प्राप्य तत्सूरीरत्नमनुत्तमम् ।

मूढवन्मुच्यते कस्मात् ? ५५।१७-१९

५६५. परस्परभिघाताद्वा कलुषत्वमुपागतम् ।

प्रसादं पुनरप्येति कुलं जलमिव ध्रुवम् ॥५५।५३

५६६. द्रव्यादिलोभेन भ्रात्रादीनामपि स्फुटम् ।

संसारे जायते वैरं यौनबन्धो न कारणम् ॥५५।६८

५६७. भ्राता ममायं सुहृदेव वश्यो

भर्माव बन्धुः सुखदः सदेति ।

संसारवैचित्र्यविदा नरेण

नैतन्मनीषारविणा विचिन्त्या ॥५५।९५

५६८. लोकं स्वचरितरविरेव प्रेरयत्यात्मकार्ये ॥५६।३६

५६९. आभिसुख्यगतं मृत्युं वरं प्राप्ता महाभटाः ।

पराङ्मुखा न जीवन्तो धिक्शब्दमलिनीकृताः ॥५७।८

५७०. मरास्ते (दयिते !) इलाभ्या ये गता रणमस्तकम् ।

त्यजन्त्यभिमुखा जीवं शत्रूणां लब्धकीर्त्तयः ॥५७।२१

५७१. उद्भिन्नदन्तिदन्ताग्रदोलादुर्लभितं भटाः ।

कुर्वन्ति न विना पुण्यैः शत्रुभिर्घोषितस्सवाः ॥५७।२२

५७२. गजदन्ताग्रभिन्नस्य कुम्भधारणकारिणः ।

यस्मुखं नरसिंहस्य तत् कः कथयितुं क्षमः ? ५७।२३

५७३. दोषोऽपि हि गुणीभावं प्रस्तावे प्रतिपद्यते ॥५७।४४

५७४. प्राप्ते काले कर्मणामानुरूप्याद्

दातुं योग्यं तत्फलं निश्चयाप्यम् ।

शक्तो रोद्धुं नैव शक्नोऽपि लोके

वार्तान्येषां कैव बाह्यमात्रभाजाम् ? ५७।७३

५७५. बिभ्रति तावद् दृढनिश्चय जनः. प्रभोर्मुखं पश्यति यावदुन्नतम् ।

गते विनाश स्वपत्नी विशीर्यते, यथारचक्र परिशीर्णतुम्बकम् ॥५८।४७

५७६. मुनिश्चितानामपि सन्नराणां, विना प्रशनेन न कार्ययोगः ।

शिरस्वपेते हि शरीरबन्धः, प्रपद्यते सर्वत एव नाशम् ॥५८।४८

५७७. प्रधानसम्बन्धमिदं हि सर्वं, जगद्यथेष्टं फलमभ्युपैति ।

राहूपसृष्टस्य रवेर्विनाशं, प्रयाति मन्दो निकरः करारणाम् ॥५८।४९

५७८. पूर्वकर्मानुभावेन स्थितिर्दुःकृतिनामियम् ।

असौ मारयिता तस्य यो येन निहतः पुरा ॥५९।४

असौ मोक्षयिता तस्य बन्धनव्यसनादिषु ।

यो येन मोक्षिता पूर्वमनर्थं पातितो नरः ॥५९।५

५७९. हतवान् हन्यते पूर्व पालकः पाल्यतेऽधुना ।

औदासीन्यमुदासीने जायते प्राणधारिणाम् ॥५९।११

५८०. य बीक्ष्य जायते कोपो दृष्टकारणवजितः ।

निःसन्दिग्धं परिज्ञेयः स रिपुः पारलौकिकः ॥५९।२२

५८१. यं बीक्ष्य जायते चित्तं प्रह्लादि सह चक्षुषा ।

असन्दिग्धं सुविज्ञेयो मित्रमन्यत्र जन्मनि ॥५९।२३

५८२. क्षुब्धोर्मिणि जले सिन्धोः शीर्णपोतं भषादयः ।

स्थले म्लेच्छाश्च बाधन्ते यत्तद् बुःकृतजं फलम् ॥५९।२४

५८३. भर्तृगिरिनिभैर्नगैर्योषैर्बहुविषायुधैः ।

सुवेगैर्वर्जिभिर्दृप्तैर्भूत्यैश्च कवचावृतैः ॥५९।२५

५८४. विप्रहेर्षविग्रहे बापि निःप्रभावस्य सन्ततम् ।

जन्तोः स्वपुण्यहीनस्य रक्षा नैवोपजायते ॥५९।२६

५८५. निरस्तमपि निर्यन्त यत्र तत्र स्थितं परम् ।

तपोदानानि रक्षन्ति न देवा न च बान्धवाः ॥५९।२७

५८६. दृश्यते बन्धुमध्यस्थः पित्राप्यालिङ्गितो धनी ।
मित्रमाणोऽतिशूरश्च कोऽप्यः शक्तोऽभिरक्षितुम् ॥५६।१८
५८७. पात्रदानैः शतैः शीलैः सम्यक्स्वपरितोषितैः ।
बिग्रहेऽविग्रहे वापि रक्ष्यते रक्षितैर्नरैः ॥५६।२६
५८८. दयादानादिना येन धर्मो नोपाजितः पुरा ।
जीवितं चेप्स्यते दीर्घं वाञ्छा तस्यातिनिःफला ॥५६।३०
५८९. न विनश्यन्ति कर्माणि जनानां तपसा विना ।
इति ज्ञात्वा क्षमा कार्या विपश्चिद्भररिष्वपि ॥५६।३१
५९०. एष धर्मोपकरोति सुचेताः दुष्टतरोऽप्यकरोति ममायम् ।
बुद्धिरियं निपुणा न जनानां कारणमत्र निजाजितकर्म ॥५६।३५
५९१. इत्यधिगम्य विचक्षणमुख्यैर्बाह्यमुखासुखगौणनिमित्तैः ।
रागतरं कलुषं च निमित्तं कृत्यमयोऽभिमतकुत्सित चेष्टैः ॥५६।३३
५९२. भूविबरेषु निपातमुपैति प्रावणि सज्जनि गच्छति सर्पम् ।
सन्तमसा पिहिते पथि नेत्री नो रविणा जनितप्रकटत्वे ॥५६।३४
५९३. नखच्छेद्ये तूणे किं वा परशोरुचिता गतिः ? ६०।६८
५९४. विना हि प्रतिदानेन महती जायते त्रया ॥६०।८७
५९५. पुण्यानुकूलितानां हि नैरन्तर्यं न जायते ॥६०।९०
५९६. धर्मस्यैतद्विधियुतकृतस्यानवद्यस्य धीरै-
र्ज्ञेयं स्तुत्यं फलमनुपमं युक्तकालोपजातम् ।
यत्सम्प्राप्य प्रमदकलिताः दूरमुक्तोपसर्गाः
सञ्जायन्ते स्वपरकुशलं कर्तुं मुद्भूतवीर्याः ॥६०।१४२
५९७. आस्तां तावन्मनुजजनिताः सम्पदः काङ्क्षितानां
यच्छन्तीष्ठादधिकमतुलं वस्तु नाकश्चितोऽपि ।
तस्मात्पुण्यं कुरुत सततं हे जनाः सौख्यकांक्षाः ।
येनानेकं रविसमरुचः प्राप्नुताश्चर्ययोगम् ॥६०।१४३
५९८. इहैवलोके विकटं परं यशो, मतिप्रगल्भत्वमुदारचेष्टितम् ।
अवाप्यते पुण्यविविधं निर्मलो नरेण भक्त्यापितसाधुसेवया ॥६१।२०
५९९. तथा न माता न पिता न वा सुहृत् सहोदरो वा कुस्ते नृणां प्रियम् ।
प्रदाय धर्मं मतिमुत्तमां यथा हितं परं साधुजनः शुभोदयाम् ॥६१।२१
६००. उपास्यपुण्यो जननान्तरे जनः करोति योगं परमैरिहोत्सवैः ।
न केवलं स्वस्य परस्य भूयसा रविर्यथा सर्वपदार्थवर्षानात् ॥६१।२४
६०१. मोहस्य दुस्तरं किं वा बलिनो बलिनामपि ? ६२।२७

६०२. इति निजचरितस्यानेकरूपस्य हेतो-
 र्यतिगतभवजस्यावयवलयम्योदयस्य ।
 इह जनुषु विचित्रं कर्मणो भावयन्ते
 फलमविरतयोगाज्जन्तवो भूरिभावाः ॥६२॥६६
६०३. ब्रजति विचिनियोगात्कश्चिदेवेह नाशं
 हृतरिपुरपरश्च स्वं पदं याति घोरः ।
 विफलितपृथुशक्तिबन्धनं सेवतेऽन्यो
 रविरुचितपदार्योद्भासने हि प्रवीणः ॥६२॥१००
६०४. कामार्थाः सुलभाः सर्वे पुरुषस्यागमास्तथा ।
 विविधाश्चैव सम्बन्धा विष्टपेऽस्मिन् यथा तथा ॥६३॥१३
 पर्यट्य पृथिवी सर्वा स्थानं पश्यामि तन्ननु ।
 यस्मिन्नवाप्यते भ्राता जननी जनकोऽर्वा वा ॥६३॥१४
६०५. उत्तमा उपकुर्वन्ति पूर्वं पश्चात्तु मध्यमाः ।
 पश्चादपि न ये तेषामधमत्वं हृतात्मनाम् ॥६३॥१८
६०६. भवन्तीह प्रतीकाराः प्रायो विपदमीयुषाम् ॥६३॥२३
६०७. भवन्ति च प्रतीकाराश्चित्रं हि जगतीहितम् ॥६४॥१६
६०८. भवन्ति हि बलीयांसो बलिनामपि विष्टपे ॥६४॥१११
६०९. इति स्थितानामपि मृत्युमार्गे जनैरशेषैरपि निश्चितानाम् ।
 महात्मनां पुण्यफलोदयेन भवत्युपायो विदितोऽमुदाया ॥६४॥११४
६१०. अहो महान्तः परमा जनास्ते येषां महापत्तिसमागतानाम् ।
 जनो बदर्युद्भवताम्युपायं रवे समस्तत्वनिवेदनेन ॥६४॥११५
६११. नीतिज्ञैः सतत भाव्यमप्रमत्तैः सुपण्डितैः ॥६५॥१६
६१२. एतावतैव संसारः सुसारः प्रतिभाति मे ।
 ईदृशानि प्रसाध्यन्ते यत्तापांसीह जन्तुभिः ॥६५॥५१
६१३. प्राप्यते येन निर्वाणं किमन्यन्तस्य दुष्करम् ॥६५॥५५
६१४. इति विहितमुवेष्टाः पूर्वजन्मभ्युद्धाराः
 परमपि परिजित्य प्राप्तमायुर्विनाशम् ।
 द्रुतमुपगनचारुद्वयसम्बन्धभाजो
 विधुरविगुणतुल्यां स्वामवस्थां भजन्ते ॥६५॥८१
६१५. परमाद्यौ हि निर्भीकैरुपदेशोऽनुजीविभिः ॥६६॥३
६१६. प्रीत्यैव शोभना सिद्धिर्युद्धतस्तु जनक्षयः ।
 असिद्धिश्च महान् दोषः सापवादाश्च सिद्धयः ॥६६॥२४

६१७. ननुं सिंहो गुह्यं प्राप्य महाद्वर्जायते सुखी ॥६६।२६
 ६१८. नरेण सर्वथा स्वस्य कर्तव्यं बुद्धिशालिना ।
 रक्षणं सततं यत्नाहारैरपि घनैरपि ॥६६।४०
 ६१९. नास्ती संक्षोभमायाति सिंहः प्रचलकेसरः ॥६६।५३
 ६२०. प्रतिशब्देषु कः कोपः छायापुरुषकेऽपि वा ।
 तिर्यक्षु वा शुकाद्येषु यन्त्रबिम्बेषु वा सताम् ॥६६।५४
 ६२१. न पद्मवातेन सुमेरुरुह्यते न सागरः शुष्यति सूर्यरश्मिभिः ।
 गवेन्द्रभृङ्गैर्धरणी न कम्पते न साध्यते त्वत्सदृशैर्दशाननः ॥६६।८७
 ६२२. न जम्बुके कोपमुपैति सिंहः ।
 गजेन्द्रकुम्भस्थलदारणेन क्रीडा स मुक्तानिकरैः करोति ॥६६।८९
 ६२३. नरेयवरा अजितशौर्यचेष्टा न भीतिभाजां प्रहरन्ति जातु ।
 न बाह्याणं न श्रमण न शून्यं स्त्रिय न बालं न पशु न दूतम् ॥६६।९०
 ६२४. बहु विदितमनं सुशास्त्रजाल नयविषयेषु मुमन्त्रिणोर्भययुक्ताः ।
 अलिलमिदमुपैति मोहभावं पुरुषपरबौ घनमोहमेघरुद्धे ॥६६।९५
 ६२५. घन्याः सद्युति कारयन्ति परम लोके जिनानां गृहम् ॥६७।२७
 ६२६. वित्तस्य जातस्य फलं विशालं वदन्ति सुज्ञाः मुक्तोपलभ्यम् ।
 धर्मश्च जैनः परमोर्जितलेऽस्मिञ्जगत्स्यभीष्टस्य रविप्रकाशे ॥६७।२८
 ६२७. समुचितविभवयुतानां जिनेन्द्रचन्द्रान् सुभक्तिभारधराणाम् ।
 पूजयतां पुरुषाणां कः शक्तः पुण्यसञ्चयान् प्रचोदयितुम् ॥६८।२३
 ६२८. भुक्त्वा देवविभूतिं लब्ध्वा चक्राङ्कभोगसंयोगम् ।
 रवितोऽपि तपस्तीव्रं कृत्वा जैनं व्रजन्ति मुक्तिं परमाम् ॥६८।२४
 ६२९. भीतादिष्वपि नो तावत् कर्तुं युक्तं विहिसनम् ।
 किं पुननियमावस्थे जने जिनगृहस्थिते ॥७०।९
 ६३०. यो यस्य हरते द्रव्यं प्रयत्नेन समर्जितम् ।
 स तस्य हरते प्राणान् बाह्यमेतद्धि जीवितम् ॥७०।८३
 ६३१. तावद् भवति जनानामधिका प्रीतिः समाश्रयासन्ना ।
 यावन्निर्दोषत्वं रविमिच्छति कः सहोत्पातम् ॥७०।१०१
 ६३२. प्रमादाद्विकृतिं प्राप्तं मनः समुपदेशतः ।
 प्रायः पुण्यवतां पुसा वशीभावेऽवतिष्ठते ॥७२।६२
 ६३३. योद्धव्यं करुणा चेति द्वयमेतद्विरुध्यते । ७२।६४
 ६३४. यत् किञ्चित्करणोन्मुक्तः सुखं जीवति निष्पुणः ।
 जीवत्यस्मद्विधो दुःखं करुणामुदुमानसः ॥७२।६६

६३५. क्षीणेष्वात्मीयपुण्येषु याति शक्रोऽपि विच्युतिम् ।
जनता कर्मतन्त्रेयं गुणभूतं हि पौरुषम् ॥ ७२।८६
६३६. लभ्यते खलु लब्धव्यं नातः शक्यं पलायितुम् ।
न काचिच्छ्रूयता दैवे प्राणिनां स्वकृताशिनाम् ॥ ७२।८७
६३७. मरणात्परमं दुःखं न लोके विद्यते परम् । ७२।८०
६३८. निकाशितं कर्म नरेण येन यत्तस्य भुङ्क्ते स फलं नियोगात् ।
कस्यान्यथा शास्त्ररवौ सुदीप्ते तमो भवेन्मानुषकौशिकस्य ॥ ६२।८७
६३९. या काचिदभविता बुद्धिर्नृणां कर्मानुवर्तिनाम् ।
अशक्या साऽन्यथाकर्तुं सेन्द्रः सुरगणैरपि ॥ ७३।२७
६४०. अर्थसाराणि शास्त्राणि नयमौशनसं परम् ।
जानन्नपि त्रिकूटेन्द्रः पश्य मोहेन बाध्यते ॥ ७३।२८
६४१. महापूरकृतोत्पीडः पयोवाहसमागमे ।
दुष्करो हि नदो धर्तुं जीवो वा कर्मचोदितः ॥ ७३।३०
६४२. अविरुद्धं स्वभावस्थं परिणामसुखावहम् ।
वचोऽप्रियमपि ग्राह्यं सुहृदामौषधं यथा ॥ ७३।४८
६४३. कज्जलोपमकारीषु परनारीषु लोलुपः ।
मेरुगौरवयुक्तोऽपि तृणलाघवमेति ना ॥ ७३।५६
६४४. देवैरनुगृहीतोऽपि अक्रवत्सितुतोऽपि वा ।
परस्त्रीसङ्गपङ्कजेन दिग्धोऽकीर्तिं ब्रजेत्पराम् ॥ ७३।६०
६४५. योऽन्यप्रमदया साकं कुरुते मूढको रतिम् ।
आशीविषभुजङ्ग्याश्चौ रमते पापमानसः ॥ ७३।६१
६४६. न कश्चित्स्वयमात्मानं शसन्नाप्नोति गौरवम् ।
गुणा हि गुणता याति गुण्यमानाः पराननः ॥ ७३।७४
६४७. विषयाऽभिषसक्तात्मन् पापभाजन चञ्चल ।
धिगस्तु हृदयत्वं ते हृदय क्षुद्रचेष्टिता ॥ ७३।८४
६४८. अयं पुमानिय स्त्रीति विकल्पोऽयममेघसाम् ।
सर्वतो वचनं साधु समीहन्ते सुमेघसः ॥ ७३।९१
६४९. किं भूरिजनहिंसया ॥ ७३।९४
६५०. तदेव वस्तु संसर्गाद्विस्ते परमचारुताम् । ७३।१३९
६५१. धर्मो रक्षति मर्माणि धर्मो जयति दुर्जयम् ।
धर्मः सञ्जायते पक्षः धर्मः पश्यति सर्वतः ॥ ७४।५६
६५२. न गजस्योचिता घण्टा सारमेयस्य शोभते ॥ ७४।६३

६५३. कर्मण्युपेतैः श्रुदयं पुराणे संप्रेरके सत्यतिवारुणाङ्गे ।
तस्योचितं प्राप्तफल मनुष्याः क्रियापवर्गप्रकृत भजन्ते ॥ ७४।११५
६५४. उदारसरंभवशं प्रपन्नाः प्रारब्धकार्यार्थनियुक्तचित्ताः ।
नरा न तीव्रं गणयन्ति शस्त्रं न पावकं नैव रवि न वायुम् ॥ ७४।११६
६५५. धिगिमां नृपतेर्लक्ष्मीं कुलटासमचेष्टिताम् ।
भोक्तुमेकपदे पापान् त्यजन्ती चिरसंस्तुतान् ॥ ७६।१२
६५६. किम्पाकफलबद्भोगा विपाकविरसा भृशम् ।
अनन्तदुःखसम्बन्धकारिणः साधुगहिताः ॥ ७६।१३
६५७. क्षुद्रजन्तूनां खलेनाऽपि महोत्सवम् ॥ ७६।२६
६५८. धिगीदृशी श्रियमार्तिचञ्चनात्मिका विवर्जितां सुकृतसमागमाशया ।
इति स्फुटं मनसि निधाय भो जनास्तपोधना भवत रवेज्जितौजसः ॥ ७६।४३
६५९. योनिं यामश्नुते जन्तुस्तत्रैव रतिमेति सः ॥ ७७।६८
६६०. ननु स्वकृतसम्प्राप्तिप्रवणाः सर्वदेहिनः ॥ ७७।६९
६६१. मरणान्तानि वैराणि जायन्ते हि विपश्चिताम् ॥ ७८।१
६६२. परं कृतापकारोऽपि मानी निर्ब्यूढभाषितः ।
अत्युन्नतगुणः शत्रुः श्लाघनीयो विपश्चिताम् ॥ ७८।२९
६६३. अमूर्तत्वं यथा व्योम्नश्चलत्वं मनिलस्य च ।
महामुनेर्निसर्गेण लोकस्याल्लावन तथा ॥ ७८।५७
६६४. पञ्चानामर्थयुक्तत्वमिन्द्रियाणां तदैव हि ।
यदाभीष्टसमायोगे जायते कृतनिवृत्तिः ॥ ८०।८०
६६५. विषयः स्वर्गतुल्योऽपि विरहे नरकायते ।
स्वर्गायते महारण्यमपि प्रियसमागमे ॥ ८०।८२
६६६. एकेन उत्तरत्वेन पुरुषान्तरवर्जिना ।
स्वर्गारोहणसामर्थ्यं योषितामपि विद्यते ॥ ८०।१४७
६६७. वीरुदश्वेभलोहानामुपलद्रमवाससाम् ।
योषिता पुरुषाणां च विशेषोऽस्ति महान् नृप ! ॥ ८०।१५३
६६८. नहि चित्रमूर्तं बल्ल्यां बल्ल्या कूष्माण्डमेव वा ।
एवं न सर्वनारीषु सद्वृत्तं नृप विद्यते ॥ ८०।१५४
६६९. पूर्वभाष्योदयाद्राजन् संसारे चित्रकर्मणि ।
राज्यं कश्चिदवाप्नोति प्राप्तं नश्यति कस्यचित् ॥ ८०।३०३
६७०. अप्येकस्माद् गुरोः प्राप्य जन्तूनां धर्मसङ्गतिम् ।
निदाननिर्निदानाभ्यां मरणाभ्यां पृथग्गतिः ॥ ८०।२०४

६७१. उत्तरन्त्युदधिं केचिद्रत्नपूर्णाः सुखान्विताः ।
मध्ये केचिद्विशीर्यन्ते तटे केचिद्वनाधिपाः ॥८०॥२०५
६७२. पुण्यवान् स नरो लोके यो मातुर्विनये स्थितः ।
कुस्ते परिशुश्रूषां किकरत्वमुपागतः ॥८१॥१०६
६७३. एकोऽपि कृतो नियमः प्राप्तोऽभ्युदय जनस्य सद्बुद्धेः ।
कुस्ते प्रकाशमुच्चै रविरिव तस्मादिमं कुस्त ॥८२॥६६
६७४. कृतानि कर्माण्यशुभानि पूर्वं सन्तापमुग्रं जनयन्ति पश्चात् ।
तस्माज्जनाः कर्म शुभं कुरुष्व रवौ सति प्रस्खलनं न युक्तम् ॥८३॥१३४
६७५. चिरं संसारकान्तारे भ्राम्यता पुण्यकर्मतः ।
मानुष्यकमिदं कृच्छ्रात् प्राप्यते प्राणधारिणा ॥८४॥१०६
६७६. जानानः को जनः कूपे क्षिपति स्व' महाशयः ।
विषं वा कः पिबेत् को वा भूगी निद्रा निषेवते ॥८५॥१११
६७७. को वा रत्नेप्सया नागमस्तकं पाणिना स्पृशेत् ।
विनाशकेषु कामेषु घृतिजयित कस्य वा ॥८६॥१११
६७८. सुकृतासक्तिरेकैव श्लाघ्या मुक्तिमुखावहा ।
जनानां चञ्चलेऽत्यन्तं जीविते निस्पृहात्मनाम् ॥८७॥११२
६७९. ईदृशी कर्मणां शक्तिर्यज्जीवाः सर्वयोनियु ।
वस्तुतो दुःखयुक्तासु प्राप्नुवन्ति परां रतिम् ॥ ८८॥१६५
६८०. कमारिण्यमिदं विहाय विषमं धर्मं रमष्वं बुधाः ॥८९॥१७४
६८१. समुद्गते भव्यजनस्य कस्य रवौ प्रकाशेन न युक्तिरस्ति ॥ ८९॥२७
६८२. तस्यैकस्य मतिः शुद्धा तस्य जन्मार्थसंगतम् ।
विधानमिव यस्त्यक्त्वा राज्यं प्रात्रज्यमास्थितः ॥ ८९॥१६
६८३. पूज्यता वर्ण्यता तस्य कथं परमयोगिनः ।
देवेन्द्रा अपि नो शक्ता यस्य वक्तुं गुणाकरम् ॥ ८९॥१७
६८४. स्वेच्छाविधानमात्रं हि ननु राज्यमुदाहृतम् ॥ ८९॥२४
६८५. तावदेव प्रपद्यन्ते भङ्गं भीत्यानुगामिनः ।
यावत्स्वामिनमीक्षन्ते न पुरो विकचाननम् ॥ ८९॥८५
६८६. प्रदीप्ते भवने कीदृक् तडागलननादरः ।
को वा भुजङ्गदष्टस्य कालो मन्त्रस्य साधने ॥ ८९॥१०२ ✓
६८७. नियताचारयुक्तानां प्रभवन्ति मनीषिणाम् ।
भावा निरतिचाराणां श्लाघ्याः पूर्वकपुण्यजाः ॥ ९०॥१०

६८८. सुरासुरपिशाचाद्या बिभ्यति व्रतचारिणाम् ।
तावद् यावन्न ते तीक्ष्णं निश्चयासि जहस्यहो ॥ ६०।१२८
६८९. मधामिषनिवृत्तस्य तावद्धवस्तशतान्तरम् ।
सङ्क्षयन्ति न दुःसत्त्वा यावत् सालोऽस्य नैयमः ॥ ६०।१३
६९०. प्रवीरः कातरैः क्षूरसहस्रेण च पण्डितः ।
सेव्यः किञ्चिद्भजेन्मूर्खमकृतज्ञं परित्यजेत् ॥ ६०।१६
६९१. स्वप्न इव भवति चारुसयोगः प्राणिनां यदा तनुकालः ।
जनयति परम तापं निदाघरविरदिमजनिताधिकम् ॥ ६०।२६
६९२. गृहस्थशास्त्रिनो वार्त्तिप्यस्य च्छायां समाश्रयेत् ।
स्थीयते दिनमप्येकं प्रीतिस्तत्रापि जायते ॥ ६१।४५
६९३. किं पुनर्यत्र भूयोऽपि जन्मभिः सगतिः कृता ।
संसारभावयुक्तानां जीवानामीदृशी गतिः ॥ ६१।४६
६९४. धर्मेण रहितैर्लभ्यं न हि किञ्चित्सुखावहम् ॥ ६१।४८
६९५. अनेकमपि सञ्चित्य जन्तुर्दुःखमलक्षये ।
धर्मतीर्थं श्रुते (श्रयेत्) शुद्धिं जनतीर्थमनर्थकम् ॥ ६१।४९
६९६. श्रुत्वा परमं धर्मं न भवति येषां सदीहिते प्रीतिः ।
शुभनेत्राणां तेषां रविरुदितोऽनर्थकीभवति ॥ ६१।५१
६९७. साधुरूपसमालोक्य न मुञ्चत्पासनं तु यः ।
दृष्ट्वाऽप्यमन्यते यश्च स मिथ्यादृष्टिरुच्यते ॥ ६२।३४
६९८. बीजशिलातले न्यस्तसिञ्च्यमानसदापि हि ।
अनर्थकं यथा दानं तथा शीलेषु गेहिनाम् ॥ ६२।६६
६९९. साधुसमागमसक्ताः पुरुषाः सर्वमनीषितसेवन्ते ॥ ६२।६२
७००. पूर्वं जनितपुण्यानां प्राणिनां शुभचेतसाम् ।
आरभ्य जन्मतः सर्वं जायते सुमनोहरम् ॥ ६४।३८
७०१. निर्मितानां स्वयं शशवत् कर्मणामुचितफलम् ।
ध्रुवप्राणिभिराप्यतर्क्यं न तच्छक्यनिवारणम् ॥ ६६।५
७०२. अथवा वेति नारीणां चेतसः को विचेष्टितम् ।
दीषाणां प्रभवो यासु साक्षाद्वसति मन्मथः ॥ ६६।६१
७०३. धिक् स्त्रियं सर्वदोषाणामाकरं तापकारणम् ।
विशुद्धकुलजातानां पुंसां पक्वं सुदुस्त्यजम् ॥ ६६।६२
७०४. अभिहन्त्रीं समस्तानां बलानां रागसंश्रयाम् ।
स्मृतीनां परमं भ्रंशं सत्यस्वसनखातिकाम् ॥ ६६।६३

७०५. विघ्नं निर्वाणसौख्यस्य ज्ञानप्रभवसूदनीम् ।
भस्मच्छन्नाग्निस्त्वाशां धर्मसूचीसमानिकाम् ॥६६॥६४
७०६. अकीर्तिः परमल्पापि याति वृद्धिमुपेक्षिता ।
कीर्तिरल्पापि देवानामपि नाथैः प्रयुज्यते ॥६७॥१६
७०७. पश्याम्भोजवनानन्दकारिणस्तिग्मतेजसः ।
अस्तं यातस्य को रात्रौ सत्यामस्ति निवर्तकः ॥६७॥१६
७०८. असत्त्वं वक्तुं दुर्लोकः प्राणिनां शीलधारिणाम् ।
न हि तद्वचनात्तेषां परमार्थत्वमश्नुते ॥६७॥२७
७०९. गृह्णमाणोऽतकृष्णोऽपि विषदूषितलोचनैः ।
सितत्वं परमार्थेन न विमुञ्चति चन्द्रमाः ॥६७॥२८
७१०. आत्मा शीलसमृद्धस्य जन्तोर्ब्रजति साक्षिताम् ।
परमार्थाय पर्याप्तं वस्तुतत्त्वं न ब्राह्मणः ॥६७॥२९
७११. नो पृथग्जनबादेन संक्षोभं यान्ति कोविदाः ।
न शूनो भयणाहन्ती वैलक्ष्य प्रतिपद्यते ॥६७॥३०
७१२. शिलामुत्पाद्य शीताशु जिघासुर्भोहवत्सलः ।
स्वयमेव नरो नाशमसन्दिग्धं प्रपद्यते ॥६७॥३२
७१३. किमनर्थकृतार्थेन सविषेणौषधेन किम् ।
किं वीर्येण न रक्ष्यन्ते प्राणिनो येन भीगताः ॥६७॥३७
७१४. चारित्र्येण न तेनार्थो येन नात्मा हितोबुधवः ।
ज्ञानेन तेन किं येन ज्ञातो नाध्यात्मगोचरः ॥६७॥३८
७१५. प्रशस्तं जन्म नो तस्य यस्य कीर्तिबधू वराम् ।
बली हरति दुर्बादस्ततस्तु मरणं वरम् ॥६७॥३९
७१६. दर्शनं चिरसौख्यदम् ॥६७॥१२१
७१७. रत्न पाणितलं प्राप्तं परिभ्रष्टं महोदधौ ।
उपायेन पुनः केन सङ्गतिं प्रतिपद्यते ॥६७॥१२३
७१८. क्षिप्त्वामृतफलं कूपे महाऽभ्यसिन्नयङ्करे ।
परं प्रपद्यते दुःखं पश्चात्तापहतः शिशुः ॥६७॥१२४
७१९. यस्य यत्सदृशं तस्य प्रबदत्बनिवारितः ।
को ह्यस्य जगतः कर्तुं शक्नोति मुक्तबन्धनम् ॥६७॥१२५
७२०. धिगू भूत्यतां जगन्निधां यत्किञ्चनविधायिनीम् ।
परायत्तीकृत्वात्मानं क्षुद्रमानवसेविताम् ॥६७॥१४०

७२१. बन्धचेष्टिततुल्यस्य दुःखैकनिहितात्मनः ।
भृत्यस्य जीविताद् भूतं वरं कुक्कुरजीवितम् ॥६७।१४१
७२२. नरेन्द्रशक्तिवश्यः सन् निम्बनामा पिशाचवत् ।
विदधाति न किं भृत्यः किं वा न परिभाषते ॥६७।१४२
७२३. चित्रचापसमानस्य निःकृत्यगुणधारिणः ।
निस्थनग्रशरीरस्य निन्धं भृत्यस्य जीवितम् ॥६७।१४३
७२४. सङ्कारकूटकस्येव पश्चाद्भिवृत्तचेतसः ।
निर्माल्यबाहिनो धिग्भृत्यस्यान्तोऽमुधारणम् ॥६७।१४४
७२५. उन्नत्या त्रपया दीप्या वर्जितस्य निजेच्छया ।
मा स्म भूज्जन्म भृत्यस्य पुस्तकर्मसमात्मनः ॥६७।१४५
७२६. विमानस्यापि मुक्तस्य गत्या गुरुतया समम् ।
अधस्ताद् गच्छतो नित्यं धिग्भृत्यस्यामुधारणम् ॥६७।१४७
७२७. निःसत्त्वस्य महामांसविक्रयं कुर्वतः सदा ।
निर्मदस्यास्वतन्त्रस्य धिग्भृत्यस्यामुधारणम् ॥६७।१४८
७२८. तिर्यगूर्ध्वमधस्ताद्वा स्थानं तन्नास्ति विष्टये ।
जीवेन यत्र न प्राप्ता जन्ममृत्युजरादयः ॥६८।८६
७२९. परिभ्रष्टं प्रमादेन महार्घगुणमुज्ज्वलम् ।
रत्नं को न पुनर्विद्वानन्विष्यति महादरः ॥६८।१००
७३०. चरितं सत्पुरुषस्य व्यपगतदोषं परोपकारनिर्युक्तम् ।
क्षपयति कस्य न शोकं जिनमतनिरतप्रगाढचेतस्य ॥६८।१०४
७३१. प्राप्तव्यं येन यल्लोके दुःखं कल्याणमेव वा ।
स तं स्वयमवाप्नोति कुतश्चिद्ब्यपदेशतः ॥६९।८६
७३२. आकाशमपि नीतः सन् वनं वा श्वापदाकुलम् ।
मूर्धानं वा महीध्रस्य पुण्येन स्वेन रक्षयते ॥६९।८७
७३३. भास्करेण विना का द्यौः का निशा शशिना विना ? ॥६९।९५
७३४. नोपायः पञ्चात्तापो मनीषिणे ॥६९।१०३
७३५. उपदेशं ददत्पान्ने गुरुर्वानि कृतार्थताम् ।
अनर्थकः समुद्योतो रवेः कौशिकगोचरः ॥१००।५२
७३६. ईदृगेव हि धीराणां कुलशीलनिवेदनम् ।
शस्यते न तु भारत्या तद्धि सन्देहभाजनम् ॥१०१।६०
७३७. प्रणाममात्रतः प्रीता जायन्ते मानशालिनः ।
नोन्मूलयन्ति नद्योषा वेतसान् प्रणतात्मकान् ॥१०१।६५

७३८. रणे पृष्ठं न वीयते ॥१०३॥२२
७३९. जनाद्यानामबन्धूनां दरिद्राणां सुदुःखिनम् ।
जिनशासनमेतद्धि शरणं परमं मतम् ॥१०४॥७०
७४०. वरं हि मरणं ह्यार्घ्यं न वियोगः सुदुःसहः ।
क्षुतिस्मृतिहरोऽसौ हि परमः कोऽपि निन्दितः ॥१०५॥११
७४१. यावज्जीवं हि विरहस्तापं यच्छति चेतसः ।
मृतेति छिद्यते स्वैरं कथाकांक्षा च तद्गता ॥१०५॥१२
७४२. रसनस्पर्शनासक्ता जीवास्तत्कर्म कुर्वते ।
गरिष्ठा नरके येन पतन्त्यायसपिण्डवत् ॥१०५॥१६
७४३. हिसावितथबीयन्त्यस्त्रीसङ्गादनिवर्तनाः ।
नरकेषूपजायन्ते पापभारगुरुकृताः ॥१०५॥१७
७४४. मनुष्यजन्म सम्प्राप्य सततं भोगसङ्गताः ।
जनाः प्रचण्डकर्माणो गच्छन्ति नरकावनिम् ॥१०५॥१८
७४५. विधाय कारयित्वा च पाप समनुमोद्य च ।
रौद्रातंप्रवणा जीवा यान्ति नारकबीजताम् ॥१०५॥१९
७४६. तस्मात्कलमघर्मस्य ज्ञात्वेदमतिदुःसहम् ।
प्रशान्तहृदयाः सन्तः सेवध्वं जिनशासनम् ॥१०५॥२६ ✓
७४७. यथा सुवर्णपिण्डस्य वेष्टितस्यायसा भृशम् ।
आत्मीया नश्यति च्छाया तथा जीवस्य कर्मणः ॥१०५॥२७
७४८. मृत्युजन्मजराव्याधिसहस्रैः सततं जनाः ।
मानसैश्च महादुःखैः पीड्यन्ते सुखमत्र किम् ॥१०५॥२७
७४९. असिधारामधुस्वादसम विषयज मुग्धम् ।
दग्धे चन्दनवह्निष्यं चक्रिणां सविषास्रवत् ॥१०५॥२८
७५०. ध्रुवं परमनाबाधमुपमानविवर्जितम् ।
आत्मस्वाभाविकं सौख्यं सिद्धानां परिकीर्तितम् ॥१०५॥२९
७५१. सुप्त्वा किं ध्वस्तनिद्राणां नीरोगाणां किमीषधैः ?
सर्वज्ञानां कृतार्थानां किं दीपतपनादिना ? ॥१०५॥३२
७५२. आयुधैः किमभीतानां निर्भूक्तानामरातिभिः ।
पश्यतां विपुलं सर्वसिद्धार्थानां किमीहया ॥१०५॥३३
७५३. महात्ममुखतृप्तानां किं कृत्यं भोजनादिना ।
देवेन्द्रा अपि यत्सौख्यं वाञ्छन्ति सततोन्मुखाः ॥१०५॥३४
७५४. सुखं नापरश्रुत्कृष्टं विद्यते सिद्धसौख्यतः ॥१०५॥३५

७५५. गत्यागतिविमुक्तानां प्रक्षीणक्लेशसम्पदाम् ।
लोकशेखरभूतानां सिद्धानामसमं सुखम् ॥१०५॥१६४
७५६. जिनेन्द्रशासनादन्यशासने रघुनन्दन ।
न सर्वयत्नयोगेऽपि विद्यते कर्मणां क्षयः ॥१०५॥२०४
७५७. भार्यावाटीप्रविष्टः सन् मनुष्यो वनवारणः ।
विषयामिषसक्तश्च मत्स्यो बन्धं समप्नुते ॥१०५॥२५७
७५८. मोक्षो निगडबद्धस्य भवेदन्धाच्च कूपतः ।
निबद्धः स्नेहपाशैस्तु ततः कृच्छ्रेण मुच्यते ॥१०५॥२५९
७५९. बोधिं मनुष्यलोकेऽपि जैनेन्द्री मुष्टुर्दुर्लभाम् ।
प्राप्तुमर्हत्यभव्यन्तु नैव मार्गं जिनोदितम् ॥१०५॥२६०
७६०. धनकर्मकलङ्काक्ता अभव्या नित्यमेव हि ।
संसारचक्रमारुढा भ्राम्यन्ति क्लेशवाहिनाः ॥१०५॥२६१
७६१. सन्धावतोऽस्य संसारे कर्मयोगेन देहिनः ।
कृच्छ्रेण महता प्राप्तिर्मुक्तिमार्गस्य जायते ॥१०६॥१६४
७६२. सन्ध्याबुद्बुदफेनोमिविद्युदिन्द्रवनुःसमः ।
भङ्गुरत्वेन लोकोऽयं न किञ्चिदिह सारकम् ॥१०६॥१६५
७६३. नरके दुःखमेकान्तादेति तिर्यक्षु वाऽनुमान् ।
मनुष्यत्रिदशानां च मुखेनैवैष तृप्यति ॥१०६॥१६६
७६४. माहेन्द्रभोगसम्पद्भिर्भयौ न तृप्तिमुपागतः ।
स कथं क्षुद्रकैस्तृप्तिं व्रजेन्मनुजभोगकैः ॥१०६॥१६७
७६५. कथञ्चिद् दुर्लभं लब्ध्वा निधानमघनो यथा ।
नरत्वं मुह्यति व्यर्थं विषयास्वादलोभतः ॥१०६॥१६८
७६६. काम्ने शृष्केन्धनैस्तृप्तिः काम्बुधैरापयाजलैः ।
विषयास्वादसौख्यैः का तृप्तिरस्य शरीरिणः ॥१०६॥१६९
७६७. मज्जन्निव जले खिन्नो विषयामिषमोहितः ।
दक्षोऽपि मन्दतामेति तमोऽधीकृतमानसः ॥१०६॥१७०
७६८. दिवा तपति तिग्मांशुर्मदनस्तु दिवानिशम् ।
समस्ति वारणं भानोर्मदनस्य न विद्यते ॥१०६॥१७१
७६९. जन्ममृत्युजरादुःखं संसारे स्मृतिभीतिवम् ।
अरहद्दृष्टीयन्त्रसन्ततं कर्मसम्भवम् ॥१०६॥१७२
७७०. अजङ्गमं यथाऽन्येन यन्त्र कृतपरिभ्रमम् ।
शरीरमध्रुवं तृप्तिं तथा स्नेहोऽत्र मोहतः ॥१०६॥१७३

७७१. जलबुद्बुदनिःसारं ज्ञात्वा मनुजसम्भवम् ।
निर्विण्णाः कुलजा मार्गं प्रपद्यन्ते जिनोदितम् ॥ १०६।१०४
७७२. उत्साहकवचच्छन्ना निश्चयाश्चस्वसाधिनः ।
ध्यानखड्गधरा धीराः प्रस्थिताः सुगतिं प्रति ॥ १०६।१०५
७७३. अन्यच्छरीरमन्योऽहमिति सञ्चिन्त्य निश्चिताः ।
त्यक्त्वा शरीरके स्नेहं धर्मं कुरुत मानवाः ॥ १०६।१०६
७७४. सुखदुःखादयस्तुल्याः स्वजनेतरयोः समाः ।
रागद्वेषविनिर्मुक्ताः श्रमणाः पुरुषोत्तमाः ॥ १०६।१०७
७७५. भारत्यपि न वक्तव्या दुरितादानकारिणी ॥ १०६।२२४
७७६. धारयन्ति न निर्यातिं बह्निज्वालाकुलालयात् ।
दयावन्तो यथा तद्वद् दुःखतप्ताद् भवादपि ॥ १०७।१०
७७७. कदाचिच्चलति प्रेम न्यस्तं भर्त्तरि योषिताम् ।
स्वस्तन्यकृतपोषेषु जातेषु न तु जातुचित् ॥ १०७।६२
७७८. एवं विदित्वा सुलभौ नितान्तं जीवस्य लोके पितरौ सदैव ।
कर्त्तव्यमेतद् विदुषां प्रयत्नाद्विमुच्यते येन शरीरदुःखात् ॥ १०८।५१
७७९. विमुच्य सर्वं भववृद्धिहेतुं कर्मोण्डुलप्रभवं जुगुप्सम् ।
कृत्वा तपो जैनमतोपदिष्टं रवि तिरस्कृत्य शिव प्रयात ॥ १०८।५२
७८०. संसारस्य स्वभावोऽर्थं रङ्गमध्ये यथा नरः ।
राजा भूत्वा भवेद्भृत्यः प्रेष्यश्च प्रभुतां व्रजेत् ॥ १०९।६७
७८१. एवं पिताऽपि लोकत्वमेति लोकश्च तातताम् ।
माता पत्नीत्वमायाति पत्नी चायाति मातृताम् ॥ १०९।६८
७८२. उद्धाटनघटीयन्त्रसदृशेऽस्मिन् भवात्मनि ।
उपर्यधरतां यान्ति जीवाः कर्मवशा गताः ॥ १०९।६९
७८३. साधून्वीक्ष्य जुगुप्सन्ते सद्योऽनर्थं प्रयान्ति ते ।
न पश्यन्त्यात्मनो दौष्ट्यं दोषं कुर्वन्ति साधुषु ॥ १०९।११२
७८४. यथाऽद्दर्शितले कश्चिदात्मानमवलोकयन् ।
यादृशं कुरुते वक्त्रं तादृशं पश्यति ध्रुवम् ॥
तद्वत्साधुं समानोक्य प्रस्थानादिक्रियोद्यतः ।
यादृशं कुरुते भावं तादृशं लभते फलम् ॥ १०९।११३-११४
७८५. प्ररोदनं प्रहासेन कलहं पशुवोक्तिः ।
वधेन मरणं प्रोक्तं विद्वेषेण च पातकम् ॥ १०९।११५

७८६. साधोर्निबुक्तेन परिनिन्द्येन वस्तुना ।
फलेन तादृशेनैव कर्त्ता योगमुपाप्नुते ॥ १०६।११६
७८६. (अ) को दोषोऽन्यप्रियारती ? १०६।१५३
७८७. ये पारदारिका दुष्टा निग्राह्यास्ते न संशयः ॥ १०६।१५४
७८८. दण्ड्याः पञ्चकदण्डेन निर्वास्याः पुरुषाधमाः ।
स्पृशन्तोऽप्यबलामन्यां भाषयन्तोऽपि दुर्मताः ॥
सन्मूढाः परदारेषु ये पापादनिवर्त्तिनः ।
अधःप्रपतनं येषां ते पूज्याः कथमीदृशाः ॥ १०६।१५५-१५६
७८९. यथा राजा तथा प्रजा ॥ १०६।१५६
७९०. येन बीजा प्ररोहन्ति जगतो यच्च जीवनम् ।
जातस्तनो जलाद्वह्निः किमिहापरमुच्यताम् ॥ १०६।११६
७९१. भोगमवर्तनो (येन) कर्मणा नावमुच्यते ॥ १०६।१६३
७९२. सतां हि माधुसम्बन्धाच्चित्तमानन्दमीयते ॥ ११०।२५
७९३. स्वभावाद्वनिता जिह्वा विशेषादन्यचेतसः ।
ततः मुहृदयस्तासामर्थ्यं को विवृति भजेत् ॥ ११०।३१
७९४. अथवा विस्मयः कोऽत्र किमपीदं जगद्गतम् ।
कर्मवैचित्र्ययोगेन विचित्रं यच्चराचरम् ॥ ११०।३६
७९५. प्रागेव यदवाप्तव्यं येन यत्र यथा यतः ।
तत्परिप्राप्यतेऽवश्यं तेन तत्र तथा ततः ॥ ११०।४०
७९६. रम्भास्तम्भसमानानां निःसाराणां हृतात्मनाम् ।
कामानां वशगाः शोकं हास्य नो कर्तुं महर्षयः ॥ ११०।४४
७९७. सर्वे शरीरिणः कर्मवशे वृत्तिमुपाश्रिताः ।
न तत्क्रुध्य किं येन तत्कर्म परिणश्यति ॥ ११०।४५
७९८. गहने भवकान्तारे प्रणष्टाः प्राणधारिणः ।
ईदृक्षि यान्ति दुःखानि निरस्यत ततस्तकम् ॥ ११०।४६
७९९. भवानां किल सर्वेषां दुर्लभो मानुषो भवः ।
प्राप्य तं स्वहितं यो न कुरुते स तु वञ्चितः ॥ ११०।४९ ✓
८००. ऐश्वर्यं पात्रदानेन तपसा लभते दिवम् ।
ज्ञानेन च शिवं जीवो दुःखदा गतिमहसा ॥ ११०।५०
८०१. विद्युदाकालिकं ह्येतज्जगत्सारविवर्जितम् ॥ ११०।५५
८०२. नास्य माता पिता भ्राता बान्धवाः सुहृदोऽपि वा ।
सहायाः कर्मतन्त्रस्य परित्राणं शरीरिणः ॥ ११०।५८

८०३. अतुष्ट एव भोगेषु जीवो कुम्भिविभ्रमः ।
इमं विमोक्ष्यते वेहं किं प्राप्तं जायते तदा ॥ ११०१६१
८०४. मातरः पितरोऽप्ये च संसारेऽन्तश्चो गताः ।
स्नेहबन्धनमेतानामेतद्वि चारकं गृहम् ॥ ११०१७२
८०५. पापस्य परमारम्भं नानादुःखाभिवर्द्धनम् ।
गृहपञ्जरकं मूढाः सेवन्ते न प्रबोधिनः ॥ ११०१७३ ✓
८०६. शारीरं मानसं दुःखं मा भूद् भूयोऽपि नो यथा ।
तथा मुनिचिन्ताः कुर्मः किं वयं स्वस्य वैरिणः ॥ ११०१७४
८०७. निर्दोषोऽहं न मे पापमस्तीत्यपि विचिन्तयन् ।
मलिनत्वं गृही याति शुक्लांशुकमिव स्थितम् ॥ ११०१७५
८०८. उत्थायोत्थाय यन्नृणां गृहाश्च मनिवासिनाम् ।
पापे रतिस्ततस्त्यक्तो गृहित्रमो महात्मभिः ॥ ११०१७६
८१०. पिबन्तं मृगकं यद्वद् व्याधो हन्ति तुषा जलम् ।
तथैव पुरुषः मृत्युर्हन्ति भोगैरतुष्टकम् ॥ ११०१७८
८११. विषयप्राप्तिसंसक्तमस्त्वन्त्रमिदं जगत् ।
कामैराशीविषैः साकं क्रीडत्यज्ञानमौषधम् ॥ ११०१७९
८१२. जगत्स्वकर्मणां वषयम् ॥ ११०१८१
८१३. ध्रुवं यदा समासाद्यो विरहो बन्धुभिः समम् ।
असमञ्जसरूपेऽस्मिन्संसारे का रतिस्तदा ॥ ११०१८३
८१४. अयं मे प्रिय इत्याऽऽस्था व्यामोहोपनिबन्धना ।
एक एव यतो जन्तुर्गत्यागमनदुःखभाक् ॥ ११०१८४
८१५. नानायोगिषु संभ्रम्य कृच्छ्रात्प्राप्ता मनुष्यताम् ।
कुर्मस्तथा यथा भूयो मज्जामो नात्र सागरे ॥ ११०१८६
८१६. सर्वाऽरम्भविरहिता विहरन्ति नित्यं निरम्बरा विधियुक्तम् ।
क्षान्ता दास्ता मुक्ता निरपेक्षाः परमयोगिनी ध्यानरताः ॥ ११०१८७
८१७. तुष्णविषादहन्तृणां क्षणमप्यस्ति नो शमः ।
मूर्खोपकण्ठदस्ताङ्घ्रिमृत्युः कालमुदीकते ॥ १११११४
८१८. अस्य दग्धशरीरस्य कृते क्षणविनाशिनः ।
हताशः क्रुते किं न जीवो विषयदासकः ॥ १११११५
८१९. ज्ञात्वा जीवितमानाय्यं त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम् ।
स्वहिते वर्तते यो न स नश्यत्यकृतार्थकः ॥ १११११६

- ८२० सहस्रं भाषि शास्त्राणां किं येनात्मा न शाम्यति ।
तृप्तमेकपदेनापि येनात्मा शममप्नुते ॥१११।१७
- ८२१ कर्तुमिच्छति सद्धर्मं न करोति यथाप्ययम् ।
दिव यियासुर्विच्छिन्नपक्षबाहू द्वयं श्रमम् ॥१११।१८
- ८२२ विमुक्तो व्यवसायेन लभते चेत्समीहितम् ।
न लोके विरही वपिचक्रवेदप्रविणोऽपि वा ॥१११।१९
- ८२३ अतिथिं द्वागतं साधुं गुप्त्वाक्यं प्रतिक्रियाम् ।
प्रतीक्ष्य मुकृतं वाशं नावमीदति मानव ॥१११।२०
- ८२४ नानाव्यापारशतैराकुलहृदयस्य दुःखिनः प्रतिदिवसम् ।
रत्नमिव वस्तुलम्ब्य भ्रम्यत्यायुः प्रमादतः प्राणभन ॥१११।२१
- ८२५ जिनचन्द्राचनन्यस्तविरामिनयना जना ।
नियमावहितात्मानं शिवं निदधते वरे ॥११२।६२
- ८२६ न तथा दुर्लभं विजितं कस्यापि शुद्धचेतसाम् ।
यं जिनेन्द्राचननासक्ता जना मयलवसना ॥११२।६४
- ८२७ श्रावकान्वयसम्भूतिभक्तिजिनवरे दृढा ।
समाधिनावसानं च पर्याप्तिं जन्मनः फलम् ॥११२।६५
- ८२८ हा कष्टं ससारे नास्ति तत्पदम् ।
यत्र न कीडति स्वेच्छं मृत्युं मुरगणेष्वपि ॥११२।७७
- ८२९ तडिदुत्कातरं ज्ञातिभङ्गं जन्म सर्वतः ।
देवानामपि यत्र स्यात् प्राणिनां तत्र का कथा ॥११२।७८
- ८३० अनन्तशो न भुक्तं यत्ससारं चेतनावता ।
न तदास्ति सुखं नाम दुःखं वा भुवनत्रये ॥११२।७९
- ८३१ अहो मोहस्य माहात्म्यं परमेतद्बलान्वितम् ।
एतावन्तं यत् कालं दुःखपर्यटितं भवेत् ॥११२।८०
- ८३२ उत्सर्पिष्यन्सर्पिष्यौ भ्रान्त्वा कृच्छात्सहस्रशः ।
अवाप्यते भ्रान्त्यस्य कष्टं नष्टमनाप्तवत् ॥११२।८१
- ८३३ विनयवरसुखासक्ता सौहित्यपरिवर्जिता ।
परिणामं प्रपद्यन्ते प्राणिनस्तापसङ्कटम् ॥११२।८२
- ८३४ अलान्युत्पथवृत्तानि दुःखदानि पराणि च ।
इन्द्रियाणि न शाम्बन्ति विना जिनपद्माश्रयात् ॥११२।८३
- ८३५ आनायेन यथा दीना बध्यन्ते मृगपक्षिणः ।
तथा विषयजालेन बध्यन्ते मोहिनी जना ॥११२।८४

८३६. आशीविषसमानैर्वो रमते विषयैः समम् ।
परिणामे स मूढात्मा दहते दुःखवह्निना ॥११२।८५
८३७. को ह्येकदिवसं राज्यं वर्षमम्बिष्य यातनाम् ।
प्रार्थयेत् विमूढात्मा तद्विषयसील्यभाक् ॥११२।८६
८३८. कदाचिद् बुद्धयमानोऽपि मोहतस्करवञ्चितः ।
न करोति जनः स्वार्थं किमतः कष्टमुत्तमम् ॥११२।८७
८३९. भुक्त्वा त्रिविष्टपे घर्मे मनुष्यभवसञ्चितम् ।
पश्चान्मुषितबहीनो दुःखी भवति चेतनः ॥११२।८८
८४०. भुक्त्वापि त्रैदशान् भोगान् सुकृते क्षयमागते ।
शेषकर्मसहायः सन् चेतनः क्वापि गच्छति ॥११२।८९
८४१. जन्तोर्निजं कर्म बान्धवः दातुरेव वा ॥११२।९०
८४२. तदलं निन्दितैरेभिर्भोगैः परमदारुणैः ।
विप्रयोग सहामीभिरवश्यं येन जायते ॥११२।९१
८४३. श्रीमत्सो हरिणीनेत्रा योषिद्वगुणसमन्विताः ।
अत्यन्तदुस्त्यजा मुग्धाः ॥११२।९२
८४४. दीर्घं कालं रप्त्वा नाके गुणयुवतीभिः सुविभूतिभिः ।
मर्त्यक्षेत्रेभ्यस्तम भूयः प्रमदवरललितवनिताजनैः परिललितः ।
को वा यातस्तृप्तं जन्तुर्विविधविषयसुखरतिभिर्नदीभिरिवोदधिः ।
नानाजन्मभ्रान्तश्चान्तं व्रज हृदय ।
शममपि किमाकुलितमवेत् ॥११२।९५-९६
८४५. किं न श्रुत्वा नरकसीमविरोधं तीव्र-
स्तीव्राक्षिपत्रवनसङ्कटदुर्गमार्गाः ॥११२।९७
८४६. उत्तरन्तं भवाम्मोधि तत्रैव प्रक्षिपन्ति ये ।
हितास्ते कथमुच्यन्ते वैरिणः परमार्थतः ॥११३।७
८४७. माता पिता सुहृद्भ्राता न तदागात्सहायताम् ।
यदा नरकवासेषु प्राप्त दुःखमनुत्तमम् ॥११३।८
८४८. मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य बोधिं च जिनशासने ।
प्रभावो नोचितः कर्तुं निदेशमपि धीमतः ॥११३।९✓
८४९. देवासुरमनुष्येन्द्राः स्वकर्मवशादतिनः ।
कालदावानलालीढाः के वा न प्रलययन्ताः ॥११३।११
८५०. गताऽजमविचेदोऽतु मतोऽपि सुमहाबलम् ।
अपरं नाम कर्मास्ति ॥११३।१३

८५१. महामहाजन. प्रायो रतिबद्धिरती भूषाम् ॥११३।४२
 ८५२. सन्तं सन्त्यज्य ये भोग प्रव्रजन्त्यायतेक्षणाः ।
 नूनं ब्रह्महीतास्ते वायुना वा वशीकृताः ॥११४।२
 ८५३. भुज्यमानारूपसौख्येन संसारपदमीयुषाम् ।
 प्रायो विस्मयते सीक्ष्यं श्रुतमप्यतिमंसृति ॥
 ८५४. सर्वेषां बन्धनानां तु स्नेहबन्धो महादुः ॥११४।४६
 ८५५. हस्तपादांगबद्धस्य मोक्षः स्यादमुधारिणः ।
 स्नेहबन्धनबद्धस्य कुतो मुक्तिविधीयते ॥११४।५०
 ८५६. योजनाना सहस्राणि निगडैः पूरितो व्रजेत् ।
 शक्तो नांगुलमप्येक बद्ध स्नेहेन मानवः ॥११४।५१
 ८५७. कर्मणामिदमीदृशमीहित बुद्धिमानपि यदेति विमूढताम् ।
 अन्यथा श्रुतमर्बनिजायति क. करोति न हित सचेतनः ॥११४।५४
 ८५८. कृत्यमत्र भवाग्निनाशन यत्नमेत्य परम सुचेतमा ॥११४।५५
 ८५९. अप्रेक्ष्यकारिणा पापमानसाना हृतात्मनाम् ।
 अनुष्ठितं स्वय कर्म जायते तापकारणम् ॥११५।१७
 ८६०. धिगसार मनुष्यत्वं नाजोऽस्त्यन्यन्महाधमम् ।
 मृत्युर्यच्छत्यवस्कन्द यदज्ञानो निमेषतः ॥११५।५५
 ८६१. यो न निर्व्यूहितु शक्य. सुरविद्याधरैरपि ।
 नारायणोऽप्यसौ नीत. कालपाणेन वक्ष्यताम् ॥११५।५६
 ८६२. आनाय्येन शरीरेण किमनेन घनेन च ? ११५।५७
 ८६३. कर्मनियोगेनैवं प्राप्तेऽवस्थामशोभनामाप्तजने ।
 सशोकं वैराग्यं च प्रतिपद्यन्ते विचित्रचित्ता. पुरुषा. ॥११५।६३
 ८६४. कालं प्राप्य जनाना किञ्चिच्च निमित्तमात्रक परभावम् ।
 सम्बोधरविहरेति स्वकृतविपाकेऽन्तरंगहेतो जाते ॥११५।६४
 ८६५. न कृशानुर्दहत्येवं नैवं शोषयते विषम् ।
 उपमानविनिर्मुक्त यथा भ्रातु परायणम् ॥११६।१८
 ८६६. जातेनावस्यमर्त्तव्यमत्र संसारपञ्जरे ।
 प्रतिक्रियास्ति नो मृत्योरुपायैर्विचिबैरपि ॥११७।८
 ८६७. आनाय्ये नियतं वेहे शोकस्यालम्बनं मुधा ।
 उपायैर्हि प्रवर्त्तन्ते स्वार्थस्य कृतबुद्धयः ॥११७।९
 ८६८. आक्रान्धितेन नो कश्चित्परलोकगतो गिरम् ।
 प्रयच्छति ॥११७।१०

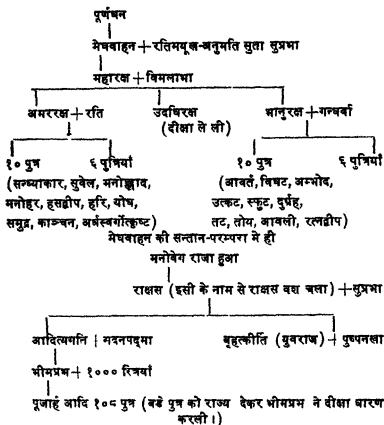
८६९. नारीपुरुषसंयोगाच्छरीराणि शरीरिणाम् ।
उत्पद्यन्ते व्ययन्ते च प्राप्तसाम्यानि बुद्बुदैः ॥ ११७।११
८७०. लोकपालसमेतानामिन्द्राणामपि माततः ।
नष्टा योनिजदेहानां प्रच्युतिः पुण्यसंक्षये ॥ ११७।१२
८७१. गर्भाक्षिप्टे रुजाकीर्णे तृणविन्दुचलाक्षसे ।
क्लेदकैकससङ्कघाते काऽस्या मर्यंशरीरके ॥ ११७।१३
८७२. अजरामरणमन्यः किं शोचति जनो मृतम् ।
मृत्युदंष्ट्रान्तरिक्षिष्टमात्मानं किं न शोचति ॥ ११७।१४
८७३. यदैव हि जनो जातो मृत्युमाधिष्ठितस्तदा ।
तत्र साधारणे धर्मे ध्रुवे किमिति शोच्यते ॥ ११७।१५
८७४. अभीष्टसङ्गमाकांक्षो मुधा श्रुप्यति शोकवान् ।
शबरान्तं ह्वारण्ये अमरः केणलोभतः ॥ ११७।१७
८७५. लोकस्य साहसं पश्य निर्भीस्तिष्ठति यत्पुरः ।
मृत्योर्ब्रह्माप्रवण्डस्य तिहस्येव कुरङ्गकः ॥ ११७।१६
८७६. संसारमण्डलापन्नं दह्यमानं सुगन्धिना ।
सदा च विन्ध्यदावाम् भुवनं किं न वीक्षते ॥ ११७।२१
८७७. पर्यट्य भवकान्तारं प्राप्य कामभुजिष्यताम् ।
मत्तद्विषा ह्वाऽभ्यान्ति कालपाशस्य वश्यताम् ॥ ११७।२२
८७८. धर्ममार्गं समासाद्य गतोऽपि त्रिदशालयम् ।
अशापवततया नद्या पात्यते तटवृक्षवत् ॥ ११७।२३
८७९. सुरमानवनाथानां चया, शतसहस्रशः ।
निधनं समुपानीताः कालमेधेन बह्वयः ॥ ११७।२४
८८०. दूरमम्बरमुल्लङ्घ्य समापत्य रसातलम् ।
स्थानं तत्र प्रपश्यामि यच्च मृत्योरगोचरः ॥ ११७।२५
८८१. षष्ठकालक्षये सर्वं क्षीयते भारत जगत् ।
घराघरा विशीर्यन्ते मर्त्यंकाये तु का कथा ॥
८८२. वर्यार्धभवपूर्वदा अप्यबध्याः सुरासुरैः ।
नग्ननित्यतया लब्धा रम्भागर्भोपमैस्तु किम् ॥ ११७।२७
८८३. जनन्यापि समाश्लिष्ट मृत्युर्हरति देहिनम् ।
पातालान्तर्गतं यद्वत् काश्चिदेवं द्विजोत्तमः ॥ ११७।२८
८८४. हा भ्रातर्दयिते पुनैत्येवं कन्दन् लुप्तःक्षितः ।
कालाहिना जगद्व्यङ्गो प्रासतामुपनीयते ॥ ११७।३०

८८५. करोम्येतत्करिष्यामि बदत्प्रेषमनिष्टघ्नीः ।
जनो विपश्चि कालास्यं भीमं पीत इवार्णवम् ॥ ११७।३०
८८६. जनं भवान्तरं प्राप्तमनुगच्छेज्जनो यदि ।
द्विष्टैरिष्टैश्च नो जातु जायेत विरहस्ततः ॥ ११७।३१
८८७. परे स्वजनमानी यः क्रुते स्नेहसम्मतिम् ।
विपश्चि कलेषावह्निं स मनुष्यकलधो ध्रुवम् ॥ ११७।३२
८८८. स्वजनीषाः परिप्राप्ताः संसारे येषुधारिणाम् ।
सिन्धुसंकतसङ्घाता अपि सन्ति न तत्समाः ॥ ११७।३३
८८९. य एव लालितोऽन्यत्र विविधप्रियकारिणा ।
स एव रिपुता प्राप्तो हन्यते तु महात्मा ॥ ११७।३४
८९०. पीतो पयोधरौ यस्य जीवस्य जननान्तरे ।
त्रस्ताहृतस्य तस्यैव खाद्यते मांसमत्र धिक् ॥ ११७।३५
८९१. स्वाभीति पूजितः पूर्वं यः क्षिरोनमनादिभिः ।
स एव दासतां प्राप्तो हन्यते पादताडनैः ॥ ११७।३६
८९२. विधो पश्यत मोहस्य शक्तिं येन वशीकृतः ।
जनोऽन्विष्यति सयोगं हस्तेनेव महोरगम् ॥ ११७।३७
८९३. प्रदेशस्तिनमानोऽपि विष्टपे न स विद्यते ।
यत्र जीवः परिप्राप्तो न मृत्यु जन्म एव वा ॥ ११७।३८
८९४. ताम्रादिकलिलं पीतं जीवेन नरकेषु यत् ।
स्वयम्भूरमणे तावत्सलिलं नहि विद्यते ॥ ११७।३९
८९५. बराहभययुक्तेन यो नीहारोऽशनीकृतः ।
मन्ये विन्ध्यसहस्रेभ्यो बहुशोऽन्यन्तदूरतः ॥ ११७।४०
८९६. परस्परस्वनाशेन कृता या मूर्धंसंहतिः ।
ज्योतिषां मार्गमुल्लङ्घ्य यावात्सा यदि न्ध्यते ॥ ११७।४१
८९७. शर्कराषरणीयातैर्वृक्षं प्राप्तमनुत्तमम् ।
श्रुत्वा तत्कस्य रोचेन मोहेन सह मित्रता ॥ ११७।४२
८९८. विदग्धा अपि हंसस्य लङ्घिताः किं नु कुर्वते ?
यस्याभीषुसहस्राप्तं परिजाज्वल्यते जगत् ॥ ११८।५७
८९९. महात्मा मरणेऽप्यस्ति गुणो जीवन् हि मानवः ।
कदाचिदेति कल्याणं स्वकर्मपरिपाकतः ॥ ११८।५९
९००. परेत सिञ्चसे मूढ कस्मादेनमनोकहम् ?
कलेबरे हृत् श्राव्य जीवं हारयसे कुतः ? ११८।७८

६०१. नीरनिर्मयने लब्धिनर्बनीतस्य किं कृता ।
बालुकापीडनाद् बालस्नेहः सञ्जायतेऽप्य किम् ॥ ११८।७६
६०२. बालाप्रमाणकं दोषं परस्य सिप्रमीक्षसे ।
मेरुकूटप्रमाणान् स्वान् कथं दोषान् पश्यसि ॥ ११८।७७ ✓
६०३. सदृशः सदृशेष्वेव रज्यन्ति ॥ ११८।८८
६०४. अहो तृणाग्रसंसक्तजलबिन्दुचलाचलम् ।
मनुष्यजीवितं यद्वत्क्षणान्नाशमुपागतम् ॥ ११८।१०३
६०५. कस्येष्टानि कलत्राणि कस्यार्थाः कस्य बान्धवाः ।
संसारे सुलभं ह्येतद् बोधिरेका सुदुर्लभा ॥ ११८।१०५
६०६. तेषा सर्वसुखान्येव ये श्रामण्यमुपागताः ॥ ११८।११०
६०७. कानोपभोगेषु मनोहरेषु सुहृत्सु सम्बन्धिषु बान्धवेषु ।
वस्तुष्वभीष्टेषु च जीवितेषु कस्यास्ति तृप्तिर्न रवे भवेऽस्मिन् ॥ ११८।१२७
६०८. किमनेन समस्तेन विनाशित्वावसाधिना ? ११८।२१
६०९. सनातननिराबाधपरातिशयसौख्यदम् ।
मनीषितं पर युक्तं जिनधर्मं वगाहितुम् ॥ ११९।२२
६१०. जैने शक्त्या च भक्त्या च शासने सङ्गतत्पराः ।
जना विभ्रति लभ्यार्थं जन्म मुक्तिपदान्तिकम् ॥ ११९।५६
६११. जिनाक्षरमहारत्ननिधानं प्राप्य भो जना ।
कुलिङ्गसमं सर्वं परित्यजत दुःखदम् ॥ ११९।५७
६१२. कुग्रन्थैर्मोहितात्मानः सदम्भकलुषक्रियाः ।
जात्यन्या इव गच्छन्ति त्यक्त्वा कल्याणमन्यतः ॥ ११९।५८
६१३. नानोपकरणं दृष्ट्वा साधनं शक्तिवर्जिताः ।
निर्दोषमिति भाषित्वा गृह्णते मुखराः परे ॥ ११९।५९
६१४. व्यर्थमेव कुलिङ्गास्ते मूढैरन्यैः पुरस्कृताः ।
प्रतिन्ततनवो भारं वहन्ति मृतका इव ॥ ११९।५०
६१५. श्रृण्वस्ते खलु येषा परिग्रहे नास्ति माघने वा बुद्धिः ॥ ११९।५१ ✓
६१६. कर्मणः पश्यताधानं ही शुभाशुभयोः पुण्यम् ।
विचित्रं जन्म लोकस्य ॥ १२२।१७
६१७. कुर्वन्तु वाञ्छितं बाह्याः क्रियापालमनेकधा ।
प्रच्यवन्ते न तु स्वार्थातिपरमार्थविक्षणाः ॥ १२२।६३
६१८. किमनेनाभिमानेन परमानर्थहेतुना ॥ १२३।१६

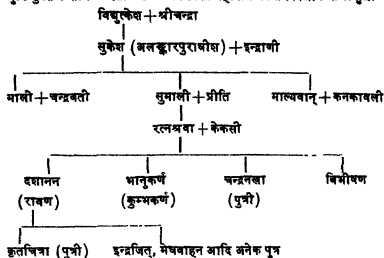
६१६. अबुष्टलोकपर्यन्ता हिंसानृतपरस्विन ।
रौद्रभ्यानपरा प्राप्ता नरकस्य प्रतिद्विष ॥ १२३।२८
६२०. भोगाधिकारससक्तस्त्रीब्रकोषादिरञ्जिता ।
षिकर्मनिरता नित्य सम्प्राप्ता दुःखमीदृशम् ॥ १२३।२९
६२१. अहो मोहस्य माहात्म्यं यत्स्वार्थादिषु हीयते ॥ १२३।३०
६२२. विषयामिषलुब्धानां प्राप्तानां नरकासुखम् ।
स्वकृतप्राप्तवश्यानां किं करिष्यन्ति देवता ॥ १२३।३१
६२३. एतत्स्वोपचितं कर्म भोक्तव्यम् ॥ १२३।३२
६२४. कर्मप्रमथनं शुद्धं पवित्रं परमार्थदम् ।
अप्राप्तपूर्वमाप्तं वा दुःखं हीतं प्रमादिनाम् ॥ १२३।३३
६२५. दुर्विज्ञेयमभयानां बृहद्भवभयानकम् ।
कल्याणं दुर्लभं सुष्ठु सम्यग्दर्शनमूचितम् ॥ १२३।३४
६२६. अहंविभर्गविता भ्रात्रा भगवद्भिर्महोत्तमैः ।
तथैवेति दूढं भक्त्या सम्यग्दर्शनमिष्यते ॥ १२३।३५
६२७. मुक्तिर्वैराग्यनिष्ठस्य रागिणो भवमज्जनम् ॥ १२३।३६
६२८. अवलम्ब्य शिलां कण्ठे दाम्भ्यां तर्तुं न शक्यते ।
नदीं तद्वन् रागाद्यैस्तस्मिन् समूतिं क्षमा ॥ १२३।३७
६२९. ज्ञानशीलगुणासङ्गृहीतं भवसागरम् ।
ज्ञानानुगतचित्तेन गुरुवाक्यानुवर्तिना ॥ १२३।३८
६३०. आदिमध्यावसानेषु वेदितव्यमिदं वृषं ।
सर्वेषां यन्महातेजां केवलीं प्रमते गुणान् ॥ १२३।३९
६३१. पात्रभृतान्नदानाच्च शक्त्याद्यास्तपयन्ति ये ।
ते भोगभूमिमासाद्य प्राप्नुवन्ति परं पदम् ॥ १२३।४०
६३२. स्वर्गं भोगं प्रभुञ्जन्ति भागभमेक्युता नराः ।
तत्रस्थानां स्वभावोऽयं दानैर्भोगस्य भ्रमपदम् ॥ १२३।४१
६३३. दानतो ज्ञानप्राप्तिञ्च स्वर्गमोक्षैकधारणम् ॥ १२३।४२
६३४. अपि नाम शिवं गुणानुबन्धं व्यसनस्फूर्तिफलं शिवतरम् ।
तद्विषयस्फूर्तुं तदेति मैत्रीमक्षिणं तेन न शान्तयं कदाचित् ॥ १२३।४३
६३५. स्वकलत्रसुखं हितं रहित्वा परकान्ताभिरातं करोति पापः ।
व्यसनार्णवमत्युदारमेव प्रविशत्येव विशुष्णं दारुकल्पम् ॥ १२३।४४
६३६. सुकृतस्य फलेन जस्तुल्यं पदमाप्नोति सुसम्पदा निधानम् ।
दुरितस्य फलेन तत्तु दुःखं कुपतिस्तु समुपेत्य स्वभावम् ॥ १२३।४५

परिशिष्ट-२
पञ्चपुराण की प्रमुख वंशावलियाँ
राक्षस-वंश



जिन भास्कर, सम्पत्तिकीर्ति, सुग्रीव, हरिग्रीव, श्रीग्रीव, सुमुख, सुव्यक्त, अमृतवेग, भानुगति, चिन्तागति, इन्द्र, इन्द्रप्रभ, मेघ, मृगारिव्रजन, पवि, इन्द्रजित्, भानुवर्मा, भानु, भानुप्रभ, मुरारि, त्रिजट, भीम, मोहन, उद्धारक, रवि, चकार, वज्रसम्प, प्रभोद, सिंहविक्रम, चामुण्ड, मारण, भीष्म, द्वीपबाहु, अरिमर्दन, निर्वाण-अस्ति, उपश्वी, अर्हद्भक्ति, अनुत्तर, गतभ्रम, अनिल, चण्ड, लकाशोक, मयूरवान्, महाबाहु, मनोरम्य, भास्कराभ, बृहद्गति, बृहत्कान्त, अरिसम्प्राप्त, चन्द्रावर्त,

महारथ, मेघध्वज, गृहलोभ, नक्षत्रदमन आदि करोड़ों बिद्याधर इस वंश में हुए।
चिरकाल बाद लंकाधिपति धनप्रभ (जिसकी रानी पद्मा थी) इस वंश में हुआ
जिसका पुत्र कीर्तिधवल हुआ (जिसकी रानी अतीन्द्र की सुता देवी थी।) भगवान्
मुनि सुव्रत के तीर्थ में इसी वंश में बानरवंशी महोदधि का समकालीन राजा हुआ—



इक्ष्वाकु-वंश (रामपर्यन्त)

नाभिराज + भरुदेवी

ऋषभदेव + सुनन्दा,
(सूर्यवंश)

भरत

आदित्यवंश (अकंकीर्ति)

सितयथा

बलाङ्क (बल)

सुबल

(अगले पृष्ठ पर सम्बद्ध)

+ नन्दा
(चन्द्रवंश)

पोदनपुराधिपति भरत का सौतेला
भाई बाहुबली

सोमयथा

महाबल

सुबल

भुजबलि आदि अनेक राजा

महाबल
 अतिबल
 अमृतबल
 समुद्रसागर
 भद्र
 रवितेजा
 क्षीरी
 प्रभूततेजा
 तेजस्वी
 तपन
 प्रतापवान्
 अतिवीर्यं
 मुवीर्यं
 उदितपराक्रम
 महेंद्रविक्रम
 सूर्य
 इन्द्रबुध्न
 महेंद्रजित्
 प्रभु
 विभु

अतिध्वंस

वीरभी

वृषभध्वज

गवडाकू

मृगाकू

अन्य बहुत से राजा । भगवान् आदिनाथ का युग समाप्त होने पर, अनेकों राजाओं के व्यतीत होने पर अयोध्या में हुआ—

घरणीघर + श्रीदेवी

त्रिदशज्जय + इन्दुरेखा

जितशत्रु + विजया

अजितनाथ + सुनयना, नन्दा आदि
अनेक रानियाँ ।

विजयसागर + सुमङ्गला

सगर चक्रवर्ती + ९९ हजार रानियाँ

जह्नु आदि ६० हजार पुत्र

भगीरथ

चिरकालोपरान्त इसी इक्ष्वाकुवंश में
अयोध्यानगरी में हुआ—

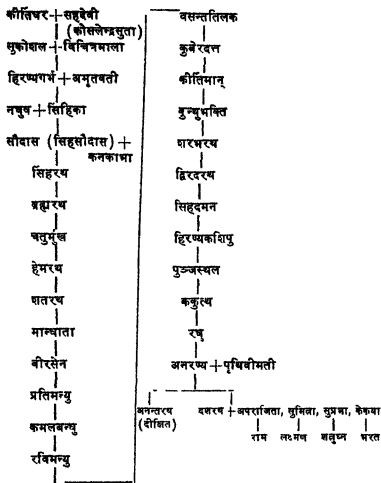
त्रिजय + हेमचूला

सुरेन्द्रमन्यु + कीर्तिसमा

वज्रबाहु + मनोवया
(दीक्षित)

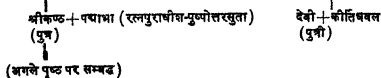
पुरन्दर + पृथिवीमती

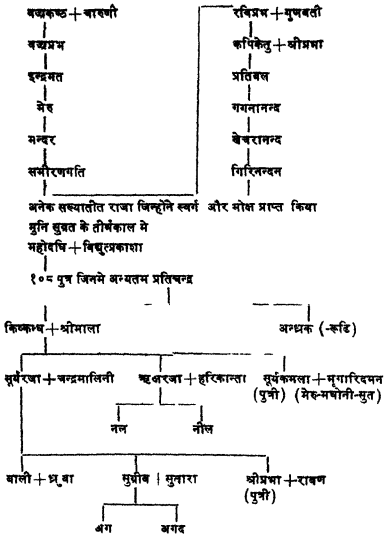
(अगले पृष्ठ पर सम्बद्ध)



वानर-वंश

अतीन्द्र + श्रीमती





परिशिष्ट—३

संकेतित-ग्रन्थ-सूची

१. अकबरनामा : अबुलफजल	२. अथर्ववेद
३. अध्यात्मरामायण : व्यास	४. अनर्घराघव : मुरारि
५. अनामकं जातकम्	६. अमरुतक : अमरक
७. अष्टमहाश्रीचैत्यस्तोत्र : हर्ष	८. आश्चर्यचूडामणि : शक्तिभद्र
९. आदिपुराण : जिनसेन	१०. उत्तरपुराण : जिनसेन
११. उत्तररामचरित : भवभूति	१२. उदात्त राघव : माधुराज
१३. उदारराघव : साकन्त्यमल्ल	१४. उन्मत्तराघव : भास्करभट्ट
१५. उल्लासराघव सोमेश्वर	१६. ऐहौल शिलालेख
१७. कथाकोषप्रकरण : जिनविजय	१८. कवितावली : तुलसी
१९. कल्याण (मानसांक)	२०. कहावली : भद्रेश्वर
२१. कात्यायनश्रीतसूत्र	२२. कादम्बरी : बाणभट्ट
२३. काव्यप्रकाश : मम्मट	२४. काव्यादर्श : दण्डी
२५. काव्यालंकार : वल्लट	२६. काशिका
२७. किराताजुनीय : भारवि	२८. कुन्दमाला . दिङ्नाग
२९. कुवलयमाला : उद्योतनसूरि	३०. कृष्णगीतावली : तुलसी
३१. कुमारसम्भव : कालिदास	३२. गीतावली : तुलसी
३३. चउपन्नमहापुरिसचरिय : शीलाचार्य	
३४. चण्डीशतक : बाण	३५. चारितपाहुड : कुन्दकुन्द
३६. चित्रबन्धरामायण : बेंकटेश	३७. छक्कम्बोवएस : अमरकीर्ति
३८. छन्दमाला : कुलशेखर	३९. जानकीपरिणय : चक्रकवि
४०. जानकीहरण : कुमारदास	४१. जिनरामायण : चंद्रसागर वर्णी
४२. जीवनसम्बोधन : बन्धुवर्मा	४३. जैनसाहित्य और इतिहास : नाथूराम प्रेमी
४४. डेवलपमेण्ट ऑफ ट्रेड एण्ड इण्डस्ट्री अण्डर दी मुगल्स : एस. एस. कुलशेखर	
४५. तत्त्वार्थसूत्र : उमास्वाति	४६. तुलसी : डॉ० उदयभानुसिंह
४७. तुलसीदास : डॉ० माताप्रसाद शुप्त	४८. तुलसीदास और उनका युग : डॉ० राजपति दीक्षित

४६. तुलसी और उनका काव्य : डॉ० रामनरेश त्रिपाठी
 ४७. तुलसी रसावन : डॉ० मगीरय ४८. तुलसी-ग्रन्थावली : डॉ० रामचन्द्र मिश्र
 ४९. तिलोत्पण्णति : यतिबृजभ ५०. तिसद्वीमहापुराणानुवाकः : पुष्पवन्त
 ५१. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित : हेमचन्द्र
 ५२. त्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराण : चामुण्डराय
 ५३. वसकुमारचरित : दण्डी ५४. दी हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दी एन्डियन पीपल-दी क्लैसिकल एज : आर. सी. माजूमदार आदि ।
 ५५. दी कलेक्टेड वर्क्स ऑफ मन्डारकर, बाल्युम-३
 ५६. वृतांगद : सुभट्ट ५७. दोहावली : तुलसी
 ५८. धर्मपरीक्षा ५९. धूर्तायानम् हरिभद्र
 ६०. नीतिशतक : भर्तृहरि ६१. पद्मरामायण : अभिनव पम्प
 ६२. पद्मचरित : स्वयंभू ६३. पद्मचरित : विमलसूरि
 ६४. पद्मचरित (पद्मपुराण) : रविशेष
 ६५. पंचतन्त्र . विष्णु शर्मा ६६. पंचसंग्रह (संस्कृतानुवाद : अमितगतिशूर
 ६७. पार्वतीमंगल : तुलसी ६८. पुण्याश्वकथाकोष : रामचन्द्र मुमुक्षु
 ६९. पुण्याश्वकथासार : नागराज ७०. पुराणविमर्श : बलदेव उपाध्याय
 ७१. पुराणविषयानुक्रमणी (राजनैतिक) : डा० राजबंसी पाण्डेय
 ७२. पुरुषसूक्त (ऋग्वेद) ७३. पृथ्वीराज रासो : चन्दबरदाई
 ७४. पञ्चास्तिकाय : कुन्दकुन्द ७५. प्रतिमानाटक : भास
 ७६. प्रवचनसार . कुन्दकुन्द ७७. प्रसन्नराज्य : जयदेव
 ७८. प्राचीन भारत का इतिहास : रमाशंकर त्रिपाठी
 ७९. प्राचीन भारत का इतिहास : बी० डी० महाजन
 ८०. प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका : डा० रामजी उपाध्याय
 ८१. बरवै रामायण : तुलसी ८२. बालरामायण : राजशेखर
 ८३. भक्तभारतस्तोत्र : मानदुर्ग ८४. भगवती आराधना
 ८५. भारत का प्राचीन इतिहास : एन० एन० बोस
 ८६. भारतीय दर्शन : डॉ० राजाकृष्णन् ८७. भारतीय संस्कृति : डा० बलदेव-प्रसाद मिश्र

६१. भावसंग्रह : देवसेन ६२. भावार्थरामायण : एकनाथ
 ६३. मध्ययोगिन वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास : डा० रामरतन भटनागर
 ६४. मनुस्मृति ६५. महाभारत
 ६६. महावीरचरित : भवभूति ६७. मानस का कथाशिल्प : श्रीचरसिंह
 ६८. माझतीमाधव : भवभूति ६९. मिडिल मिस्ट्रीसिज़म ऑफ इण्डिया
 १००. मिडीवल इण्डिया अण्डर मुहमडन कल : डा० स्टेनली लेनपूत
 १०१. मुगल्स एडमिनिस्ट्रेशन : सर यदुनाथ सरकार
 १०२. मेघदूत . कालिदास १०३. मैथिलीकल्याण . हस्तिमल्ल
 १०४. याज्ञवल्क्यस्मृति १०५. रघुवंश : कालिदास
 १०६. राघवनैषधीय . हरदत्तसूरि १०७. राघवपाण्डवीय : धनंजय
 १०८. राघवपाण्डवीय . माधवभट्ट १०९. रामकथा . कामिल बुल्के
 ११०. रामकथावतार देवचन्द्र १११. रामचरित : अभिनन्द
 ११२. रामचरित पद्मदेवविजयगणि ११३. रामचरित : सन्ध्याकरनन्द
 ११४. रामचरित (रामपुराण) सोमसेन
 ११५. रामचरितमानस : तुलसी ११६. रामचरित रामायण : भूपति
 ११७. रामचरितमानस में लोकवार्ता : चन्द्रभान
 ११८. रामदेवपुराण (रामायण) . जिनदास
 ११९. रामलक्ष्मणचरित : भुवनतुंगसूरि
 १२०. रामलला नहछू : तुलसी १२१. रामलीलामृत . कृष्णभोहन
 १२२. रामविजय : देवप्प १२३. रामविवाह : भालण
 १२४. रामायण : कुमुदेन्दु १२५. रामायण . कृत्तिवास
 १२६. रामायणमंजरी : लोभेन्द्र १२७. रामार्चनपद्धति : रामानन्द
 १२८. रामानुजप्रश्न : तुलसी १२९. राघववध (भट्टिकाव्य) : भट्ट
 १३०. लघुत्रिषष्टिशालाकापुरुषचरित : सोमप्रभ
 १३१. लघुत्रिषष्टिशालाकापुरुषचरित : मेघविजय गणिवर
 १३२. लोकविभाग : सर्वनन्द १३३. वराहचरित : जटिलमुनि
 १३४. वाल्मीकिरामायण : वाल्मीकि
 १३५. वासवदत्ता : सुबन्धु १३६. विनयपत्रिका : तुलसी
 १३७. विषादहृदयस्तोत्र : वनंजय १३८. वैराग्यवाक्य : भर्तृहरि
 १३९. शिशुपालवध : माध १४०. शृंगारस्तक : भर्तृहरि
 १४१. श्रीमद्भागवत : व्यास १४२. श्रीमद्भगवद्गीता : व्यास
 १४३. समयसागर : कुन्दकुन्द १४४. साकेत : एक अध्ययन : डा० नयेन्द्र

१४५. साहित्यदर्पण : विष्णुनाथ १४६. साहित्य, शिक्षा और संस्कृति :
डा० राजेन्द्र प्रसाद
१४७. सीयाचरित : सुवनतुंगसूरि १४८. सूर्यशतक : बाणभट्ट
१४९. संस्कृत-कवि-दर्शन : डॉ० भोलाशंकर व्यास
१५०. संस्कृत साहित्य का इतिहास : कन्हैयालाल पोद्दार
१५१. संस्कृत साहित्य का इतिहास : बाचस्पति गैरोला
१५२. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा : चन्द्रशेखर पाण्डेय
१५३. हर्षचरित : बाणभट्ट १५४. हर्षचरित: एक सांस्कृतिक अध्ययन :
डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
१५५. हरिवंशपुराण : जिनसेन १५६. हंससन्देश (हंसदूत) : वैकुण्ठेश
१५७. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप-विकास : डा० शम्भुनाथसिंह
१५८. हिन्दी साहित्य का इतिहास . आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१५९. हिन्दी-साहित्य-कोश, भाग १ . सं० धीरेन्द्र वर्मा
१६०. हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एन्ड टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स . इलियट
एण्ड डौसन
१६१. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर : ए. ए. मैकडानल



